4TH EDITION 8th PRINTING 4TH EDITION

from
Harshad Mehta
to Ketan Parekh

THE SCAM

also includes
JPC FIASCO & GLOBAL TRUST BANK SCAM

Debashis Basu
Sucheta Dalal

घोटाला

हर्षद मेहता से केतन पारेख तक

देबाशीष बसु

सुचेता दलाल

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
rd
315, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible],
[illegible], [illegible] 400028
www.kensource.com
mail@kensource.com

[illegible] © [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] 1993
[illegible] [illegible] 1994
[illegible] [illegible] [illegible] 2001
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] 2005
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] 2006
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] 2007
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] 2009
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) 2014

ISBN 81-88154-09-1

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [

इस प्रकाशन के संबंध में कोई भी अनधिकृत कार्य करने वाला व्यक्ति
आपराधिक अभियोजन और क्षतिपूर्ति के लिए दीवानी दावों का पात्र हो सकता है।
11 पॉइंट सेंचुरी ओल्डस्ट बीटी में टाइपसेट और मुद्रित गोप्सन्स पेपर लिमिटेड, ए-2 और 3, सेक्टर 64, नोएडा
केनसोर्स का उद्देश्य व्यवसाय, वित्त, प्रबंधन, बाजार, अर्थशास्त्र, सामाजिक-आर्थिक मुद्दों और संबंधित क्षेत्रों पर जीवंत गैर-काल्पनिक पुस्तकें प्रकाशित करना है। नए
और रोचक विचारों वाले लेखकों से पूछताछ का स्वागत है।

हमारे माता-पिता को

आभार

डब्ल्यू ई ने टाइम्स ऑफ इंडिया और बिजनेस टुडे के लिए काम करते हुए शुरू में इस घोटाले का अनुसरण किया था। इस पुस्तक की सामग्री का एक हिस्सा उन अनेक साक्षात्कारों से प्राप्त हुआ है जो इस घोटाले में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल अधिकांश व्यक्तियों, मुख्य रूप से शीर्ष दलालों और शीर्ष बैंक अधिकारियों के साथ किए गए थे। घोटाले की जांच जारी रहने के दौरान प्रेस से बात करने में उनकी प्रारंभिक झिझक को दूर करते हुए, उन्होंने अंततः हमें चर्चा करने, स्पष्टीकरण देने और महत्वपूर्ण दस्तावेज़ साझा करने के लिए अपना काफी समय दिया, जिससे हमारे लेखन में सहायता मिली। इन असंख्य जानकार गुमनाम स्रोतों के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। कई अन्य लोगों ने भी महत्वपूर्ण जानकारी, परिचय और अपने नैतिक समर्थन के माध्यम से बहुत मदद की, लेकिन दुर्भाग्य से, उनके नाम भी नहीं बताए जा सकते।

अंत में, हम अपने मुख्य स्रोत, एक अद्भुत व्यक्ति और अब एक प्रिय मित्र और मार्गदर्शक के प्रति अपने अमूल्य ऋण को व्यक्त करना चाहते हैं। दुर्भाग्य से उनकी पहचान नहीं बताई जा सकती (हमारे नोट्स और बातचीत में उन्हें 'डीप थ्रोट' के रूप में संदर्भित किया गया है) क्योंकि वे स्वयं प्रतिभूति व्यवसाय का हिस्सा हैं। जटिल लेन-देन, इसमें शामिल लोगों की प्रकृति, विशिष्ट सौदे और शीर्ष अधिकारियों के बीच गोपनीय बातचीत की हमारी समझ, उन घंटों से ही संभव हो पाई है जो उन्होंने उपनगरों के साधारण रेस्तरांओं में हमारे साथ उदारतापूर्वक बिताए, हमें आधी रात को

घर छोड़ा और फिर वापस शहर ले गए। डीप थ्रोट की मदद के बिना, यह किताब और हमारी पहले की अधिकांश रिपोर्टिंग अकल्पनीय होती।

यह किताब 1992-93 में पहली बार प्रकाशित होने पर बेस्टसेलर थी। सात वर्षों तक यह किताब अनुपलब्ध रही। हमें प्रतियों के लिए अनगिनत अनुरोध प्राप्त हुए, इसलिए हमने 2000 में केतन पारेख घोटाले के नाम से जाने जाने वाले घटनाक्रम के बाद किताब को अपडेट करने का निर्णय लिया। व्यापक संशोधनों और परिवर्धनों के बाद यह किताब 2001 में केनसोर्स प्रकाशन के तहत मुद्रित हुई (2001 का घोटाला)। वह संस्करण जल्द ही बिक गया। निरंतर मांग से उत्साहित होकर हमने किताब का तीसरा विस्तारित संस्करण प्रकाशित किया, जिसके कई पुनर्मुद्रण हो चुके हैं। इस प्रयास में, पिछले संस्करण की तरह ही, हमें मुंबई के स्ट्रैंड बुक स्टॉल के स्वर्गीय श्री टी.एन. शानबाग का अमूल्य मार्गदर्शन, सहयोग और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। श्री शानबाग स्वयं एक प्रतिष्ठित व्यक्तित्व थे और उन्होंने अपना पूरा जीवन लोगों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करने के अपने मिशन में समर्पित कर दिया। मुंबई के पुस्तक प्रेमियों को आज भी उनकी कमी खलती है। डॉ. नीता मुखर्जी की संपादन विशेषज्ञता से भी पुस्तक को अपार लाभ मिला है।

□□□□ □□□□

□□□□□□□□

□□□□ □□ □□□

1. □□□□□□ □□□□□ □□□

2. □□□□□, □□□□, □□□□□, □□□

3. □□□□ □□ □□□□□□□□

4. □□ □□□□□□□□

5. □□□□ □□□

6. □□ □□□□ □□□□□

7. □□□□□ □□□ □□□ □□□□

8. □□□□ □□ □□□ □□□□□

9. □□□□□□□□□□ □□ □□□□ □□□□□ □□ □□□□□

10. □□□□□□□□□□ □□ □□ □□ □□□□□

11. [illegible]
12. [illegible]

13. [illegible]

14. [illegible]

15. [illegible]

16. [illegible]

17. [illegible]

18. [illegible]

19. [illegible]

20. [illegible]

21. [illegible]

22. [illegible]

कालक्रम

23 अप्रैल, 1992: टाइम्स ऑफ इंडिया ने खबर दी कि स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ने भारतीय रिजर्व बैंक से 500 करोड़ रुपये की अनियमितताओं का निपटारा करने को कहा है।
29-30 अप्रैल: संसद में हंगामा मच गया। वित्त मंत्री मनमोहन सिंह ने घोषणा की कि भारतीय रिजर्व बैंक इस घोटाले की जांच करेगा। सरकार ने केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) को बुलाया। 30 अप्रैल: इंडियन एक्सप्रेस ने खबर दी कि यूको बैंक ने हर्षद मेहता की कंपनियों को अपने बिलों को डिस्काउंट करके 50.37 करोड़ रुपये का इस्तेमाल करने की अनुमति दी थी।
5 मई: भारतीय रिजर्व बैंक ने घोटाले की जांच के लिए उप-गवर्नर आर. जानकीरमन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया।
6 मई: इंडियन एक्सप्रेस ने खबर दी कि भारतीय रिजर्व बैंक की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी नेशनल हाउसिंग बैंक ने हर्षद मेहता को भारतीय स्टेट बैंक के साथ अपने बकाया का निपटारा करने में मदद के लिए पैसे दिए थे।
9 मई: नेशनल हाउसिंग बैंक के गैर-कार्यकारी अध्यक्ष एम. जे. फेरवानी ने इस्तीफा दे दिया। दो दिन बाद उन्होंने महाराष्ट्र राज्य वित्त निगम, स्टॉक होल्डिंग निगम और इंफ्रास्ट्रक्चर लीजिंग एंड फाइनेंशियल सर्विसेज के अध्यक्ष पद से भी इस्तीफा दे दिया।
10 मई: स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक को अपने खातों में प्रतिभूतियों के अंतर का पता चला। यूको बैंक के अध्यक्ष के. मार्गबंथु को छुट्टी पर जाने के लिए कहा गया।
11 मई: के. माधवन के नेतृत्व में सीबीआई ने जांच शुरू की।

14 मई: सीबीआई ने हर्षद मेहता का बैंक खाता फ्रीज कर दिया और उनकी संपत्ति जब्त कर ली।
21 मई: एम. जे. फेरवानी का निधन हो गया।
25 मई: आरबीआई ने भूपेन दलाल को बैंक ऑफ कराड से इस्तीफा देने के लिए कहा।
27 मई: उच्च न्यायालय ने बैंक ऑफ कराड के परिसमापन का आदेश दिया। इस आदेश के चलते बैंक में भगदड़ मच गई।
29 मई: भारतीय रिज़र्व बैंक ने मदुरा बैंक के अध्यक्ष एस पी सबापथी को बर्खास्त कर दिया। स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र में फर्जी रसीदों के फंसने की अफवाहों के बाद बैंक में अफरा-तफरी मच गई।
30 मई: जनकिरामन समिति की पहली रिपोर्ट प्रकाशित हुई। पहली जनकिरामन समिति की रिपोर्ट के बाद सीबीआई ने स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के अधिकारियों के खिलाफ मामला दर्ज किया।
31 मई-1 जून: हर्षद मेहता के सहयोगी निरंजन शाह के घर आयकर विभाग ने छापा मारा। वह देश से भाग निकला।
4 जून: हर्षद मेहता, उनके भाई अश्विन, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के उप प्रबंध निदेशक और अन्य को गिरफ्तार किया गया।
6 जून: विशेष न्यायालय अध्यादेश जारी किया गया।
20 जून: सीबीआई ने भूपेन दलाल, जेपी गांधी, हितेन दलाल, अभय नरोत्तम, टीबी रुइया और कैनबैंक म्यूचुअल और कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज के अधिकारियों के खिलाफ मामले दर्ज किए।
23 जून: भूपेन दलाल, ए डी नरोत्तम, हितेन दलाल और अन्य गिरफ्तार।
29 जून: कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज के अशोक कुमार को गिरफ्तार किया गया।

30 जून: आरबीआई ने फेयरग्रोथ पर सभी प्रकार के लेनदेन पर प्रतिबंध लगा दिया।
2 जुलाई: भूपेन दलाल, टी.बी. रुइया और जे.पी. गांधी के खिलाफ अधिसूचना जारी।
3-8 जुलाई: जॉन डोचेर्टी ने पी एस नट के स्थान पर स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक के मुख्य कार्यकारी अधिकारी का पदभार संभाला। बैंक ने पांच कर्मचारियों - अरविंद लाल, जयदीप पाठक, आर के अय्यर, वी आर श्रीनिवासन और वी श्रीनिवास को बर्खास्त कर दिया। जानकीरामन समिति की दूसरी रिपोर्ट जारी हुई। भूपेन दलाल और अन्य को हिरासत में भेज दिया गया। यूको बैंक के अध्यक्ष के मार्गबंथु को बर्खास्त कर दिया गया। सीबीआई ने एसबीआई कैपिटल मार्केट्स और स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र से संबंधित हर्षद मेहता के खिलाफ दो और मामले दर्ज किए।
9 जुलाई: पी चिदंबरम ने इस्तीफा दे दिया क्योंकि उनकी पत्नी के पास फेयरग्रोथ के 25,000 शेयर थे। सीबीआई ने यूको बैंक के अध्यक्ष के मार्गबंथु के खिलाफ मामला दर्ज किया। सरकार ने संयुक्त संसदीय समिति द्वारा जांच की घोषणा की।
13 जुलाई: सीबीआई ने हर्षद मेहता और नेशनल हाउसिंग बैंक और एसबीआई के अधिकारियों के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआरआई) दर्ज की।
20 जुलाई: सीबीआई के के माधवन ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति मांगी। अफवाहें थीं कि उन पर जांच को दबाने का दबाव डाला जा रहा था।
21 जुलाई: वी कृष्णमूर्ति ने योजना आयोग से इस्तीफा दे दिया।
22 जुलाई: भूपेन दलाल और पांच अन्य को जमानत मिल गई।

30 जुलाई: सीबीआई ने फेयरग्रोथ के खिलाफ मामला दर्ज किया और उसके कार्यालयों पर छापा मारा।
6 अगस्त: तीस सदस्यों वाली संयुक्त संसदीय समिति का गठन किया गया।
7-10 अगस्त: सीबीआई ने वी कृष्णमूर्ति के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोप दर्ज किए और उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उनके खाते और उनके बेटों द्वारा संचालित के जे इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड के सनवा बैंक खाते को फ्रीज कर दिया गया।
26 अगस्त: तीसरी जनकीरामन रिपोर्ट में बैंक ऑफ अमेरिका, सिटीबैंक, सी मैकर्टिच और स्टीवर्ट एंड कंपनी को दोषी ठहराया गया।
28 अगस्त: सिटीबैंक के प्रमुख ब्रोकर अजय कायन के कार्यालय और आवास पर छापा मारा गया।
4 सितंबर: संयुक्त संसदीय समिति ने वित्त राज्य मंत्री रामेश्वर ठाकुर के खिलाफ कुछ समिति सदस्यों को प्रभावित करने के प्रयास के लिए विशेषाधिकार हनन का मामला दर्ज किया।
7 सितंबर: सीबीआई ने फेयरग्रोथ फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड के प्रबंध निदेशक के धर्मपाल को गिरफ्तार किया।
15 सितंबर: संयुक्त संसदीय समिति की सुनवाई शुरू हुई।
21 सितंबर: फेयरग्रोथ के कार्यकारी निदेशक आर लक्ष्मीनारायण को गिरफ्तार किया गया।
22 सितंबर: हर्षद मेहता को रिहा कर दिया गया।
8 अक्टूबर: स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक ने न्यूयॉर्क में सिटीबैंक पर 115.69 करोड़ रुपये का मुकदमा दायर किया।
14 अक्टूबर: जेपीसी की सुनवाई में केंद्रीय पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्री बी शंकरानंद पर आरोप लगे कि उन्होंने

कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज में धनराशि जमा करने का आदेश दिया था, जहां उनका बेटा निदेशक था।
10 नवंबर: घोटाले में फंसे स्टैनचार्ट बैंक से 15 लाख रुपये का ओवरड्राफ्ट लेने के आरोपों के बाद अटॉर्नी जनरल जी रामास्वामी ने इस्तीफा दे दिया।
24 नवंबर: सीबीआई ने तेल और प्राकृतिक गैस आयोग के सदस्य (वित्त) एम सी नवलखा के कार्यालय और आवास पर छापा मारा।
25 नवंबर: सीबीआई ने तेल और प्राकृतिक गैस आयोग की धनराशि हर्षद मेहता को हस्तांतरित करने के आरोप में नवलखा के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआरआई) दर्ज की। स्टैनचार्ट बैंक द्वारा आरोपी के रूप में नामजद किए जाने के छह महीने बाद उद्योगपति टी बी रुइया को गिरफ्तार किया गया। (कई साल बाद अदालत ने उन्हें बरी कर दिया)।
27 नवंबर: स्टैनचार्ट बैंक ने सोलह बैंकों और म्यूचुअल फंडों के खिलाफ लगभग 650 करोड़ रुपये की वसूली के दावे दायर किए।
30 नवंबर: आरबीआई ने बैंक ऑफ अमेरिका के विक्रम तलवार को भारत प्रमुख के पद पर बने रहने के आवेदन को अस्वीकार कर दिया। तलवार ने भारत से इस्तीफा दे दिया।
2 दिसंबर: आरबीआई ने सिटीबैंक को तीन दक्षिण एशियाई देशों में बैंक के परिचालन के क्षेत्र प्रबंधक और बैंक के भारतीय परिचालन के मुख्य सूत्रधार ए एस थियागराजन को हटाने का निर्देश दिया। 1993

16 जून: मेहता ने प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव को 1 करोड़ रुपये की रिश्वत देने का दावा किया।

26 अक्टूबर: सीबीआई द्वारा (कैनफिना के खिलाफ) पहली चार्जशीट दाखिल की गई।
21 दिसंबर: लोकसभा में जेपीसी की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

घोटाला 2001

28 फरवरी: यशवंत सिन्हा ने 'ड्रीम बजट' पेश किया। सेंसेक्स 4070.37 पर मजबूती से खुला और 177 अंकों की बढ़त के साथ 4247.04 पर बंद हुआ।
1 मार्च: दिनभर में 160 से अधिक अंकों के उतार-चढ़ाव के बाद सेंसेक्स 25 अंकों की बढ़त के साथ बंद हुआ। नई अर्थव्यवस्था के शेयरों में बिकवाली का दबाव रहा। केतन पारेख की भुगतान समस्या की अफवाहें फैलने लगीं।
2 मार्च: काला शुक्रवार। सेंसेक्स ने बजट के बाद की अपनी सारी बढ़त खो दी और भारी मंदी के चलते लगभग 176 अंकों की गिरावट के साथ 4095 पर बंद हुआ। सबसे ज्यादा प्रभावित: के-10 शेयरों में। भुगतान समस्याओं की अफवाहें तेज हुईं। सेबी ने गिरावट की जांच करने की घोषणा की।
5 मार्च: सेबी ने मार्जिन बढ़ाए। सेंसेक्स में 97 अंकों की और गिरावट आई। आईटी शेयरों में बिकवाली जारी रही। सेबी ने किसी भी भुगतान संकट से इनकार किया और कहा कि बीएसई के पास पूंजी और मार्जिन के रूप में 2,400 करोड़ रुपये हैं - जो कुल बकाया राशि का 47% है।
8 मार्च: सेबी ने शॉर्ट सेलिंग पर प्रतिबंध लगाया। कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज (सीएसई) में भुगतान संकट की अफवाहें फैलने लगीं। संवेदनशील जानकारी के दुरुपयोग के आरोपों के बाद दोपहर

में बीएसई अध्यक्ष आनंद राठी ने इस्तीफा दे दिया। दीना मेहता अंतरिम अध्यक्ष बनीं।
9 मार्च: सेंसेक्स 70 अंकों की गिरावट के साथ खुला और दिन भर में 175 अंक गिर गया। केतन पारेख के लिए काम करने वाले तीन प्रमुख ब्रोकर - दिनेश सिंघानिया, अशोक पोद्दार और हरीश बियानी सीएसई में डिफॉल्ट कर गए।
12 मार्च: नैस्डैक में गिरावट और बैंकों द्वारा गिरवी रखे गए शेयरों की बिक्री के कारण सेंसेक्स में 114 अंकों की और गिरावट आई। सेबी ने बीएसई के ब्रोकर-निदेशकों दीना ए. मेहता, आनंद राठी, हिमांशु एन. काजी, जयेश शेठ, किरित बी. शाह, मोतीलाल ओसवाल और निरंजन के. नानावती को बर्खास्त कर दिया।
13 मार्च: सेंसेक्स में 340 से अधिक अंकों का उतार-चढ़ाव आया और यह 227 अंक गिरकर 3540.65 के नए 22 महीने के निचले स्तर पर पहुंच गया। इससे पहले नैस्डैक 2000 से नीचे और डाउ जोन्स 400 अंक गिर चुका था। सिन्हा ने घोषणा की कि 'ए' समूह सहित 200 और शेयरों को रोलिंग सेटलमेंट के तहत लाया जाएगा। रक्षा रिश्वत कांड पर Tehelka.com का वीडियो बाजार खुलने के समय ही प्रसारित हुआ, ठीक उसी समय जब संसद शेयर बाजार में आई गिरावट पर बहस कर रही थी।
14 मार्च: यूटीआई और अन्य संस्थानों द्वारा शुरू किए गए व्यापक समर्थन अभियानों के बदौलत सेंसेक्स में 184 अंकों की जबरदस्त उछाल आई।
15 मार्च: सेबी ने स्टॉक एक्सचेंज के अध्यक्षों, उपाध्यक्षों और कोषाध्यक्षों द्वारा प्रोप्राइटरी ट्रेडिंग पर प्रतिबंध लगा दिया। इसने फंड मैनेजरों और निवेश सलाहकारों के लिए यह भी अनिवार्य कर दिया कि वे किसी विशेष शेयर पर मीडिया में कोई

टिप्पणी करने से पहले अपनी और अपने परिवार के सदस्यों की सटीक स्थिति का खुलासा करें।
30 मार्च: माधवपुरा मर्केंटाइल कोऑपरेटिव बैंक के पे ऑर्डर घोटाले में केतन पारेख की संलिप्तता तब उजागर हुई जब बैंक ऑफ इंडिया ने सीबीआई में उनके खिलाफ आपराधिक शिकायत दर्ज कराई। सीबीआई ने शाम को पारेख को गिरफ्तार कर लिया। एसईबीआई ने सीएसई के गवर्निंग बोर्ड को इस्तीफा देने को कहा।
30 मार्च: पिछले तीन सेटलमेंट में शेयर बाजार में भुगतान संकट के बाद सीएसई के अध्यक्ष कमल पारेख, उपाध्यक्ष के. के. डागा और छह अन्य निदेशकों ने इस्तीफा दे दिया।
4 अप्रैल: सीबीआई ने केतन पारेख के रिश्तेदार किरित पारेख से पूछताछ कर उन्हें गिरफ्तार कर लिया। यूटीआई बैंक और ग्लोबल ट्रस्ट बैंक का विलय रद्द कर दिया गया। एसईबीआई ने केतन पारेख की ब्रोकिंग और मर्चेंट बैंकिंग फर्मों पर नया कारोबार करने पर रोक लगा दी।
9-11 अप्रैल: सीबीआई ने माधवपुरा मर्केंटाइल कोऑपरेटिव बैंक के प्रबंध निदेशक रमेश पारेख को गिरफ्तार कर लिया। केतन पारेख ने सीबीआई के सामने स्वीकार किया कि उन्हें ज़ी और एचएफसीएल से वित्तीय सहायता मिली थी। ज़ी ने किसी भी ब्रोकर को ऋण देने से इनकार किया, लेकिन कहा कि उसने एबी कॉर्प में 28.5% और बी4 यू में 15% हिस्सेदारी के अधिग्रहण के लिए धनराशि दी थी। ग्लोबल ट्रस्ट बैंक के रमेश गेली ने मुख्य प्रबंध निदेशक पद से इस्तीफा दे दिया, जबकि जीटीबी ने केतन पारेख से किसी भी तरह के संबंध से इनकार किया।
12 अप्रैल: कॉर्पोरेशन बैंक के पूर्व अध्यक्ष आर एस हुगर को ग्लोबल ट्रस्ट बैंक का नया अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक नियुक्त

किया गया। सेंसेक्स 142 अंक गिरकर 27 महीनों के निचले स्तर 3184 पर पहुंच गया।
16 अप्रैल: बाजार में आई गिरावट की सेबीआई की जांच में तेजी के दौर में शेयरों की बिक्री और मंदी के दौर में शॉर्ट सेल को जिम्मेदार ठहराया गया। सेंसेक्स 28 महीनों के निचले स्तर 3096.51 पर पहुंचा और फिर उसमें उछाल आया।
19 अप्रैल: सेबीआई ने क्रेडिट सुइस फर्स्ट बोस्टन, निर्मल बैंग ब्रोकिंग और फर्स्ट ग्लोबल स्टॉक ब्रोकिंग को अगले आदेश तक नए कारोबार करने से रोक दिया। इसने हर्षद मेहता को प्रतिभूतियों में कारोबार करने से स्थायी रूप से प्रतिबंधित कर दिया। अंततः, 1998 के मूल्य निर्धारण मामले पर कार्रवाई करते हुए, बीपीएल, वीडियोकॉन और स्टरलाइट को पूंजी बाजार में प्रवेश करने से प्रतिबंधित कर दिया गया।
20 अप्रैल: फर्स्ट ग्लोबल के शंकर शर्मा को एक आयकर अधिकारी को कथित तौर पर धमकी देने के आरोप में गिरफ्तार किया गया, लेकिन बाद में उन्हें जमानत मिल गई।
24 अप्रैल: सीएसई ने एक्सचेंज को जारी किए गए चेक का अनादर करने के आरोप में 10 ब्रोकरों के खिलाफ मामले दर्ज किए।
26 अप्रैल: एसईबीआई की एक समिति ने रोलिंग सेटलमेंट के तहत कारोबार करने वाले शेयरों के लिए कैरी फॉरवर्ड को समाप्त करने का प्रस्ताव रखा, जिसमें 2 जुलाई 2001 तक सभी ए समूह के शेयरों को शामिल किया जाना था। सरकार ने शेयर बाजार घोटाले की जांच के लिए एक संयुक्त संसदीय समिति का गठन किया।
2 मई: बॉम्बे उच्च न्यायालय ने एसईबीआई द्वारा उनकी चार फर्मों के निलंबन को चुनौती देने वाली आनंद राठी की याचिका खारिज कर दी। एसईबीआई के जोखिम प्रबंधन समूह ने 2 जुलाई 2001 से शॉर्ट

सेल्स पर प्रतिबंध हटाने का फैसला किया और घोषणा की कि उसी दिन 200 और शेयरों को रोलिंग सेटलमेंट मोड में स्थानांतरित किया जाएगा।
9 मई: शेयर बाजार में आई भारी गिरावट के परिणामस्वरूप भारी नुकसान झेलने के बाद ब्रोकर बिमल गांधी ने आत्महत्या कर ली। 10 मई: आरबीआई ने कोझिकोड स्थित नेदुंगडी बैंक के प्रमुख ए आर मूर्ति को बर्खास्त कर दिया, क्योंकि उन्होंने 1992 और 1998 के राजेंद्र बंथिया घोटाले के आरोपियों सहित तीन ब्रोकरों को बैंक के फंड का दुरुपयोग करने की अनुमति दी थी।
14 मई: सेबी ने अंततः जे आर वर्मा समिति के उस प्रस्ताव को मंजूरी दे दी जिसमें 2 जुलाई से बदला ट्रेडिंग पर प्रतिबंध लगाने, व्यक्तिगत शेयरों पर विकल्प ट्रेडिंग शुरू करने और 2 जनवरी, 2002 से सभी शेयरों को रोलिंग सेटलमेंट में स्थानांतरित करने की बात कही गई थी।
16 मई: अपने तीसरे सत्र में, जेपीसी के कुछ सदस्यों ने यूटीआई और अन्य म्यूचुअल फंडों को जांच के दायरे से बाहर रखने के अध्यक्ष के विचार का विरोध किया। उन्होंने घोषणा की कि सत्र और रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर अंतिम निर्णय जुलाई के अंत तक लिया जाएगा। अगले दिन उन्होंने अपना बयान वापस लेते हुए कहा कि समिति यूटीआई या किसी अन्य म्यूचुअल फंड को जांच के लिए बुला सकती है। 18 मई: मुंबई की अदालत ने माधवपुरा मर्केंटाइल को-ऑपरेटिव बैंक घोटाले में फंसे बदनाम स्टॉक ब्रोकर केतन पारेख को जमानत दे दी, जिसके कारण शेयर बाजार में भारी संकट पैदा हो गया था। अदालत ने पारेख को 5 लाख रुपये के बांड पर रिहा किया और उन्हें सप्ताह में दो बार केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) के कार्यालय में पेश होने का आदेश दिया।

23 मई: कलकत्ता उच्च न्यायालय ने कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज के चार दोषी स्टॉक ब्रोकरों - दिनेश कुमार सिंघानिया, हरीश चंद्र बियानी, अशोक कुमार पोद्दार और रतन लाल पोद्दार - को बैंकों और डिपॉजिटरी पार्टिसिपेंट्स के पास रखी संपत्तियों के साथ-साथ अचल संपत्तियों को हस्तांतरित करने से रोक दिया।
2 जुलाई: यूटीआई ने अपनी यूएस-64 योजना की इकाइयों की बिक्री और पुनर्खरीद पर रोक लगा दी और लाभांश को घटाकर 10% कर दिया।
3 जुलाई: यूटीआई के अध्यक्ष पीएस सुब्रमण्यम ने आधी रात को नाटकीय ढंग से इस्तीफा दे दिया।
11 जुलाई: सर्वोच्च न्यायालय ने हितेन दलाल को एक साल की कैद की सजा सुनाई।
20 जुलाई: सीबीआई ने यूटीआई के पूर्व अध्यक्ष पीएस सुब्रमण्यम और दो कार्यकारी निदेशकों के घर पर छापा मारा। यूटीआई के निवेश की जांच के लिए तीन सदस्यीय समिति का गठन किया गया।
6 अगस्त: टाटा फाइनेंस ने प्रबंध निदेशक दिलीप पेंडसे और 5 अन्य के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराई।
8 अगस्त: हितेन दलाल ने विशेष अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण किया।
10 अगस्त: सीबीआई ने एमएमसीबी मामले में केतन पारेख को गिरफ्तार किया।
11 अगस्त: सीएसई के कार्यकारी निदेशक तापस दत्ता को बर्खास्त किया गया।
24 अगस्त: केतन को एमएमसीबी मामले में जमानत मिली। उन्होंने 16 करोड़ रुपये जमा करने का वचन दिया।
6 सितंबर: ज़ी के प्रमोटरों ने केतन पारेख से 90 करोड़ रुपये की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया। हितेन दलाल को कैनबैंक

म्यूचुअल फंड में धोखाधड़ी के लिए 3 साल की कठोर कारावास की सजा सुनाई गई।
7 सितंबर: जीटीबी ने केतन पारेख की कंपनी ट्राइम्फ इंटरनेशनल में 180 करोड़ रुपये के बकाया के बदले 13% हिस्सेदारी खरीदी।
28 सितंबर: निर्मल बंग की सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई।
15 अक्टूबर: सेबी के अध्यक्ष डी.आर. मेहता ने जेपीसी को बताया कि कोई घोटाला नहीं हुआ था।
9 नवंबर: सीबीआई ने हर्षद मेहता और उनके दो भाइयों सुधीर और अश्विन को जालसाजी और गबन के आरोप में गिरफ्तार किया।
27 नवंबर: शंकर शर्मा और देवना मेहरा ने घोषणा की कि वे सरकार पर 500 करोड़ रुपये का मुकदमा करेंगे और यह राशि दान में देंगे।
17 दिसंबर: शंकर शर्मा को प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) ने गिरफ्तार किया।
31 दिसंबर: बिग बुल हर्षद मेहता का दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया।

2002

9 जनवरी: दिल्ली उच्च न्यायालय ने फर्स्ट ग्लोबल के तहलका खुलासे के कारण उत्पीड़न के दावे को खारिज कर दिया, यह देखते हुए कि ईडी ने खुलासे से एक सप्ताह पहले कार्रवाई की थी।
11 फरवरी: ईडी ने आरबीआई की सहमति के बिना एफआईआई को एचएफसीएल के शेयर बेचने के लिए फिस्ट ग्लोबल पर मुकदमा दायर किया।
1 मार्च: शंकर शर्मा जमानत पर रिहा हुए।
15 अप्रैल: केतन पारेख एमएमसीबी को वादा किए गए 16 करोड़ रुपये में से 7 करोड़ रुपये का भुगतान करने में विफल रहे।

19 अप्रैल: न्यायमूर्ति बीवी चव्हाण की अध्यक्षता वाली जांच समिति की सिफारिश पर बीएसई ने व्हिसलब्लोअर ए.ए. तिरोडकर की सेवाएं समाप्त कर दीं।
28 मई: ईडी ने एचएफसीएल मामले में एफईआरए उल्लंघन के लिए 20 एफआईआई पर आरोप लगाया।
17 जून: सेबी ने सीएसएफबी का ब्रोकिंग लाइसेंस निलंबित किया।
3 जुलाई: टाटा ने दिलीप पेंडसे के खिलाफ 400 करोड़ रुपये का मुकदमा दायर किया।
22-25 जुलाई: जेपीसी रिपोर्ट का मसौदा प्रेस में लीक हुआ।
जेपीसी सदस्यों ने इससे पल्ला झाड़ा। 23 सितंबर: सेबी ने फर्स्ट ग्लोबल का ब्रोकिंग लाइसेंस रद्द किया।
25 सितंबर: कोलकाता पुलिस ने छह ब्रोकरों और सीएसई के पूर्व निदेशकों को गिरफ्तार किया।
9 अक्टूबर: कोलकाता पुलिस ने एसएचसीआईएल के पूर्व एमडी और सीईओ बीवी गौड को गिरफ्तार किया।
2 नवंबर: आरबीआई ने नेदुंगड़ी बैंक पर स्थगन की घोषणा की।
29 नवंबर: कोलकाता पुलिस ने स्टॉक ब्रोकर अशोक पोद्दार को गिरफ्तार किया।
2 दिसंबर: कोलकाता पुलिस ने मुंबई में केतन पारेख को गिरफ्तार किया, लेकिन वह "बीमार पड़ गए" और उन्हें जमानत मिल गई।
19 दिसंबर: जेपीसी ने संसद को अपनी रिपोर्ट सौंपी।

2003

14 जनवरी: सुप्रीम कोर्ट ने मारुति मामले में हर्षद को दोषी ठहराया।

20 जनवरी: केतन ने कोलकाता अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण किया। पॉलिसी हिरासत में
7 जून: DCA ने CLB से अपने द्वारा दायर मामलों के शीघ्र निपटारे का अनुरोध किया
19 जून: केतन पारेख ने BOI का बकाया चुकाने पर "सहमति" जताई
11 जून: CBI ने निवेशक शिरीष मन्यार और ब्रोकर मुकेश बाबू को गिरफ्तार किया
9 अक्टूबर: सुप्रीम कोर्ट ने 1992 के घोटाले पर विशेष न्यायालय के आदेश को पलटते हुए स्टैनचार्ट को 12% ब्याज सहित 79 करोड़ रुपये सिटीबैंक को लौटाने का आदेश दिया, जिसके बदले सिटीबैंक कैनबैंक म्यूचुअल को एक हिस्सा चुकाएगा।
17 दिसंबर: SEBI ने केतन, उनके चचेरे भाई और 7 सहयोगियों पर 14 साल का प्रतिबंध लगाया
23 दिसंबर: दिल्ली पुलिस ने दिलीप पेंडसे को गिरफ्तार किया

2004
8 मार्च: SEBI ने केतन की ब्रोकिंग संस्थाओं का ब्रोकिंग पंजीकरण रद्द किया
8 मार्च: SEBI ने अफटेक इंफोसिस के प्रमोटरों को धोखाधड़ी और अनुचित व्यापार प्रथाओं का दोषी पाया। उन्हें एक साल के लिए प्रतिभूतियों में लेन-देन करने से प्रतिबंधित किया गया।
8 अप्रैल: सुप्रीम कोर्ट ने निर्मल बैंग की ब्रोकिंग संस्थाओं पर सजा कम करने के एसएटी के आदेश को बरकरार रखा।
24 जुलाई: आरबीआई द्वारा ग्लोबल ट्रस्ट बैंक पर रोक लगाई गई।
26 जुलाई: जीटीबी का ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स में विलय।

लेखक का नोट

लगभग 1992:
4 जून 1992 की सुबह, मधुली से कुछ ही कदमों की दूरी पर स्थित विशाल अरब सागर शांत दिख रहा था। लेकिन भारतीय शेयर बाजार के पहले सुपरस्टार हर्षद मेहता के घर की तीसरी और चौथी मंजिल पर माहौल तनावपूर्ण था। हर्षद पर स्टेट बैंक ऑफ इंडिया से पैसे लेने और प्रतिभूतियां न देने का आरोप लगा था।
पिछले छह हफ्तों से हर्षद इस मामले को व्यावसायिक रूप से सुलझाने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) को पहले ही बुलाया जा चुका था और हर्षद की पैसे चुकाने के लिए समय देने की अपील को नजरअंदाज किया जा रहा था। दिखावटी और बेहद अमीर हर्षद और उनके चतुर भाई अश्विन के लिए स्थिति गंभीर थी।
सुबह के 8 बजने के कुछ देर बाद, सीबीआई के लगभग 80 लोग वहाँ पहुँचे। उन्होंने न तो मेहता परिवार से पूछताछ की और न ही गिरफ्तारी का कोई संकेत दिया। वे अपार्टमेंट में फैल गए और घोटाले की जांच में उलझते हुए छानबीन शुरू कर दी। माधवन हर्षद से मिलना चाहते थे। ऑपरेशन की निगरानी कर रहे सीबीआई अधिकारी ने अश्विन की ओर मुड़कर कहा, "मैं चाहता हूँ कि तुम भी आओ।" शाम करीब 7:30 बजे, वे सीबीआई के कार्यालयों में से एक, किताब महल की ओर चल पड़े।
माधवन ने हर्षद से लगभग 10 मिनट बात की और फिर शांत भाव से कहा, "मैं तुम्हें गिरफ्तार कर रहा हूँ।" इसमें अश्विन और उनके कुछ कर्मचारी भी शामिल थे। गिरफ्तारी के ज्ञापन आधी रात के आसपास सौंपे गए। कुछ घंटों बाद, सीबीआई ने एसबीआई के उप प्रबंध निदेशक

सीएल खेमानी को भी गिरफ्तार कर लिया। एक घिनौना नाटक शुरू हो चुका था।
इसी बीच, दलाल स्ट्रीट पर फोन बजना बंद हो गए थे। वहाँ अफरा-तफरी मची हुई थी, क्योंकि एक के बाद एक मूर्तियाँ ज़ोरदार आवाज़ के साथ गिर रही थीं। शेयर बाजार के दिग्गज हर्षद मेहता से सीबीआई पुलिस लॉकअप में पूछताछ कर रही थी; शांत और परिष्कृत स्वभाव वाले भूपेन दलाल
घबराए हुए दिख रहे थे; एक लंबे समय से स्थापित सिक्योरिटीज ब्रोकिंग फर्म चला रहे जीतू श्रॉफ के घर पर छापे मारे जा रहे थे। बैंक अपने कर्मचारियों को बर्खास्त कर रहे थे और उनके खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज कर रहे थे।
यह दहशत का माहौल था क्योंकि हाल के समय का सबसे बड़ा भारतीय वित्तीय घोटाला सामने आया। इसे आम तौर पर "घोटाला" के नाम से जाना जाता है (एक अमेरिकी शब्द जो बहुत कम शब्दकोशों में मिलता है)। इसने शेयर बाजारों को तहस-नहस कर दिया, बैंकों में लोगों का विश्वास हिला दिया, विदेशी बैंकों की प्रतिष्ठा को धूमिल किया और भारत के सबसे प्रसिद्ध बैंक, एसबीआई की छवि को भी धूमिल कर दिया। इसने तुरंत एक व्यक्ति की जान ले ली - वित्तीय क्षेत्र के एक हाई-प्रोफाइल खिलाड़ी, एमजे फेरवानी और बाद में कई अन्य लोगों की। इसने महत्वाकांक्षी मंत्री पी चिदंबरम, योजना आयोग के सदस्य वी कृष्णमूर्ति और अटॉर्नी जनरल जी रामास्वामी को उनके पदों से हटा दिया।
यह घोटाला इतना बड़ा था कि परिप्रेक्ष्य खोना आसान था। स्वास्थ्य बजट से भी बड़ा, शिक्षा बजट से भी बड़ा, इसके सामने लाखों रुपये मामूली रकम जैसे लग रहे थे। पिछले छह महीनों में शेयर की कीमतों में अभूतपूर्व और बेतुकी वृद्धि के बाद, जब पूरे

देश में शेयर की कीमतें गिरने लगीं, तो बोफोर्स घोटाले से पचास गुना बड़ा यह घोटाला बवंडर की तरह मध्यमवर्गीय घरों में घुस गया।
लेकिन इसने एक बड़ी पहेली भी सुलझा दी: 1991 की अंतिम तिमाही से मार्च 1992 के अंत तक शेयर बाजारों में छाए आश्चर्यजनक उछाल के पीछे के उन कारणों का पता चल गया, जिन पर बहुत अटकलें लगाई गईं, लेकिन कभी सही अनुमान नहीं लगाया जा सका। हर्षद मेहता के घोटाले की खबर सामने आने के एक सप्ताह के भीतर ही यह स्पष्ट हो गया कि हर्षद के धन का मुख्य स्रोत तस्कर, फिल्म स्टार और ड्रग तस्कर नहीं थे, हालांकि हर्षद द्वारा शेयर की कीमतों में उछाल लाने से उन्हें भी अप्रत्यक्ष रूप से लाभ हुआ होगा। उसकी रणनीति सरल और कम नाटकीय थी। वह एक आदर्श घुसपैठिया था।
उसने एसबीआई के लिए प्रतिभूतियाँ खरीदीं, लेकिन एसबीआई के अधिकारियों से अपने नाम पर चेक जारी करवा लिए और प्रतिभूतियाँ देने में विफल रहा। इस योजना में उसे प्रतिष्ठित एएनजेड ग्रिंडलेज़ बैंक और भारतीय रिज़र्व बैंक (आरबीआई) की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी नेशनल हाउसिंग बैंक का सहयोग मिला। दोनों बैंकों ने हर्षद के खाते में निःसंकोच चेक जमा किए।
हर्षद ने आरबीआई में मौजूद एसबीआई के खाते को अपने नाम से संचालित करने में भी कामयाबी हासिल की, उस खाते के माध्यम से फर्जी खरीद-बिक्री की और अपने बैंक खाते से उसी के अनुसार धनराशि जमा या डेबिट करवा ली।
क्या हर्षद सदी का सबसे बड़ा ठग था? वह अपनी बेशर्मी और महत्वाकांक्षा में निस्संदेह सबसे अलग दिखता है। सैंतीस वर्ष की आयु में, एक दर्जन से अधिक विभिन्न व्यवसायों में हाथ आजमाने

के बाद, वह अचानक एक ऐसी कहानी के केंद्र में आ गया, जो गरीबी से अमीरी तक पहुँचने का एक ऐसा चमत्कारिक किस्सा था, जिसने कभी-कभी उसे भी हैरान कर दिया। मुंबई के वर्ली समुद्र तट पर स्थित मधुली में 15,000 वर्ग फुट के अपार्टमेंट, गोल्फ कोर्स, टोयोटा के सबसे ज्यादा बिकने वाले लग्जरी मॉडल लेक्सस सहित कारों के बेड़े की देखरेख करते हुए, हर्षद मेहता भारत के सबसे अमीर व्यक्तियों में से एक बनने की राह पर अग्रसर थे।
हर्षद और कुछ हद तक पल्लव शेठ जैसे ब्रोकर और फेयरग्रोथ फाइनेंशियल के के धर्मपाल जैसे ट्रेडर्स ने अचानक यह साबित कर दिया कि जल्दी अमीर बनने का शॉर्टकट अब और भी छोटा होता जा रहा है। धीरूभाई अंबानी को सुपरस्टार का दर्जा हासिल करने में दशकों लग गए। हर्षद ने अंबानी की तरह विनिर्माण संपत्तियां स्थापित करने, सरकार और प्रेस से जूझने जैसी परेशानियों के बिना ही कुछ ही वर्षों में यह मुकाम हासिल कर लिया। हर्षद, बैंक, ब्रोकर और व्यापारियों को बस अक्षम बैंकिंग प्रणाली में मौजूद धन में हाथ डालना था।
यह इतना आसान था कि व्यापार जगत के बड़े-बड़े नाम, विशेषकर विदेशी कंपनियां, इसमें शामिल हो गईं। स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक एक संदिग्ध ब्रोकर से हजारों करोड़ रुपये के सिक्योरिटीज का लेन-देन करते हुए पकड़ा गया, जो अक्सर कॉन्ट्रैक्ट नोट नहीं देता था और सारे लेन-देन मन ही मन करता था। इस घोटाले का असर साफ तौर पर दिखाई दिया और यह तेजी से फैल गया, यहाँ तक कि हर्षद जैसे एक चतुर और अनुभवहीन व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहा। इसके दूसरे, अप्रत्याशित और अधिक संदिग्ध पहलुओं ने भूपेन दलाल जैसे प्रतिष्ठित नामों को भी कलंकित कर दिया, जिन्हें 100 साल

पुरानी ब्रोकिंग फर्म विरासत में मिली थी और वे अपने दो बेटों को एक समृद्ध विरासत सौंप रहे थे।
स्टैनचार्ट, जैसा कि इस बैंक को आमतौर पर कहा जाता है, कुछ करोड़ की पूंजी वाले छोटे बैंकों द्वारा जारी की गई बैंक रसीदों (बीआर) के साथ लापरवाही से लेन-देन कर रहा था। इससे कम चौंकाने वाली बात नहीं थी
लंदन स्थित इसके मुख्यालय की भूमिका, जो आंतरिक और बाहरी जांच के बावजूद इस बात से बेखबर रहा कि भारत में उसका संचालन पूरी तरह से ध्वस्त हो चुका था। एएनजेड ग्रिंडलेज़, हालांकि घोटाले का अभिन्न अंग नहीं था, नेशनल हाउसिंग बैंक और पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन के चेक हर्षद के खाते में जमा करते हुए पकड़ा गया। हर्षद ने उस पैसे का इस्तेमाल अपने निजी पैसे के रूप में किया। अचानक पकड़े जाने पर, खराब जनसंपर्क रणनीति के कारण सभी खिलाड़ी सार्वजनिक रूप से लड़खड़ा गए। भारत के दो सबसे बड़े विदेशी बैंक, स्टैनचार्ट और एएनजेड ग्रिंडलेज़, लगातार प्रेस से खुलकर बात करने से इनकार करते रहे, जिससे आलोचनात्मक लेखों की बाढ़ आ गई। ये दोनों बैंक जनसंपर्क विफलता के सबसे समृद्ध उदाहरणों में से एक हैं। ग्रिंडलेज़ को आरबीआई से गुस्ताखी से झगड़ा करने वाले बैंक के रूप में चित्रित किया गया। स्टैनचार्ट एक ऐसे नाकाम बैंक के रूप में उभरा जिसने भारी मुनाफे की लालच में अपनी हदें पार कर लीं। पहले तो इसने प्रेस से दूरी बनाए रखी। फिर इसने लंदन से जॉन पैंक को अव्यवस्थित जनसंपर्क विभाग को संभालने के लिए बुलाया, जिसने अचानक एक प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाई। यह एक निराशाजनक प्रयास था। लंदन शहर के बड़े-बड़े बैंकरों ने विशिष्ट प्रश्नों के उत्तर में गोलमोल

जवाब दिए और पत्रकारों को यह समझ नहीं आया कि उन्हें बुलाया ही क्यों गया था।
भारत में बैंक ऑफ अमेरिका के प्रमुख विक्रम तलवार, जनकीरामन समिति की तीसरी रिपोर्ट आने तक इस बात से इनकार करते रहे कि बैंक ने कुछ गलत किया है। 22 अप्रैल को जब टाइम्स ऑफ इंडिया ने स्टेट बैंक के चेयरमैन एम.एन. गोइपोरिया से हर्षद को कुछ लेन-देन निपटाने में आ रही दिक्कतों के बारे में पूछा, तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया। आरबीआई गवर्नर ने प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाकर उस बात का खंडन किया, जिसकी उन्होंने जांच तक नहीं की थी। सबसे चालाक, सिटीबैंक, प्रेस रिलेशन का काम एक बैंकर को सौंपने के बावजूद घमंडी और अभिमानी नजर आया। उसने जनसंपर्क के महारथी रोजर परेरा को भी मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया था। परेरा, जो आमने-सामने तो हमेशा चापलूसी करते थे, लेकिन पीठ पीछे बुराई और घिनौने रवैये के लिए जाने जाते थे, उन्होंने हममें से एक को सिटीबैंक के बारे में तथ्यों और एक खास नजरिए से जानकारी देने के लिए चुना। उनका बहाना था: वे ज्यादा से ज्यादा जानकारी हासिल करना चाहते थे ताकि तय कर सकें कि काम स्वीकार करना है या नहीं। असलियत यह थी कि वे पहले ही सिटीबैंक के साथ समझौता कर चुके थे। यह बैठक एक सोची-समझी साजिश थी, जिसका मकसद अहम जानकारी निकलवाना और चालाकी से यह पता लगाना था कि हमें कितनी जानकारी है, ताकि बाद में क्लाइंट को रिपोर्ट दी जा सके। इस तरह की चालाकी, मनगढ़ंत कहानियां गढ़ने और चुनिंदा पत्रकारों को बदनाम करने के अलावा, अधिकांश पीआर एजेंसियां और क्या पेशकश करती हैं?
इस घोटाले में सबसे ज़्यादा प्रभावित व्यक्ति ही सबसे ज़्यादा खुलकर सामने आया। हालाँकि टाइम्स में छपी शुरुआती प्रेस

रिपोर्ट ने ही इस पूरे मामले को जन्म दिया था, फिर भी हर्षद के मन में कोई दुर्भावना नहीं थी। उन्होंने पत्रकारों को समय और जानकारी दी और यहाँ तक कि कुछ लेख उनके हित के विरुद्ध होने पर भी उनके काम की सराहना की। प्रेस को अपने पक्ष में रखने के लिए यह एक चतुर चाल थी, लेकिन साथ ही उनमें एक अटूट उत्साह और सकारात्मक दृष्टिकोण भी था, जिसने उन्हें किसी भी उल्लेखनीय चीज़ की सराहना करने में सक्षम बनाया।

लगभग 2001:
भारत में समस्या कभी कानूनों का अस्तित्व नहीं रही है। बड़ी समस्या इन कानूनों का क्रियान्वयन है। अब तो इनसाइडर ट्रेडिंग कानून है, लेकिन बाज़ार में इनसाइडर ट्रेडिंग बड़े पैमाने पर हो रही है। बाज़ार से बाहर बदला लेना अवैध है, लेकिन कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज में यह किया जा रहा था। बाज़ार में हेरफेर और मूल्य निर्धारण के खिलाफ कानून हैं, लेकिन कोई पकड़ा नहीं जाता। कंपनियों को कौन नियंत्रित करता है? रजिस्ट्रार ऑफ कंपनीज़ और डिपार्टमेंट ऑफ कंपनी अफेयर्स जैसी एजेंसियां हैं, लेकिन क्या आपने कभी सुना है कि उन्होंने किसी के खिलाफ कोई कार्रवाई की हो? 2001 का घोटाला उनके लिए ज़ी, ग्लोबल ट्रस्ट बैंक और हिमाचल फ्यूचरिस्टिक जैसी कंपनियों द्वारा शेयर बाजार संचालन के लिए धन के गबन की जांच करने का एक तैयार मौका था, लेकिन जेपीसी के उकसावे पर ही उन्होंने कार्रवाई शुरू की। बाजार के जानकार इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। 1990 में सिटीबैंक के एक कर्मचारी के साथ हुई हमारी एक जानकारीपूर्ण बातचीत के अनुसार, बैंक रिजर्व बैंक के नियमों को केवल सिफारिशें मानता था, देश का कानून नहीं।

दरअसल, आरबीआई, सीबीआई, आयकर विभाग और प्रवर्तन निदेशालय जैसी नियामक और जांच एजेंसियां अक्सर सावधानीपूर्वक सबूत इकट्ठा करती हैं और फिर उन्हें दबा देती हैं। इससे बाजार के जानकारों का हौसला और बढ़ जाता है, जब तक कि मामला फिर से बेकाबू नहीं हो जाता।
एक और घोटाला होने ही वाला था। आश्चर्य की बात यह है कि इसमें इतना समय लग गया। और एक और घोटाला तब होगा जब यह स्पष्ट हो जाएगा कि जेपीसी, सेबी, आरबीआई और सरकार के विभिन्न विभाग मिलकर 2001 के घोटाले और उसके दोषियों को दबाना चाहते हैं।
2001 का घोटाला सीधा-सादा था। बड़े पैमाने पर मूल्य निर्धारण में हेराफेरी, अत्यधिक व्यापार, भारी नुकसान, जिसकी भरपाई के लिए मिलीभगत करने वाली कंपनियों और बैंकों से धन निकाला गया। यह कोई नई बात नहीं थी। हालांकि, केतन पारेख की मिलीभगत, मूल्य निर्धारण में हेराफेरी और प्रतिष्ठित कंपनियों और बैंकों से धन के गबन से संबंधित जानकारी जेपीसी के कुछ सदस्यों द्वारा की गई कड़ी पूछताछ के कारण ही धीरे-धीरे सामने आ रही थी।
मई 2001 में सीबीआई हिरासत से रिहा होने के तुरंत बाद, केतन पारेख ने बैंक ऑफ इंडिया पर "मानहानि" का मुकदमा करने की धमकी दी, क्योंकि बैंक ने सीबीआई से शिकायत करने की हिम्मत की थी। फिर भी, जुलाई के अंत तक, घोटाले 2001 के और भी चौंकाने वाले विवरण सामने आए। सीबीआई ने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाकर घोषणा की कि उसने 80 मिलियन डॉलर वाले एक स्विस बैंक खाते का पता लगाया है और उसे फ्रीज कर दिया है, जिसका लाभार्थी केतन पारेख था। जेपीसी की पूछताछ के बाद और भी कई ऑफशोर कंपनियों का पता चला - मई में यह खुलासा हुआ था कि मार्च 1999 से मार्च 2001 के बीच पांच विदेशी कॉर्पोरेट निकायों (ओसीबी) के माध्यम से 2900

करोड़ रुपये देश से बाहर भेजे गए थे। जुलाई में एसईबीआई ने खुलासा किया कि उसने केतन पारेख द्वारा "शेयरों की खरीद-फरोख्त और भंडारण" के लिए इस्तेमाल की जाने वाली छह और ओसीबी का पता लगाया है।
इनमें से एक डेलग्राडा लिमिटेड थी, जिसने ज़ी मल्टीमीडिया वर्ल्डवाइड के अधिग्रहण पर ज़ी टेलीफिल्म्स के 1.75 करोड़ शेयर जारी किए थे। एसईबीआई का कहना है कि ज़ी टेलीफिल्म्स के चेयरमैन सुभाष चंद्र इस डेलग्राडा के एकमात्र लाभार्थी थे। इनमें से कुछ शेयर बाद में केतन की कंपनी ट्राइम्फ इंटरनेशनल के माध्यम से बेचे गए और लगभग 450 करोड़ रुपये मॉरीशस भेजे गए। एसईबीआई ने जेपीसी को यह भी बताया कि ज़ी टेलीफिल्म्स ने मार्च 2001 में पारेख को दिवालिया होने से बचाने के लिए ग्लोबल ट्रस्ट बैंक सहित विभिन्न स्रोतों से धन उधार लेकर सीधे 515 करोड़ रुपये का ऋण दिया था। हिमाचल फ्यूचरिस्टिक, जिसके प्रमोटर विनय मालू केतन के करीबी दोस्त हैं, ने उनके लिए 700 करोड़ रुपये का इंतजाम किया था। इन सब बातों के साथ सेबी की उस जानकारी को भी जोड़ दें कि केतन ने जनवरी 2000 से मार्च 2001 के बीच कोलकाता के दलालों को 2700 करोड़ रुपये से अधिक भेजे थे, 2900 करोड़ रुपये विदेश में गायब हो गए थे और सीबीआई ने 80 मिलियन डॉलर बरामद किए थे, तो आपको 2001 के घोटाले का लगभग सही पैमाना पता चल जाता है। यह लगभग 6400 करोड़ रुपये बनता है - जो 1992 के घोटाले के पहले अनुमान 5000 करोड़ रुपये से कहीं अधिक है।
इन चौंकाने वाले खुलासों के बावजूद, भारतीय नियामक मूल्य हेरफेर, इनसाइडर ट्रेडिंग, अल्पसंख्यक शेयरधारकों के उत्पीड़न आदि जैसे मामलों में अनुशासनात्मक और पर्यवेक्षी कार्रवाई

करने में ढिलाई बरत रहे हैं। बैंक और संस्थागत निवेशक, जैसे कि संकटग्रस्त यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया, जो मार्च 2001 में केतन की मदद के लिए ज़ी के शेयर खरीद रहा था और कंपनियों को वित्त पोषित कर रहा था, मुकदमे दायर करने के बजाय निष्क्रियता का नाटक कर रहे हैं। इससे केतन पारेख को राजनेताओं और जेपीसी के कुछ सदस्यों को प्रभावित करने, बैंकों को मानहानि की धमकी देने और सीबीआई पर आरोप लगाने की खुली छूट मिल गई, जबकि नियामक एजेंसियां चुपचाप अपनी अंतहीन "जांच" में लगी रहीं। यह 1992 के घोटाले जैसा ही लगता है।
नौ साल के अंतराल पर हुए इन दो वित्तीय घोटालों के बीच एक दिलचस्प अंतर मीडिया और राजनेताओं की भूमिका थी। 1992 में, प्रेस हर्षद मेहता और उनके जैसे दलालों का महिमामंडन कर रहा था, बिना यह पूछे कि उनके धन का स्रोत क्या था। कुछ पत्रकार हर्षद के करीबी थे, लेकिन वे भी केवल शेयर बाजार की जानकारी से ही संतुष्ट प्रतीत होते थे। कुछ वरिष्ठ व्यापार पत्रकारों ने शुरू में हर्षद का समर्थन करने की कोशिश की, लेकिन बाद में एसबीआई में उनकी गड़बड़ी की सीमा का पता चलने पर वे पीछे हट गए। हालांकि, अधिकांश प्रकाशनों ने इस घोटाले को गंभीरता से लिया और बहुत सारी जानकारी सार्वजनिक हुई।
2001 में, मीडिया के कुछ वर्गों ने अधिक संदिग्ध भूमिका निभाई। जूनियर स्तर पर कई पत्रकार बिना मूल्य-हेरफेर शब्द का उल्लेख किए, K-10 शेयरों के बारे में उत्साहपूर्वक लिखते थे। और नेशनल स्टॉक एक्सचेंज (NSE) के दो अधिकारियों को दलालों को जानकारी लीक करने के संदेह में पद छोड़ने के लिए कहा गया, लेकिन उन्हें तुरंत दो शीर्ष गुलाबी अखबारों में जगह मिल गई!

सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि घोटालेबाजों ने राजनेताओं और मीडिया के बीच लोगों का एक व्यापक दायरा बना रखा था। न केवल व्यापक रूप से प्रसारित होने वाले अखबारों के वरिष्ठ संपादक उनके खुले समर्थक थे, बल्कि वे संभवतः कुछ अन्य अखबारों के संचालन को वित्तपोषित भी कर रहे थे और इस बात पर उनका पूर्ण नियंत्रण था कि क्या लिखा जाना चाहिए और कैसे। संघर्षरत अखबारों के दो जाने-माने संपादकों ने हम पर एक क्रूर व्यक्तिगत हमला किया। यह शायद पहली बार था कि पत्रकार किसी अन्य पत्रकार के बारे में व्यक्तिगत अपमान को पहले पृष्ठ की "खबर" के रूप में पेश कर रहे थे। एशियन एज और द पायनियर, जिनमें से किसी की भी पाठक संख्या उल्लेखनीय नहीं है, लेकिन संदिग्ध वित्तपोषकों द्वारा समर्थित हैं, ने हमारे बारे में कुछ तथ्यों को तोड़- मरोड़ कर पेश किया, कुछ मनगढ़ंत बातें बनाईं, उसमें घिनौने संकेत मिलाए और उसे पहले पृष्ठ पर छाप दिया।
यह एक नई बात थी। व्यापारियों और राजनेताओं के नियंत्रण में घाटे में चल रहे अखबारों की संख्या बहुत अधिक है। घोटालेबाजों के लिए इनमें से किसी एक अखबार को किराए पर लेना और उसका इस्तेमाल अपमानजनक लेख छापने के लिए करना आसान है। उदाहरण के लिए, एक तीसरे संपादक, जिनकी छोटी सी मीडिया कंपनी को केतन पारेख ने वित्त पोषित किया था, अचानक 'तेजी और मंदी' के विशेषज्ञ बन गए। उन्होंने सबसे ज्यादा बिकने वाले अंग्रेजी दैनिक में भी एक मंच ढूंढ लिया, जहां वे यह प्रचार करने लगे कि मंदी अर्थव्यवस्था को बर्बाद कर देती है। "राष्ट्रीय संपत्ति" से उनका तात्पर्य स्पष्ट रूप से सट्टेबाजों द्वारा हेरफेर की गई संदिग्ध कंपनियों के बाजार मूल्य से था। वास्तव में, कुछ लोग इस

बात पर बहस छेड़ने की कोशिश कर रहे थे कि क्या खोजी पत्रकारिता देश को नुकसान पहुंचा रही है।
मीडिया के कुछ वर्ग इतने अधिक वित्त पोषित थे कि उनके लिए 2001 का घोटाला वास्तविक गलत कामों को उजागर करने का प्रयास नहीं था, बल्कि सच्चाई बोलने वालों को बदनाम करने का एक जरिया था। ज़ी न्यूज़, जिसने तहलका टेपों का व्यापक रूप से पुन: प्रसारण किया, उसे यह भी पता नहीं चला कि ज़ी के शेयरों में हेराफेरी इस घोटाले के केंद्र में थी। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि न तो एशियन एज और न ही पायनियर ने केतन पारेख की करतूतों और उनके राजनीतिक मित्रों के बारे में कुछ खास कहा? ऐसा लगता है कि अधिकांश लोग पारेख के कुछ मीडिया कंपनियों में सीधे निवेश के निहितार्थों को भी समझने में विफल रहे। 1992 और 2001 के बीच यही एक महत्वपूर्ण अंतर था। दांव बड़े हो गए थे, तरीके गंदे हो गए थे और जनता की प्रतिक्रिया अधिक उदासीन हो गई थी।
एकमात्र अपवाद इंडियन एक्सप्रेस समूह है। ऐसे समय में जब इतने सारे अखबार घोटालेबाजों के साथ मिले हुए थे या समाज की गपशप छापने में व्यस्त थे, केवल एक्सप्रेस ने भारी दबाव के बावजूद खोजी पत्रकारिता का समर्थन करना जारी रखा। इसका पूरा श्रेय मुख्य संपादक और सीईओ शेखर गुप्ता को जाता है। यदि कॉरपोरेट घरानों और घोटालेबाजों की दबाव की रणनीति सफल रही, तो इसका मुख्य कारण यह था कि पाठक प्रेस की स्वतंत्रता को स्वाभाविक मानते हैं। वे अखबारों और पत्रकारों से अपने संघर्षों को लड़ने की अपेक्षा करते हैं, लेकिन पर्दे के पीछे क्या चल रहा है, इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं होती।
लगभग 2005:

इस पुस्तक का 2001 संस्करण, जो दो वर्षों में बिक गया था, जुलाई 2001 के उत्तरार्ध में आधी रात की उस नाटकीय घटना पर आकर रुक गया, जब यूटीआई के अध्यक्ष पी.एस. सुब्रमण्यम को इस्तीफा देने के लिए कहा गया था। तब से लेकर अब तक कई घटनाएँ घटी हैं, जिनमें घोटाले में शामिल शख्सियतें और जाँच की प्रक्रिया दोनों ही शामिल हैं। 1991-92 में सट्टेबाजी के सरगना हर्षद मेहता का ठाणे सिविल अस्पताल में निधन हो गया, जहाँ उन्हें ठाणे जेल से लाया गया था। वे एक अन्य चरण की अंतहीन जाँच के सिलसिले में पुलिस हिरासत में थे। उनके निधन के साथ ही 1992 के घोटाले में जनता की रुचि कम हो गई। लेकिन उस घोटाले से निपटने के लिए संसद के एक अलग अधिनियम के तहत स्थापित विशेष न्यायालय में दर्जनों आपराधिक मुकदमे और सैकड़ों दीवानी मुकदमे अभी भी लंबित हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि घटनाएँ घोटाले में शामिल विभिन्न शख्सियतों का पीछा करती ही रहती हैं। हर्षद मेहता के करीबी राजेंद्र बंथिया को नेदुंगड़ी बैंक से जुड़े मामले में गुजरात की जेल में डाल दिया गया। उन्होंने 1992 में अपने दो दलाल मित्रों के साथ मिलकर इस बैंक के शेयर खरीदे थे। नियामक खामियों की एक अप्रत्याशित पुनरावृत्ति में, आरबीआई ने बैंक को ढहने दिया और फिर मामले को दबाने के लिए पंजाब नेशनल बैंक के साथ इसका त्वरित विलय करवा दिया।

2001 का घोटाला, जिसका दायरा सीमित था, उसके बाद के झटके भी काफी कम रहे। 2001 के संस्करण में दर्ज हमारी आशंकाएँ सही साबित हुईं; विभिन्न सरकारी एजेंसियों ने अधिकांश घोटालेबाजों और सभी उद्योगपतियों को बख्श दिया। इस संस्करण में इनमें से कुछ घटनाक्रमों को अद्यतन और विस्तारित किया गया है। इससे पता चलता

है कि नियामक एजेंसियों द्वारा निगरानी की गुणवत्ता में कोई बदलाव नहीं आया है। सबसे हालिया सबूत,

यदि ऐसे सबूत की आवश्यकता थी, तो 24 जुलाई 2004 को सामने आया जब आरबीआई ने कुख्यात ग्लोबल ट्रस्ट बैंक को मोरेटोरियम के तहत रखा, जबकि उसने कई चेतावनी संकेतों को नजरअंदाज किया था और बैंक को गुप्त रूप से समर्थन भी दिया था। सरकार ने जीटीबी के लिए एक जबरन समझौता किया और जीटीबी के पतन के पीछे के घोटालेबाज बच निकले। कुछ ने तो पतन से पहले ही शेयर बेचकर मुनाफा भी कमाया। चीजें जितनी बदलती हैं, उतनी ही वैसी ही रहती हैं।
1
घोटाला सामने आया

एक महीने के भीतर, एक बैंक डूब गया; सीबीआई को शेयर बाजार के सबसे बड़े खिलाड़ी को पकड़ने के लिए बुलाया गया;

और वित्तीय जगत के एक दिग्गज का निधन हो गया था।

रहस्यमय परिस्थितियों में। लेकिन यह तो बस शुरुआत थी।

कोयंबटूर से 150 किलोमीटर दूर पलानी नामक एक छोटे से शांत कस्बे में सुबह का समय था। पलानी की प्रसिद्धि का एकमात्र कारण पहाड़ी पर स्थित उसका मंदिर था। यहाँ कोई उद्योग नहीं था, कोई प्रमुख रेलवे स्टेशन नहीं था, और इसने कभी कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति पैदा नहीं किया था।

लेकिन 12 अप्रैल 1992 को पलानी एक ऐतिहासिक घटना का गवाह बनने वाला था। केवल पाँच लोग ही इसका आभास कर सकते थे। हर्षद मेहता? उन्हें कुछ भी पता नहीं था। उन्होंने पलानी का नाम तक नहीं सुना था।

उस रविवार की सुबह पाँच बजे, सुबम नामक एक छोटे से होटल के एक कमरे में, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के फंड मैनेजमेंट विभाग के उप महाप्रबंधक आर.एल. कामत बिस्तर से उठे। सरल और ईमानदार स्वभाव के कामत पिछली शाम को बॉम्बे से आए थे। छह बजे तक उन्होंने स्नान किया, कपड़े पहने और बाहर निकल गए। वे पलानी के प्रसिद्ध स्थल, मंदिर की ओर चल पड़े।

पिछली शाम भी वह वहीं थे। लेकिन तीर्थयात्रा पर नहीं। कामत ने मुंबई से सैकड़ों किलोमीटर दूर एक गुमनाम कस्बे में जो करने का ठान लिया था, वह बाद में हर्षद मेहता के मिथक को तोड़ने वाले पहले कदमों में से एक साबित हुआ।

पलानी में कामत का मिशन अपने एक सहकर्मी, आर. सीतारामन को मुंबई वापस लाना था। सीतारामन, जो एक कनिष्ठ प्रबंधन अधिकारी थे, बाद में हर्षद मेहता की एसबीआई से बिना किसी गारंटी के धन निकालने की योजना में प्रमुख व्यक्ति के रूप में उभरे। लेकिन उस रविवार की सुबह, सीतारामन केवल एक संदिग्ध थे, और वह भी बैंक के भीतर; किसी ने भी उनके कुकर्म की सीमा का अंदाजा नहीं लगाया था। उनकी तलाश इसलिए की जा रही थी क्योंकि वही एकमात्र व्यक्ति थे जो उस बड़े घोटाले पर प्रकाश डाल सकते थे, जिसके बारे में उनके वरिष्ठों को आशंका थी।

सीधे शब्दों में कहें तो, एसबीआई में 574 करोड़ रुपये की प्रतिभूतियां कम थीं। भारतीय रिज़र्व बैंक के लोक ऋण कार्यालय में रखी पुरानी, हस्तलिखित पुस्तकों से पता चलता है कि 29 फरवरी को एसबीआई के नाम पर 11.5% ब्याज दर वाले केंद्र सरकार के ऋण का 1170.95 करोड़ रुपये का बकाया था।

एसबीआई के बहीखातों में यह आंकड़ा 1744.95 करोड़ रुपये था – यानी 574 करोड़ रुपये का स्पष्ट अंतर था। लेकिन यह विसंगति किसी को दिखाई नहीं दी।

एसबीआई को दिए गए लोक ऋण कार्यालय के विवरण को संशोधित किया गया था, यानी उसमें हेरफेर किया गया था, ताकि 1170 का आंकड़ा 1670 जैसा दिखे और 500 करोड़ रुपये का अंतर छुपाया जा सके और इसे एसबीआई के आंकड़े के करीब लाया जा सके। यह कुछ ऐसा था जैसे आपको पता चले कि आपके बैंक खाते में, जिसमें मान लीजिए 1700 रुपये होने चाहिए थे, बैंक की पासबुक में 1000 रुपये दर्ज थे, जिन्हें बाद में फर्जी तरीके से 1600 रुपये कर दिया गया था।

एसबीआई के मुख्य कार्यालय की 11 वीं मंजिल पर, 11 अप्रैल को समाप्त हुए सप्ताह के दौरान यह चौंकाने वाला खुलासा हुआ।

6 से 9 अप्रैल के बीच, कोषागार विभाग के तीन अधिकारियों - आर.एल. कामत, टीपी.एन. राव (सहायक प्रबंधक) और उनके बॉस, सी.एल. खेमानी (उप प्रबंध निदेशक, कोषागार और निवेश प्रबंधन) - ने 500 करोड़ रुपये के इस अंतर के साथ-साथ अन्य अनियमितताओं का भी पता लगाया।

इसके लिए जिम्मेदार व्यक्ति सीतारामन था, जो मुंबई की मुख्य शाखा के प्रतिभूति प्रभाग में कार्यरत था। उसका काम खेमानी और कामत के निर्देशानुसार शाखा स्तर पर लेन-देन करना था, जो मुख्यालय में स्थित थे।

हालांकि, सीतारामन की अपनी अलग सोच थी। या यूं कहें कि उनकी सोच हर्षद मेहता के नियंत्रण में थी। वह वही करते थे जो मेहता चाहते थे, न कि खेमानी के आदेश। बेशक, वह खेमानी को लगातार आश्वस्त करते रहते थे कि वह सही सौदे कर रहे हैं।

फरवरी में 574 करोड़ रुपये के अंतर से, एसबीआई और पीडीओ के खातों के बीच का अंतर मार्च 1992 तक बढ़कर 1022 करोड़ रुपये हो गया। जब एसबीआई के शीर्ष अधिकारियों को इस धोखाधड़ी का पूरा असर महसूस हुआ, तब सीतारामन मुंबई और कोयंबटूर के बीच कहीं ट्रेन में थे। यह उनकी सात दिन की छुट्टी का पहला दिन था। वह और उनकी पत्नी अपने चार साल के बेटे को मुंडन समारोह के लिए पलानी ले जा रहे थे।

लेकिन उन्हें इस बात का जरा भी अंदाजा नहीं था कि 10 अप्रैल की रात 9:30 बजे खेमानी के कमरे में उनकी किस्मत बदल रही थी। कामत उनकी तलाश में निकल पड़ा था; उन्हें जल्द से जल्द छुट्टी से वापस बुलाने की योजना बना रहा था। अगले दिन दोपहर तक कामत कोयंबटूर जाने वाली फ्लाइट में सवार हो चुके थे। लेकिन क्या सीतारामन पलानी में होंगे? कामत ने यह सुनिश्चित करने के लिए सीतारामन की मां से चुपके से समारोह की तारीख पता कर ली। तारीख 12 तारीख थी।

कोयंबटूर जाने वाली सुबह की फ्लाइट में सीट बेल्ट बांधते हुए कामत हर संभावित स्थिति के लिए पूरी तरह तैयार थे। सीतारामन के भागने की कोशिश करने पर उन्हें गिरफ्तार करवा दिया जाता। कामत ने एसबीआई के पलानी स्थित क्षेत्रीय प्रबंधक से संपर्क किया और सुरक्षा सहायता मांगी। जब वे कोयंबटूर में क्षेत्रीय प्रबंधक और सुरक्षा अधिकारी से मिले, तब दोपहर के 2:30 बज रहे थे। उन्होंने एक कार किराए पर ली और शाम 5:30 बजे पलानी पहुंचे। लेकिन सीतारामन कहां थे?

क्षेत्रीय प्रबंधक उस इलाके में काफी प्रभावशाली व्यक्ति थे। इसलिए, जब तीनों ने मुख्य होटलों और चार धर्मशालाओं में तलाशी शुरू की, तो उन्हें रजिस्टरों तक आसानी से पहुंच मिल गई। सीतारामन का नाम कहीं भी दर्ज नहीं था। क्या वह पहाड़ी पर स्थित मंदिर गए होंगे? एक धार्मिक जुलूस खड़ी पहाड़ी पर चढ़ रहा था और वे तीनों उसके साथ चल दिए। शाम 7 बजे तक वे मंदिर परिसर में पहुँच गए। यह खोज व्यर्थ रही। मंदिर के चारों ओर कई चक्कर लगाने के बाद उन्होंने हार मान ली। उन्होंने अगले दिन फिर से खोज करने का फैसला किया।

12 अप्रैल: कामत सुबह 6 बजे सुबम होटल से निकले, खोज फिर से शुरू करने के लिए तैयार। उन्हें पता नहीं था कि सीतारामन एक घंटा पहले ही पलानी में प्रवेश कर चुके थे। 6:30 बजे तक कामत और उनके दो साथी मंदिर पहुँच गए। मंदिर की संरचना उनके पक्ष में थी। इसमें कई प्रवेश द्वार थे लेकिन केवल एक ही निकास द्वार था। वे उस निकास द्वार के सामने खड़े हो गए। तीन घंटे तक कुछ नहीं हुआ।

फिर, 9:45 बजे कामत ने उन्हें देखा।

सीतारामन, उनकी पत्नी और उनका बेटा मुंडन की रस्मों में लीन थे।
कामत शांत रहे, मुस्कुराए, आगे बढ़े और सीतारामन से नज़रें मिलाईं। कामत को देखते ही सीतारामन बुरी तरह घबरा गए। कामत याद करते हुए बताते हैं, “वह बेहद परेशान थे।”

कामत ने शांत रहने का नाटक किया। वह सीतारामन के पास गए।

उन्होंने कहा, “मैं यहीं आस-पास इंतज़ार कर रहा हूँ।” सीतारामन ने बस सिर हिलाया। कामत और बाकी दो लोग एक शौचालय में चले गए और सीतारामन का इंतज़ार करने लगे। कुछ देर बाद वह अपनी पत्नी और बेटे के साथ अंदर आए।

कामत ने कहा, “खेमानी ने मुझे आपको वापस ले जाने के लिए भेजा है। हमारे सामने एक बड़ी समस्या है। कृपया बॉम्बे आइए और जो कुछ भी आपको पता है, सब बता दीजिए।” कामत का मकसद सीतारामन में डर पैदा करना नहीं, बल्कि भरोसा जगाना था।

सीतारामन ने ज़्यादा कुछ नहीं कहा। उनके अंदर उथल-पुथल मची हुई थी। उनकी पत्नी, जो सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया में काम करती हैं, कुछ समझ नहीं पा रही थीं। उन्होंने शिकायत करना शुरू कर दिया कि सीतारामन दफ्तर में लंबे समय तक काम करते हैं, इसलिए उनके पास अपने बेटे के लिए बहुत कम समय होता है। उन्होंने कामत से पूछा, “आप उनका तबादला किसी दूसरे विभाग में क्यों नहीं कर देते?” उन्हें यह एहसास नहीं था कि सीतारामन बेवजह देर तक काम नहीं कर

रहे थे। उन्होंने मसाला डोसा मंगवाया और कुछ देर और बातें कीं। सीतारामन बहुत कम बोलते थे। दोपहर करीब 1 बजे वे पहाड़ी से नीचे उतरे और सीतारामन के होटल गए, जहाँ उन्होंने अपना सामान पैक किया। परिवार सुबम में रहने चला गया, जहाँ कामत ठहरे हुए थे।

सांवले और मध्यम कद-काठी के सीतारामन एक सक्षम अधिकारी प्रतीत होते थे। 1991-92 में, जब बॉन्ड बाजार अत्यधिक सक्रिय और अस्थिर था, तब भी उन्होंने बढ़े हुए कार्यभार का बखूबी सामना किया। कामत कहते हैं, "वे आसानी से एक दिन में 40-50 सौदे निपटा लेते थे, अक्सर लंबित कार्यों को निपटाने के लिए शनिवार को भी काम करते थे।"

सीतारामन की वापसी की योजना मद्रास होते हुए बनाई गई थी, जहाँ से उन्हें मुंबई वापस जाना था। कामत ने इसे बदल दिया। उन्होंने परिवार को कोयंबटूर ले जाने और वहाँ से उड़ान भरने की योजना बनाई। सुबम में बसने के बाद, कामत एसबीआई शाखा गए और खेमानी को फोन करके बताया कि उन्हें सीतारामन मिल गए हैं। कामत ने खेमानी को आश्वस्त करते हुए कहा, "उनके पास एसजीएल (SGL) लाइसेंस है।" खेमानी बहुत खुश हुए। लेकिन यह जल्दबाजी थी।

कामत ने उनसे कहा कि वे सोमवार दोपहर तक कार्यालय में होंगे। उन्होंने एक कार किराए पर ली और शाम करीब 5 बजे कोयंबटूर पहुंचे। कामत ने अन्नपूर्णा लॉजिंग नामक होटल में चेक-इन किया, जबकि सीतारामन दंपति ने अपने एक रिश्तेदार के साथ रात बिताई।
अगली सुबह वे होटल में कामत से मिले। चूंकि उड़ान भरने से पहले उनके पास कुछ समय था, इसलिए उन्होंने साड़ियां भी खरीद लीं।

उड़ान के दौरान उन्होंने ज्यादा बात नहीं की। सीतारामन ने कामत को बताया कि उनके पास एसजीएल (बैंक रसीदें) हैं। दोपहर 3 बजे सीतारामन और कामत नरीमन पॉइंट स्थित मुख्यालय (बैंक में केंद्रीय कार्यालय के रूप में जाना जाता है) में पहुंचे।

वे सीधे 11 वीं मंजिल पर खेमानी के कमरे में गए। तीनों ने थोड़ी देर बातचीत की। खेमानी ने सीतारामन से विसंगति के बारे में पूछा। घबराकर सीतारामन ने अपनी बात बदल दी।

उन्होंने कहा, "मेरे पास बीआर (बैंक रसीदें) हैं, एसजीएल नहीं।"

“लेकिन आपने कहा था कि आपके पास एसजीएल हैं?” कामत ने पूछा।

“बीआर कहाँ हैं?” खेमानी ने पूछा।

“वे शाखा में हैं”, सीतारामन ने उत्तर दिया।

“कामत आपके साथ चलेगा। उन्हें उसे सौंप दीजिए”, खेमानी ने कहा।

जब वे शाखा पहुँचे, तो सीतारामन ने स्वीकार किया कि उनके पास बीआर भी नहीं हैं। “अब वे हर्षद के पास हैं”, उन्होंने कहा।
“उसने एसजीएल खरीदने के वादे के साथ बीआर ले लिए हैं।” यह कहानी से मेल खाती थी।

हर्षद ने शनिवार, 11 तारीख को एसबीआई के शीर्ष अधिकारियों को जो

बताया था, वह सच साबित हुआ। लेकिन सीतारामन अभी भी झूठ बोल रहा था।

खेमानी का सबसे बुरा संदेह सही निकला। दरअसल, सीतारामन का खेल मार्च की शुरुआत में ही खुल गया था, जिस दिन खेमानी ने कामत को प्रतिभूतियों के मिलान का काम शुरू करने के लिए कहा था ताकि एसबीआई के खाते उसके खातों से मेल खा सकें।

31 मार्च को पीडीओ को सूचना दी गई। उद्देश्य यह था कि खातों का मिलान कम से कम फरवरी तक पूरा हो जाए, ताकि

बाद में सिर्फ एक महीने के लेन-देन का मिलान करने में कोई कठिनाई न हो। 2

एक सप्ताह बीत गया। मिलान विवरण नहीं आया। खेमानी बेचैन हो रहे थे। वे कामत से विवरण के लिए लगातार दबाव डालते रहे। कामत को बॉम्बे की मुख्य शाखा से बताया गया कि मिलान में ज़्यादा से ज़्यादा तीन से चार दिन और लगेंगे। सीतारामन उन हफ्तों में खातों में हेराफेरी करने की पूरी कोशिश कर रहे थे। लेकिन वे लेन-देन के व्यापक और जटिल जाल में फंस गए थे। आखिरकार, सिर्फ एक महीने, मार्च में, एसबीआई ने 8,700 करोड़ रुपये की प्रतिभूतियों का लेन-देन किया, जो पूरे वर्ष के लेन-देन का एक चौथाई था।

6 अप्रैल की शाम को, बॉम्बे शाखा के एक व्यक्ति ने खेमानी को विवरण दिया। चूंकि देर हो चुकी थी, खेमानी ने इसे एक प्लास्टिक फ़ोल्डर में रखा और घर चले गए। उन्होंने अगली सुबह इसे निकाला

और ध्यान से देखा। विवरण में अतिलेखन, हेरफेर और रद्द करने के मामले थे। एसबीआई द्वारा खरीदी गई कुछ प्रतिभूतियाँ शामिल नहीं की गई थीं। सबसे बड़ी बात यह थी कि सीतारामन द्वारा दिखाए गए (1744.95 करोड़ रुपये) और पीडीओ द्वारा रिपोर्ट किए गए (1670.95 करोड़ रुपये) के बीच 74 करोड़ रुपये का अंतर था। खेमानी को संदेह हुआ। उन्होंने सहायक प्रबंधक, टीपीएन राव को बुलाया और उन्हें शाखा में जाकर सीतारामन के विवरण की सत्यता की जाँच करने के लिए कहा। उनका काम एसबीआई के विवरण का आरबीआई के खातों से मिलान करना था।

राव ने प्रारंभिक जाँच की और फिर 9 अप्रैल को शाखा में वापस आए।

"कृपया मेरे साथ पीडीओ चलें," राव ने सीतारामन से अनुरोध किया।

"मुझे बहुत काम पूरा करना है। आप अकेले क्यों नहीं चले जाते?" सीतारामन ने पूछा। राव अपने अनुरोध पर अड़े रहे। "पीडीओ के कर्मचारी आपको अच्छी तरह जानते हैं। अगर आप मदद करेंगे तो हम मिलान का काम जल्दी पूरा कर लेंगे।"

सीतारामन अनिच्छुक थे। “मुझे कल अपने बेटे के मुंडन के लिए पलानी जाना है”, उन्होंने कहा। और फिर

जोड़ा: “विसंगतियों की चिंता मत कीजिए। मैं 17 तारीख को छुट्टी से लौटने पर इन्हें ठीक कर दूंगा।”

“मुझे आज ही इन्हें ठीक करने के निर्देश मिले हैं”, राव ने

दृढ़ता से कहा।

वे एसबीआई कार्यालय से कुछ ही मिनटों की दूरी पर स्थित पीडीओ के लिए निकल पड़े। पीडीओ पुराने आरबीआई भवन में स्थित है, जो आधुनिक, छब्बीस मंजिला इमारत के ठीक सामने है, जो अब आरबीआई का मुख्य कार्यालय है। सीतारामन ने राव को वहां कुछ क्लर्कों से मिलवाया और वापस चले गए। राव ने उनसे छोटी-मोटी, वास्तविक विसंगतियों को ठीक करवा लिया। लेकिन जब उन्होंने एसबीआई के 2010 में परिपक्व हुए 11.5% केंद्रीय ऋण के शेष की जांच की, तो देश के सर्वोच्च बैंकिंग प्राधिकरण के पुराने बहीखाते के पन्नों से धोखाधड़ी का खुलासा हो गया। यह राशि 1170.95 करोड़ रुपये थी। किसी ने एसबीआई को जारी किए गए पीडीओ स्टेटमेंट में हेरफेर कर दिया था, जिससे 1170.95 करोड़ रुपये की रकम 1670.95 करोड़ रुपये हो गई थी। बैंकिंग धोखाधड़ी का यह विशाल मामला बैंकों के सरगना, यानी उस सुपरकॉप के घर के ठीक पीछे हुआ, जिसका काम बैंकिंग धोखाधड़ी का पर्दाफाश करना है!

उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन के एक महीने बाद, वित्त मंत्रालय के संवेदनहीन अधिकारियों, अति उत्साही केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) और आरबीआई के चतुर गवर्नर ने मिलकर इस धोखाधड़ी का सारा दोष एसबीआई पर मढ़ने की साजिश रची। आरबीआई गवर्नर ने घोटाले के कुछ हिस्सों को उजागर करने में अहम भूमिका निभाई, लेकिन मई 1992 की शुरुआत के तनावपूर्ण माहौल में, जब संसद का सत्र चल रहा था, हर कोई कार्रवाई चाहता था। इस बात की परवाह किए बिना कि किसे कुचला जा रहा है।

सत्ता के खुले प्रदर्शन में, उस समय फैली अराजकता के बीच, एसबीआई के हर वरिष्ठ अधिकारी, जिसका वित्त विभाग से कोई संबंध था, को परेशान किया गया। उन पीडीओ क्लर्कों का क्या हुआ, जो बाद में दलालों के साथ मिलीभगत करते पाए गए? सीबीआई के पास उनके खिलाफ कोई मामला नहीं था। क्लर्क किसके अधीन काम करते थे? उनके नाम कभी उजागर नहीं हुए। आरबीआई के किसी भी कर्मचारी पर धोखाधड़ी का आरोप नहीं लगाया गया और न ही उनसे ठीक से पूछताछ की गई। दरअसल, आरबीआई ने उनमें से कुछ को 'निलंबित' किया। लेकिन इससे ज्यादा कुछ नहीं। इस नाटक में आखिरी मोड़ आरबीआई द्वारा घोटाले की जांच के लिए गठित विशेषज्ञ समिति ने दिया, जिसे लोकप्रिय रूप से जनकीरामन समिति के नाम से जाना जाता है। पीडीओ कार्यालय के बारे में इस समिति का कहना है: "पीडीओ में एसजीएल अनुभाग का कामकाज सामान्य तौर पर संतोषजनक है।"

राव पीडीओ से लौटे और बुरी खबर सुनाई। "इसका मतलब है कि 2010 में 11.5% ब्याज दर में 500 करोड़ रुपये की और कमी आएगी," उदास खेमानी ने कहा। (वास्तविक राशि 499 करोड़ रुपये थी।) सीतारामन पहले ही

छुट्टी पर जा चुके थे, इसलिए राव और कामत अगले दिन (10 अप्रैल) शाखा में वापस गए ताकि

कमी का कारण पता लगा सकें। यह 14 दिसंबर का एक लेन-देन था जिसके लिए बैंक भुगतान तो कर चुका था, लेकिन पंजाब नेशनल बैंक और स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र से प्रतिभूतियां (यानी एसजीएल) प्राप्त नहीं कर पाया था।

मामला इससे कहीं अधिक जटिल था, हालांकि उस समय उन्हें इसका एहसास नहीं हुआ था: खेमानी ने पीएनबी को 845.09 करोड़ रुपये की प्रतिभूतियां बेची थीं और पीएनबी से 725.58 करोड़ रुपये और एसबीएस से 98.40 करोड़ रुपये की प्रतिभूतियां खरीदी थीं - कुल मिलाकर 21.11 करोड़ रुपये का शुद्ध प्रवाह हुआ था। सीतारामन ने सात बैंकों से 226.12 करोड़ रुपये की प्राप्तियां और छह बैंकों और हर्षद मेहता को 205.01 करोड़ रुपये का भुगतान दर्ज किया - धोखाधड़ी को छिपाने के लिए फिर से 21.11 करोड़ रुपये का प्रवाह दिखाया।

उन्होंने एक और बात का पता लगाया, जो बाद में प्रतिभूति घोटाले में एक सामान्य कड़ी के रूप में सामने आई। सीतारामन द्वारा दर्ज की गई प्रविष्टियां मनगढ़ंत थीं। पैसा उन बैंकों में नहीं गया जिनसे प्रतिभूतियां खरीदी गई थीं, हालांकि शाखा (सीतारामन) ने केंद्रीय कार्यालय (खेमानी) को पूरी ईमानदारी से बताया कि पैसा बैंकों में गया था। पैसा उस दलाल के पास गया जिसने सौदा करवाया था।

दलाल कौन था? हर्षद मेहता।

कामत और राव शाम 6:30 बजे केंद्रीय कार्यालय लौटे। खेमानी ने तुरंत अपने बॉस पी.वी. सुब्बा राव से संपर्क किया, जो दो प्रबंध निदेशकों में से एक थे। खेमानी और सुब्बा राव निवेश समिति के सदस्य थे जो यह तय करती थी कि एसबीआई को अपने फंड का उपयोग कैसे करना चाहिए। वास्तव में, खेमानी, एक मिलनसार और मृदुभाषी

व्यक्ति, सभी निवेश निर्णय ले रहे थे, और वे निर्णय बहुत ही दूरदर्शी थे। उनके विभाग ने 1991-92 में एसबीआई के भारी मुनाफे में करोड़ों का योगदान दिया होगा।

हालांकि, 9 अप्रैल की शाम को, खेमानी, जो हृदय रोगी थे, ने एक ऐसा दबाव महसूस किया जो उन्होंने पहले कभी महसूस नहीं किया था। उन्होंने सुब्बा राव से बात करने के लिए फोन उठाया।

“मुझे आपसे किसी बहुत गंभीर बात पर चर्चा करनी है,” उन्होंने कहा। सुब्बा राव ने उन्हें अंदर बुलाया।

खेमानी ने सब कुछ समझाया और पूछा, “क्या आपको लगता है कि हमें धोखाधड़ी की शिकायत में पुलिस में एफआईआर दर्ज करानी चाहिए?”

राव ने कुछ देर सोचा, फिर बोले, “लेकिन पहले हमें पैसा वसूल करना होगा।”

व्यावसायिक दृष्टि से यह एक समझदारी भरा कदम था – पहले पैसा सुरक्षित करना, फिर कानूनी कार्रवाई करना। बाद में, सीबीआई ने अपराध साबित करने के क्रूर प्रयास में ठीक उल्टा किया और इस तरह करदाताओं के हजारों करोड़ रुपये खतरे में डाल दिए। विडंबना यह है कि एसबीआई को पहले पैसा सुरक्षित करने की कोशिश में बाद में भारी कीमत चुकानी पड़ी। अगर उसने पुलिस में शिकायत दर्ज कराई होती, तो उसके अधिकारी आरोपी नहीं बल्कि अभियोगी होते और खेमानी और उनके साथियों को धोखाधड़ी करने के बजाय उसका पता लगाने का श्रेय मिलता। मार्च 2001 में जब के.वी. कृष्णमूर्ति

बैंक ऑफ इंडिया के अध्यक्ष थे, तब उन्होंने ठीक यही किया था, जब उन्हें केतन पारेख से बकाया राशि का भुगतान नहीं करना पड़ा था।

उस रात हुई चर्चा के दौरान, सुब्बा राव ने मुख्य महाप्रबंधक (सतर्कता) आर. सिन्हा को फोन किया। उन्होंने आगे की कार्रवाई पर विचार-विमर्श किया और फिर अध्यक्ष मानेक एन. गोइपोरिया के घर जाने की योजना बनाई। लेकिन उन्हें बताया गया कि गोइपोरिया किसी से मिलने गए हैं और रात 10 बजे के बाद ही लौटेंगे। तब खेमानी और सुब्बा राव ने फैसला किया कि सीतारामन को वापस बुलाया जाए ताकि पता लगाया जा सके कि क्या उनके पास एसजीएल (SGL) या बीआर (BR) हैं।

उन्होंने शाखा में किसी को भेजा और सीतारामन की दराज तोड़ दी। यह एक हताशा भरा कदम था। वहाँ कुछ भी नहीं मिला।

10 अप्रैल की रात, सुब्बा राव के कमरे में, एसबीआई के शीर्ष अधिकारियों ने तीन निर्णय लिए। पहला, सीतारामन को वापस लाने के लिए कामत को पलानी भेजना। दूसरा, सतर्कता विभाग द्वारा तत्काल जांच शुरू करना। तीसरा, अगली सुबह अध्यक्ष को सूचित करना और धन वसूली की योजना बनाना। (उस समय, उन्हें शामिल राशि का सटीक पता नहीं था।)

अगले दिन, कामत कोयंबटूर के लिए रवाना हो गए, जबकि सुब्बा राव और खेमानी ने गोइपोरिया से मुलाकात की। चर्चाओं से दो बातें स्पष्ट हुईं: पहली, शाखा द्वारा किए गए लेनदेन केंद्रीय कार्यालय के निर्देशों से भिन्न थे। दूसरी, अधिकांश कमी 14

दिसंबर को हर्षद मेहता के माध्यम से किए गए लेनदेन की डिलीवरी न होने के कारण थी।

उन्हें स्पष्ट हो गया कि सीतारामन और हर्षद एक साथ काम कर रहे थे। इससे एसबीआई की स्थिति स्पष्ट हो गई। उस समय, आरबीआई, जिसने बाद में घोटाले का पर्दाफाश करने का दावा किया, को धोखाधड़ी की सटीक प्रकृति के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, यहां तक कि अपने ही परिसर में पीडीओ विवरण के मिथ्याकरण के बारे में भी नहीं, जिसने सीतारामन-हर्षद के गठजोड़ को साबित किया।

जब खेमानी ने सब कुछ उजागर किया, तो गोइपोरिया शायद पूरी तरह से आश्चर्यचकित नहीं हुए होंगे। अगर खेमानी को कुछ ऐसा पता था जो गोइपोरिया को नहीं पता था, तो गोइपोरिया को भी कुछ पता था। वह हर्षद को रोकने के लिए आरबीआई के साथ मिलकर काम कर रहा था। यह आरबीआई की "हर्षद को पकड़ो" साजिश का हिस्सा था, जिसने बाद में आरबीआई गवर्नर एस. वेंकिटारमन को "मैंने चोर को पकड़ लिया" का दावा करने की ताकत दी और कुछ प्रभावशाली सांसदों द्वारा उन्हें पद से हटाने की कोशिश के बावजूद वित्त मंत्री का समर्थन हासिल करने में मदद की। लेकिन इसके बारे में बाद में बात करेंगे।

11 अप्रैल को, जब हर्षद-सीतारामन-पीडीओ का संबंध गोइपोरिया, सुब्बा राव और खेमानी के सामने स्पष्ट हो गया,

तो उन्होंने हर्षद को फोन करके 14 दिसंबर को उनके माध्यम से किए गए उन लेन-देन के बारे में पूछने का फैसला किया, जिनका शाखा में कोई रिकॉर्ड नहीं था। उस समय तक मुख्य महाप्रबंधक (सतर्कता) को

पता चल चुका था कि एसबीएस, जो कि बेचने वाले बैंकों में से एक था, का एसबीआई के साथ बताई गई तारीख को ऐसा कोई लेन-देन नहीं था। बाद में,

21 मार्च को हर्षद के साथ हुआ एक और लेन-देन संदिग्ध निकला। हर्षद को 2007 के 11.5% ब्याज दर वाले ऋण में से 170 करोड़ रुपये देने थे। पैसा तो दे दिया गया, लेकिन कोई प्रतिभूति नहीं दी गई। स्पष्ट है कि हर्षद ने पैसा ले लिया था और सीतारामन ने पीएनबी, एसबीएस और अन्य बैंकों से फर्जी खरीद दिखाकर उसे बचाने की कोशिश की थी। हर्षद पर एसबीआई का दो बार में 499 करोड़ रुपये और 170 करोड़ रुपये का बकाया था।

“मुझे लगता है कि हमें तुरंत हर्षद को फोन करके उससे स्पष्टीकरण मांगना चाहिए। हमें उसे चेयरमैन के सामने पेश होने के लिए कहना चाहिए। इससे उस पर दबाव बनेगा,” खेमानी ने कहा। हैरानी की बात यह थी कि गोइपोरिया ने मना कर दिया।

“मुझे लगता है कि आपको इसे खुद ही संभालना चाहिए,” उन्होंने खेमानी से कहा। “अगर यह असंभव हो जाए तो मुझे बुला लेना।”

खेमानी नाखुश थे। उन्हें लगा कि धोखाधड़ी की गंभीरता को देखते हुए चेयरमैन की ओर से एक-दो सख्त शब्द कहना उपयोगी होगा। दोपहर करीब 12:30 बजे, खेमानी ने हर्षद को फोन किया। “कृपया तुरंत आकर मुझसे मिलें। यह बहुत जरूरी है,” उन्होंने हर्षद से कहा।

हालाँकि हर्षद ने प्रतिभूतियों का कारोबार करना बंद कर दिया था, फिर भी वह आने के लिए तुरंत तैयार हो गया। शायद तब तक उसे धोखाधड़ी के बारे में पता चल चुका था। उसके कार्यालय से खेमानी के कार्यालय तक पैदल दो मिनट का रास्ता है। संभवतः हर्षद गाड़ी से आया होगा क्योंकि वह ठीक 12:30 बजे खेमानी के कमरे में दाखिल हुआ।

“तुम्हें ये प्रतिभूतियाँ पहुँचानी थीं...” खेमानी ने बात शुरू की।

“हाँ, मुझे पता है,” हर्षद ने बीच में ही टोकते हुए कहा। “एसजीएल के बजाय, पीएनबी और एसबीएस ने बीआर दिए हैं। मैंने सीतारामन से बीआर लेकर इन दोनों बैंकों से एसजीएल प्राप्त किए हैं। लेकिन जैसा कि आप जानते हैं, आयकर विभाग ने मेरे कार्यालय सील कर दिए हैं। अब मेरे पास इन बीआर तक पहुंच नहीं है।”

“यही आपकी समस्या है,” खेमानी ने कहा। “या तो आप हमें प्रतिभूतियां दें या फिर काउंटरपार्टी बैंकों से भुगतान करवाएं।” कुछ क्षण रुकने के बाद उन्होंने कहा, “आपको तुरंत भुगतान शुरू करना होगा।”

यह हर्षद के लिए भी एक बड़ी चुनौती थी। उनका पहला भुगतान – एएनजेड से 243.18 करोड़ रुपये का चेक

ग्रिंडलेज बैंक – सोमवार 13 तारीख को आया और फिर पूरे सप्ताह कुछ नहीं मिला। इस बीच, चिंतित खेमानी ने हर्षद को पैसे लौटाने

के लिए धमकाया, गिड़गिड़ाया, फुसलाया और विनती की।

14 से 18 अप्रैल के बीच की छुट्टियां, जब बाजार बंद था, ने कुछ हद तक मदद की। 18 तारीख को खेमानी ने सुब्बा राव को फोन किया। “हर्षद को फोन करो और उसे चेयरमैन से मिलने के लिए मजबूर करो,” उसने उससे कहा। सुब्बा राव मान गए। उसी दिन हर्षद को एसबीआई से फोन आया और वह खेमानी के कमरे में पहुँच गया।

इस बार वह निश्चित रूप से अपनी कार में आया था, उसकी 45 लाख रुपये की टोयोटा लेक्सस, जो दुनिया की सबसे ज्यादा बिकने वाली नई लग्जरी मॉडल है, और जिसे सफेद दस्ताने पहने ड्राइवर चला रहा था। यह एक घातक गलती साबित हुई। यह बात लीक हो गई कि हर्षद को एसबीआई के साथ अपने लेन-देन का मिलान करने में समस्या आ रही है।

हर्षद को सुब्बा राव के कमरे में ले जाया गया और वहाँ से चेयरमैन के पास। वह अपनी पूरी क्षमता से बोल रहा था। उसने अगले कुछ दिनों में हिसाब बराबर करने का वादा किया। “मैं एक ईमानदार आदमी हूँ। मेरे पास सभी बीआर हैं,” उसने जोर देकर कहा। (बाद में, जेल में, उसने खेमानी से कहा, “जो हुआ उसके लिए मुझे खेद है।” खेमानी को शायद उस पर गोली चलाने का मन कर रहा था।) बाकी समय (लगभग 30 मिनट) हर्षद ने अपने निवेश दर्शन पर एकतरफा भाषण दिया। उन्होंने योजना आयोग के सदस्य वी. कृष्णमूर्ति, उनके सहयोगियों और 1 अप्रैल को आरबीआई गवर्नर के साथ भी ऐसा ही किया था।

हर्षद के दर्शन का आधार उनका पसंदीदा प्रतिस्थापन लागत सिद्धांत था, जिसके अनुसार मौजूदा कंपनियों का मूल्यांकन

उन्हें बदलने की कहीं अधिक लागत पर किया जाना चाहिए, न कि पारंपरिक लेखांकन विधियों के अनुसार बहुत कम ऐतिहासिक लागत पर। इस दृष्टिकोण से देखने पर, कई भारतीय कंपनियां कम मूल्यांकित प्रतीत होती थीं और इसलिए खरीदने के लिए बेहतरीन शेयर थीं। हर्षद का दूसरा सिद्धांत यह था कि भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार हो रहा था और अब समय आ गया था कि हम विदेशी निवेशकों को भारतीय बाजारों में आमंत्रित करें।

18 तारीख को हर्षद ने ग्रिंडलेज़ को कुल 142 करोड़ रुपये के तीन और चेक दिए और

20 तारीख को 160 करोड़ रुपये के दो और चेक दिए। प्रसिद्ध हर्षद द्वारा एक सप्ताह के भीतर एसबीआई मुख्यालय की दो यात्राओं ने चर्चा का विषय बना दिया।

एसबीआई के एक पूर्व कर्मचारी ने इस गपशप को सुना और 22 अप्रैल को इसे टाइम्स ऑफ इंडिया को दे दिया। एक दिन पहले, हर्षद ने 5 करोड़ रुपये और दिए थे।

केवल एक चेक बचा था – 6.35 करोड़ रुपये का – जो हर्षद को 24 तारीख को देना था। बस एक दिन और, हर्षद यह राशि जमा कर देता और एसबीआई अपना पैसा वसूल कर लेता और ज़्यादा से ज़्यादा सीतारामन को निलंबित कर देता।

23 अप्रैल का दिन बाकी दिनों जैसा ही था। सिवाय इसके कि टाइम्स ऑफ इंडिया के पहले पन्ने पर तीन कॉलम की एक खबर छपी थी, जिसका

सीधा-सादा शीर्षक था, "ब्रोकर को 500 करोड़ रुपये का हिसाब करने को कहा गया"। ब्रोकर का नाम नहीं बताया गया था। उसे 'बिग बुल' कहा गया था। यह सब गोइपोरिया के टालमटोल भरे जवाबों के कारण था। जब उनसे पूछा गया कि क्या यह सच है कि हर्षद मेहता पर एसबीआई का बड़ा बकाया है, तो उन्होंने गोलमोल जवाब दिए।

"क्या हर्षद के साथ हिसाब-किताब में कोई समस्या थी?" टाइम्स ने गोइपोरिया से पूछा।

"हम हजारों करोड़ रुपये की प्रतिभूतियों का लेन-देन करते हैं। हमें

समय-समय पर हिसाब-किताब में समस्याएँ आती रहती हैं।"

“क्या हर्षद मेहता 500 करोड़ रुपये चुकाने में असमर्थ हैं?” गोइपोरिया ने जवाब दिया: “हर्षद मेहता? दलाल? मैं इस पर टिप्पणी नहीं कर सकता”, और उन्होंने फोन काट दिया।

खेमानी का रुख और भी स्पष्ट था। “यहां कोई समस्या नहीं है। यह पूरी तरह झूठ है। 20 से 30 करोड़ रुपये का मिलान अंतर हमेशा रहता है”, उन्होंने राशि को काफी कम करते हुए कहा।

इसके तुरंत बाद, गोइपोरिया को छुट्टी पर जाने के लिए कहा गया। जैसा कि महीनों के खुलासों से साबित हुआ, एसबीआई, अपने अध्यक्ष की जानकारी के बिना, हर्षद के साथ काफी हद तक जुड़ा हुआ था। और पत्रकारों की कल्पना प्रतिभूति घोटाले के वास्तविक आयामों का

अनुमान लगाने में पूरी तरह विफल रही। व्यवस्था में इतनी गहरी गड़बड़ी थी कि खेमानी जैसे चतुर बाजार विश्लेषक भी इससे पूरी तरह अनजान थे।

23 अप्रैल को, जब यह कहानी सामने आई, तो हर किसी को परेशान करने वाला सवाल यह था कि मेहता को एसबीआई को चुकाने के लिए पैसा कहां से मिला। जवाब काफी चौंकाने वाला था। उन्होंने यह पैसा वस्तुतः आरबीआई से लिया था। यह पैसा नेशनल हाउसिंग बैंक से आया था, जो आरबीआई की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी है। मई की शुरुआत में, जब संसद का पूरा सत्र चल रहा था, तब यह खबर सामने आई कि आरबीआई की एक शाखा ने एक ब्रोकर को उसके धोखाधड़ी को छुपाने में मदद की थी। हालांकि किसी भी सांसद को इस घोटाले की तकनीकी बारीकियों की समझ नहीं थी, फिर भी वे इसे राजनीतिक बम में बदलने में कामयाब रहे।

29 अप्रैल को, राज्यसभा में कांग्रेस के उपनेता एनकेपी साल्वे ने मनमोहन सिंह से कहा कि चूंकि वे वित्त मंत्री हैं, "मुझे लगता है कि घर चले जाना ही बेहतर होगा।" हालांकि, सिंह पर्याप्त तथ्यों के अभाव में सदन में कोई बयान भी नहीं दे पाए। सांसदों के गुस्से को शांत करने के लिए उसी दिन सीबीआई को बुलाया गया। उस क्षण से, यह घोटाला एक व्यावसायिक समस्या नहीं रह गया; यह एक राजनीतिक और आपराधिक मुद्दा बन गया, जिसने बाजारों को तहस-नहस कर दिया और नौकरशाहों और बैंकरों के दिलों में दहशत पैदा कर दी।

1 मई को, द इंडियन एक्सप्रेस ने एक और घोटाले का पर्दाफाश किया।
रिपोर्ट में बताया गया कि यूनाइटेड कमर्शियल बैंक ने मेहता

परिवार द्वारा अपनी दो मुख्य कंपनियों, माज़दा और ग्रोमोर, पर जारी किए गए दो बिलों को डिस्काउंट पर बेचकर उन्हें कई शेयरों, विशेष रूप से रिलायंस इंडस्ट्रीज के शेयरों की कीमतों को बढ़ाने के लिए धन मुहैया कराया था। रिलायंस उस समय अपने इक्विटी इश्यू को विदेशों में जारी करने के लिए उत्सुक थी और मेहता ने संभवतः 10 लाख शेयर खरीदकर मिलीभगत की, जिससे

शेयर की कीमत 20 मार्च को मात्र 285 रुपये से बढ़कर 28 मार्च को 400 रुपये तक पहुंच गई। इस खबर ने हर्षद पर और दबाव डाला।

5 मई को, द इंडियन एक्सप्रेस ने एनएचबी के पहलू का खुलासा किया।

इससे एनएचबी के अध्यक्ष एम.जे. फेरवानी सुर्खियों में आए, जिन्होंने 1989 तक यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया के अध्यक्ष के रूप में अपनी आक्रामक खरीद रणनीति के लिए "बिग बुल" की उपाधि अर्जित की थी। हर्षद ने 1991-92 में अपनी बेतहाशा खरीद से यह उपाधि हासिल कर ली। एक बेजोड़ विडंबना यह थी कि पूर्व बिग बुल पर वर्तमान बिग बुल को उनके वित्तीय संकट से उबरने में मदद करने का संदेह था। फेरवानी ने लगातार इस बात से इनकार किया कि एनएचबी के पैसे मेहता के खाते में जाने से उनका कोई संबंध था।

8 मई को फेरवानी ने एनएचबी से इस्तीफा दे दिया और बाद में उन तीन अन्य संस्थानों से भी इस्तीफा दे दिया, जिनका वे नेतृत्व कर रहे थे।

मेहता, फेरवानी और इस पूरे मामले में शामिल अन्य लोगों को इस

बात की जानकारी नहीं थी कि स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक, कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज और कैनबैंक म्यूचुअल फंड के आलीशान दफ्तरों में एक और बड़ा घोटाला उजागर हो रहा था। मेहता के असंतुलित बीआर ने इस घोटाले का पर्दाफाश कर दिया। जब आरबीआई गवर्नर वाशिंगटन से लौटे, तो उन्होंने जांच के लिए एक समिति गठित की और सभी बैंकों के बीच बीआर मिलान का आदेश दिया ताकि बकाया बीआर का पता लगाया जा सके।

19 मई को बैंक कर्मचारी अलग-अलग समूहों में एक मेज के चारों ओर बैठे और बकाया बीआर में दर्शाई गई अपनी-अपनी स्थिति का मिलान किया। अगले दिन के अंत में, स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक का बकाया सबसे अधिक पाया गया। पता चला कि बैंक ऑफ कराड द्वारा जारी 225 करोड़ रुपये और मेट्रोपॉलिटन को-ऑपरेटिव बैंक द्वारा जारी 530 करोड़ रुपये के बीआर बैंक उसके पास थे। इसके बाद कैनफिना का नंबर था, जिसके पास कराड बैंक के 425 करोड़ रुपये मूल्य के बीआर (बैंक बैलेंस शीट) थे। कैनम्यूचुअल के पास कराड द्वारा जारी किए गए 103 करोड़ रुपये के एसजीएल (अतिरिक्त प्रतिभूतियां) थे। ये बीआर फर्जी थे - बिना किसी अंतर्निहित प्रतिभूति के जारी किए गए थे - और एक साल पुराने एसजीएल बाउंस हो चुके थे।

बैंक ऑफ कराड और मेट्रो बैंक दोनों ही छोटे, निजी बैंक थे, जिनकी कुल संपत्ति उनके नाम पर बकाया सैकड़ों करोड़ रुपये के मुकाबले बहुत कम थी। कराड बैंक 1991 में बीआर के दुरुपयोग में पकड़ा गया था।

इस धोखाधड़ी की व्यापकता और जटिलता से चिंतित होकर, आरबीआई ने

27 मई को बैंक ऑफ कराड के परिसमापन का आदेश दिया और मेट्रो बैंक के बोर्ड को भंग कर दिया।

इससे एक सप्ताह पहले, कुछ और हुआ। 21 मई को सुबह 2:30 बजे, फेरवानी का निधन हो गया। यह एक रहस्य था जिसकी कोई जांच नहीं करना चाहता था। रिपोर्टों के अनुसार, उन्हें दिल का दौरा पड़ा था। लेकिन उनके मृत्यु प्रमाण पत्र पर एक एनेस्थेटिस्ट ने हस्ताक्षर किए थे। उनका चेहरा ढका हुआ था – जो एक हिंदू के लिए असामान्य था – इसलिए अंतिम संस्कार में आए लोग उन्हें ठीक से देख नहीं पाए। क्या यह स्वाभाविक मृत्यु थी? क्या यह आत्महत्या हो सकती थी?

कहानी जटिल और भयावह होती जा रही थी। घोटाले के उजागर होने के एक महीने के भीतर ही एक बैंक बंद हो गया, सीबीआई को शेयर बाजार के सबसे बड़े खिलाड़ी, मौजूदा बिग बुल को पकड़ने के लिए बुलाया गया, और भारतीय वित्तीय व्यवस्था के एक स्तंभ, मूल बिग बुल की रहस्यमय परिस्थितियों में मृत्यु हो गई। लेकिन यह तो बस शुरुआत थी।

बैंकर, दलाल, मूर्ख, चोर

“हम मुख्य सूत्रधार बन गए थे जबकि बैंक दलालों की भूमिका निभा रहे थे। बैंक

अपनी ब्रोकरेज तय कर सकते थे। हम उन्हें यह पूछकर चिढ़ाते थे कि

हमारे द्वारा उनके लिए किए गए सौदों पर वे कितना ब्रोकरेज लेंगे।”

1992 की गर्मियों के दौरान, मुद्रा बाजार में व्यापक भ्रष्टाचार के नए खुलासों ने न केवल आम जनता को, बल्कि वित्तीय पत्रकारों, यहां तक कि वित्तीय क्षेत्र के प्रमुख खिलाड़ियों और नियामक प्राधिकरणों को भी स्तब्ध कर दिया। यह एक ऐसी दुनिया थी जिसके अस्तित्व के बारे में बहुत कम लोग जानते थे।
हर्षद मेहता की गरीबी से अमीरी तक की कहानी, जिसमें उनकी कारों का बेड़ा और विशाल छत वाले लॉन के साथ 15,000 वर्ग फुट का घर शामिल था, सार्वजनिक हो गई। लेकिन इससे कहीं कम लोगों को पता था कि व्यापारी 2.5 करोड़ रुपये का वेतन कमा रहे थे; एक साल पुरानी वित्तीय कंपनियां 7000 करोड़ रुपये के शेयर खरीद-बेच रही थीं; दलालों के दफ्तरों में खाली बैंक दस्तावेज़ (बैंक रसीदें या बीआर) पड़े थे; करोड़ों रुपये एक बैंक से दूसरे बैंक में भेजे गए, लेकिन व्यक्तिगत खातों में जमा किए गए।
अचानक, मनी मार्केट दलालों और बेहद अमीर ऑपरेटरों की रहस्यमयी, गुप्त दुनिया सबके सामने आ गई। जैसे-जैसे इस घोटाले में एक के बाद एक बड़े नाम गिरते गए, गलत कामों के आरोपों से कलंकित होते गए, वैसे-वैसे हवा में ऐसे लोगों के नाम गूंजने लगे जिनके बारे में पहले कभी सुना भी नहीं गया था, अजीबोगरीब बाजार प्रथाएं और बेहद जटिल सौदे जो आरबीआई अधिकारियों को भी चकमा दे रहे थे। मूल रूप से, इस कारोबार की संरचना सरल थी। एक बैंक दूसरे बैंक को प्रतिभूतियां बेचना चाहता था तो वह एक दलाल को नियुक्त करता था जो खरीद-बिक्री करता था और बदले में ब्रोकरेज लेता था। लेकिन बाज़ार सीमित था, दलालों की संख्या बहुत कम थी और विशेषज्ञता

कुछ ही व्यक्तियों के हाथों में केंद्रित थी। इससे अजीबोगरीब संबंध बने और बाज़ार की कीमतें विकृत हो गईं।
यह एक ऐसी दुनिया थी जो अपने ही रीति-रिवाजों से बंधी हुई थी। सिटीबैंक का आलीशान और तकनीकी रूप से मजबूत खजाना हितेन दलाल जैसे दलालों के छोटे और संदिग्ध दफ्तरों के साथ घुलमिल गया था। विदेशी बैंकों के उच्च पदस्थ अधिकारी और आम दलाल एक-दूसरे का साथ देने में मिले हुए थे। सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों, बैंकों और दलालों के निजी खातों से पैसा आता-जाता रहता था - एक ऐसा प्रवाह जिसके बारे में आरबीआई के अधिकारी आंशिक रूप से अनभिज्ञ और आंशिक रूप से सहनशील थे। यह प्रतिभूतियों के आवरण, फर्जी बीआर और विशेषाधिकार प्राप्त सूचनाओं के सहारे तेजी से घूमते पैसे की दुनिया थी।
इन सौदों को अंजाम देने में बैंकों के कुछ दलाल और वित्त अधिकारी अहम भूमिका निभा रहे थे – सिटीबैंक, बैंक ऑफ अमेरिका, एएनजेड ग्रिंडलेज़ बैंक, स्टैंडर्ड चार्टर्ड, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, केनरा बैंक, सिंडिकेट बैंक और कुछ अन्य बैंक। इन दलालों में वीबी देसाई, भूपेन चंपकलाल देवीदास, हितेन दलाल, सी मैकर्टिच, नरेश अग्रवाल, हर्षद मेहता, डीएस पुरभूदास और जयंतीलाल खंडवाला शामिल थे।
मुद्रा बाजार और इक्विटी बाजार में प्रवेश के लिए किसी भी स्टॉक एक्सचेंज की सदस्यता अनिवार्य है। इसलिए, मुद्रा बाजार में काम करने वाले सभी दलाल इक्विटी बाजार में भी महत्वपूर्ण थे। हालांकि, उनमें से अधिकांश मुद्रा बाजार में कारोबार करने से दूर रहे क्योंकि यह एक रहस्यमयी दुनिया थी जिसमें कथित तौर पर बहुत कम मुनाफा होता था।

1980 के दशक के मध्य तक, केवल पांच खिलाड़ियों का मुद्रा बाजार पर माफिया जैसा दबदबा था। सिटीबैंक इनमें सबसे प्रमुख था, जो बाजार की दिशा तय करता था। ब्रोकिंग कारोबार पर मात्र चार फर्मों का दबदबा था, जिनमें से तीन सिटीबैंक के प्रति वफादार थीं: डीएसपी, वीबीडी और सी मैकर्टिच। चौथी फर्म बीसीडी थी। जैसे-जैसे बाजार का विस्तार हुआ, नए खिलाड़ी भी मैदान में उतरे, जिनमें व्यक्तिगत ब्रोकर और बैंक शामिल थे, जिन्होंने बांडों में व्यापार करके पैसा कमाने का अवसर देखा।
दो सबसे पुरानी फर्म, जिन्हें ब्रोकिंग समुदाय का संरक्षक भी माना जाता था, मिलनसार जीतू श्रॉफ के स्वामित्व वाली वीबीडी और भूपेन दलाल के स्वामित्व वाली बीसीडी थीं। बीसीडी वास्तव में चतुर जेपी गांधी द्वारा चलाई जा रही थी, जो बाजार में अपने कई "नवाचारों" के लिए कुख्यात थे। बॉम्बे की बटलीवाला एंड करानी और कलकत्ता की सी मैकर्टिच एंड कंपनी दो अन्य बड़ी ब्रोकिंग फर्म थीं, जिन्होंने वीबीडी के साथ मिलकर कई व्यक्तियों के करियर की शुरुआत की।
उस समय बयासी वर्ष के वीबी देसाई ने देश की सबसे पुरानी प्रतिभूति फर्मों में से एक, लुईस एंड जोन्स में पैंतीस वर्ष बिताए थे। गुजराती/मारवाड़ी बहुल ब्रोकिंग कारोबार में वे एक दुर्लभ महाराष्ट्रीयन थे। जितु श्रॉफ, जिन्हें जितुभाई के नाम से भी जाना जाता था, उनके शिष्य थे। वे कहते हैं, "जब मैं मात्र सोलह वर्ष का था, तब मेरे पिता का निधन हो गया था और तब से उन्होंने मेरा ख्याल रखा है।" दोनों ने 1978 में लुईस एंड जोन्स छोड़कर वीबीडी एंड कंपनी की स्थापना की। चार साल बाद, देसाई सेवानिवृत्त हो गए और जितुभाई ने अपने गुरु के साथ पच्चीस साल काम करने के बाद कार्यभार संभाला। अब ऐसा प्रतीत

होता है कि श्रॉफ के नेतृत्व में वीबीडी, मुद्रा बाजार में सबसे बेईमान डीलरों में से एक रही है। सिटीबैंक ने कई संदिग्ध सौदों में इसका इस्तेमाल अपने मुखौटे के रूप में किया और अंततः श्रॉफ द्वारा नियंत्रित हैवेलॉक लीजिंग नामक कंपनी का अधिग्रहण कर लिया, जिसका नाम बदलकर सिटिकॉर्प सिक्योरिटीज एंड इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड कर दिया गया।
इसी फर्म से एक विचित्र दलाली करने वाला व्यक्ति उभरा: हितेन दलाल, जो भूपेन दलाल का दूर का भतीजा था। हितेन दलाली समुदाय में भी लगभग अज्ञात था। जब इस घोटाले का खुलासा हुआ कि हितेन का भारी मात्रा में ट्रेडिंग वॉल्यूम, स्टैनचार्ट से घनिष्ठ संबंध और सैकड़ों करोड़ के नुकसान का कारण बने लापरवाह लेनदेन, हर्षद जैसे चतुर बाजार विश्लेषकों को भी स्तब्ध कर दिया। हितेन पैंतीस वर्ष के थे, मोटे-ताज़े थे और कम बोलते थे, लेकिन उन्हें आंकड़े और लेनदेन के विवरण असाधारण रूप से याद रहते थे। उन्होंने 1978 से 1987 तक जीतू श्रॉफ के साथ काम किया, इसी दौरान उनकी मुलाकात एक सहकर्मी लीना से हुई और उन्होंने उनसे शादी कर ली। 1988 में, अपनी सालाना 10 लाख रुपये की कमाई से संतुष्ट न होकर, उन्होंने अपनी खुद की ब्रोकिंग फर्म शुरू की। तब से वे स्टैनचार्ट के साथ ही काम कर रहे थे। उनका कभी कोई बड़ा कार्यालय नहीं था, वे प्रीमियर 118NE कंप्यूटर का इस्तेमाल करते थे और अंधेरी स्थित अपने उपनगरीय घर में फोन नहीं रखते थे। हितेन की निवेश संबंधी कोई ऐसी विचारधारा नहीं थी जो हर्षद जैसी हो, वे सी मैकर्टिच के अजय कायन जैसे धूर्त ऑपरेटर नहीं थे और न ही उनमें अपने चाचा भूपेन जैसी परिष्कृत तर्क गढ़ने की क्षमता थी। लेकिन बैंकों के वित्त अधिकारियों के लिए वह इन सभी अन्य शीर्ष अधिकारियों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण थे।

हितेन प्रतिभूति व्यवसाय के सर्वज्ञ थे, समस्याओं के सर्वोत्कृष्ट समाधानकर्ता। स्टैनचार्ट के एक बर्खास्त कर्मचारी ने कहा, "वह लगभग सभी प्रमुख बैंकों के वित्त विभाग को वस्तुतः संभाल रहे थे।" बाद में अदालत में यह सिद्ध हो गया कि वह बैंक को निश्चित प्रतिफल के लिए स्टैनचार्ट का वित्त विभाग चला रहे थे। हितेन के नियंत्रण में आंध्र बैंक था, वह सिटीबैंक के सबसे बड़े प्रतिभूति दलाल और ग्रिंडलेज़ के सबसे बड़े दलालों में से एक थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने 1991 में 75,000 करोड़ रुपये का कारोबार किया, जो अब तक का सबसे बड़ा कारोबार था और बीसीडी, हर्षद और उनके गुरु जीतू श्रॉफ से कहीं आगे था। उनके लेटरहेड के ऊपरी दाहिने कोने पर छपा उनका टेलीग्राफिक कोड था: "अमीर बनो"।
जितु श्रॉफ प्रशिक्षण स्कूल से प्रशिक्षण प्राप्त करने वालों में अन्य लोग थे:
एमए कामत, समीर दलवी, असित मेहता और सुनील झावेरी, जो यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया के पूर्व प्रमुख एमजे फेरवानी के दामाद थे। 18 मई 1992 को, घोटाले की खबर सामने आने के तीन सप्ताह बाद, वीबीडी साझेदारी भंग कर दी गई और जितु श्रॉफ एकमात्र मालिक बन गए।
जब घोटाला सामने आया, तब जितु श्रॉफ दर्जनों वित्त और निवेश कंपनियों को स्थापित करने में व्यस्त थे। वे उद्योग जगत में भी कदम रख रहे थे। जितुभाई इसका कारण बताते हुए कहते हैं, "मेरे गुरुजी ने मुझे बहुत सारी कंपनियां स्थापित करने की सलाह दी थी।" उनके गुरु अन्ना सरदेशपांडे थे, जिनके शिष्य दुनिया भर में थे। उनमें से एक भूपेन दलाल थे, जिनके बेटे मिलन ने सरदेशपांडे की बेटी से शादी की थी।

सुंदर, वाक्पटु और तेज दिमाग वाले भूपेन कई प्रतिष्ठित कंपनियों में निदेशक थे, जिनमें टाइम्स ऑफ इंडिया के प्रकाशक बेनेट कोलमैन भी शामिल थे। अपने शुरुआती दिनों में उन्होंने डीएसपी के हेमेंद्र कोठारी समेत कई संघर्षरत ब्रोकरों के संरक्षक की भूमिका निभाई। भूपेन का कारोबार लगभग पूरी तरह से जेपी गांधी और अभय नरोत्तम द्वारा चलाया जाता था, जिनके पास उनकी पावर ऑफ अटॉर्नी थी। घोटाले के उजागर होने के बाद जब भूपेन ने अभय नरोत्तम से दूरी बना ली, तो बाजार हैरान रह गया। भूपेन खुद भी घोटाले के पैमाने से अचंभित नजर आए। उनका ध्यान कहीं और था। प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव की उदारीकरण नीति से उत्साहित होकर, वे अपनी मर्चेंट बैंकिंग फर्म चंपकलाल इन्वेस्टमेंट एंड फाइनेंशियल कंसल्टेंसी कंपनी के बैनर तले विकास के अगले चरण की योजना बनाने में व्यस्त थे।
इस कारोबार में दूसरी प्रशिक्षण फर्म बटलीवाला एंड करानी थी, जो इक्विटी, बॉन्ड और विदेशी मुद्रा बाजारों में सक्रिय थी। इसके संचालन को मधुर मुरारका, जो बॉन्ड ट्रेडिंग और विदेशी मुद्रा का काम संभालते थे, और मनोज मुरारका और उनकी बहन रश्मी अग्रवाल, जो इक्विटी का काम देखते थे, के बीच विभाजित किया गया था। एस रामास्वामी, जिन्हें स्टैनचार्ट से मेट्रोपॉलिटन बैंक में धन हस्तांतरण के सिलसिले में गिरफ्तार किया गया था, ने बी एंड के में अपना करियर शुरू किया, फिर लुईस एंड जोन्स में गए और उसके बाद हरकिस्सोंदास लक्ष्मीदास (एक शक्तिशाली ब्रोकिंग फर्म जो दिवालिया हो गई) और अंत में पीआर सुब्रमण्यम के साथ काम किया, और फिर 1987 में अपनी खुद की कंपनी, एक्सेल एंड कंपनी की शुरुआत की। इसी तरह, अनुपम कालिधर और जियाउर रहमान ने बी एंड के

छोड़कर अपनी खुद की वित्तीय सेवा कंपनी, एआर फाइनेंशियल शुरू की।
सी मैकर्टिच, हालांकि कलकत्ता में स्थित थी, इक्विटी और बॉन्ड के क्षेत्र में एक प्रमुख खिलाड़ी के रूप में उभरी। इसका संचालन अजय कायन द्वारा किया जाता था, जो उस समय लगभग 35 वर्ष के थे और कम चर्चित होने के बावजूद एक कुशल व्यवसायी थे। सी मैकर्टिच ब्रोकिंग फर्मों के एक नेटवर्क के केंद्र में थी - स्टीवर्ट एंड कंपनी, राहुल एंड कंपनी और वाईएसएन सिक्योरिटीज। स्टीवर्ट एंड कंपनी के साथ इसका एक संयुक्त उद्यम था जिसे स्टीवर्ट एंड मैकर्टिच कंसल्टेंसी सर्विसेज कहा जाता था। इन फर्मों ने सिटीबैंक के साथ घनिष्ठ सहयोग से कारोबार पर अपना दबदबा बनाए रखा। अजय के पिता गौरी शंकर कायन द्वारा खरीदी गई सी मैकर्टिच कंपनी ने डीपी पोद्दार जैसे स्वतंत्र ब्रोकरों को जन्म दिया।
बड़े ब्रोकरों में, डीएसपी एक अपवाद था। उस समय यह शेयर बाजार में तो एक महत्वपूर्ण कंपनी थी, लेकिन मुद्रा बाजार में नहीं। हालांकि इसके लेन-देन की मात्रा बड़ी प्रतीत होती थी, लेकिन इसके पास बड़े व्यापारी बहुत कम थे। यह कायन के लिए मुद्रा बाजार के सौदे करता था, जिनका बॉम्बे में कोई कार्यालय नहीं था। बैंकों को भेजे जाने वाले अनुबंध नोट डीएसपी के माध्यम से भेजे जाते थे।
ब्रोकरों में सबसे अनोखे थे नरेश अग्रवाल, जिन्होंने ग्रिंडलेज में कोषागार प्रमुख का पद छोड़कर नई दिल्ली में अपना खुद का व्यवसाय शुरू किया। उन्होंने न तो ब्रोकिंग व्यवसाय विरासत में पाया था और न ही वे हितेन दलाल जैसी किसी ब्रोकिंग फर्म के लिए काम कर रहे थे। छोटे कद के, सांवले और गोल-मटोल

अग्रवाल अपने सौदों में उतने ही दृढ़ थे जितने कि अपनी बहसों में। उन्हें बड़ा दांव लगाना पसंद था और कई मौकों पर उन्हें भारी नुकसान हुआ, मुख्य रूप से हर्षद और बैंकएम से। बाजार के जानकारों के अनुसार, ग्रिंडलेज के करीबी रहे अग्रवाल और हर्षद कट्टर प्रतिद्वंद्वी थे। हर्षद ने ग्रिंडलेज़ का इस्तेमाल उसके खिलाफ किया होगा, जबकि अग्रवाल ने अपने कर्मचारियों को हर्षद और उसके साम्राज्य से नफरत करना सिखाया होगा, ताकि उसकी कंपनी अधिक प्रतिस्पर्धी बन सके। यह प्रतिद्वंद्विता यूनिट 4 के बाजार पर प्रभुत्व हासिल करने की होड़ से शुरू हुई और अपोलो टायर्स जैसे शेयरों तक फैल गई, जिनमें हर्षद ने लॉन्ग पोजीशन ली थी और नरेश ने शॉर्ट पोजीशन।
बाहरी दुनिया को इनमें से किसी भी बात की जानकारी नहीं थी। बॉन्ड बाजार दो कारणों से एक बंद और गुप्त क्षेत्र था। पहला, इक्विटी शेयरों के विपरीत, बॉन्ड सार्वजनिक रूप से सूचीबद्ध नहीं होते थे। आरबीआई कुछ प्रतिभूतियों की कीमतें घोषित करता था, लेकिन कई सौदे "ऑफ-मार्केट" आधार पर होते थे। दूसरा, बॉन्ड बाजार आम जनता के लिए बंद था। यह एक अंतर-संस्थागत बाजार था - केवल बैंक, बीमा कंपनियां और कुछ अन्य संस्थाएं ही सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद-बिक्री करती थीं। इस गुप्त समूह में, "प्रवेश करने और टिके रहने के लिए आपको कम से कम दो शीर्ष दलालों का समर्थन और सद्भावना चाहिए", व्यवसाय में एक नए प्रवेशकर्ता ने कहा।
इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ये मुट्ठी भर प्रमुख मनी मार्केट ब्रोकर और ट्रेडिंग बैंक घनिष्ठ समूहों में काम करते थे। उदाहरण के लिए, सी मैकर्टिच बॉम्बे के एक बैंक के साथ सौदा करता था और अनुबंध डीएसपी के माध्यम से जाता था, जो बॉम्बे

स्टॉक एक्सचेंज के पूर्व अध्यक्ष हेमेंद्र कोठारी के स्वामित्व में था। ये दोनों फर्म सिटीबैंक के साथ मिलकर काम करती थीं, जिसका वीबीडी के साथ भी उतना ही मजबूत संबंध था। इसी तरह, हितेन और अग्रवाल ने एक टीम के रूप में काम किया, जबकि हितेन नरोत्तम के करीबी भी थे। उन्होंने स्टैनचार्ट से सैकड़ों करोड़ रुपये नरोत्तम के कराड बैंक स्थित खाते में स्थानांतरित किए, जहां से कुछ पैसा वापस आंध्र बैंक में उनके खाते में चला गया। हर्षद और अग्रवाल ने ग्रिंडलेज़ और बैंकएम के साथ मिलकर काम किया, जिनके कोषागार संचालन का नेतृत्व नीरज बत्रा कर रहे थे। अग्रवाल का सिटीबैंक से बहुत कम संबंध था और हर्षद ने ऐसा केवल 1991-92 में किया।
जब घोटाला उजागर हुआ, तो प्रमुख मनी मार्केट ब्रोकर खेल के तीन चरणों में से एक में थे। कुछ, जैसे कि कायन, ब्रोकर बने रहना चाहते थे और सिटीबैंक के आदेशों का पालन करना चाहते थे। दूसरा समूह - हर्षद जैसे खिलाड़ी - बैंकों के साथ प्रतिस्पर्धा करने और उन्हें पछाड़कर मुख्य बैंक बनने का सपना देख रहे थे। तीसरे समूह में कोठारी और भूपेन शामिल थे, जो हाई-प्रोफाइल मर्चेंट बैंकर के रूप में उभरे थे, भूपेन ने तो वित्तीय क्षेत्र से बाहर भी अपने कारोबार का विस्तार किया था। उनके साथ मिलकर काम करने वाले बॉन्ड व्यापारी या ट्रेजरी अधिकारी थे – वे लोग जिनके हाथ में भारी मात्रा में कच्चा पैसा था। मनी मार्केट के बड़े नामों में कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज के एमके अशोक कुमार, अमेरिकन एक्सप्रेस के अतुल सूद, पहले नीरज बत्रा और फिर बैंकएम के आलोक अग्रवाल, सिटीबैंक के रमेश कुमार और स्टैनचार्ट के अरविंद लाल शामिल थे। इनमें से प्रत्येक अद्वितीय था।

अशोक कुमार लंबे, सांवले, पतले और दिखने में साधारण थे, लेकिन आम सहमति से, एक असाधारण व्यापारी थे। कैनफिना के कार्यकारी निदेशक के रूप में, उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों द्वारा जारी किए गए हजारों करोड़ के बॉन्ड खरीदे, जिसका एक हिस्सा केनरा बैंक को जमा बढ़ाने में मदद करने के लिए था। वे इक्विटी में भी एक साहसी व्यापारी थे, जिनका झुकाव स्पष्ट रूप से सिटीबैंक और सी मैकर्टिच की ओर था। नीरज बत्रा छोटे कद के, मोटे और शांत स्वभाव के थे, और उन्हें यह स्पष्ट रूप से पता था कि कब और कैसे सीमा रेखा खींचनी है – एक व्यापारी के लिए यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण गुण है। उनमें जटिल उत्पाद तैयार करने की प्रबल इच्छा थी, जो उन्हें हर्षद के समान बनाती थी। जब अतुल सूद बैंकएम के लिए काम कर रहे थे, तब उनकी उम्र तीस साल से भी कम थी। उनकी कम उम्र और लगातार गाली-गलौज करने की आदत के कारण उन्हें "शरारती बच्चा" कहा जाता था।
अतुल सूद आकर्षक व्यक्तित्व वाले, थोड़े अहंकारी और बेहद सतर्क थे। वे सबके साथ लेन-देन करते थे, खासकर कायन के लिए रूटिंग बैंक के रूप में। अरविंद लाल एक लापरवाह डीलर निकले, लेकिन घोटाले के उजागर होने से कुछ महीने पहले ही उनके अपने बैंक ने उन्हें बहुत कुशल माना था। विष्णु देउस्कर मनी मार्केट में सबसे शांत स्वभाव के व्यक्ति थे, जिन्हें अपने चालाक जूनियर्स द्वारा उन सौदों का श्रेय लेने में कोई आपत्ति नहीं थी, जिन्हें पूरा करने में उन्होंने शायद मदद की हो। रमेश कुमार, चालाक और बेहद होशियार, मनी मार्केट की जटिल शब्दावली में तेजी से और आक्रामक तरीके से बात करते थे, जिसे समझना मुश्किल था। एक ब्रोकर उनके बारे में कहता है: "हालांकि वे आम तौर पर काफी समझदार और विनम्र थे, लेकिन एक तरह के ब्रोकर्स से उन्हें सख्त नफरत थी: हेमेंद्र

कोठारी, अजय कायन और उत्सव पारेख के अलावा बाकी ब्रोकर्स। उनके और मनी मार्केट के अन्य युवाओं के लिए, ब्रोकर्स को वफादार कुत्तों की तरह माना जाना चाहिए।"
संक्षेप में, यह मनी मार्केट ब्रोकरों और ट्रेजरी डीलरों की दुनिया थी – एक ऐसी दुनिया जो आम जनता की नजरों से छिपी हुई थी। वह व्यापक क्षेत्र जहाँ आम जनता इन खिलाड़ियों को पूरी तरह से देख सकती थी, वह था इक्विटी बाजार, जहाँ भारी मुनाफा लगभग सुनिश्चित था, खासकर 1987 के बाद, जब सार्वजनिक क्षेत्र के म्यूचुअल फंडों का उदय हुआ। उसके बाद के पाँच वर्षों में, म्यूचुअल फंडों को निवेश के रूप में इस्तेमाल करते हुए, स्टॉकब्रोकर भारत के सबसे धनी समुदायों में से एक बनकर उभरे। यह बात दलाल स्ट्रीट पर स्पष्ट नहीं थी, जहाँ आधुनिक अट्ठाईस मंजिला जीजीभॉय टावर्स स्थित है। वहाँ, घोटाले से पहले के वर्षों में, धन ने तेजी से बदलाव लाकर कई अभूतपूर्व विसंगतियों को जन्म दिया। इसका एक ज्वलंत प्रतीक स्टॉक एक्सचेंज के बगल में खड़ी जर्जर इमारतें थीं। बदबूदार, नम और अंधेरी, उनकी जर्जर लकड़ी की सीढ़ियाँ केवल विभिन्न कार्यालयों की फ्लोरोसेंट लाइटों से रोशन थीं। लेकिन उनकी यह स्थिति बेहद भ्रामक थी, क्योंकि ये देश की सबसे महंगी संपत्तियों में से कुछ थीं। दरअसल, मैनहट्टन या लंदन में किसी कार्यालय से उनका खर्च कम नहीं था।
ऐसी ही एक इमारत, कामा बिल्डिंग, वीबीडी समेत दलालों के कार्यालयों से भरी पड़ी थी। इस जर्जर इमारत में स्थित जीतू श्रॉफ का कार्यालय सफेद लैमिनेट, क्रोम और कांच से सजा एक आलीशान नखलिस्तान जैसा था। उनके अपने केबिन में विभिन्न देवी- देवताओं की कम से कम एक दर्जन तस्वीरें और उनके गुरु अन्ना

सरदेशपांडे की कई तस्वीरें थीं। तस्वीरों के लगभग बराबर ही टेलीफोन थे। ये एक दलाल की जीवनरेखाएँ थीं और उन दिनों समृद्धि के पहले प्रतीक माने जाते थे। हर सफल दलाल, जिसने अपने कार्यालय के कुछ नंबरों से शुरुआत की थी, अंततः कम से कम एक दर्जन टेलीफोन का मालिक बन जाता था। कलकत्ता, मद्रास, अहमदाबाद या दिल्ली में दलालों के कार्यालयों के लिए टेलेक्स लाइन दूसरी सबसे महत्वपूर्ण चीज़ थी। समृद्धि सूचकांक में अगला स्थान फैक्स मशीनों का था और निश्चित रूप से, कंप्यूटरों का, जो धीरे-धीरे लाल कपड़े में लिपटी हुई चॉपड़ी या बहीखातों की जगह ले रहे थे। समृद्धि का सबसे बड़ा प्रतीक दलाल स्ट्रीट के आसपास या अपेक्षाकृत सस्ते, लेकिन फिर भी बेहद महंगे नरीमन प्वाइंट में कार्यालय खरीदना था। ऐसी खबरें थीं कि हर्षद ने वहां की एक इमारत, "मेकर चैंबर V", को "मेहता भवन" में बदलने की योजना बनाई थी। 1991 में शेयर बाजार में तेजी के चरम पर, वहां कार्यालय की जगह 12,000 रुपये प्रति वर्ग फुट के भाव से बिक रही थी।
जो बात सबसे कम दिखाई देती थी, वह थी ब्रोकरों की बेमिसाल निजी संपत्ति। हर्षद ने आकर इस चलन को तोड़ दिया। वह पहले स्टॉकब्रोकर थे जिन्होंने खुलेआम अपनी संपत्ति का प्रदर्शन किया। उन्होंने अपने चार भाइयों और उनकी पत्नियों के परिवार को मुंबई के बाहरी इलाके में एक छोटे से फ्लैट से वर्ली सी फेस स्थित 15,000 वर्ग फुट के एक आलीशान अपार्टमेंट में स्थानांतरित कर दिया, जिसमें एक टेरेस गार्डन भी था। अन्य ब्रोकरों ने खेत और नए घर खरीदे। कुछ के गुप्त ठिकानों में नंबर वाले खाते थे। कुछ बुल ऑपरेटर सस्ते में ऋण लेने के लिए विदेशी बाजारों की भी तलाश कर रहे थे।

बुल में सबसे आगे हर्षद और पल्लव शेठ थे, जो 90 के दशक का प्रतिनिधित्व करते थे। शेठ बेहद सहज, मिलनसार, जनसंपर्क में माहिर और अपने कौशल पर आश्वस्त थे। गोल-मटोल और हंसमुख स्वभाव के शेठ ने आईटीसी के शेयरों में हेराफेरी करके करोड़ों कमाए। शेठ का करियर इस बात का प्रमाण था कि दलालों की दौलत दलाली से नहीं, बल्कि कॉरपोरेट वित्त को शेयर बाजार में लगाने और म्यूचुअल फंड को निरंतर आय का स्रोत बनाने की उनकी कुशलता से आती है।
शेयर बाजार तक ही सीमित रहने वाले शेठ, श्रेणिक झावेरी की फर्म के माध्यम से काम करते थे। एक साल के भीतर ही उन्होंने बीएसई में अपना खाता खोल लिया, बैंगलोर स्टॉक एक्सचेंज में एक और खाता खुलवाने में मदद की और कुछ और खाते खरीदने के लिए पर्याप्त धन बचा लिया। इसी दौरान उन्होंने एक काली बीएमडब्ल्यू, एक ग्रे मर्सिडीज बेंज और एक होंडा भी खरीदी।
1987-92 के बीच, मनी मार्केट ब्रोकर भी धीरे-धीरे बदल रहे थे। अधिकांश ब्रोकिंग हाउसों में दूसरी पीढ़ी के दलाल अधिक शिक्षित और परिष्कृत थे। कुछ के पास विदेशी डिग्रियां थीं और उन्होंने मर्चेंट बैंकों या उद्योग में काम किया था। वे पूर्ण विकसित बॉन्ड व्यापारी बनने का सपना देखते थे, अपने खाते से खरीद-फरोख्त करने का। वे बैंकों के समान स्थिति में आना चाहते थे, जिनके लिए वे एजेंट के रूप में काम कर रहे थे।
एक एजेंट मूल रूप से एक संदेशवाहक होता है। वह बैंकों की ओर से प्रतिभूतियों की खरीद-फरोख्त करता है और मामूली कमीशन वसूलता है। स्वयं व्यापारी बनने का अर्थ था जोखिम उठाना, अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण, मुद्रास्फीति, ब्याज दरों में संभावित परिवर्तन आदि जैसे कारकों पर जानकारी और शोध के आधार पर अपना पैसा लगाना।

पंजाब नेशनल बैंक। उन्होंने उधार लेने वाले बैंकों की जरूरतों को पूरा करने के लिए बाज़ार उपकरणों के संयोजन को स्विच करने, स्वैप करने, संरचित करने और पैकेज करने के कौशल विकसित किए। स्थिर और सुस्त सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के विपरीत, उन्होंने अपने फंड को अवरुद्ध करने से परहेज किया और अधिकतम लाभ के लिए धन का निवेश किया।
विदेशी बैंक, विशेषकर सिटीबैंक, इस खेल में माहिर थे। ए.एस. थियागराजन, जो 1978 में सिटीबैंक में आए थे, कैनरा बैंक और उससे पहले सिंडिकेट बैंक में काम कर चुके सर्वश्रेष्ठ व्यापारियों में से एक थे। उन्होंने सिटीबैंक को मुद्रा बाजारों में अग्रणी खिलाड़ी बना दिया। वे उन पहले लोगों में से थे जिन्होंने यह समझा कि प्रतिभूतियों और धन की चतुराई से अदला-बदली, साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में अपने समकक्षों की अज्ञानता का फायदा उठाकर भारी मुनाफा कमाया जा सकता है। बाद में, सिटीबैंक के पसंदीदा कार्टेल का हिस्सा न रहे दलालों द्वारा सलाह दिए जाने वाले ये बैंक भी समझदार हो गए और विदेशी बैंकों का अनुकरण करने लगे। सिटीबैंक दलालों द्वारा पोजीशन लेने के विचार को नापसंद करता था क्योंकि इससे वे मुद्रा बाजारों में उसके आसान मुनाफे में प्रतिस्पर्धी बन जाते थे।
इन दलालों की छाया में, गैर-व्यापारिक बैंक तेजी से निष्क्रिय दलालों की तरह दिखने लगे। भूमिकाएँ उलट गईं। ब्रोकरों के पास वह विशेषज्ञता, जानकारी और समझ थी जिसकी बराबरी कुछ ही बैंक कर सकते थे। हर्षद के भाई अश्विन ने कहा, “हम मुख्य व्यक्ति बन गए थे जबकि बैंक ब्रोकर की भूमिका निभा रहे थे। बैंक तय करते थे कि वे कितना ब्रोकरेज देंगे। हम उन्हें चिढ़ाने के लिए पूछते थे

कि हमारे द्वारा उनके लिए किए गए सौदों पर वे कितना ब्रोकरेज लेंगे।”
ब्रोकरों के अपने कॉर्पोरेट ग्राहक थे। जिन बैंकरों के लिए इतनी नकदी जुटाना असंभव था, वे अंततः ब्रोकरों के लिए दलाली करने लगे। दो साल में, BR का मतलब ब्रोकर्स रिसीट्स हो जाता। फेयरग्रोथ पहले से ही इसी तरह की एक चीज़ का इस्तेमाल कर रहा था
- सिक्योरिटीज रिसीट्स। सिंडिकेट बैंक, नरीमन प्वाइंट शाखा को पोर्टफोलियो ग्राहकों से 203 करोड़ रुपये मिले और पूरी राशि एक ही ब्रोकर, किशोर नरोत्तमदास अमरचंद के माध्यम से भेजी गई, जिसने बदले में इसे फेयरग्रोथ फाइनेंशियल और फेयरग्रोथ इन्वेस्टमेंट्स को दे दिया। ब्रोकर पीएमएस खाते पर सभी निर्णय ले रहा था और वस्तुतः योजना का संचालन कर रहा था।
लेकिन फिर भी एक महत्वपूर्ण अंतर था। बैंकों के पास पूंजी थी। ब्रोकरों के पास नहीं थी। ब्रोकर सार्वजनिक नहीं हो सकते थे, उधार नहीं ले सकते थे और यहां तक कि डिबेंचर भी जारी नहीं कर सकते थे। दूसरी ओर, बहुत कम नेट वर्थ वाली कंपनियां पूंजी बाजार से धन जुटा सकती थीं। धन जुटाने में असमर्थ होने के कारण, इन ब्रोकरों को खुद को वित्तपोषित करने के लिए तरीके खोजने पड़े। बाजार में बराबरी लाने के लिए पूंजी की यह खोज हर्षद के प्रतिभूति बाजार के कारनामों को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।
लेकिन इस पर बाद में चर्चा करेंगे।
ब्रोकर अकेले भारी मात्रा में ट्रेडिंग नहीं कर सकते थे।
सिस्टम इसकी अनुमति नहीं देता था। इसलिए, वर्षों से मुद्रा बाजारों में ब्रोकरों का बैंकों के साथ दोहरा संबंध रहा है।
कुछ सौदों में वे केवल ब्रोकर थे, जबकि अन्य में वे ग्राहक की भूमिका निभाते थे। पहली भूमिका में, वे ब्रोकरेज अर्जित करने

वाले एजेंट के रूप में कार्य करते थे। दूसरी भूमिका में, बैंक इन ब्रोकर-ग्राहकों के एजेंट के रूप में कार्य करते थे और सौदों को आगे बढ़ाने और चेक जारी करने के लिए शुल्क लेते थे। इसे रूटिंग कहा जाता था। कभी-कभी बैंक ब्रोकर के चालू खाते में पूरे सौदे के बराबर कमीशन भी वसूलते थे। अन्य मामलों में, रूटिंग बैंक ने बैंक के खाते में हुए लेन-देन की ज़िम्मेदारी ली और अपना शुल्क काटने के बाद, अंतर की राशि ब्रोकर के खाते से डेबिट/क्रेडिट कर दी। रूटिंग से ब्रोकर को अपने सौदों को बैंक सौदे का दर्जा देने में मदद मिली। इसके बाद वह एक पोजीशन ले सकता था और सीधे अन्य बैंकों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकता था। ब्रोकर बैंकों के लिए भी बहुत उपयोगी थे। सरकार (सही ही) चाहती थी कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक प्रतिस्पर्धा करें और लाभ कमाएँ क्योंकि वे दिवालिया होने के कगार पर थे। हालाँकि, सरकार (गलत ही) चाहती थी कि वे उसी जर्जर बुनियादी ढांचे और कौशल के साथ और बंधे हुए हाथों से तुरंत परिणाम दें। बैंकों के बही- खातों में भारी मात्रा में खराब ऋण थे, इसलिए उन्होंने ट्रेजरी को त्वरित लाभ कमाने का एकमात्र रास्ता समझा। उन्होंने अपने सहयोगियों, यानी ब्रोकरों की ओर रुख किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि बीमार और दिवालिया हो चुके यूनाइटेड कमर्शियल बैंक के अध्यक्ष के. मार्गबंथु, जो बैंक को पुनर्जीवित करने के लिए उत्सुक थे, हर्षद के साथ घनिष्ठ संबंध रखते थे।
नरसिम्हा राव सरकार के सरकारी आदेशों के बजाय बाज़ार-आधारित प्रणाली की ओर बढ़ने के साथ ही दलालों की भूमिका और भी बढ़ गई। इसका मतलब यह था कि आईडीबीआई और आईसीआईसीआई जैसे स्थिर विकासात्मक वित्तीय संस्थान, जिन्हें पहले आसानी से पैसा दिया जाता था, अब बाज़ार में दलालों और व्यापारी बैंकों को बुलाकर धन

जुटाने के सर्वोत्तम तरीकों पर प्रस्तुतियाँ मांग रहे थे।
उदाहरण के लिए, आईडीबीआई की नीति खुली थी। कोई भी प्रस्तुति दे सकता था। यदि प्रस्तुति अधिकारियों को पसंद आती, तो उसे मंज़ूरी मिल जाती थी।
यहाँ तक कि सार्वजनिक क्षेत्र भी अब पवित्र नहीं रह गया था। उनके शेयर भी सबके लिए उपलब्ध थे। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के शेयरों का पहला बैच दिसंबर 1991 में बेचा गया, शुरुआत में यूटीआई, बैंकों और बीमा कंपनियों जैसे सरकारी स्वामित्व वाले संस्थानों को। इन शेयरों को सूचीबद्ध करके जनता को पेश किए जाने में बस कुछ ही समय बाकी था। कॉर्पोरेट बॉन्ड पर ब्याज दरें मुक्त कर दी गईं और सरकारी प्रतिभूतियों पर कूपन दरें बढ़ा दी गईं, जिससे मुद्रा बाज़ार में भारी उथल-पुथल मच गई। वित्तीय जगत के लिए वे उत्साह के दिन थे। जोखिम लेने की प्रवृत्ति में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। ब्रोकर और बैंकरों को पूरा विश्वास था कि उनका बाज़ार, जो भरोसे पर आधारित था, भले ही कई मायनों में दोषपूर्ण था, फिर भी ठीक चल रहा था। 10 करोड़ रुपये तक का निवेश करने या 4-5 करोड़ रुपये तक के स्पॉट फाइनेंस के लिए एक-दूसरे की मदद करने में किसी ने कोई आपत्ति नहीं जताई।
इक्विटी ब्रोकर भी कम नवोन्मेषी नहीं थे। वे अपने कॉर्पोरेट ग्राहकों के लिए निवेश सलाहकार बन गए थे और कंपनी की आय बढ़ाने के लिए अतिरिक्त नकदी का चतुराई से उपयोग करने में उनकी मदद करते थे। यह उन पुराने दिनों से एक बड़ा बदलाव था जब ब्रोकर उद्योगपतियों के इशारों पर चलते थे, या तो गुप्त रूप से शेयर बेचते थे या कीमतों में हेरफेर करते थे।

यदि ब्रोकर परिवर्तन के दौर से गुजर रहे थे, तो कई अन्य संस्थान भी, जहां वित्त अधिकारियों ने महसूस किया कि बॉन्ड पोर्टफोलियो में फेरबदल करके वे अपनी आय बढ़ा सकते हैं। मूल रूप से, बैंक एक ही बाजार में प्रचलित कई ब्याज दरों का लाभ उठा सकते थे, कम ब्याज दर पर उधार लेकर अधिक ब्याज दर पर निवेश कर सकते थे।
इस प्रकार, 1991 की शुरुआत तक, रूप और सार दोनों में, वॉल स्ट्रीट की भावना साकार हो चुकी थी। जोखिम भरे व्यापार करके भारी मुनाफा कमाना और यहां तक कि बड़ी रकम का कुछ हिस्सा अपनी जेब में डालना भी संभव था। यह ऐसा था मानो कोई रातोंरात एक सफल उद्यमी बन जाए, ऐसे क्षेत्र में जो अभी भी राज्य द्वारा नियंत्रित और विनियमित था। इस घटना का एक उदाहरण प्राइम सिक्योरिटीज था, जो अपने समय से आगे था और भविष्य की दिशा तय करता था। इसकी स्थापना रवि शेठ ने की थी, जो ग्रेट ईस्टर्न शिपिंग को नियंत्रित करने वाले शेठ परिवार के एक युवा सदस्य थे। शेठ परिवार, विशेष रूप से रवि के चाचा स्वर्गीय वसंत शेठ, में व्यापार की अद्भुत समझ थी। वे जहाजों से लेकर शेयरों तक, कभी-कभी गोपनीय जानकारी के आधार पर भी व्यापार करते थे।
उनके भतीजे, 31 वर्षीय रवि शेठ, एक ऐसे व्यवसाय में बड़ी महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित थे, जिसमें केवल बुद्धि और कुछ फोन लाइनों की आवश्यकता थी। उन्होंने ग्रेट ईस्टर्न शिपिंग से प्राप्त 1.3 करोड़ रुपये के एसेट पोर्टफोलियो के साथ प्राइम की शुरुआत की। इसका नेतृत्व करने के लिए, रवि ने बैंकएम के वित्त प्रमुख नीरज बत्रा को अपने साथ मिला लिया, जिनके साथ उनके सहयोगी रवि मेहरोत्रा, शिव कुमार और नितिन कटारिया भी चले गए। जून 1992 में, बत्रा ने सिटीबैंक के एन जय कुमार को, जो लगभग पैंतीस वर्ष के एक जुझारू मर्चेंट बैंकर थे, प्राइम में शामिल

होने के लिए राजी कर लिया। उन्हें कथित तौर पर 25 लाख रुपये का साइन-ऑन बोनस दिया गया, जो उस समय एक बहुत बड़ी रकम थी।
प्राइम सिक्योरिटीज जल्द ही अपने मुनाफे और बड़े बोनस पूल की वजह से चर्चा का विषय बन गई, जिससे इसकी मुख्य टीम रातोंरात अमीर हो गई। 1990-91 में, कुछ ही महीनों के संचालन के बाद, प्राइम ने कर-पश्चात 2.23 करोड़ रुपये का मुनाफा कमाया। 1991-92 में, जब मुद्रा बाजार में उथल-पुथल मची और शेयर बाजार में तेजी आई, तो हर्षद के साथ अपने घनिष्ठ संबंधों के कारण बत्रा ने शेयर बाजार में भारी मुनाफा कमाया और मुद्रा बाजार में भी पर्याप्त लाभ अर्जित किया। अपने चरम पर, प्राइम केवल यूनिटों में ही एक करोड़ रुपये से अधिक का दैनिक कारोबार कर रही थी। वर्ष के अंत में, प्राइम ने 9 करोड़ रुपये का जबरदस्त मुनाफा दर्ज किया। और फिर बोनस पूल पर ध्यान देने का समय आ गया। प्राइम कंपनी में एक टीम बोनस प्रणाली थी जिसके तहत सभी खर्चों को घटाने के बाद आय का 40% हिस्सा काट लिया जाता था। यह बोनस एक पूर्व-निर्धारित अनुपात में तभी मिलता था जब टीम लाभ की एक निश्चित सीमा को पार कर लेती थी।
इस तरह गणना करने पर, बत्रा को चौंका देने वाला बोनस मिला:
2.5 करोड़ रुपये, जिसमें से एक करोड़ रुपये आयकर के रूप में स्रोत पर ही कट जाते थे। यह एक वर्ष में इतनी बड़ी रकम थी जितनी उन दिनों अधिकांश अधिकारी जीवन भर में कमाते थे। सिटीबैंक में बत्रा के खाते में (विडंबना यह है कि बत्रा ने हर्षद के साथ मिलकर मुद्रा बाजार में सिटीबैंक के एकाधिकार को तोड़ा था) लगभग एक करोड़ रुपये पड़े रहते थे, जो उनके निवेश के निर्णय का इंतजार कर रहे होते थे।

इन भारी-भरकम बोनस ने बाज़ार के खिलाड़ियों को निस्संदेह प्रेरित किया। लेकिन डीलरों द्वारा अत्यधिक अंधाधुंध ट्रेडिंग भी खूब हुई। लता श्रीराम इस क्षेत्र में कुछ गिनी-चुनी महिला बॉन्ड ट्रेडरों में से एक थीं। वह डीबी फाइनेंस की मुख्य ट्रेडर थीं - यह एक वित्तीय कंपनी थी जिसे ड्यूश बैंक और ब्रुक बॉन्ड ने मिलकर शुरू किया था। बैंक और यूनिलीवर कंपनियों (जिनमें ब्रुक बॉन्ड भी शामिल था) के कर्मचारियों के पास डीबीएफ की 26% पूंजी थी। डीबीएफ की स्थापना इस उम्मीद में की गई थी कि वित्तीय क्षेत्र का उदारीकरण होगा।

हालांकि डीबीएफ एक अलग कानूनी इकाई थी, लेकिन इस पर ड्यूश बैंक का पूर्ण नियंत्रण था और कर्मचारी नए कारोबार के लिए संयुक्त मार्केटिंग कॉल भी करते थे। 1991 की भीषण उथल-पुथल में, श्रीराम, जिनके व्यापक संपर्क थे, को यह स्थिति अपने लिए बिल्कुल अनुकूल लगी। उनके पति अमेरिकन एक्सप्रेस में थे, उनके ससुर एसबीआई म्यूचुअल फंड में थे और उनके पिता वित्त मंत्रालय में सचिव थे। वह स्वयं ग्रिंडलेज़ की पूर्व कर्मचारी थीं, जो संयोगवश उनके बारे में अच्छी राय नहीं रखती थी। एक म्यूचुअल फंड कंपनी उन्हें नियुक्त करना चाहती थी, लेकिन ग्रिंडलेज़ के एक अधिकारी ने उन्हें ऐसा न करने की सलाह दी।

श्रीराम बढ़ती कीमतों के भंवर में फंस गए थे और उन्हें लगभग पक्का पता था कि यूटीआई या तो अपना लाभांश काफी बढ़ाएगी या यूनिटों को शुद्ध परिसंपत्ति मूल्य से जोड़ देगी। अगर यूटीआई ऐसा करती, तो यूनिटों की कीमत 15 रुपये से बढ़कर 30 रुपये हो जाती – जो यूटीआई द्वारा आंतरिक रूप से गणना किया गया वास्तविक

शुद्ध परिसंपत्ति मूल्य था। कई अन्य बॉन्ड डीलरों की तरह, लता भी रिकॉर्ड मुनाफे के सपने में खो गई थीं। यूनिटों में उनकी अग्रिम खरीद लगातार बढ़ती गई, यहाँ तक कि डीबीएफ, जिसकी पूंजी एक करोड़ रुपये थी, का यूनिटों में 1000 करोड़ रुपये का निवेश हो गया, जिसमें से कुछ जुलाई 1992 के लिए और बाकी अगले वर्ष के लिए था। लेकिन लाभांश में कभी ज्यादा वृद्धि नहीं हुई और यूनिट की कीमत शुद्ध परिसंपत्ति मूल्य से नहीं जुड़ी। लता का अनुमान गलत साबित हुआ।

डीबीएफ ने जुलाई 1992 में 600 करोड़ रुपये के शेयर खरीदने की पहली प्रतिबद्धता स्वीकार की, लेकिन 1993 के लिए 400 करोड़ रुपये की दूसरी प्रतिबद्धता को मानने से इनकार कर दिया। घोटाला सामने आने के तुरंत बाद श्रीराम ने इस्तीफा दे दिया और उनकी प्रतिबद्धताओं के कारण बैंक को मात्र एक करोड़ रुपये की इक्विटी पर कम से कम 20 करोड़ रुपये का नुकसान उठाना पड़ा। डीबीएफ और ड्यूश बैंक दोनों ने ऐसा दिखाया जैसे यह भयावह घटना कभी हुई ही नहीं। यहां तक कि जब प्रेस के सामने बैंक की स्थिति स्पष्ट करना अनिवार्य हो गया, तब भी जर्मन मुख्य कार्यकारी अधिकारी एच.जे. फ्रेजर ने चुप्पी साधे रखी।

श्रीराम का मामला अति-व्यापार का अकेला मामला नहीं था। अरविंद लाल, जिनकी उम्र तीस वर्ष से कम थी और जो सादा जीवन जीते थे, शाकाहारी थे, शराब नहीं पीते थे और धूम्रपान नहीं करते थे, उन्होंने संदिग्ध दलालों के माध्यम से हजारों करोड़ रुपये का लापरवाही से लेन-देन किया, बिना उचित दस्तावेजों के और कराड बैंक और मेट्रो बैंक जैसे अपेक्षाकृत अज्ञात बैंकों में चौंका

देने वाले बड़े जोखिम उठाए। विडंबना यह है कि लाल को स्टैनचार्ट के कोषागार में सबसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों में गिना जाता था और स्टैनचार्ट के MESA क्षेत्र (मध्य पूर्व, दक्षिण एशिया) में सर्वश्रेष्ठ व्यापारी के रूप में उनका नाम लिया जाता था। बाद में पता चला कि ब्रोकर हितेन दलाल ही इस विभाग को चला रहे थे।

ये सभी खिलाड़ी चाहे कितने भी कुशल, उद्यमी या लापरवाह क्यों न हों – अशोक कुमार जैसे डीलर, हर्षद या शेठ जैसे ब्रोकर और सिटीबैंक जैसे ट्रेडिंग बैंक – इन सभी को अपने निवेश के लिए एक उपजाऊ ज़मीन की ज़रूरत थी। वह ज़मीन वित्त मंत्रालय के नौकरशाहों, आरबीआई के सुस्त वरिष्ठ अधिकारियों और लगातार आने वाले वित्त मंत्रियों द्वारा बनाई गई वित्तीय प्रणाली थी। निष्क्रिय भागीदार के रूप में वे बेईमान ब्रोकरों, लापरवाह व्यापारियों और लालची बैंकरों से कम महत्वपूर्ण नहीं थे।
3
लालच का सिद्धांत

यह घोटाला केवल व्यक्तियों तक सीमित नहीं था। इसमें हर कोई शामिल था, जैसे गिद्ध एक सड़ी हुई लाश को कुतर रहे हों।

यह घोटाला अपरिहार्य था। अंततः जो एक विशाल प्रतिभूति घोटाला बनकर उभरा, वह एक लड़खड़ाती बैंकिंग प्रणाली की सतह के ठीक नीचे पनप रहे छोटे-छोटे घावों का एक समूह था। ये घाव दो दशकों से कागज़ पर अत्यधिक विनियमन, व्यवहार में नियंत्रण की कमी, जर्जर बुनियादी ढांचे और आरबीआई की उन भ्रामक नीतियों के कारण पैदा

हुए थे, जिन्होंने बाज़ार की वास्तविकता को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। वह बैंकिंग प्रणाली, जो अभी भी कायम है, इतनी दोषपूर्ण थी कि हर्षद ने अपने कुकर्म का यह सटीक औचित्य दिया: "मैं इस प्रणाली का हिस्सा हूँ।"

यह प्रणाली अद्वितीय थी। एक ऐसे व्यवसाय की कल्पना कीजिए जहाँ सरकार यह निर्धारित करती है कि आप अपने कच्चे माल के लिए क्या कीमत चुकाते हैं (जमा पर दिया जाने वाला ब्याज), विक्रय मूल्य (अर्जित ब्याज) और किसे बेचते हैं - एक ऐसा व्यवसाय जो 53.5% विफलता का कारण है। 1992-93 के बजट तक, जमा का 38.5% हिस्सा वैधानिक तरलता अनुपात में चला गया, जो सरकार और उसकी विभिन्न एजेंसियों द्वारा जारी किए गए कम ब्याज वाले बांडों की जबरन सदस्यता के रूप में था। अन्य 25% नकदी आरक्षित अनुपात में जमा हो जाता था, जिसमें नकद और अन्य कम ब्याज वाले अल्पकालिक प्रतिभूतियां जैसे ट्रेजरी बिल शामिल थे। आप एकत्रित नकदी का केवल 36.5% ही उपयोग करने के लिए स्वतंत्र थे, और वह भी "प्राथमिकता क्षेत्र" और राजनीतिक ऋण में ही खर्च होता था।

ज़रा सोचिए कि यद्यपि आपके हाथ इतने बंधे हुए हैं, फिर भी मुख्य बैंकिंग प्रणाली के बाहर के धन पर अलग-अलग लागत और प्रतिफल मिलते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आप कोई कंपनी चलाते हैं और आपके पास कुछ अतिरिक्त नकदी है, तो आप शेयरों की खरीद-बिक्री को वित्तपोषित कर सकते हैं और प्रति वर्ष 40% से अधिक लाभ कमा सकते हैं। इस प्रकार, वित्तीय क्षेत्र के विभिन्न खंड अलग-अलग प्रतिफल दरें प्रदान करते थे; वाणिज्यिक बैंकिंग सबसे कम प्रतिफल दरों में से एक प्रदान करती थी। यह विडंबनापूर्ण था

क्योंकि बैंक लगभग 70% धन प्रवाह को नियंत्रित करते थे, जबकि बीमा कंपनियां, कॉरपोरेट क्षेत्र और म्यूचुअल फंड शेष राशि को नियंत्रित करते थे।

हालांकि वित्तीय प्रणाली के हाशिये पर स्थित कुछ क्षेत्रों में प्रतिफल की दरें अधिक थीं और विशाल मध्य वर्ग में सबसे कम थीं, फिर भी कठोर ऋण मापदंडों और नियंत्रित ब्याज दरों के कारण धन का कम प्रतिफल वाले क्षेत्र से उच्च प्रतिफल वाले क्षेत्र में स्वतंत्र प्रवाह (जिसे आर्बिट्रेज कहा जाता है) संभव नहीं था। लेकिन लगातार वित्त मंत्रियों और आरबीआई गवर्नरों (जिनमें मनमोहन सिंह भी शामिल हैं, जिन्होंने दोनों पदों पर कार्य किया है) ने एक सरल तथ्य को स्वीकार नहीं किया: धन का प्रवाह अनियंत्रित है। यदि ब्रोकरों को बैंक ऋण से वंचित कर दिया जाए, जबकि शेयर बाजार 40% प्रति वर्ष ब्याज दर प्रदान करते हैं, सरकारी प्रतिभूतियों पर 12.5% और कॉर्पोरेट ऋण पर 21% ब्याज दर मिलती है, तो धन ब्रोकरों के खातों में जाने का रास्ता खोज ही लेगा। यह अवैध होगा, लेकिन व्यावसायिक रूप से समझ में आता है। शिक्षाविदों ने तो इसे एक नाम भी दिया है: नियामक आर्बिट्रेज।

200,000 करोड़ रुपये मूल्य की प्रतिभूतियों के लिए उचित बाजार के अभाव ने आर्बिट्रेज को सुगम बना दिया! शेयर बाज़ारों के विपरीत, जहाँ इक्विटी का खुले तौर पर सार्वजनिक रूप से उद्धृत मूल्यों पर कारोबार होता है, वहाँ कोई उचित मुद्रा बाज़ार नहीं था – जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र के बांड, डिबेंचर और गिल्ट्स को खुले तौर पर उद्धृत और कारोबार किया जा सके। यह कैंट्रिपल जैसी नई म्यूचुअल फंड इकाइयों पर भी लागू होता था, जिन पर सट्टेबाजी

बहुत तीव्र थी। आरबीआई केवल कुछ केंद्रीय ऋणों के लिए खरीद और बिक्री के भाव घोषित करता था और खुले बाज़ार में प्रतिभूतियों का कभी भी शुद्ध खरीदार नहीं रहा था। इस एकतरफा नीति ने सुनिश्चित किया कि कीमतें कभी भी बाज़ार उन्मुख नहीं थीं।

इससे बांड व्यापार में व्यापक हेरफेर को बढ़ावा मिला। बैंक और दलाल कृत्रिम दरें उद्धृत कर सकते थे और भारी मुनाफा कमा सकते थे, आमतौर पर छोटे राष्ट्रीयकृत बैंकों की कीमत पर। मुद्रा बाज़ारों में आरबीआई की भागीदारी एक सुधारात्मक तंत्र हो सकती थी। दुर्भाग्य से, कई प्रमुख केंद्रीय बैंकों के विपरीत, इसकी भूमिका केंद्रीय ऋणों के जारी होने के साथ ही समाप्त हो गई। आरबीआई ने डिस्काउंट एंड फाइनेंस हाउस ऑफ इंडिया को

प्रतिभूति सौदों में दलाली करने के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयास किया और 1 अप्रैल 1992 को बड़े धूमधाम से एक सुरक्षा विंडो खोली। लेकिन हर्षद द्वारा 11.5% सरकारी ऋण की बड़े पैमाने पर खरीद में डीएफएचआई अनजाने में मध्यस्थ बन गया और एक महीने से भी कम समय में यह सौदा सिर्फ एक दिखावा बनकर रह गया।

मुद्रा बाजारों में, अपरिहार्य गिरावट के पहले संकेत 1980 के दशक के मध्य में दिखाई दिए। तथाकथित सामाजिक बैंकिंग के एक दशक से अधिक समय के बाद, बैंक खुद को एसएलआर को बनाए रखने के लिए किए गए निवेशों के बोझ तले दबा हुआ पा रहे थे। ये निवेश केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा जारी किए गए कम ब्याज वाले ऋणों में थे, जो सरकार की नकदी की बढ़ती भूख को पूरा करते थे।

बैंकों का इरादा इन कम ब्याज वाले सरकारी बॉन्डों को परिपक्वता तक रखने का था। लेकिन हर बार जब नए ऋणों का एक सेट थोड़ी अधिक ब्याज दर (जिसे कूपन दर कहा जाता है) के साथ आता था, तो पुरानी प्रतिभूतियों का बाजार मूल्य गिर जाता था। बैंकों ने घाटा दर्ज करना शुरू कर दिया, जिससे उनकी लाभप्रदता कम हो गई। इसलिए, 1985 में, एक मूर्खतापूर्ण विचार (बैंकों को कम ब्याज वाली प्रतिभूतियां खरीदने के लिए मजबूर करना) को छुपाने के लिए सरकार एक और विचार लेकर आई। बैंकों को अपने बही-खातों में अपने निवेश को लागत मूल्य पर दिखाने के लिए कहा गया।

बैंक अपने बही-खातों में किसी बॉन्ड का मूल्य, मान लीजिए, 100 रुपये दिखा सकते थे, जबकि बाजार मूल्य शायद 95 रुपये था। इससे दो बातें स्पष्ट होती थीं। पहली, इसका मतलब था कि सरकारी मंजूरी के तहत 5 रुपये के नुकसान को छुपाने की कोशिश की जा रही थी। दूसरी, इससे यह भी संकेत मिलता था कि आरबीआई को इस बात की परवाह नहीं थी कि बैंकों के बही-खातों में बाजार की वास्तविकता झलकती है या नहीं। इस स्थिति में, बाजार में उन निवेशों का मूल्य 100 रुपये नहीं रह गया था। मकसद था सुविधाजनक समाधान चुनना। बाद में इन दोनों कारकों को हर क्षेत्र में एकसमान रूप से लागू किया गया। आरबीआई ने इसे अधिकृत कर दिया: अपने नुकसान को छुपाओ और बाजार की अनदेखी करो, आंशिक रूप से इसलिए क्योंकि कोई उचित बाजार मौजूद ही नहीं था। घोटाले के लिए जिम्मेदार कई कारकों में से ये दो सबसे प्रमुख थे।

बैंकों ने निवेशों के गिरते मूल्य की समस्या से निपटने के लिए एक चतुर तरीका अपनाया। उन्होंने अपनी प्रतिभूतियों को बदलना

शुरू कर दिया। वे एक शेयर 100 रुपये में बेचते थे, जिसका बाजार मूल्य लगभग 90 रुपये होता था। फिर वे 85 रुपये मूल्य का शेयर 95 रुपये में खरीदते थे। बैंकों को कोई नुकसान नहीं होता था और इस प्रक्रिया में उनका पोर्टफोलियो बाजार मूल्य के करीब रहता था। ये सौदे दलालों द्वारा, कभी-कभी सीधे उनके खातों के माध्यम से किए जाते थे। यह उन पहले संकेतों में से एक है जिनसे पता चलता है कि संस्थानों द्वारा नुकसान की भरपाई के लिए दलालों का इस्तेमाल किया जा रहा था – यह रणनीति कई विचित्र सौदों की व्याख्या करती है और इस घोटाले की जड़ में है।
आरबीआई के बाजार-विरोधी नियमों के चलते, संस्थान अक्सर गुपचुप तरीके से दलालों का इस्तेमाल अपने सहायक के रूप में कर रहे थे। उदाहरण के लिए, आरबीआई ने मिनट-दर-मिनट होने वाले अंतर-बैंक लेनदेन (कॉल मनी ट्रांजैक्शन) के लिए दलालों पर प्रतिबंध लगा रखा था। दलालों को अक्सर मदद के लिए बुलाया जाता था। कुछ मामलों में, बैंक अधिकारी सौदे करने के लिए दलालों के कार्यालयों में बैठते थे। चूंकि दलालों को इसके लिए कोई ब्रोकरेज नहीं मिलता था, इसलिए संस्थानों को इसकी भरपाई के लिए दूसरे तरीके खोजने पड़ते थे। सभी संस्थान इसके लिए "दोषी" थे। यहां तक कि आरबीआई की सहायक कंपनियां भी कॉल मनी लेनदेन के लिए दलालों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करती थीं।
जब कैनबैंक म्यूचुअल फंड शुरू हुआ, तो इसके पहले चरण के लेनदेन ग्रोमोर के कार्यालय में किए गए। कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज के बड़ी संख्या में रेडी फॉरवर्ड सौदे एक साल से अधिक समय तक ग्रोमोर के बहीखातों में 109 रुपये प्रति शेयर की दर से रखे गए थे। सिटीबैंक के पास कई तरह के उत्पाद थे, जिन्हें वह अपने दलालों को पेश करता था। कुछ निश्चित मापदंडों के तहत, वह दलालों

को सिटीबैंक के साथ साझेदारी में पोजीशन लेने का खुला अधिकार देता था। बेशक, ज्यादातर समय यह विशेषाधिकार केवल अजय कायन के पास ही होता था। दूसरी ओर, एएनजेड ग्रिंडलेज़ बैंक मेहता परिवार के काफी करीब था। अश्विन मेहता ने कहा, “हमें यह बैंक बहुत पसंद था। बैंक ऑफ अमेरिका (बैंक ऑफ अमेरिका) या सिटीबैंक की तरह वे सौदेबाजी पर आधारित बैंकिंग के बजाय संबंध-आधारित बैंकिंग में विश्वास करते थे। हम उनके प्रमुख ब्रोकरों में से एक थे और साथ ही एक प्रमुख ग्राहक भी।”
ब्रोकर चालाक बैंकों के एजेंट के रूप में भी काम कर रहे थे, अक्सर कमजोर बैंकों के खातों में प्रतिभूतियां डाल देते थे। नियमित बाजार के अभाव में, सरकारी प्रतिभूतियों का व्यापार सिटीबैंक द्वारा नियंत्रित किया जाता था, जिसके “कौशल” और तरीके स्पष्ट रूप से दिखाई देते थे। बाजार का नियम था: जब भी कोई कमजोर पक्ष मिले, उसे लूट लो। एसबीआई की कहानी इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।
डीएन घोष के एसबीआई के अध्यक्ष पद संभालने के कुछ महीनों बाद, वे कोषागार संचालन को राजस्व का एक महत्वपूर्ण स्रोत बनाना चाहते थे। घोष ने अपने सहयोगियों से कहा, “यह पूरी दुनिया में एक चलन है। हमें भी अपने कोषागार विभाग को सक्रिय करना चाहिए।” उन्होंने एसबीआई के कोषागार संचालन के लिए एक स्वर्णिम युग की शुरुआत की। ब्रोकरों को बैंक के सामने प्रस्तुतियाँ देने के लिए कहा गया, जिसमें उन्हें यह समझाना था कि बाज़ार कैसे काम करता है और कैसे कुछ विदेशी बैंक अपने पसंदीदा ब्रोकरों के माध्यम से कीमतों में हेरफेर करके अपने लिए लाभप्रद स्थितियाँ बना सकते हैं।

घोष के प्रधान सचिव सी.एल. खेमानी थे, जिन्होंने जी.जी. वैद्य (जो बाद में अध्यक्ष बने) के साथ मिलकर बैंक के पोर्टफोलियो में फेरबदल करना शुरू किया ताकि अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके। यह एक बड़ा कदम था। एसबीआई का कोषागार अर्ध-सेवानिवृत्त अधिकारियों का अड्डा था। खेमानी के कार्यभार संभालने से कुछ साल पहले, इसका नेतृत्व एक हृदय रोगी कर रहे थे; बैंक के शीर्ष प्रबंधन ने उन्हें वहाँ इसलिए तैनात किया था क्योंकि यह सबसे कम बोझिल काम था!
घोष के पदभार संभालते ही उन्होंने प्रतिभूतियों का ऑडिट कराया। उन्हें और वैद्य को यह जानकर गहरा सदमा लगा कि एसबीआई को कुछ विदेशी बैंकों और उनके वफादार ब्रोकरों के समूह द्वारा सुनियोजित तरीके से लूटा गया था। उनकी रणनीति सरल थी: एसबीआई को लंबी परिपक्वता वाली प्रतिभूतियाँ बेचना (जैसे, 1997 की परिपक्वता पर 7.5% कूपन दर) और छोटी परिपक्वता वाली प्रतिभूतियाँ खरीदना (जैसे, 1992 की परिपक्वता पर 6.75%)। एसबीआई ने इन्हें क्यों खरीदा? क्योंकि इनसे उसे बेचे गए बॉन्डों (6.75%) की तुलना में अधिक (7.5%) मौजूदा यील्ड मिली। ब्रोकरों का तर्क था कि इस सौदे से एसबीआई को अपने पोर्टफोलियो की यील्ड बढ़ाने में मदद मिली।
यील्ड बढ़ाने की यह तरकीब एक महत्वपूर्ण बिंदु को नजरअंदाज करने पर आधारित थी: प्रभावी यील्ड। खरीदने वाला बैंक सरकारी प्रतिभूति बाजार में उपलब्ध अधिकतम ब्याज देने वाले बॉन्ड को खरीदेगा। मान लीजिए कि अधिकतम ब्याज दर 11.5% है। तो, यही सभी सौदों के लिए बेंचमार्क होगा। यील्ड बढ़ाने के माध्यम से, एक बैंक को केवल 7.5% नहीं, बल्कि 11.5% अर्जित करने में सक्षम होना चाहिए। वह ऐसा उसी 7.5% बॉन्ड को कम कीमत पर खरीदकर कर

सकता है ताकि उसकी प्रभावी कमाई 11.5% हो जाए। एक मुक्त बाजार में, व्यापारी, प्रभावी यील्ड द्वारा निर्देशित होकर, उपलब्ध अधिकतम यील्ड को दर्शाने के लिए पुराने, कम ब्याज देने वाले बॉन्डों की कीमत स्वतः निर्धारित करेंगे। लेकिन क्या होगा यदि इसे दर्शाने के लिए कोई बाजार मूल्य ही न हो?
कीमत तय करने का सबसे अच्छा तरीका बॉन्ड टेबल का उपयोग करना और ट्रेडर्स द्वारा "यील्ड-टू-मैच्योरिटी" (YTM) कहे जाने वाले मूल्य पर पहुंचना है। बॉन्ड टेबल विभिन्न ब्याज वाले बॉन्डों की परिपक्वता तक प्रत्येक वर्ष के लिए, विशिष्ट यील्ड पर, अपेक्षित कीमत की तैयार जानकारी प्रदान करते हैं। दुर्भाग्य से, जहां विदेशी बैंकों के डीलरों को YTM की अच्छी जानकारी थी, वहीं सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के लिए यह एक अपरिचित अवधारणा थी। 1987 में, एक ब्रोकर यह देखकर हैरान रह गया कि वैद्य बॉन्डों के वार्षिक मूल्यों की गणना मैन्युअल रूप से कर रहे थे। उन्होंने उन्हें बॉन्ड टेबल का उपयोग करने का सुझाव दिया और इस प्रकार SBI आधुनिक डे-ट्रेडिंग में शामिल हो गया। बॉन्ड टेबल पर एक नज़र डालने से पता चलता है कि 1986 में, जब कूपन दर 11.5% थी, तो 6.75% यील्ड वाले 1992 के बॉन्ड की कीमत 83.50 रुपये होनी चाहिए थी, जिससे 10.5% यील्ड प्राप्त होती। यदि बैंक इसे 1997 की परिपक्वता अवधि वाले 7.5% बॉन्ड से बदलता, तो वह बॉन्ड तालिका देखकर पाता कि कीमत मात्र 79.25 रुपये है। इस प्रकार, विनिमय से बैंक को वर्तमान प्रतिफल पर 0.75% का लाभ होता, लेकिन कीमत पर 4.25 रुपये का नुकसान होता। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को इस सरल तकनीक की जानकारी नहीं थी। इसलिए, दलाल पहले प्रतिफल में वृद्धि का विचार बेचते (मैं आपको ऐसी प्रतिभूतियाँ दूंगा जिन पर 0.75% अधिक ब्याज मिलेगा)।

फिर "बोनस" के रूप में वे 7.5% बॉन्ड को अंकित मूल्य से थोड़ी छूट पर, मान लीजिए 98 रुपये पर, निर्धारित करते और 6.75% बॉन्ड को 100 रुपये में खरीद लेते। बेचने वाला बैंक वास्तव में केवल 2 रुपये की छूट दे रहा था, जबकि वास्तविक अंतर 4.25 रुपये था। इस तरह, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को एक आक्रामक अमेरिकी बैंक और उसके वफादार दलालों द्वारा करोड़ों रुपये का चूना लगाया गया, जिन्होंने उच्च ब्रोकरेज के रूप में लूट का एक हिस्सा अपने पास रख लिया।
जब घोष को इन लेन-देनों का पता चला, जिन्हें दलाली समुदाय में "बलात्कार सौदे" के नाम से जाना जाता था, तो उन्होंने गरजते हुए कहा, "मैं भारत में इस बैंक को बंद करवा दूंगा", उनका इशारा उस अमेरिकी बैंक की ओर था जिसने एसबीआई के पोर्टफोलियो को लूटा था। एसबीआई प्रतिशोधी, क्रूर और आक्रामक हो गया और अपने विशाल आकार का भरपूर इस्तेमाल किया। उसने बॉन्ड का सबसे बड़ा भंडार जमा कर रखा था, जो काफी हद तक निष्क्रिय पड़ा था। फिर 1985 में इंडियन बैंक्स एसोसिएशन ने कॉल मनी उधार पर 10% की सीमा की घोषणा की। यह सबसे बड़े ऋणदाता एसबीआई के लिए एक बड़ा वरदान साबित हुआ। वैधानिक दायित्वों को पूरा करने के लिए धन की भारी कमी का सामना करते हुए, बैंक कॉल मनी के लिए एसबीआई के पास कतार में लग गए। एसबीआई के पास नकदी का इतना विशाल भंडार था कि वह बाजार में तरलता और इसलिए कॉल दरों को नियंत्रित कर सकता था। दलालों ने बताया, "यहां तक कि बैंकों के अध्यक्षों को भी एसबीआई से पैसे के लिए गिड़गिड़ाना पड़ा।" सबसे ज्यादा प्रभावित यूको बैंक, सेंट्रल बैंक, विजया बैंक और केनरा बैंक थे।
एसबीआई ने अपनी तरलता का उपयोग अपने बॉन्ड पोर्टफोलियो को खाली करने के लिए करने का फैसला किया। कागजों पर तो यह 10% की दर से

फंड जारी करता था, लेकिन व्यवहार में यह दर 60-70% की प्रभावी दर थी। चाल यह थी कि बैंकों को भारी-भरकम कॉल मनी दर लगाकर प्रतिभूतियों का एक पैकेट कृत्रिम रूप से ऊँची कीमत पर खरीदने के लिए मजबूर किया जाए। इससे एसबीआई को अपनी सभी कम कीमत वाली और आकर्षक न लगने वाली प्रतिभूतियों से छुटकारा पाने में मदद मिली। इससे उद्योग में इसकी लोकप्रियता कम हुई – अन्य बैंक एसबीआई के अपने कोषागार अधिकारियों की चूक के लिए सामूहिक रूप से जिम्मेदार ठहराए जाने से नाराज थे। लेकिन इसका प्रभाव नगण्य रहा।
ब्रोकरों और अन्य बैंकरों को एसबीआई का "ले लो या छोड़ दो" वाला रवैया विशेष रूप से अपमानजनक लगा। वैद्य का पसंदीदा व्यंग्यात्मक वाक्य "ले लो, नहीं तो खाओ पियो और मस्त रहो" (प्रस्ताव स्वीकार करो, नहीं तो खाओ, पियो और मजे करो) कई बैंकरों के कानों में गूंजता रहा। एम.एन. गोइपोरिया, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के अध्यक्ष के रूप में, वैद्य के हाथों काफी परेशान हुए थे। गोइपोरिया के एसबीआई में आते ही वैद्य का तबादला कर दिया गया। 1987 से 1989 तक एसबीआई का दबदबा कायम रहा, जब तक कि आरबीआई ने कॉल रेट पर लगाई गई 10% की निरर्थक सीमा को खत्म नहीं कर दिया। एसबीआई के खजाने की लूट और आरबीआई द्वारा किए गए प्रतिशोध से एक बात स्पष्ट होती है: मुद्रा बाजार पश्चिमी या अमेरिकी अर्थों में बाजार नहीं थे। वे एक भारतीय जंगल के समान थे।
1986 तक, एक और गंभीर समस्या उभर आई जिसे सरकार संभाल नहीं पा रही थी; नेशनल थर्मल पावर कॉर्पोरेशन जैसे पूंजी-प्रधान सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के लिए संसाधनों की कमी। सरकार को कम लागत पर ऋण देने और राजनीतिक दबाव में दिए गए खराब ऋणों को

माफ करने के बाद बैंकों के पास कोई पैसा नहीं बचा था। इसलिए, वित्त मंत्रालय के प्रतिभाशाली अधिकारियों ने एक और अस्थायी व्यवस्था तैयार की। (उस समय वित्त सचिव एस वेंकिटारमनन थे, जो बाद में आरबीआई के गवर्नर बने।) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को 9% कर-मुक्त बांड और 13% बांड जारी करके सीधे बाजार से उधार लेने के लिए कहा गया। बाद में, कुछ को 17% बांड जारी करने की भी अनुमति दी गई। 1991 के अंत तक, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) ने 20,000 करोड़ रुपये से अधिक मूल्य के बॉन्ड जारी कर दिए थे। यह एक टाइम बम की तरह था, जो चुपचाप टिक-टिक कर रहा था। किसी को नहीं पता था कि इन बॉन्डों को कौन खरीदेगा, इनकी सर्विसिंग कैसे होगी, द्वितीयक बाजार में इनकी खरीद-बिक्री कैसे होगी और ब्याज दरों में उतार-चढ़ाव आने पर क्या होगा। लेकिन बैंकों को जमा राशि की आवश्यकता थी और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) को धन की। इसलिए उन्होंने एक गठबंधन बनाया
- बाजार के खिलाड़ियों द्वारा किए गए गठबंधनों की श्रृंखला में एक और - ताकि आरबीआई द्वारा उन पर लगाई गई बेड़ियों को काटा जा सके। बैंकों ने इस शर्त पर बॉन्ड खरीदे कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम (पीएसयू) भी उनमें अतिरिक्त जमा राशि जमा करेंगे। (सिटीबैंक, केनरा बैंक और कैनफिना इस तरह के सौदों में सबसे सक्रिय थे, जिससे उन्हें हमेशा बड़ा लाभ होता था।) लेकिन समस्या बनी रही। अगर संबंधित जमा राशि अचानक गायब हो जाए तो बैंक अपने पोर्टफोलियो में मौजूद बॉन्डों की सर्विसिंग कैसे करेगा? अगले वर्ष, एक और "नवाचार" सामने आया: पोर्टफोलियो प्रबंधन योजना। यह नियंत्रण और विनियमन की व्यवस्था का एक और परिणाम था। बैंकों को अधिशेष नकदी वाले किसी भी संस्थान से पीएमएस के तहत जमा (एसएलआर और सीआरआर दायित्वों से मुक्त) स्वीकार करने की

अनुमति दी गई थी। लेकिन नियम इतने सख्त थे कि दोनों पक्षों को अधिक स्वतंत्रता देने के बजाय यह एक और बंधन बन गया। पीएमएस ग्राहकों के जोखिम पर प्रदान किया जाना था; धन को एक वर्ष के लिए रखना अनिवार्य था, लेनदेन बाजार दरों पर होने थे; और कोई भी निश्चित प्रतिफल की गारंटी नहीं दे सकता था।
ये नियम प्रतिबंधात्मक और अव्यावहारिक थे, यहाँ तक कि बेतुके भी लग रहे थे। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बोर्ड संबंधित मंत्रालयों और सरकारी लेखा परीक्षकों, जिनमें संसदीय समितियाँ भी शामिल थीं, की निगरानी में काम करते हैं। वे स्पष्ट रूप से दस्तावेजित निश्चित प्रतिफल के आश्वासन के बिना कभी भी धन आवंटित नहीं कर सकते थे। लेकिन नियमों में यह शर्त थी कि कोई गारंटीकृत प्रतिफल नहीं दिया जा सकता। इसलिए, यहाँ भी हितधारकों ने बंधनों को तोड़ने के लिए गठबंधन बनाए।
ऐसा न करना बहुत लुभावना था। प्रतिबंधों से मुक्त होने के बाद, पीएसयू एक संभावित सोने की खान थी। बैंकिंग प्रणाली के बाहर लगातार बड़े-बड़े स्रोतों में धन धीरे-धीरे जमा हो रहा था। 1987 में, बैंकों और बीमा कंपनियों को म्यूचुअल फंड जारी करने की अनुमति दी गई और कैनम्यूचुअल की शुरुआती सफलता ने दूसरों को प्रोत्साहन दिया। जल्द ही वे हजारों करोड़ रुपये की निवेश योग्य नकदी जुटाने वाले थे। एक और बढ़ता हुआ धन स्रोत सार्वजनिक क्षेत्र के खजाने थे। कई सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम डॉलर में उधार लेकर आयात का वित्तपोषण कर रहे थे, जिसके बदले में उनके पास रुपये का अधिशेष जमा हो रहा था। रुपये के अवमूल्यन के कारण, 1987 में डॉलर से लिए गए उनके ऋणों की प्रभावी लागत 25% तक पहुँच गई थी। इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन (आईआरएफसी) का 4000 करोड़ रुपये का निवेश था, जिस पर एक वर्ष में

ब्याज लागत के रूप में 600 करोड़ रुपये का संभावित नुकसान हो सकता था। इसी समय चतुर दलालों, विदेशी बैंकों और केनरा बैंक ने हस्तक्षेप किया और कर-मुक्त बांडों और इकाइयों में निवेश के माध्यम से निधि की लागत को कम करने के उपाय दिखाए। एसबीआई, जिसके पास अधिकांश धन जमा था, ने इस तरह की प्रतिक्रिया नहीं दी और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों ने विदेशी बैंकों के साथ बड़े पैमाने पर लेन-देन शुरू कर दिया। इसके अलावा, लगातार बढ़ते बजट घाटे ने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को अपने स्वयं के बांड जारी करने और उन संस्थानों से सीधे उधार लेने के लिए मजबूर किया जिनके पास सदस्यता लेने के लिए धन था। एनटीपीसी और भारतीय रेलवे वित्त निगम (आईआरएफसी) बड़े बांड जारीकर्ता के रूप में उभरे, जिनके पास अक्सर सैकड़ों करोड़ रुपये की अल्पकालिक नकदी होती थी। उदाहरण के लिए, आईआरएफसी ने जुलाई 1991 में 800 करोड़ रुपये के 9% कर-मुक्त बांड जारी किए और उसी वर्ष नवंबर में 700 करोड़ रुपये के बांड जारी किए। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को इस धन को कहीं निवेश करने की आवश्यकता थी। यहीं पर बैंकों की भूमिका सामने आई।
बैंकों के पास मुनाफा कमाने के बहुत कम रास्ते थे। एक समय ऐसा भी आया जब सरकार 63.5% जमा राशि जब्त कर रही थी। उन्हें नकदी अधिशेष वाली कंपनियों से जितना पैसा मिल सकता था, उसकी सख्त जरूरत थी। इसका हल निकला: आरबीआई द्वारा 1987 में घोषित पीएमएस योजना। चूंकि पीएमएस का पैसा केवल न्यासी के रूप में रखा जाना था, इसलिए यह बैंक द्वारा अर्जित जमा राशि का हिस्सा नहीं था। इस प्रकार, यह बैंक जमा पर लागू कठोर आरक्षित आवश्यकताओं (सीआरआर और एसएलआर) से मुक्त था, जो लाभप्रदता को कम कर देती थीं। पीएमएस के पैसे का उपयोग पूरी तरह से और किसी भी तरह से

किया जा सकता था। सिटीबैंक और सिंडिकेट बैंक और विजया बैंक जैसे कुछ भारतीय बैंकों ने जल्द ही महसूस किया कि विदेशी बैंकों द्वारा पीएमएस का लाभ उठाने पर प्रतिबंध सहित सभी महत्वपूर्ण पीएमएस नियमों को दरकिनार करके वे आसानी से बहुत सारा पैसा कमा सकते हैं। विचार सरल था: सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों से एक निश्चित रिटर्न देने के वादे के साथ पैसा इकट्ठा करना और इसे इक्विटी और मनी मार्केट में लगाना, जहां रिटर्न कहीं अधिक था।
चतुर बैंकरों ने आरबीआई के उन नियमों को दरकिनार करने के लिए नए-नए तरीके खोज निकाले, जिन्होंने पीएसएम (प्राइवेट सेक्टर मैनेजमेंट) को जकड़ रखा था। सिटीबैंक, एक विदेशी बैंक होने के नाते, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) के पोर्टफोलियो का प्रबंधन करने के लिए अधिकृत नहीं था। इसने विजया बैंक को एक मोर्चे के रूप में इस्तेमाल करके इस नियम को दरकिनार कर दिया। इसने "आश्वासनित प्रतिफल", "मानक प्रतिफल" और "संकेतक प्रतिफल" जैसे शब्दों का चतुराई से इस्तेमाल करते हुए निश्चित या गारंटीकृत प्रतिफल पर रोक लगाने वाले नियम को दरकिनार कर दिया। इसने नकदी-अधिशेष वाले सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से संपर्क किया, उन्हें (अवैध रूप से) एक निश्चित और कम दर पर प्रतिफल की गारंटी दी और उनके पैसे का इस्तेमाल शेयरों और बॉन्डों में व्यापार करने के लिए किया - जिनसे भारी मुनाफा हुआ। राष्ट्रीयकृत बैंकों में जमा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का अतिरिक्त पैसा विदेशी बैंकों में स्थानांतरित कर दिया गया। यह बैंकों के लिए फायदे का सौदा था। कागजों पर, ग्राहक सारा जोखिम उठा रहा था। व्यवहार में, बैंक सारा लाभ कमा रहे थे।

अत्यधिक विनियमित बैंकिंग प्रणाली में पीएसएम इतना आकर्षक प्रलोभन था कि हताश दलालों और बैंकरों ने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के साथ सौदे किए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि पैसा उनके माध्यम से ही भेजा जाए। इसमें स्पष्ट रूप से रिश्वतखोरी शामिल थी। इसी चरण में राजनीतिक प्रभाव का खेल शुरू हुआ। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) को बैंकों में अपना पैसा जमा कराने के लिए, मानक 2% रिश्वत दी जाती थी – अक्सर दलालों के माध्यम से। दलालों ने कंपनियों को दरकिनार करते हुए सीधे मूल मंत्रालयों से सौदे किए। विदेशी बैंकों ने विभिन्न सरकारी अधिकारियों के करीबी रिश्तेदारों को नियुक्त किया, जो पीएसयू के निवेश निर्णयों को प्रभावित कर सकते थे। जब 1990 के दशक में यह धंधा बेतहाशा बढ़ गया, तो राष्ट्रीयकृत बैंकों ने भी पीएसएम (प्री-मैनेज्ड सिक्योरिटीज) का पैसा पाने के लिए रिश्वत दी। बैंकों ने इसका हिसाब कैसे रखा? आंशिक रूप से राजनेताओं और उनके समर्थकों द्वारा नियंत्रित फर्मों को ऋण देकर और फिर उस पैसे को कुछ समय बाद बैड लोन के रूप में बट्टे खाते में डालकर। पीएमएस पर आरबीआई के नियमों का कभी पालन नहीं किया गया। बैंक एक वर्ष से कम अवधि के लिए खुलेआम पैसा स्वीकार कर रहे थे और एक वर्षीय बैंक जमा पर सामान्य ब्याज दर से अधिक निश्चित रिटर्न की गारंटी दे रहे थे। एक वर्ष की न्यूनतम पीएसएम अवधि को विभिन्न तरीकों से दरकिनार किया गया। बहुत कम सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के पास एक वर्ष की अवधि के लिए पैसा जमा करने के लिए अतिरिक्त नकदी थी। वे आमतौर पर बैंकों के पीएसएम का उपयोग निश्चित आय प्रतिभूतियों में रेडी फॉरवर्ड डील करने के लिए करते थे। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) के बहीखातों में इन्हें जमा के रूप में दिखाया गया था। बैंकों ने

इन्हें तैयार अग्रिम लेनदेन के रूप में दर्शाया। सौदा सीधा- सादा था: दलालों के माध्यम से यूनिट और बॉन्ड खरीदना और तीन महीने बाद उन्हें ग्राहक के खाते से बेच देना। यह एक चालाकी भरा तरीका था, लेकिन आरबीआई के दिशानिर्देशों का स्पष्ट उल्लंघन था। स्रोत सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों द्वारा जमा की गई राशि थी, इसलिए बैंकों को उस राशि का 63.5% वैधानिक भंडार में रखना अनिवार्य था। लेकिन उन्होंने इन पीएसयू जमाओं को अल्पकालिक निधि के रूप में दिखाकर इस नियम का खुलेआम उल्लंघन किया। इन निधियों का उपयोग प्रतिभूतियों को खरीदने, उन्हें वापस बेचने और पीएसयू को पैसा लौटाने के लिए किया गया था। ये लेनदेन एक अंतहीन श्रृंखला में चलते रहे।
यह सब आरबीआई की पूरी जानकारी में किया गया था। 1987-90 के दौरान, आरबीआई ने इस पर नजर रखी और बैंकों को बार-बार चेतावनी जारी की। लेकिन बाजार के खिलाड़ियों का आरबीआई के प्रति इतना तिरस्कार था कि इन चेतावनियों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया। कुछ बैंकों ने तो अपने उल्लंघन को कानूनी दांव-पेच में छिपा लिया था। उन्होंने कानूनी राय प्राप्त की कि हालांकि आरबीआई द्वारा निर्धारित पीएमएस (पैसेज मैनेजमेंट स्कीम) को चार मूलभूत नियमों (एक वर्ष के लिए धन, कोई गारंटीकृत प्रतिफल नहीं, ग्राहकों द्वारा निर्धारित निवेश और बाजार दरों पर लेनदेन) का पालन करना होगा, लेकिन इन्हीं लेनदेनों को अल्पकालिक नकदी प्रबंधन सौदों के रूप में संरचित किया जा सकता है, जिन्हें आरबीआई के नियमों का पालन करने की आवश्यकता नहीं है। इन मामलों में, सौदे लेनदेन-दर-लेनदेन आधार पर किए जाते थे, निवेशक यह निर्दिष्ट नहीं करते थे कि क्या खरीदना है और जोखिम ग्राहकों पर होता था।

पीएमएस सौदों और अल्पकालिक सौदों के बीच का अंतर काफी हद तक शाब्दिक था। आरबीआई ने पीएमएस से बाहर किसी भी चीज की स्पष्ट रूप से अनुमति नहीं दी थी। लेकिन उसने कभी इसकी अनुमति नहीं भी दी थी। हालांकि, बैंकों ने जटिल अंतर पैदा करने के लिए काफी प्रयास किए। नकदी प्रबंधन योजनाओं से शुल्क उत्पन्न होने की उम्मीद थी और बैंकों ने कानूनी राय से खुद को संतुष्ट कर लिया कि चूंकि इसमें प्रतिभूतियों का कोई समूह या दीर्घकालिक व्यवस्था नहीं थी, इसलिए वे पीएमएस के अंतर्गत नहीं आते थे। स्टैनचार्ट के अनुमान के अनुसार, 1990 में लगभग 5000 करोड़ रुपये की मनी मार्केट परिसंपत्तियों का इस तरह से प्रबंधन किया जा रहा था।
कैनफिना और स्टैनचार्ट ने कॉर्पोरेट कैश डिप्लॉयमेंट सर्विसेज (स्टैनचार्ट के मामले में) और फाइनेंशियल एंड इन्वेस्टमेंट एडवाइजरी सर्विसेज (कैनफिना के मामले में) जैसे आकर्षक नाम देकर इन्हें और भी अधिक वैधता प्रदान की। हैरानी की बात यह है कि सिटीबैंक, जिसने फंड जुटाने की होड़ में सबसे बड़ा दांव खेला, ने अपनी योजना को छिपाने की जहमत ही नहीं उठाई और इसे सीधे-सीधे पीएमएस कहना पसंद किया। घोटाला उजागर होने के बाद, सिटीबैंक ने दावा किया कि उसने कुछ भी गलत नहीं किया, जबकि ग्रिंडलेज ने जेपीसी के सामने स्वीकार किया कि उसने हर दिशानिर्देश का उल्लंघन किया था।
विदेशी बैंक और कैनफिना पीएमएस में सबसे अधिक सक्रिय पाए गए, क्योंकि वे सभी के लिए लाभप्रद स्थिति बनाने के इच्छुक थे। उदाहरण के लिए, जब पीएफसी को धन की आवश्यकता हुई, तो उसने सिटीबैंक और कैनफिना को 300 करोड़ रुपये के 17% बॉन्ड जारी किए, जिन्होंने बॉन्ड की सदस्यता केवल इसलिए ली क्योंकि पीएफसी

ने धन को अपने पीएमएस में पुनर्निवेश करने का वादा किया था। पीएफसी ने सिटीबैंक के पोर्टफोलियो में मात्र 14.25% रिटर्न पर पैसा लगाया, जबकि बाजार में तेजी थी और बेहतरीन कॉर्पोरेट डिबेंचर पर भी 16% रिटर्न मिल रहा था।
एसबीआई कैपिटल मार्केट्स के मद्रास कार्यालय ने पीएमएस के तहत पैसा इकट्ठा किया और उसे मुख्य रूप से हर्षद मेहता जैसे ब्रोकरों को, साथ ही सिटीबैंक और कोटक महिंद्रा फाइनेंस को भी सौंप दिया। जब मुनाफा सहित पैसा वापस आया, तो एसबीआई कैप्स ने ग्राहक को मूलधन और निश्चित रिटर्न लौटा दिया और बाकी खुद रख लिया। लेकिन पीएमएस के खेल में एसबीआई कैप्स सबसे बड़ा खिलाड़ी नहीं था। सिटीबैंक और स्टैनचार्ट इस सूची में सबसे ऊपर थे। हैरानी की बात यह है कि इन दोनों बैंकों द्वारा एसबीआई कैप्स की तरह ही ग्राहकों के खातों में धोखाधड़ी करने के स्पष्ट सबूत होने के बावजूद, आरबीआई ने इनकी जांच करने का कोई प्रयास नहीं किया।
1987 में इक्विटी बाजारों में भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा कारण सामने आया: म्यूचुअल फंड। तब तक केवल एक ही म्यूचुअल फंड था, यूटीआई, जिसके प्रमुख हमेशा आशावादी रहने वाले एमजे फेरवानी थे, जिन्हें बिग बुल के नाम से जाना जाता था। 20,000 करोड़ रुपये के कोष के साथ यूटीआई बाजार का सरताज था। अगर यह खरीदता, तो बाजार ऊपर जाता। अगर यह बेचता, तो मामूली गिरावट आती। फिर, 1987 में, सरकारी बैंकों और बीमा कंपनियों को म्यूचुअल फंड स्थापित करने की अनुमति दी गई, यह निर्णय एस वेंकिटारमनन द्वारा वित्त सचिव रहते हुए लिया गया था।
एक के बाद एक केनरा बैंक, एसबीआई और बीमा कंपनियों की म्यूचुअल फंड योजनाएं आईं। कैनम्यूचुअल सबसे आक्रामक बनकर उभरा, जिसने

अन्य संस्थानों को सदस्यता लेने के लिए प्रेरित करके और कुछ चुनिंदा ब्रोकरों के साथ काम करके सदस्यता के आंकड़े बढ़ा दिए। बैंक ऑफ इंडिया के बहुचर्चित बोइनंजा के मामले में, हर्षद मेहता ने 49 करोड़ रुपये के कोष में से 20 करोड़ रुपये का योगदान दिया। बदले में, फंड को हर्षद द्वारा निर्धारित शेयर खरीदने थे। अन्य शीर्ष इक्विटी ब्रोकरों ने भी म्यूचुअल फंडों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाए और उन्हें अपने स्वयं के फंड के रूप में इस्तेमाल किया। यह व्यवस्था कीमतों में हेरफेर करने या शॉर्ट सेलिंग करने में विशेष रूप से उपयोगी थी। आरबीआई को म्यूचुअल फंडों को मंजूरी देने और विनियमित करने का दायित्व सौंपा गया था, क्योंकि वे बैंकों की सहायक कंपनियां थीं। आरबीआई ने ऐसा कुछ नहीं किया।
ऐसा लग रहा था मानो सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं का बुनियादी ढांचा बुरी तरह से जर्जर हो चुका था। उदाहरण के लिए, अक्सर संस्थाओं के पास पैसा तो जमा हो जाता था, लेकिन उनके पास उस नकदी को इधर-उधर करने के लिए न तो साधन थे और न ही कौशल। एक बीमा कंपनी के कोषागार प्रबंधक के पास कॉल मार्केट में निवेश करने के लिए करोड़ों रुपये थे, लेकिन उनके पास सीधे फोन कनेक्शन तक नहीं था, अन्य दलालों और बैंकों से संपर्क करने की तो बात ही छोड़िए। दूसरी ओर, दलालों और बैंकों के पास अत्याधुनिक दूरसंचार और लेनदेन प्रसंस्करण सुविधाएं थीं। अक्सर बैंकों के पास प्रत्येक दलाल या लेनदेन के लिए कोई पूर्व निर्धारित जोखिम सीमा नहीं होती थी। यहां तक कि कुछ विदेशी बैंकों ने भी विदेशों में इस्तेमाल की जाने वाली प्रणालियों को नजरअंदाज कर दिया। वे किसी ब्रोकर से लेनदेन करने या किसी ब्रोकर के साथ लेन-देन करने से पहले उचित क्रेडिट-जोखिम मूल्यांकन की अनदेखी करते थे।

मुद्रा बाजारों और शेयर बाजारों का बुनियादी ढांचा भी चरमरा रहा था। लोक ऋण कार्यालय (पीडीओ) को सहायक सामान्य खाता बही नोटों के आधार पर प्रत्येक बैंक के लिए विभिन्न सरकारी प्रतिभूतियों के लेनदेन विवरण दर्ज करने थे। पीडीओ पुराने बहीखातों में मैन्युअल रूप से रिकॉर्डिंग करता था, जिसमें अक्सर दस दिनों से अधिक की देरी हो जाती थी। बहीखातों में दर्ज एसजीएल में अक्सर लेनदेन का कोई संदर्भ नहीं होता था। उदाहरण के लिए, यदि बैंक ऑफ अमेरिका के तीन एसजीएल (SGL) एक ही दिन पीडीओ (PDO) में पहुँचते हैं और उनमें से दो अपर्याप्त बैलेंस के कारण बाउंस हो जाते हैं, तो यह बताना असंभव होगा कि उनमें से कौन सा बाउंस हुआ है। और सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि एक ऐसी प्रणाली में जहाँ दैनिक व्यापार में सैकड़ों लेनदेन होते थे, बैंकों को डाक द्वारा बाउंस हुए एसजीएल की सूचना दी जाती थी। ब्रोकर और बैंकरों ने पीडीओ की इस लापरवाही का फायदा उठाना जल्दी सीख लिया। वे जानबूझकर देरी करते थे और एसजीएल को बाउंस करवाकर कृत्रिम रूप से अधिक बैलेंस दिखाते थे और फिर उसी के आधार पर व्यापार करते थे। बाउंस हुए एसजीएल की सूचना देने वाले नोट गायब कर दिए जाते थे और उनके नुकसान का दोष डाक में हुई देरी पर डाल दिया जाता था। एसजीएल का बाउंस होना एक वास्तविक समस्या भी थी। अक्सर, बैंक यह जाने बिना ही एसजीएल जारी कर देते थे कि पीडीओ में उनके पास बिक्री के लिए पर्याप्त बैलेंस नहीं है। इससे निपटने के लिए एक और साधन आया: बीआर (BR)। बेचने वाला बैंक प्रतिभूतियों के बजाय बीआर जारी करता था। यह तकनीक विशेष रूप से अल्पावधि के बायबैक सौदों (रेडी फॉरवर्ड) के मामले में उपयोगी थी जहाँ भौतिक प्रतिभूतियों के आदान-प्रदान की आवश्यकता नहीं थी। लेकिन इससे हेरफेर की गुंजाइश और बढ़ गई।

बैंक और अन्य वित्तीय संस्थान बिना किसी प्रतिभूति के बीआर जारी करते थे, या बीआर के बदले बीआर जारी करते थे। इस तरह, एक कमजोर बैंक का मूल बीआर जल्दी से एक अधिक "प्रतिष्ठित" बैंक के बीआर से बदल दिया जाता था। विदेशी बैंक अपने गलत कामों को छिपाने के लिए इस तकनीक का इस्तेमाल करते थे। उन्होंने आंध्र बैंक, सिंडिकेट बैंक, स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र और केनरा बैंक का इस्तेमाल किया। मेट्रोपॉलिटन को-ऑपरेटिव बैंक जैसे कुछ बैंक भी नाम-ऋण देने के धंधे में उतर गए और मुफ्त में बीआर जारी करने लगे। सिटीबैंक ने तो यहां तक दुस्साहस किया कि उसने बाउंस हुए एसजीएल जारी कर दिए, जो एक तरह से बाउंस और रद्द किए गए चेक जारी करने के समान था। नकदी की अपनी अथाह भूख को पूरा करने के लिए, हर्षद ने सबसे बड़ा छल किया: बिना किसी लेनदेन या प्रतिभूति और बीआर के बदले एनएचबी से सीधा ऋण प्राप्त करना।
सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों, जिन्होंने बांड के माध्यम से धन जुटाया, उन्हें आवंटित करने में लगभग एक वर्ष का समय लगा, क्योंकि बंधक बनाए जाने तक बांड छापने की अनुमति नहीं थी। इसलिए, आवंटन पत्रों का लेन-देन प्रतिभूति के रूप में किया गया। एक सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी ने धन जुटाने के चार साल बाद भी बांड प्रमाणपत्र नहीं छापे थे। बॉन्ड की क्रेडिट रेटिंग का कोई तरीका नहीं था और कीमतें जारीकर्ता के बारे में व्यापारियों की धारणा पर निर्भर करती थीं। यह धारणा अत्यधिक पक्षपातपूर्ण हो सकती थी। बॉन्ड प्रमाणपत्र उपलब्ध होने पर भी, व्यापार की मात्रा इतनी अधिक थी कि डिलीवरी करना मुश्किल था। एक बार एक ब्रोकर को 680,000 बॉन्ड हस्तांतरित करने के लिए 240 हस्ताक्षरों की आवश्यकता पड़ी। जाहिर है, बैंकर डिलीवरी लेने से कतराते थे और इसके बजाय अपने अस्थायी स्टॉक डिपॉजिटरी

प्रमाणपत्रों - बीआर (बॉन्ड सर्टिफिकेट) पर निर्भर रहते थे। शेयर बाजारों में भी यही हाल था। एसबीआई कैप्स के शेयर प्रमाणपत्र एसबीआई के गलियारों में ढेर लगे रहते थे।
नियमन की गुणवत्ता व्यापार की मात्रा के अनुरूप नहीं थी - विशेष रूप से शेयर बाजारों में। कोई जुर्माना नहीं था और लेन-देन का खुलासा भी बहुत कम होता था। भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (एसईबीआई), हालांकि एक अध्यादेश के माध्यम से व्हिसलब्लोअर बनने के लिए सशक्त था, ब्रोकरों के साथ एक कठिन लड़ाई लड़ रहा था। एसईबीआई चाहता था कि ब्रोकर उसके साथ पंजीकरण करें; ब्रोकर अनिच्छुक थे और विरोध में बाजारों को बंद कर देते थे।
अध्यक्ष जीवी रामकृष्ण के नेतृत्व में, एसईबीआई कम से कम कुछ नियम लागू करने का प्रयास कर रहा था। लेकिन आरबीआई, जिसने बाज़ार की हलचल पर कभी ध्यान नहीं दिया, मुद्रा बाज़ार के विकास और पीएमएस में व्याप्त गड़बड़ियों, म्यूचुअल फंडों के नाम पर फैले भ्रष्टाचार, नए खिलाड़ियों के उदय और एक खुली प्रणाली तथा कड़े नियमन की आवश्यकता के बारे में लगभग अनभिज्ञ था। यह बात जानकीरामन समिति की रिपोर्टों से स्पष्ट होती है, जो भोलेपन से यह सवाल उठाती है कि बैंक कृत्रिम रूप से उच्च ब्याज दरें क्यों वसूल रहे थे और ब्रोकर अपने खातों में भारी नुकसान क्यों दिखा रहे थे। जब कभी-कभार आरबीआई अधिकारियों को संदिग्ध सौदों का पता चलता था, तो उनके वरिष्ठ अधिकारी आँखें फेर लेते थे।
यही थी भारतीय वित्तीय क्षेत्र की स्थिति: एक उचित मुद्रा बाज़ार का अभाव, कमज़ोर बुनियादी ढांचा और प्रणालियाँ, पीएमएस और म्यूचुअल फंडों का एक डंपिंग ग्राउंड के रूप में इस्तेमाल और कमज़ोर पर्यवेक्षण। इस अवसर से आकर्षित होकर, ब्रोकर और बैंकर 1990 के दशक के उत्तरार्ध में एक बड़े गठबंधन में

गिद्धों की तरह एक लाश पर टूट पड़े थे। कम खुलासों के कारण, उनके सौदे जनता की नज़र से छिपे रहे, शेयर की कीमतें लगातार ऊपर-नीचे होती रहीं और पैसे की दुनिया एक शब्द पर टिकी रही: समझौता। बैंकों को नुकसान छिपाने के लिए दलालों की मदद की ज़रूरत थी। बदले में, दलालों को बैंकों से पैसा और अपने ट्रेजरी सौदों से असामान्य लाभ कमाने की ज़रूरत थी। म्यूचुअल फंडों को अपनी योजनाओं में निवेश के लिए दलालों और बैंकों की ज़रूरत थी, जबकि दलालों को म्यूचुअल फंडों की ज़रूरत थी ताकि वे शेयरों को ऊंचे दामों पर बेचकर अपने अगले सौदों के लिए नकदी जुटा सकें। नकदी की कमी से जूझ रहे सार्वजनिक क्षेत्र को बैंकों से अपने बॉन्ड खरीदने की ज़रूरत थी, जिसके बदले में बैंक पोर्टफोलियो योजनाओं के रूप में उतना ही पैसा वापस बैंकों में लगाते थे। हर कोई एक-दूसरे का समझौता करने को तैयार था, बस व्यक्तिगत ईर्ष्या और प्रतिद्वंद्विता ही बाधा बन रही थी।
इस समझौते की दुनिया का मूल मंत्र था "विश्वास"। सौदे पहले पूरे किए जाते थे और कागजी कार्रवाई बाद में। कभी-कभी तो इसकी भी ज़रूरत नहीं पड़ती थी। कॉल मनी लेनदेन रातोंरात टेलीफोन के माध्यम से होते थे और कॉल रसीदें तीन-चार दिन बाद आराम से भेजी जाती थीं। बायबैक सौदों के मामले में, ब्रोकर बैंकों के साथ संपर्क स्थापित करते थे और प्रतिभूतियों की खरीद-बिक्री में मध्यस्थ की भूमिका निभाते थे, तथा कुछ नकदी अपने खातों के माध्यम से भेजते थे। स्टैनचार्ट बॉन्ड प्रमाणपत्रों की फोटोकॉपी को डिलीवरी के रूप में स्वीकार करता था। पूरी व्यवस्था भरोसे पर टिकी थी। उस भरोसे का दुरुपयोग किया गया। दरअसल, बैंक और ब्रोकर एक-दूसरे पर इतना भरोसा करते थे कि बैंक "रूटिंग" के नाम से जानी जाने वाली प्रक्रिया के माध्यम से

ब्रोकर सौदों में बिचौलिए का काम करते थे। वे ब्रोकरों को वित्त पोषित करते थे और अपने नाम का इस्तेमाल करके उनके लेन-देन को पूरा करवाते थे। यह आवश्यक था क्योंकि कई बैंक अभी भी ब्रोकरों के साथ सीधे लेन-देन करने से इनकार करते थे। इसलिए एक दिखावटी व्यवस्था की आवश्यकता थी - एक काल्पनिक बिचौलिया बैंक। यहीं से "रूटिंग बैंकों" का विचार आया।
कई बैंक अपने कारोबार के लिए ब्रोकरों को सक्रिय रूप से लुभाते थे, और ब्रोकर रूटिंग के लिए दिए जाने वाले स्प्रेड पर बैंकों के साथ मोलभाव करते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रिंडलेज़ ने एनएचबी से प्राप्त 500 करोड़ रुपये से अधिक की राशि बिना किसी लिखित सूचना के तुरंत मेहता के खाते में जमा कर दी। इसी तरह के एक सौदे में, एसबीआई ने मेहता के खाते में 90 करोड़ रुपये जमा किए, जिससे मेहता इसे निकाल सके और एसबीआई के साथ अपने 622 करोड़ रुपये के बकाया का निपटारा कर सके। ग्रिंडलेज़ और एसबीआई मौखिक निर्देशों पर भी नियमित रूप से मेहता के खाते में पैसे भेजते थे। अमेरिकन एक्सप्रेस ने अजय कायन के लिए और आंध्र बैंक ने हितेन दलाल के लिए ऐसा किया। सीधे शब्दों में कहें तो, बैंक दलालों को सुविधा देने के लिए बहुत उत्सुक थे।
यह कई अन्य तरीकों से भी प्रकट हुआ - सबसे महत्वपूर्ण रूप से जिस तरह से दलाल अपने सौदों के लिए बैंक के पैसे का इस्तेमाल कर रहे थे। और हर्षद अकेला नहीं था। बैंक इस समझ के साथ दलाल से प्रतिभूतियां खरीदते थे कि दलाल कुछ महीनों बाद उन्हें वापस कर देगा। यह सौदा एक निश्चित अवधि के लिए दलाल को पैसा उधार देने का एक और तरीका था। लेकिन यह बैंकों को दलालों को पैसा उधार देने के खिलाफ आरबीआई के निर्देश का उल्लंघन था। साथ ही, दलाल

को मार्जिन मनी आवश्यकताओं का पालन किए बिना बैंक फंड तक पहुंच मिल जाती थी। यह प्रथा व्यापक थी।
दूसरी योजना ब्रोकरों को सीधे वित्तपोषण करना था, जिसमें सुविधा बिलों को डिस्काउंट करना और रेडी फॉरवर्ड शर्तों पर शेयर खरीदना शामिल था। यूनाइटेड कमर्शियल बैंक ने हर्षद मेहता के लिए 50.40 करोड़ रुपये के बिलों को डिस्काउंट किया, जो ज्योति मेहता द्वारा शेयर बिक्री को कवर करते थे। यह साफ-सुथरा क्रेडिट था। परिपक्वता पर, यूको बैंक ने स्वयं मेहता से 49.50 करोड़ रुपये के शेयर खरीदकर बिलों का भुगतान किया।
तीसरा, बैंकों ने अन्य बैंकों के पास कॉल मनी रखी, लेकिन प्राप्तकर्ता बैंकों के बहीखातों में स्वीकार की गई किसी भी कॉल मनी का कोई रिकॉर्ड नहीं था। पैसा व्यक्तिगत ब्रोकरों के खातों में जमा किया गया था। एनएचबी ने
6 अप्रैल 1992 को यूको बैंक को 40 करोड़ रुपये कॉल पर उधार दिए, जो मेहता के खाते में गए। 2 अप्रैल 1992 को, इसने एसबीआई को 17 करोड़ रुपये कॉल पर उधार दिए, जो फिर से मेहता के खाते में जमा किए गए।
इस सभी जटिल नेटवर्किंग, अकोमोडेशन और रूटिंग और बैंक-ब्रोकर गठबंधन की निगरानी केंद्रीय बैंक के डिप्टी गवर्नरों और गवर्नर की एक पंक्ति कर रही थी, जो अपनी आंखें और कान पूरी तरह बंद करके और पुराने नियमों के एक पुराने सेट के सहारे काम कर रहे थे। 1990 के दशक की शुरुआत में, वित्तीय क्षेत्र एक बड़े संकट के कगार पर था। इस जर्जर ढांचे को ध्वस्त करने के लिए जिस हल्के धक्के की ज़रूरत थी, वह एक अप्रत्याशित स्रोत से आया। चूंकि गोपनीयता और नियंत्रणों के शासन ने व्यवस्था की जड़ों को खोखला कर दिया था, इसलिए अधिकांश नीति निर्माताओं - जिनमें वे

लोग भी शामिल थे जो इस गोपनीयता और नियंत्रणों के लिए ज़िम्मेदार थे - ने यह निर्णय लिया कि "उदारीकरण" ही इसका सही उपाय है। वित्त मंत्रालय ने ठीक यही करने का प्रयास किया। लेकिन ऐसे कदम गलत समय पर उठाए गए। जुलाई 1991 में, वित्त मंत्रालय ने कॉर्पोरेट डिबेंचर और बॉन्ड पर ब्याज दर को उदार बनाने का निर्णय लिया।
यह अभी भी स्पष्ट नहीं है कि सरकार इस निर्णय के प्रभाव को समझ पाई थी या नहीं। इसका मतलब था कि कंपनियां अब 16%, 17% या इससे भी अधिक ब्याज दर पर डिबेंचर जारी कर सकती थीं। स्वाभाविक रूप से, 13% ब्याज दर वाले पुराने बॉन्ड कम आकर्षक हो जाते और उनका मूल्य घटने लगता। ठोस रूप से कहें तो, 20,000 करोड़ रुपये के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बॉन्डों का मूल्य औसतन 20% गिर जाता। इस नुकसान को छुपाना घोटाले के मुख्य कारणों में से एक था।
वित्त मंत्री के रूप में मनमोहन सिंह ने बाद में उदारीकरण की नीति को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से वित्तीय क्षेत्र में व्यापक बदलावों की सिफारिश करने के लिए एक समिति का गठन किया। इन संकेतों ने बाजार में उथल-पुथल मचा दी। बॉन्डों का मूल्य लगातार गिरता रहा। 1991 के अंत तक, 13% ब्याज दर वाले बॉन्डों का मूल्य 35% और 9% ब्याज दर वाले बॉन्डों का मूल्य 20% गिर गया था। बॉन्डधारकों को कुल काल्पनिक नुकसान 6000 करोड़ रुपये से अधिक था, हालांकि बॉन्ड न बेचकर वे नुकसान से बच सकते थे। आखिरकार, आरबीआई नहीं चाहता था कि निवेशों का मूल्य वर्तमान बाजार मूल्य के अनुसार निर्धारित किया जाए।
इन बॉन्डों के बड़े धारकों में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की मर्चेंट बैंकिंग सहायक कंपनियां जैसे कैनफिना और विदेशी बैंक

जैसे सिटीबैंक, बैंकएम, स्टैनचार्ट और ग्रिंडलेज़ शामिल थे, जिन्होंने या तो अपने नाम से या ग्राहकों के खातों में बॉन्ड जारी किए थे। ब्याज दर मुक्त होने के बाद भी, कैनफिना ने जुलाई में 800 करोड़ रुपये के 9% आईआरएफसी बॉन्ड जारी किए और नवंबर में 700 करोड़ रुपये के बॉन्ड जारी किए। विदेशी बैंक, कैनफिना, एसबीआई कैप्स और कुछ ब्रोकर लगभग 7000 करोड़ रुपये के इन बॉन्डों के धारक थे। उन्होंने इन्हें निवेश के लिए नहीं खरीदा था, बल्कि इनमें ट्रेडिंग कर रहे थे। बैंकएम और सिटीबैंक की तो इन्हें बाजार मूल्य के अनुरूप अंकित करने की नीति भी थी। इसलिए, तार्किक रूप से, उन्हें अपने बही-खातों में लगभग 1500 करोड़ रुपये का घाटा दिखाना चाहिए था।

सितंबर 1991 के तीसरे सप्ताह में और अधिक उदारीकरण हुआ। 3 अक्टूबर से सरकारी प्रतिभूतियों (गिल्ट्स) पर ब्याज दर (या कूपन दर) 11.5% से बढ़ाकर 12% कर दी गई, जिससे पुराने गिल्ट्स के मूल्य में लगभग 10% की गिरावट आई। इसका मतलब सैकड़ों करोड़ रुपये का और नुकसान था। छह महीने के भीतर,
17 मार्च 1992 को, सरकार ने सरकारी बॉन्डों पर ब्याज दर फिर से बढ़ाकर 12.5% कर दी। और नुकसान हुआ।
यहीं पर बैंकों और संस्थानों के बीच मजबूत सांठगांठ अपने चरम पर पहुंच गई। उन्होंने तीन तरीकों से एक-दूसरे की मदद की। पहला तरीका था बैंकों के अपने खाते से पीएमएस खाते में हुए नुकसान को डालना। पीएमएस आखिरकार ग्राहकों का पैसा था जिसे बैंक न्यासी के रूप में रखते थे और बैंक "गारंटीकृत" रिटर्न से अधिक हुए मुनाफे को देने के लिए बाध्य नहीं थे। दूसरा तरीका था ब्रोकरों से बॉन्ड के नुकसान की भरपाई करने के लिए कहना, जिसके लिए

ब्रोकर ने सिस्टम में किसी और को लूटा, शायद स्टैनचार्ट को। धन का तीसरा स्रोत शेयर बाजार थे, जहां कीमतें आसमान छू रही थीं। सरल सौदों में, बैंक और संस्थान हितेन दलाल जैसे दलालों से कृत्रिम रूप से ऊंची कीमतों पर बांड खरीदवाते थे और इस तरह नुकसान से बचते थे। इस प्रकार के लेन-देन का एक उदाहरण यहां दिया गया है। 6 फरवरी 1992 को, कैनफिना ने हितेन दलाल के माध्यम से सिटीबैंक को 82.85 करोड़ रुपये में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बांड और अन्य डिबेंचर के छह लॉट बेचे। लेकिन कैनफिना को केवल 59.93 करोड़ रुपये मिले और वह भी सिटीबैंक से नहीं, बल्कि सिटीबैंक के करीबी दलाल सी मैकर्टिच के कहने पर अमेरिकन एक्सप्रेस से। शेष राशि (22.92 करोड़ रुपये) हितेन दलाल से आई।
यह उदाहरण एक मध्यस्थ बैंक (सी मैकर्टिच के लिए अमेरिकन एक्सप्रेस) के संचालन और सिटीबैंक और सी मैकर्टिच के बीच घनिष्ठ संबंध को दर्शाता है, जिसके तहत किसी भी सौदे में प्रतिपक्ष के रूप में उनकी स्थिति अदला-बदली योग्य थी। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि कैनफिना जैसी एक बड़ी संस्था द्वारा ब्रोकर से अपने बॉन्ड घाटे की भरपाई करने का यह एक स्पष्ट उदाहरण था। एक ब्रोकर संस्था के घाटे की भरपाई कैसे करता है? इसके दो तरीके थे। पहला, वह सिस्टम में किसी को, शायद स्टैनचार्ट को, फर्जी बीआर के माध्यम से भुगतान करने के लिए कहता है। दूसरा, संस्थाएं पीएमएस ग्राहकों के खातों से ब्रोकरों को क्षतिपूर्ति लाभ देती हैं।
पोर्टफोलियो ग्राहकों के नुकसान पर क्षतिपूर्ति समायोजन का एक बेहतरीन उदाहरण सिटीबैंक और उसके वर्चुअल हाउस-ब्रोकर, सी मैकर्टिच और स्टीवर्ट एंड कंपनी के बीच का मामला है। सिटीबैंक

ने पीएमएस के तहत अपने "विश्वसनीय" ग्राहकों की ओर से प्राप्त धन का उपयोग म्यूचुअल फंड यूनिट, जीआईसी राइज आई और जीआईसी राइज II खरीदने के लिए किया और उन्हें अपने पसंदीदा ब्रोकर, अजय कायन और उत्सव पारेख (जो सी मैकर्टिच और स्टीवर्ट एंड कंपनी चलाते हैं) को बाजार दर से कम दरों पर बेच दिया। ब्रोकरों ने उन्हें ऐसी कीमत पर बेचा जिससे सिटीबैंक के पीएमएस ग्राहकों के नुकसान पर 89 करोड़ रुपये का मुनाफा हुआ। म्यूचुअल फंड इंस्ट्रूमेंट्स में इस तरह के और अन्य सौदे इसलिए संभव हो पाए क्योंकि इक्विटी बाजार में तेजी थी और जीआईसी राइज या कैंट्रिपल जैसी इकाइयां अभी तक सूचीबद्ध नहीं थीं।
व्यवस्था ने इसकी अनुमति दी। चालाक और बेईमान लोगों ने मिलकर कमजोर और अज्ञानी लोगों को ठगा, जो इसलिए अज्ञानी बने रहे क्योंकि उनके पास ऐसा न होने का कोई कारण ही नहीं था। बैंकिंग प्रणाली की निगरानी करने वाली आरबीआई केवल देखती रही। वास्तव में, उसने वह भी नहीं किया। उसे बस यह पता ही नहीं था कि व्यवस्था कितनी सड़ चुकी है। शेयर बाजार की स्थिति और भी बदतर थी। उन्हें मुद्रा बाजार की तुलना में अधिक संगठित माना जाता था, हालांकि वे कम अपारदर्शी नहीं थे और इसलिए किसी भी नियामक संस्था की दृष्टि से पूरी तरह बाहर थे।
1991-92 में जब मुद्रा बाजार और इक्विटी बाजार की उथल-पुथल एक साथ आई, तो इसने जर्जर व्यवस्था को आंधी की तरह झकझोर दिया। अचानक, बाजार के खिलाड़ियों की प्रोफाइल, उनके अवैध सौदे, बैंक-ब्रोकर गठजोड़ सब सबके सामने आ गए। चूंकि इसके बारे में बहुत कम जानकारी थी, इसलिए सभी ने स्तब्ध होकर अविश्वास जताया। ब्रोकर खुद भी हैरान रह गए। जब व्यक्तियों पर बंदूकें तानी जा रही थीं,

तब भी इस बात पर गहराई से पुनर्विचार किया जाना चाहिए था कि व्यवस्था कितनी भ्रष्ट थी। दुर्भाग्य से, ऐसा नहीं हुआ।
यह घोटाला केवल व्यक्तियों तक सीमित नहीं था। लेकिन जनता की कल्पना एक या दो बैंकों और उससे भी महत्वपूर्ण, एक व्यक्ति पर टिकी हुई थी, जिसे इस पूरे मामले का मुख्य खलनायक माना जा रहा था। उसका जीवन और उसके सौदे एक रोचक कहानी बनाते हैं। नाम: हर्षद मेहता।

4

एक अनुभवहीन व्यक्ति

वह यह देखने के लिए आया कि शेयर बाजार की दुनिया अपनी अदृश्य धुरी पर कैसे घूमती है। उस दोपहर हर्षद मेहता के जीवन में एक नया अध्याय शुरू हुआ। यह एक अपरिचित दुनिया थी एक ऐसी दुनिया जो 10 साल बाद उसका साम्राज्य बनने वाली थी।

वर्ष 1971 था और स्थान रायपुर, मध्य प्रदेश का एक अर्ध-औद्योगिक शहर, जो बॉम्बे को कलकत्ता से जोड़ने वाले मुख्य मार्ग पर स्थित है। वहाँ, एक छोटे से निजी स्कूल में, एक उद्दंड, उद्दंड 16 वर्षीय लड़का अपने सहपाठियों और शिक्षकों के लिए जीवन मुश्किल बना रहा था। जन्म से गुजराती होने के बावजूद, वह हिंदी में विशेष रूप से कमजोर था। हिंदी शिक्षिका सुश्री घोष को उसकी शरारतों से निपटना, उससे होमवर्क करवाना और उसे कक्षाओं में उपस्थित करवाना मुश्किल लगता था। एक सुबह, असहनीय रूप से सहन करने पर, उन्होंने प्रधानाचार्य से शिकायत की। प्रधानाचार्य ने लड़के को बुलाया। उन्होंने कहा, "अपने पिता से कहो कि वे मुझसे मिलें।"
यह सुनकर लड़का बुरी तरह डर गया क्योंकि उसके पिता बहुत सख्त मिजाज के थे। घर लौटने के बजाय, वह फिल्म देखने चला गया। फिर उसने श्री साहू नामक एक बुजुर्ग दिखने वाले व्यक्ति को अपने साथ लिया और उन्हें प्रधानाचार्य के सामने पेश किया। "मेरे

पिता शहर में नहीं हैं। इसलिए मैं इस सज्जन को लाया हूँ। ये मेरे चाचा हैं।" श्री साहू ने प्रधानाचार्य की शिकायतें ध्यान से सुनीं और उस उद्दंड लड़के का ख्याल रखने का वादा किया।
यह एक चालाकी भरी चाल थी। इतनी चालाकी भरी कि 16 साल का शरारती लड़का इसे छुपा नहीं सका। जल्द ही वह कक्षा में शेखी बघारने लगा कि उसने सुश्री घोष और प्रधानाचार्य को बेवकूफ बना दिया है। यह एक बहुत बड़ी गलती थी। उसके दुश्मनों में से एक ने भेद खोल दिया।
प्रधानाचार्य क्रोधित हो गए और तुरंत उसे स्कूल से निकाल दिया। उसके पिता भी उतने ही क्रोधित थे और उन्होंने उसे पारिवारिक दुकान में काम पर लगा दिया। लड़के को हर सुबह 8 बजे दुकान खोलनी पड़ती थी। वह अपने दोस्तों और अपने पसंदीदा खेल क्रिकेट से कट गया।
हर्षद शांतिलाल मेहता के बारे में जितनी भी रोचक कहानियां हैं, उनमें से यह सबसे मार्मिक है। बीस साल बाद, कहानी एक विशाल, कहीं अधिक जटिल और पीड़ादायक रूप में दोहराई गई। जैसे उसने अपने पिता की जगह लेने की कोशिश की, वैसे ही उसने स्टेट बैंक ऑफ इंडिया से निकाले गए करोड़ों रुपये की जगह लेने की कोशिश की। जैसे उसने अपने सहपाठियों के सामने अपनी इस चाल का बेवजह बखान किया, वैसे ही हर्षद ने अपना घर, टोयोटा लेक्सस और 26 करोड़ रुपये का टैक्स रिटर्न दिखाया। जैसे ही उसके एक सहपाठी ने चुगली की, बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज में उसके एक प्रतिद्वंद्वी ने उस पर आयकर विभाग का छापा मरवा दिया। और जैसे उसे अपने पिता की दुकान में बंदी बनाकर रखा गया था, वैसे ही हर्षद को महीनों जेल में बिताने पड़े, जहां उसे एक आम अपराधी की तरह पीटा गया और अपमानित किया गया।

दो दशकों के अंतराल में घटी ये दो घटनाएँ हर्षद मेहता नामक एक विलक्षण व्यक्तित्व की शुरुआत और अंत को दर्शाती हैं, हालाँकि एक गिरी हुई पेनी स्टॉक की तरह उन्होंने 1998 में वापसी करने की कोशिश की। उद्दंड और भोले-भाले हर्षद, चार भाइयों में सबसे बड़े, एक गुमनाम फिजूलखर्ची से भारत के सबसे प्रसिद्ध वित्तीय "अपराधी" के रूप में उभरे, जो पूरे देश के लिए जिज्ञासा का केंद्र बन गए।
उन्होंने रायपुर के स्कूल में वापस दाखिला नहीं लिया और निजी तौर पर स्कूल छोड़ने की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1973 में, वे अपने मामा के साथ पूर्वी उपनगर घाटकोपर में बॉम्बे (जहाँ उन्होंने अपने जीवन के पहले नौ वर्ष बिताए थे) लौट आए। खराब स्वास्थ्य के कारण हर्षद के पिता, शांतिलाल मेहता को 1964 में बॉम्बे में सूत और कपड़े बेचने का अपना व्यवसाय छोड़ना पड़ा और रायपुर चले गए। वहाँ उनका स्वास्थ्य तो सुधर गया, लेकिन उनका व्यवसाय नहीं। 1970 के दशक के मध्य तक, परिवार वित्तीय संकट का सामना कर रहा था। हर्षद, वहाँ के जीवन से तंग आकर, भाग्य की तलाश करने वालों के मक्का और भारत की वित्तीय राजधानी लौट आए।
बंबई में, उन्हें लाला लाजपत राय कॉलेज में दाखिला मिला - उनकी अकादमिक प्रतिभा के कारण नहीं, बल्कि एक क्रिकेटर के रूप में उनकी क्षमताओं के कारण। मेहता के अधिकांश कार्यों की तरह ही, एक अनोखे संयोजन में, वे बाएं हाथ के लेग स्पिनर और दाएं हाथ के बल्लेबाज थे। हालांकि, हर्षद, जो शायद रायपुर में रहते तो मध्य प्रदेश राज्य टीम के लिए खेलते, उन्होंने कभी कॉलेज टीम के लिए नहीं खेला। इसके बजाय, उन्होंने अपनी काफी ऊर्जा पैसे कमाने में लगाई। इस प्रकार, जब उन्होंने 1977 में वाणिज्य स्नातक की डिग्री प्राप्त की, तो वह मुश्किल से उत्तीर्ण अंकों के साथ थी।

कॉलेज के दिनों में हर्षद ने खूब पैसा कमाने का सपना देखा था, लेकिन उनके व्यापारिक विकल्प बेहद सीमित थे। तत्कालीन बीएसई अध्यक्ष हेमेंद्र कोठारी, जिनसे बाद में उनकी अनबन हुई, या उनके मंगेतर नेमिश शाह, जिनके साथ उन्होंने बीएसई के इतिहास में सबसे बड़े बुल रन में से एक को अंजाम दिया, के विपरीत, हर्षद एक समृद्ध परिवार में पैदा नहीं हुए थे। उनके पास न तो पूंजी थी और न ही कोई संपर्क। इसलिए उनके लिए एकमात्र रास्ता ट्रेडिंग ही था, जिसकी शुरुआत उन्होंने डिलीवरी के काम से की। कॉलेज के तीन वर्षों में, हर्षद ने प्लास्टिक स्क्रैप, होज़री और सीमेंट जैसी चीजें बेचीं, और कई बार कारखानों तक सामान ढोया। शायद यही पहली बार था जब वे सीमेंट कंपनी एसीसी से परिचित हुए, जिसके शेयर को उन्होंने पंद्रह साल बाद आसमान की ऊंचाइयों तक पहुंचाया।

जून 1976 में, हर्षद के भाई अश्विन उनके साथ बॉम्बे आ गए और 29 दिसंबर को आईसीआईसीआई में काम शुरू किया। दो साल बाद, पारिवारिक व्यवसाय बर्बाद हो जाने पर, मेहता परिवार रायपुर से निकलकर हमेशा के लिए बॉम्बे आ गया। शांतिलाल मेहता चौदह साल बाद बंबई लौट रहे थे, जिसे परिवार में मज़ाक में "राम का वनवास" कहा जाता था।
इसी बीच, 1974 में, हर्षद के बंबई आने के एक साल बाद, उनकी मुलाकात ज्योति से डांडिया रास के दौरान हुई, जो गुजरातियों का एक सामूहिक गायन और नृत्य समारोह है और अक्सर पूरी रात चलता है। हर्षद उसी परिसर में क्रिकेट खेलते थे जहाँ ज्योति रहती थीं।
मुलाकात के पाँच साल बाद, उन्होंने शादी कर ली और घाटकोपर से

कुछ किलोमीटर दूर स्थित एक श्रमिक वर्गीय इलाके विक्रोली में रहने लगे।
1977 में, कॉलेज से स्नातक होने के तुरंत बाद, हर्षद ने न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी में क्लर्क के रूप में काम शुरू किया, जहाँ उन्हें मात्र 600 रुपये प्रति माह वेतन मिलता था। उन्हें हल विभाग में तैनात किया गया था, जहाँ वे समुद्री बीमा दावों का प्रसंस्करण करते थे। एक साल के भीतर ही, शेयर बाजार ने उन्हें आकर्षित कर लिया। उन्होंने चुपके से कुछ सौ रुपये का दांव लगाकर बाजार में प्रवेश किया। इससे प्रभावित होकर, उन्होंने 1978 में निवेश विभाग में तबादला करने का अनुरोध किया।
लेकिन हर्षद मेहता ने अभी तक अपने करियर के बारे में कोई फैसला नहीं किया था। शाम को वे हीरा बाजार जाया करते थे और हर सप्ताहांत गुजरात के दक्षिणी जिले सूरत जाते थे, जहाँ से वे कच्चे हीरे खरीदते, उन्हें पॉलिश करवाते और फिर बेच देते थे। हर सप्ताहांत की यात्रा पर उन्हें लगभग 200 रुपये की कमाई होती थी।
1979 के अंत तक वे निराश महसूस कर रहे थे। लगभग हर व्यवसाय में हाथ आजमाने के बावजूद, वे धनवान बनने की राह से बहुत दूर थे। वे अभी तक घर खरीदने के लिए पर्याप्त पैसे नहीं बचा पाए थे। 1979 के अंत में, एक रात, परिवार के सदस्य लगभग हर दिन की तरह रात के खाने के बाद बातचीत के लिए इकट्ठा हुए। काफी रात हो चुकी थी - लगभग 12 बजे - और अश्विन, जो तब तक ICICI छोड़कर यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया में शामिल हो चुके थे, भविष्य के बारे में खुलकर सोच रहे थे। उन्होंने कहा, "सफल होने के लिए हमें संपर्क और पूंजी चाहिए।" उनके पास दोनों ही नहीं थे। उन्होंने आगे कहा, "इसके

अलावा, हीरा बाजार मंदी में है। हमें कहीं और देखना होगा।" फिर उन्होंने सुझाव दिया: “चलिए दोपहर में शेयर बाजार चलते हैं।” उनका लंच ब्रेक एक घंटे का होता था। अश्विन बताते हैं, “हम पंद्रह मिनट में अपना लंच खत्म करके बाजार की ओर दौड़ पड़ते थे।” बीएसई की गगनचुंबी इमारत अभी बनी नहीं थी। बगल की तीन मंजिला इमारत में एक ट्रेडिंग रिंग हुआ करती थी, जहाँ दलाल और बिचौलिए सौदे करते थे। यह रिंग एक आरक्षित क्षेत्र था, जो केवल बिचौलियों और दलालों के लिए खुला था। हर्षद सिर्फ एक दर्शक था। लेकिन उसके मन में अंदर जाकर सौदे करने की तीव्र इच्छा थी। उसने चौकीदार को मना लिया और शेयरों की दुनिया को अपनी अदृश्य धुरी पर घूमते देखने के लिए अंदर चला गया। उस दोपहर हर्षद मेहता के जीवन में एक नया अध्याय शुरू हुआ। एक बिल्कुल अपरिचित दुनिया जो दस साल बाद उसका साम्राज्य बनने वाली थी। मेहता को पता नहीं था कि लगभग उसी समय, बीएसई रिंग एक अन्य व्यक्ति का खेल का मैदान बन रही थी, जो उससे कई साल छोटा था। वह नेमिश शाह था, जिससे हर्षद का कोई मेल नहीं था। हर्षद उद्दंड था, नेमिश संयमित; हर्षद के पास जेब में पैसे नहीं थे, नेमिश एक समृद्ध परिवार से था; हर्षद का हिसाब-किताब अस्त-व्यस्त था, जबकि नेमिश का व्यवस्थित था। लेकिन दोनों में एक बात समान थी: शेयर बाजार में बड़ा नाम कमाने की चाहत।
हर्षद ने सबसे पहले एक जॉबर बनने का फैसला किया, जिसका काम इशारों और चिल्लाकर खरीदारों और विक्रेताओं का मिलान कराना था।
जॉबर बनना आसान नहीं है। इसके लिए ब्रोकर का समर्थन ज़रूरी था। हर्षद पी. अंबलाल के पास गया और उनसे जॉबर का बैज देने का अनुरोध किया। अंबलाल ज़्यादा इच्छुक नहीं थे। इसलिए हर्षद ने उन्हें

अपनी समझाने की कला दिखाई। "आपके दो बेटे हैं। मुझे तीसरा मान लीजिए।" अंबलाल मान गए। हर्षद ने उनके साथ जॉबर का काम करने का अनुबंध किया, जिसमें लाभ और हानि पर कुछ सीमाएँ तय थीं।
उसकी शुरुआत बेहद खराब रही, पहले ही लेन-देन में उसे 2000 रुपये का नुकसान हो गया। अंबलाल नाराज़ हो गए और उसे बाज़ार में जाने से रोक दिया। हर्षद ने एक और मौका पाने के लिए गिड़गिड़ाया। यह एक नियमित सिलसिला बन गया था। हर्षद का भविष्य प्रतिदिन तय होता था, और हर दिन के अंत में पूरी तरह से उस दिन के प्रदर्शन पर निर्भर करता था। लेकिन उन अनिश्चित महीनों और वर्षों ने उन्हें अपने कौशल को निखारने का अवसर दिया। अश्विन का दावा है, "हर्षद सबसे कुशल जॉबर्स में से एक और सर्वश्रेष्ठ मार्केट मेकर्स में से एक बनकर उभरे।"
लेकिन एक कुशल जॉबर की भी अपनी सीमाएं होती हैं। हर्षद समझ गए थे कि बाजार में आगे रहने के लिए उन्हें पहले से ही सटीक जानकारी की आवश्यकता है। जल्द ही उन्हें एक तरीका मिल गया। वह प्रीमियर ऑटो के शेयरों के लिए जॉबर का काम करते थे। एक दिन, 1980 में, उन्होंने अखबार में एक छोटी सी खबर देखी जिसमें लिखा था कि प्रीमियर ने अपनी कारों की कीमतों में भारी वृद्धि की घोषणा की है। हर्षद ने अनुमान लगाया कि इससे कंपनी को अप्रत्याशित लाभ होगा। लेकिन बढ़ी हुई कीमत का लाभ उठाने के लिए उन्हें अभी भी यह जानना आवश्यक था कि प्रीमियर प्लांट वास्तव में कितना उत्पादन कर सकता है।
वह बॉम्बे के बाहरी इलाके में स्थित कारखाने में गए और उन्हें पता चला कि उसका भविष्य उग्रवादी नेता दत्ता सामंत (जिन्हें बाद में गोली मार दी गई) के नेतृत्व वाले श्रमिक संघों के हाथों में था। हर्षद ने अपना ध्यान श्रमिक नेताओं पर केंद्रित किया।

उनमें से एक विक्रोली में रहता था, जो हर्षद के निवास से बहुत दूर नहीं था। हर्षद ने उसे प्रीमियर के दैनिक उत्पादन आंकड़े उपलब्ध कराने के लिए राजी किया ताकि उत्पादन में गिरावट आने पर वह श्रमिक अशांति के पहले संकेतों का पता लगा सके। उन्होंने श्रमिक मोर्चे पर किसी भी महत्वपूर्ण घटनाक्रम से अवगत रहने के लिए अपने संपर्कों को और बढ़ाया।
प्रीमियर के भविष्य को तय करने वाले महत्वपूर्ण कारक को निर्धारित करने और उस पर नज़र रखने का हर्षद का प्रयास, उस समय शेयर बाजार में किए गए शोध का एक कच्चा प्रयास था, जब शेयर बाजार आज की तुलना में कहीं अधिक जुआघर जैसा था, जो पूरी तरह से अफवाहों, अटकलों और धन बल पर ऊपर-नीचे होता था। इस तरह का शोध, जो दुनिया भर में शेयर व्यापार की रीढ़ है, 1980 के दशक के उत्तरार्ध में कुछ युवा स्टॉकब्रोकरों के बीच लोकप्रिय हो गया। अमेरिका में, प्रीमियर के बारे में हर्षद द्वारा विशेषाधिकार प्राप्त जानकारी का उपयोग इनसाइडर ट्रेडिंग के रूप में वर्गीकृत किया जाएगा। हालांकि, नवंबर 1992 तक भारत में इनसाइडर ट्रेडिंग गैरकानूनी नहीं थी, जिसका हर्षद और अन्य लोगों ने 1991-92 के उत्तरार्ध के तेजी के दौर में भरपूर फायदा उठाया। कानून लागू होने के बाद भी, भारतीय बाजार में इनसाइडर ट्रेडिंग बेरोकटोक जारी रही।
उसी वर्ष के अंत तक, हर्षद की स्थिति सुधरने लगी थी और अगले वर्ष तक वह गरीबी की बेड़ियों को तोड़ने के रास्ते पर था। नौकरी करने से न केवल उसे पर्याप्त पैसा मिला, बल्कि बाजार की गहरी समझ भी मिली। अब वह आत्मविश्वास से पोजीशन लेने लगा था, यानी अपने खाते में ट्रेडिंग करने और उससे होने वाले लाभ और हानि के लिए

जिम्मेदार होने लगा था। इससे हर्षद के अच्छे और बुरे दोनों पहलू सामने आए।
वह ट्रेडिंग फ्लोर पर तो बहुत कुशल था, लेकिन हिसाब-किताब रखने में बेहद लापरवाह था। विवादित लेन-देन (जहां उसकी खरीद/बिक्री दूसरे पक्ष से मेल नहीं खाती थी) की सूची बहुत लंबी थी और उसकी जेबें आपत्ति पत्रों से भरी रहती थीं। यह आने वाली समस्याओं का पूर्वाभास था। 1991-92 में हर्षद द्वारा संचालित तेज़ी के दौर में, उन्होंने अपने निवेश और जोखिमों के बारे में पूरी तरह से अनजान रहते हुए अंधाधुंध निवेश किया।
फिर भी, 1982 तक हर्षद ने अभूतपूर्व तरक्की कर ली थी। उन्होंने इतना पैसा कमा लिया था कि 1981 की शुरुआत में पश्चिमी उपनगर कांदिवली में 1,65,000 रुपये में एक घर खरीद लिया। मुनाफे का एक हिस्सा हर्षद के भाई अश्विन और उनकी बहन की शादी में भी खर्च किया गया, जो दिसंबर 1981 में एक ही दिन हुई थी।

1982 में भी कारोबार में तेज़ी जारी रही और अश्विन ने 19 फरवरी को यूटीआई छोड़कर हर्षद के साथ काम करना शुरू कर दिया। उसी वर्ष हर्षद ने अपने शोध का दायरा बढ़ाकर श्री सिंथेटिक्स, नेशनल रेयॉन और ग्रेट ईस्टर्न शिपिंग जैसी कंपनियों के शेयरों तक कर लिया। उन्होंने जल्दी मुनाफा कमाने के लिए एक और तकनीक भी अपनाई: कम कारोबार वाले शेयरों की जल्दी पहचान करना, बहुत कम समय में भारी मात्रा में शेयर खरीदकर उनकी कीमत बढ़ाना और फिर उस ब्लॉक का एक हिस्सा बेच देना। सही तरीके से करने पर, बहुत कम पूंजी से भारी मुनाफा कमाया जा सकता था। हर्षद ने नेमिश शाह के साथ मिलकर ब्लो प्लास्ट और भारत गियर्स पर कब्ज़ा करने की योजना बनाई। लेकिन यह एक बहुत महत्वाकांक्षी योजना थी। वे

खरीदते रहे, लेकिन कीमत में मामूली वृद्धि ही हुई। वे अपनी शुरुआती निवेश राशि वसूलने के लिए पर्याप्त शेयर नहीं बेच पाए और जल्द ही उनकी सारी पूंजी खत्म हो गई। "हर्षद अभिमन्यु की तरह थे," अश्विन महाभारत के पात्र का जिक्र करते हुए याद करते हैं। "उन्हें प्रवेश करना तो आता था, लेकिन बाहर निकलना नहीं आता था।"
लेकिन वे अनुभव बहुत ही रोमांचक थे, उत्साह और निराशा के छोटे- छोटे चक्र। जीत और हार को कम करने के रोमांच ने हर्षद को एक उत्कृष्ट बाजार निर्माता बना दिया, ये कौशल उन्होंने बाद में मनी मार्केट में लागू किए। तब तक उन्होंने अपनी एक अलग शैली विकसित कर ली थी: अपने अंतर्ज्ञान पर भरोसा करना और बिजली की गति से प्रतिक्रिया देना। यह अश्विन की शैली से बिल्कुल विपरीत था, जो अधिक सोच-समझकर और शोध पर आधारित थी। फिर आया काला गुरुवार।

यह 18 मार्च 1982 का दिन था और बाजार शांत माहौल में खुला था। दोपहर 1:30 बजे तक... ऐसा लग रहा था कि दो घंटे का कारोबार बिना किसी हलचल के बीत जाएगा। दोपहर 1:50 बजने के बाद जैसे-जैसे समय बीतता गया, थोड़ी-बहुत हलचल हुई। फिर अचानक पूरा बाजार उथल-पुथल में डूब गया। अगले 15 मिनट तक बाजार में अफरा-तफरी मची रही और सदी की सबसे तेज गिरावट दर्ज की गई। हर्षद लगभग बर्बाद हो गया। इस अचानक आई गिरावट का कोई स्पष्ट कारण नहीं था। बकाया बिक्री पर लगने वाले कैरी-फॉरवर्ड शुल्क में हेराफेरी की गई थी और किसी अदृश्य शक्ति ने बिक्री को बढ़ावा दिया था। जाहिर तौर पर, बाजार अंदर से खोखला था और इसलिए आसानी से धराशायी हो गया। अश्विन याद करते हुए कहते हैं, "कीमतें एकदम से गिर गईं। छोटी-छोटी

खरीददारी में भी भारी नुकसान हुआ।" अश्विन उस दिन शेयर बाजार में थे और उन्होंने अपनी आंखों के सामने यह सब होते देखा। हर्षद ने उस दिन शेयरों की खरीद-बिक्री से बड़ा मुनाफा कमाया, लेकिन टिस्को, टेल्को, सेंचुरी और कुछ अन्य शेयरों में भारी नुकसान हुआ। उन पंद्रह मिनटों में ही उन्हें करीब 10 लाख रुपये का नुकसान हो गया। लेकिन कुछ दिन पहले ही उन्होंने इतने बड़े शेयर खरीदे थे कि वे 30 लाख रुपये तक का नुकसान झेल सकते थे। बाजार की उनकी गहरी समझ ने
उन्हें दिवालिया होने से बचा लिया। 18 मार्च की गिरावट से चार दिन पहले, हर्षद ने बिना किसी स्पष्ट कारण के अपने शेयर बेच दिए थे। फिर भी, 10 लाख रुपये के नुकसान ने मेहता परिवार को कंगाल कर दिया। हर्षद ने 1979-82 के बीच कमाए अपने मुनाफे में से लगभग 3 लाख रुपये एक दलाल के पास जमा कर रखे थे। इस तरह, मार्च के अंत तक उन्हें दलालों जेएल शाह और सुरेश नंदलाल शाह को 7 लाख रुपये देने थे। मार्च के अंत में एक सुबह, हर्षद, अश्विन और उनके पिता दोनों दलालों से मिलने जुहू गए। हर्षद के पिता ने उनसे कहा, “हमारे पास फ्लैट और कुछ गहनों के अलावा कोई संपत्ति नहीं है। आप इन्हें ले जा सकते हैं।” उन्होंने मेहता परिवार को घर रखने की अनुमति दे दी और भुगतान की एक समय-सीमा तय कर ली क्योंकि उन्हें अभी भी हर्षद के कौशल पर भरोसा था। लेकिन उन्होंने हर्षद का बैज छीन लिया और उसे बाज़ार से निकाल दिया। कुछ पैसे चुकाने के लिए हर्षद ने अपनी पत्नी के गहने गिरवी रख दिए। बहुत कम पैसे बचे होने के कारण, अश्विन और हर्षद अप्रैल और मई की गर्मी में बैठे-बैठे बाज़ार में फिर से हाथ आज़माने के तरीके ढूंढते रहे। दिलचस्प बात यह है कि अश्विन को कभी इस बात का पछतावा नहीं हुआ कि उन्होंने मूत्र मार्ग संक्रमण (UTI) के

कारण अपनी सुरक्षित नौकरी छोड़ दी थी और अब वे मुश्किल में थे। डीएस पुरभूदास के हेमेंद्र कोठारी और शितिन देसाई ने उन्हें श्रीलंका या बॉम्बे में काम करने का प्रस्ताव दिया था, लेकिन उन्होंने इसे ठुकरा दिया। उस वर्ष मई से दिसंबर तक, उनके परिवार का गुजारा हर्षद या अश्विन की आय से नहीं चल रहा था। यह आय अश्विन की नवविवाहित पत्नी दीपिका की थी। वह एक ब्यूटीशियन के रूप में फ्रीलांस काम करके हर महीने 10,000 रुपये तक कमा रही थीं।

फिर 7 जून 1982 की सुबह तड़के, 2 बजे, मात्र पचास वर्ष के शांतिलाल मेहता को दिल का दौरा पड़ा और उनका निधन हो गया। “अगर उन्हें अस्पताल में भर्ती कराना पड़ता, तो हम बहुत मुश्किल में पड़ जाते। हमारे पास पैसे नहीं थे।” यह मृत्यु अश्विन और हर्षद के लिए एक बड़ा मनोवैज्ञानिक आघात था।
पिता की मृत्यु के कुछ सप्ताह बाद, दोनों भाई बॉम्बे के कपड़ा और सूत व्यापार केंद्र कालबादेवी में भारत भवन नामक एक इमारत में एक छोटे से दफ्तर में काम करने लगे। हर्षद के पिता ने बहुत पहले, जब वे कपड़े के व्यापारी थे, वहाँ एक दफ्तर किराए पर लिया था। किराया मात्र 250 रुपये था और दफ्तर एक ढकी हुई बालकनी थी जिसे चार लोग साझा करते थे। हर्षद ने मकान मालिक से पूछा कि क्या वे उसका इस्तेमाल कर सकते हैं। उन्होंने उनसे पूछा, "आप लोग क्या करने जा रहे हैं?" हर्षद ने जवाब दिया, "हम एक छोटी स्टॉक-ब्रोकिंग फर्म शुरू करना चाहते हैं।" मकान मालिक मान गया, लेकिन किराया बढ़ाकर 500 रुपये कर दिया।

17 अगस्त 1981 को, ग्रोमोर कंसल्टेंट्स की स्थापना एक साझेदारी फर्म के रूप में हुई।
जिसमें परिवार के चार साझेदार थे। पीछे मुड़कर देखें तो, मेहता परिवार को यह व्यवसाय शुरू करने का एक हास्यास्पद प्रयास लगा होगा।
वे मुश्किल से एक मेज और दो कुर्सियाँ ही रख पाते थे। अगर कोई आगंतुक आता,
तो हर्षद या अश्विन में से किसी एक को उठकर दफ्तर से बाहर जाना पड़ता था।
उनके पास टाइपराइटर नहीं था, क्योंकि उन्होंने अपने पिता की नई गोदरेज
मशीन को रिलायंस इंडस्ट्रीज को 3,000 रुपये में बेचकर शुरुआती पूंजी जुटाई थी।
इसलिए उन्होंने डी'मेलो नाम के एक टाइपिस्ट को इस शर्त पर काम पर रखा कि वह अपना टाइपराइटर खुद लेकर आए। जल्द ही किराए पर लिए गए टाइपराइटर और टाइपिस्ट ने ग्रोमोर के लिए पत्र छापने शुरू कर दिए। इन पत्रों में धनी व्यक्तियों से पोर्टफोलियो प्रबंधन योजनाओं के तहत शेयर बाजारों में निवेश करने के लिए अतिरिक्त धन की अपील की जाती थी। अश्विन कहते हैं, "ग्रोमोर की व्यावसायिक रणनीति इस विश्वास पर आधारित थी कि भारतीय निवेशकों को उचित सेवा और सलाह नहीं मिल रही थी।" मेहता परिवार को विश्वास था कि वे ग्राहकों को उच्च प्रतिफल दे सकते हैं। उन्होंने करीबी दोस्तों और रिश्तेदारों में ग्राहकों की तलाश शुरू की। अश्विन के ससुर पीसी शाह ने 4 लाख रुपये और चार्टर्ड अकाउंटेंट एचआर ध्रुव ने 1 लाख रुपये का योगदान दिया। कुछ लाख

रुपये जमा होने के बाद, मेहता परिवार ने चुनिंदा शेयरों का चयन शुरू किया।
जिन पहले छिपे हुए रत्नों की उन्होंने पहचान की, उनमें से एक चाय उद्योग था। चाय की कीमतें 3-4 रुपये प्रति किलो बढ़ गई थीं, लेकिन इसका असर चाय कंपनियों के शेयरों की कीमतों पर नहीं दिख रहा था। इसके अलावा, कुछ ऐसे शेयर भी थे जिनकी कीमत बेहद कम लग रही थी। मैकलियोड रसेल हर साल 20% लाभांश दे रहा था, लेकिन फिर भी उसके शेयर की कीमत मात्र 14 रुपये थी। मेहता परिवार ने इस शेयर को भारी मात्रा में खरीदा, साथ ही टाटा टी और हैरिसन्स एंड मलयालम के शेयर भी लिए। एक साल के भीतर ही चाय के शेयरों की कीमत आसमान छूने लगी।
मेहता परिवार दिन में सस्ते शेयर ढूंढता, दोपहर में ट्रेडिंग करता और शाम को ग्राहकों से मिलता था। उनकी मासिक ब्रोकरेज आय 1500-2000 रुपये के बीच थी, जिसमें 25 और 50 रुपये के कई चेक शामिल थे। लेकिन यह मेहनत सार्थक थी। अश्विन बताते हैं, "हर महीना बेहतर होता जा रहा था," क्योंकि हर्षद की जोशीली बिक्री रणनीति से दर्जनों ग्राहक जुड़ते जा रहे थे। अक्टूबर 1983 तक, वे कालबादेवी स्थित अपने छोटे से कार्यालय से निकलकर स्टॉक एक्सचेंज के पास एक बड़े कार्यालय में चले गए।
1984 की पहली तिमाही तक, मेहता परिवार को यह एहसास हो गया था कि ग्रोमोर ग्राहकों और फंड जुटाने का कठिन काम तो कर रहा था, लेकिन उप-ब्रोकर होने के नाते उन्हें फीस का केवल 50% ही मिलता था, जबकि जिन ब्रोकरों के माध्यम से वे कारोबार करते थे, वे लगभग कुछ भी न करके आधे मुनाफे पर कब्जा कर लेते थे। इसका स्पष्ट समाधान सदस्यता कार्ड खरीदना था। उसी वर्ष के मध्य में, हर्षद

ने बीएसई से एक कार्ड खरीदा और 12 दिसंबर 1984 से इसका उपयोग शुरू कर दिया।
"यह एक सपने के सच होने जैसा था," अश्विन कहते हैं। "हमने खुद को स्वतंत्र महसूस किया।" यह सही समय पर भी हुआ। भारतीय शेयर बाजार आजादी के बाद पहली बार उदार आर्थिक नीतियों के प्रभाव में आने वाले थे, जिसने कई दशकों में सबसे जोरदार तेजी का दौर शुरू किया।
अश्विन और हर्षद ने इस तेजी के दौर को पहचाना, इसका पूर्वानुमान लगाया और इससे भरपूर लाभ उठाया। अक्टूबर 1984 में, इंदिरा गांधी की हत्या कर दी गई। राजीव गांधी, नए और स्पष्ट दृष्टिकोण के साथ, सभी मोर्चों पर आमूलचूल परिवर्तन करने के लिए उत्सुक प्रतीत हुए। लेकिन प्रधानमंत्री बनने के बाद से उनकी आर्थिक सोच के बारे में बहुत कम जानकारी थी। इंडिया टुडे में छपे एक लेख ने उनके विचारों की झलक पेश की। मेहता परिवार ने इसे दिलचस्पी से पढ़ा।
1985 की शुरुआत में हर्षद और अश्विन को एहसास हुआ कि वे एक ऐसे अवसर के मुहाने पर खड़े हैं जो जीवन में एक बार ही आता है। अश्विन कहते हैं, "हम उन पहले लोगों में से थे जिन्होंने भविष्यवाणी की थी कि एक बड़ा आर्थिक उछाल आने वाला है।" उन्होंने अंधाधुंध खरीदारी शुरू कर दी, हर ग्राहक खाते में ज़रूरत से ज़्यादा शेयर खरीद लिए। उन्होंने इंद्रोल (अब कैस्ट्रोल के नाम से जाना जाता है) (हर्षद ने इतना ज़्यादा खरीदा कि बाज़ार में उन्हें 'मिस्टर इंद्रोल' के नाम से जाना जाने लगा), सदर्न पेट्रोकेमिकल्स इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन और जुआरी एग्रो में निवेश किया।

इसके बाद एक ज़बरदस्त आर्थिक उछाल आया जिसमें ग्रोमोर ने भारी मुनाफा कमाया - इतना कि मेहता परिवार को आंकड़े बताने में शर्म आती है। मुनाफा इतना ज़्यादा आया कि वे गिनती भूल गए। उसी साल उन्होंने नरीमन पॉइंट स्थित मेकर चैंबर्स IV में कार्यालय खरीदे। लेकिन तब तक, ग्रोमोर की प्रणालियों में कमियां सामने आने लगी थीं। अश्विन स्वीकार करते हैं, "हमें ब्रोकिंग फर्म चलाने का कोई अनुभव नहीं था," और इसी वजह से उन्होंने पूंजी आवश्यकताओं के उन विवेकपूर्ण मानदंडों का उल्लंघन किया जो पश्चिमी देशों में अनिवार्य हैं। उस समय, ग्रोमोर शायद बीएसई के रिकॉर्ड को ठीक से रखने की आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पा रहा था। वे अपना नियंत्रण खो रहे थे।
लेकिन 1985 निश्चित रूप से निर्णायक वर्ष था, हर्षद मेहता का वर्ष। बाजार ने उनकी तीव्र वृद्धि देखी और ग्रोमोर के पोर्टफोलियो प्रबंधन कौशल की चर्चा तेजी से फैलने लगी। लोग ग्रोमोर में निवेश करने के लिए कतार में लग गए। हालांकि, हर्षद की लोकप्रियता ने उनके प्रतिद्वंद्वियों, विशेष रूप से बीएसई के दिग्गज विश्लेषक मनु मानेक, जो एकांतप्रिय और प्रचार से दूर रहने वाले संचालक थे, के बीच ईर्ष्या के बीज बो दिए। मानेक लगभग एक समानांतर स्टॉक एक्सचेंज की तरह काम कर रहे थे, और अपने द्वारा निर्धारित कीमतों पर बड़े पैमाने पर ऑफ-मार्केट सौदे कर रहे थे। साल दर साल, मानेक ने बीएसई बोर्ड में अपने नामांकित व्यक्तियों को भर दिया और बीएसई में यूनियनों पर अपना नियंत्रण बनाए रखा, जिसके कारण अक्सर अजीब समय पर हड़तालें और कार्यालय बंद होते थे।
अजीब बात यह है कि इस दौरान हर्षद का उदय लगभग यूटीआई की मदद के बिना हुआ, जो इक्विटी बाजार में सबसे बड़ा और सबसे प्रभावशाली

खिलाड़ी था। ऐसा माना जाता था कि यूटीआई के कारोबार के बिना कोई भी इतना बड़ा नहीं हो सकता। उनका दबदबा इतना अधिक था कि ब्रोकर सुबह 8 बजे से ही केएन आत्मारामानी के कार्यालय के बाहर ऑर्डर पाने के लिए इंतजार करते थे। अश्विन का दावा है कि वह उनमें से नहीं थे। वे कहते हैं, "1982 में यूटीआई छोड़ने के बाद मैंने जानबूझकर उससे दूर रहने का फैसला किया था।" फरवरी 1985 में किसी समय, अश्विन अपने पूर्व बॉस आत्मारामानी से मिले और मेहता परिवार ने यूटीआई के लिए कारोबार शुरू किया। लेकिन जल्द ही, अन्य पसंदीदा ब्रोकरों ने कानाफूसी शुरू कर दी: "वे सट्टेबाज हैं", आरोप लगाया गया। "उन्होंने ग्राहकों के पोर्टफोलियो से शेयर यूटीआई में डाल दिए हैं।" यूटीआई के साथ उनका जुड़ाव फरवरी 1985 में शुरू हुआ और जून तक यह ठंडा पड़ गया था।
अगस्त-सितंबर 1985 में, अश्विन ब्रोकिंग फर्मों और लंदन स्टॉक एक्सचेंज के कामकाज का अध्ययन करने के लिए लंदन गए, यह उनकी पहली विदेश यात्रा थी। उन्हें अनुभव की आवश्यकता थी। बड़े पैमाने पर और अंधाधुंध ट्रेडिंग ने ग्रोमोर के खातों को बुरी तरह से गड़बड़ कर दिया था। दिसंबर 1985 में, जब बाजार दो सप्ताह के लिए बंद था, मेहता बंधुओं और परिवार के कुछ अन्य सदस्यों ने भी कार्यालय में रहकर लंबित काम निपटाया। उन्हें जरा भी अंदाजा नहीं था कि बस कुछ ही पलों में एक बड़ी आपदा उनका इंतजार कर रही थी - हर्षद मेहता के ब्रोकिंग करियर की दूसरी आपदा।

26 फरवरी को, एसपीआईसी ने 1:1 बोनस पर विचार करने के लिए एक बोर्ड बैठक की घोषणा की।
बोनस तो मिला, लेकिन कीमत उतनी नहीं बढ़ी जितनी हर्षद को उम्मीद थी।

दो दिन बाद, वीपी सिंह के बजट ने
दीर्घकालिक राजकोषीय नीति के कुछ उदार प्रावधानों को हटा दिया, जिनका वादा
ठीक एक साल पहले किया गया था। बाजार में लंबे समय तक मंदी का दौर चला।
सबसे पहले SPIC और उसके परिणामस्वरूप हर्षद को नुकसान हुआ। अब मनु
मानेक के वार करने का समय था।
मार्च 1986 में, उन्होंने SPIC को बुरी तरह से गिरा दिया और अफवाहें फैलने लगीं कि हर्षद अपना वादा पूरा नहीं करेंगे, जबकि उनके पास BSE में एक करोड़ रुपये की मार्जिन राशि जमा थी। शेयर बाजार की उपजाऊ सट्टेबाजी वाली जमीन पर अफवाहें जोर पकड़ने लगीं, तो मानेक और उनके साथियों ने गुप्त रूप से बैठक करके चार दिन की छुट्टी के बाद बाजार खुलते ही एक और हमले की योजना बनाई। लेकिन हर्षद के भी अपने दोस्त थे। उसी दिन रात 10 बजे, दोनों गुटों के करीबी एक ब्रोकर हर्षद के नरीमन प्वाइंट स्थित कार्यालय में घुस आए और सारी बात बता दी। अश्विन और हर्षद ने पूरी रात अपने कंप्यूटर चलाए और सुबह 8 बजे तक अपनी स्थिति, आवश्यक मार्जिन और देनदारियों का जायजा ले लिया।
फिर वे नरभराम हरकचंद पारेख के पास गए, जो एक बड़े संस्थागत ब्रोकर थे और जिन्होंने हर्षद की सदस्यता प्रायोजित की थी, और उनसे सलाह मांगी। उन्होंने सलाह दी, "आपके संभावित डिफ़ॉल्ट की अफवाह को खत्म करने का सबसे अच्छा तरीका है कि आप भुगतान कर दें।" संयोगवश, नरभराम हरकचंद बाद में एनएच सिक्योरिटीज में परिवर्तित हो गया और उसने भारत को अगला बड़ा बुल, केतन पारेख दिया। भाग्य का एक अजीब मोड़ यह था कि 1999 में, जब केतन एक साल

में शेयरों की कीमतों को दस गुना बढ़ा रहे थे, तब अश्विन हर कदम पर उनका साथ दे रहे थे और उन्हें सलाह दे रहे थे। खैर, मेहता परिवार ने बीएसई के कार्यकारी निदेशक एमआर मय्या से संपर्क किया और उनसे कहा, “हम अपना सारा बकाया चुकाने के लिए तैयार हैं। कृपया बोर्ड को सूचित करें कि हर्षद का भुगतान आ गया है और इस खबर को नोटिस बोर्ड पर लगा दें।” मय्या ने कहा, “मैं इसे नोटिस बोर्ड पर नहीं लगा सकता, लेकिन यह सुनिश्चित करूंगा कि कोई भी झूठी अफवाहों के आधार पर बाजार में हेराफेरी न करे।” उसी सप्ताहांत मेहता परिवार ने एक पत्र तैयार किया जिसमें यह दावा किया गया था कि हर्षद भुगतान में चूक नहीं करने वाला है, उसे चेक के साथ संलग्न किया और सोमवार सुबह जमा कर दिया। हर्षद के भुगतान की खबर जंगल की आग की तरह फैल गई। मय्या ने बोर्ड की बैठक बुलाई और उसमें भी इसकी घोषणा की। मंदी के माहौल में सन्नाटा छा गया। हर्षद ने चौदह दिन पहले ही भुगतान कर दिया था। अश्विन का दावा है कि दुर्भाग्यवश, कई ग्राहकों ने नुकसान की भरपाई करने से इनकार कर दिया और ग्रोमोर को नुकसान खुद वहन करना पड़ा।
इससे हर्षद के संचालन की एक और कमजोरी उजागर हुई: अपने और ग्राहकों के खातों पर सट्टा लगाना। इससे एक महत्वपूर्ण रणनीति भी सामने आई: फंडिंग के लिए बाजार पर निर्भर न रहना। इससे तेजी के दौर में भी बाजार मंदी के दबाव में आ जाता है क्योंकि बाजार को हमेशा तेजी के दौर की जानकारी मिल जाती है। हर्षद, नेमिश शाह और पल्लव शेठ सभी ने बाहरी स्रोतों से धन जुटाया। यह या तो कॉर्पोरेट धन था या बैंक निधि। मार्च 2001 में इतिहास ने खुद को दोहराया। बीएसई के अध्यक्ष आनंद राठी पर केतन पारेख की बाजार स्थिति का पता लगाने की कोशिश करने का आरोप लगा।

2 मार्च 2001 को उन्हें पद छोड़ने के लिए कहा गया, जबकि केतन पारेख मंदी के दौर में फंडिंग जुटाने की कोशिश कर रहे थे।
इस विफलता से हर्षद को असहनीय नुकसान तो नहीं हुआ, लेकिन
उनकी कुल संपत्ति का 1.5 करोड़ रुपये का नुकसान हो गया। उनके पास संपत्ति तो थी, लेकिन वे फिर से शुरुआती बिंदु पर आ गए। स्पष्ट था कि ग्रोमोर को नए सिरे से संगठित करना आवश्यक था। हर्षद और अश्विन समझ गए थे कि ग्राहकों के पैसे को जोखिम में डालना उनके लिए संभव नहीं है, भले ही 1982 से ग्रोमोर ने औसतन हर साल 80% से अधिक का रिटर्न दिया था। अश्विन कहते हैं, "हमने अपने पोर्टफोलियो को साफ किया और अपने सभी ग्राहकों से कहा कि वे अपना निवेश कहीं और करें।" इसी बीच हर्षद अमेरिका और कनाडा की 45 दिन की यात्रा पर चले गए। इस पूरे समय परिवार कांदिवली में ही रह रहा था और अपनी पहली कार, प्रीमियर पद्मिनी का इस्तेमाल कर रहा था।
1986 की तीसरी तिमाही तक, मेहता बंधुओं ने नए सिरे से शुरुआत की। इस असफलता के बाद, अश्विन ने हर्षद से पूछा: "क्या आप ब्रोकर बने रहना चाहते हैं या निवेशक?" उन्होंने स्थिर और सम्मानजनक व्यवसाय के लिए संस्थागत ग्राहकों को लक्षित करना शुरू किया, हालांकि स्थिरता और सम्मान ही एकमात्र कारण नहीं थे जिनके चलते हर्षद ने सट्टेबाजी छोड़ दी।
सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि हर्षद समझ गए थे कि मार्जिन आवश्यकताओं के कारण भारतीय बाजारों में सट्टेबाज के लिए लगातार जीत हासिल करने का कोई मौका नहीं है। “अगर मार्जिन 40% है, तो हर 100 रुपये के लाभ पर आपको सिर्फ 60 रुपये मिलते हैं और हर 100 रुपये के नुकसान पर 140 रुपये देने पड़ते हैं। यह हर तरह से नुकसान वाली स्थिति है”, वे कहते हैं। “अब, संभावना का नियम

कहता है कि लंबे समय में आप एक बार जीतते हैं और एक बार हारते हैं। अगर आप लगातार दो बार जीतते हैं, तो अगली बार हारने की संभावना दोगुनी हो जाती है और संभावित नुकसान भी दोगुना हो जाता है। इसलिए जब नुकसान होता है, तो आप पूरी तरह से बर्बाद हो जाते हैं।”
हर्षद जल्द ही शीर्ष संस्थागत ब्रोकरों में से एक बन गए। लेकिन फिर भी उन्हें यूटीआई से कारोबार नहीं मिल रहा था। इसका एक कारण स्थापित ब्रोकरों का विरोध था, लेकिन एक और गंभीर कारण भी था। कहा जाता है कि यूटीआई ने गलती से हर्षद को वैम ऑर्गेनिक्स के कुछ शेयर भेज दिए थे, जिन्हें उन्होंने तुरंत बेच दिया।
हर्षद इस कहानी का खंडन करते हैं और यूटीआई के साथ अपनी समस्याओं पर चर्चा को निर्णायक स्वर में समाप्त करते हैं: “लोग मेरे बारे में अफवाहें फैलाते हैं।” जाहिर है, जब चेयरमैन एमजे फेरवानी को इस गड़बड़ी का पता चला, तो उन्होंने मेहता परिवार को बहिष्कृत कर दिया। दिलचस्प बात यह है कि फेरवानी ने बाद में हर्षद की तब मदद की जब उन्हें एसबीआई को चुकाने के लिए 622 करोड़ रुपये की जरूरत थी।
हर्षद कहते हैं कि यूटीआई उनके प्रति पक्षपाती था। उनकी रणनीति पहले बीमा कंपनियों जैसी अन्य सभी संस्थाओं के साथ प्रमुख ब्रोकर बनने की थी। वे कहते हैं, "हम यूटीआई से सबसे आखिर में निपटना चाहते थे।" यूटीआई बहुत बड़ा था। यह किसी भी ब्रोकर को बना या बिगाड़ सकता था। लेकिन सौभाग्य से, इसका दबदबा कम हो रहा था। कैनबैंक म्यूचुअल जैसे अन्य आक्रामक फंड सामने आए। हर्षद यूटीआई के साथ ज्यादा कारोबार किए बिना भी आगे बढ़ सकते थे। वे एक संस्थागत ब्रोकर बनने की राह पर थे। लेकिन यह काफी नहीं था। 1986 के बड़े संकट के बाद अश्विन द्वारा उनसे पूछे गए एक

सवाल की गूंज अभी भी उनके कानों में गूंज रही थी: "क्या आप जीवन भर ब्रोकर ही रहना चाहते हैं?" बेशक, वे नहीं चाहते थे। वे एक प्रिंसिपल बनना चाहते थे - अपने खाते से शेयर खरीदना और बेचना और मुनाफा अपने पास रखना। लेकिन इसके लिए बहुत बड़ी रकम की जरूरत थी - ऐसी रकम जो शेयर बाजार प्रणाली से बाहर थी। भारत में, बड़ी रकम के निवेश के लिए बैंक ऋण उपलब्ध नहीं है। तो हमेशा की तरह चतुर हर्षद ने एक नया शिकार खोज लिया: मुद्रा बाजार।
1987 से शुरू होकर हर्षद ने मुद्रा बाजार और शेयर बाजार दोनों में पांच वर्षों तक अभूतपूर्व वृद्धि दर्ज की, जिससे उन्होंने अपार व्यक्तिगत संपत्ति अर्जित की। लेकिन मुद्रा बाजार में हर्षद के प्रवेश ने एक भयंकर संघर्ष को भी जन्म दिया, जिसमें एक तरफ वह और दूसरी तरफ सिटीबैंक और उसके तीन वफादार ब्रोकर थे। इस संघर्ष को समझना हर्षद मेहता घोटाले की पूरी कहानी को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

5

द बिग बुल

“मैंने सोचा था कि मैं एक जादूगर की तरह बनूंगा। मैंने सोचा था कि मैं सपने बेचना शुरू कर सकता हूं क्योंकि किसी को तो आकर सपने बेचने की जरूरत थी, कि संपत्ति निर्माण कोई अपराध नहीं है....”

रविवार 26 अप्रैल को, टाइम्स ऑफ इंडिया द्वारा घोटाले की खबर प्रकाशित करने के तीन दिन बाद, जिसमें उनका नाम छुपाया गया था और उन्हें 'द बिग बुल' कहा गया था, हर्षद ने मुंबई के लीला केम्पिंस्की होटल में "सोना आयात योजना और भारतीय बाजार" शीर्षक वाले एक महत्वहीन सेमिनार में भाग लिया। वहाँ उन्होंने स्वीकार किया कि टाइम्स की कहानी वास्तव में उन्हीं के बारे में थी और दावा किया कि एसबीआई के साथ उनकी सुलह की समस्या हल हो गई है। उन्होंने एक अहम बात को छिपाने की कोशिश भी की: अपने शेयर खरीदने के लिए पैसे का स्रोत। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उनकी प्रतिभूति सुलह की समस्या का शेयर बाजार से कोई लेना-देना था।
उसी बैठक में, कर सलाहकार एचपी रानिना, जिन्होंने बीमार माज़दा इंडस्ट्रीज में अपना नियंत्रण हर्षद को बेच दिया था लेकिन अध्यक्ष पद बरकरार रखा था, ने हर्षद को शेयर बाजार का आइंस्टीन बताया, और उस व्यक्ति को सही किया जिसने पहले हर्षद को बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज का अमिताभ बच्चन कहा था। भारत के सबसे जाने- माने कर वकीलों में से एक रानिना की इस तरह की खोखली चापलूसी भी

भी। प्रभुदास लिल्लाधर, सी.जे. दलाल या महेंद्र कंपानी जैसे कोई भी दिग्गज पुराने स्टॉकब्रोकर मनी मार्केट में नहीं थे। न ही नेमिश शाह या पल्लव शेठ जैसे नए उभरते सितारे इसमें शामिल थे। तो आखिर हर्षद को इसमें आने के लिए किसने प्रेरित किया? इसके तीन कारण थे। पहला, बड़ी रकम तक पहुंच बनाने की ज़रूरत ताकि वह ब्रोकर की छवि से बाहर निकलकर एक निवेशक के रूप में उभर सकें। दूसरा, वह एक बेचैन स्वभाव के व्यक्ति थे जिन्हें अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए लगातार नए-नए विचारों की ज़रूरत थी। बैंकों, बीमा कंपनियों और म्यूचुअल फंडों के संपर्क में आने से उनके लिए मनी मार्केट की दुनिया खुल गई। तीसरा कारण अधिक सामान्य था। हर्षद अपनी आय के स्रोतों में विविधता लाना चाहते थे और स्टॉक ब्रोकिंग से होने वाली आय पर बहुत अधिक निर्भर नहीं रहना चाहते थे।
लेकिन हर्षद के मनी मार्केट में कदम रखने से यथास्थिति के खिलाफ एक संघर्ष शुरू हो गया। हर्षद याद करते हुए कहते हैं, “पहले छह महीनों तक मैंने सिर्फ बाजार का अवलोकन किया और पाया कि यह चार दलालों और एक बैंक का गढ़ था। बैंक सिटीबैंक था। और दलाल कलकत्ता के अजय कायन, भूपेन दलाल, जीतू श्रॉफ और हेमेंद्र कोठारी थे।” इसके अलावा, कोठारी, जिन्हें मनी मार्केट की सीमित समझ थी, का यूटीआई के साथ एक विशेष संबंध था। यूटीआई न केवल कोठारी की फर्मों के माध्यम से बड़े और लाभदायक स्टॉक ट्रेडिंग का संचालन करता था, बल्कि अन्य दलालों से मनी मार्केट सौदे भी हासिल करता था, उन्हें रद्द करता था और कोठारी को सौंप देता था। सिटीबैंक और तीन दलालों (भूपेन दलाल के अलावा) ने एक कार्टेल बनाया। सिटीबैंक ने जहां दिमाग का योगदान दिया, वहीं दलालों ने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के वित्त अधिकारियों को

“प्रभावित” करने की क्षमता और संपर्कों का योगदान दिया। ये दलाल सिटीबैंक के प्रति पूरी तरह से वफादार थे, ईमानदारी से लेनदेन करते थे और अच्छा ब्रोकरेज लाभ कमाते थे। जैसे ही हर्षद ने बाजार में प्रवेश किया, उसका सामना सिटीबैंक और उसके गिरोह से हुआ, जिन्होंने उसके साथ लेन-देन करने से इनकार कर दिया। सिटीबैंक के निवेश बैंकिंग प्रमुख ए.एस. थियागराजन ने कहा कि उन्होंने "हर्षद के साथ कभी लेन-देन नहीं किया क्योंकि मुझे उसका दिखावटी तरीका पसंद नहीं था।" इसके अलावा, सिटीबैंक के पास नए दलालों को अपने साथ जोड़ने का कोई कारण नहीं था क्योंकि कायन और गिरोह के अन्य सदस्य हमेशा उसकी बात मानने को तैयार रहते थे। हर्षद की राय अलग थी। “उन्हें डर था कि मैं मनी मार्केट में वही कर दूंगा जो मैंने स्टॉक मार्केट में किया था, जहाँ मैं केवल संस्थानों के साथ लेन-देन करता था और उन्हें अच्छे सौदे दिलाता था। कार्टेल ने सोचा, ‘हम इस आदमी के साथ जोखिम नहीं ले सकते।’ मैं उनके लिए खतरा था। इसलिए जब मैंने ट्रेडिंग शुरू की, तो खबर सिटीबैंक तक पहुँच गई, जो मनी मार्केट में प्रवेश और निकास को नियंत्रित करता था। और उसके ब्रोकरों में अजय कायन सरगना थे। वे हर मिनट हर सौदे पर मेरा पीछा करते थे, लेकिन मैं ब्रोकर बनकर नहीं रहना चाहता था। मैंने पोजीशन लेना शुरू कर दिया। सिटीबैंक के अनुसार, ब्रोकरों के लिए पोजीशन लेना अपराध था। लेकिन मैंने गुलाम बनने से इनकार कर दिया।”
अपने विशिष्ट अंदाज में, हर्षद ने कार्टेल की आरामदायक दुनिया को तहस-नहस कर दिया। इसमें उनकी मदद इस बात से हुई कि अन्य ट्रेडिंग बैंकों को भी सिटीबैंक के प्रभुत्व से आम तौर पर नफरत थी। एएनजेड ग्रिंडलेज़ बैंक और बैंक ऑफ अमेरिका दोनों को पता चला कि उन्हें बड़े सौदों से वंचित किया जा रहा है, जिन पर

सिटीबैंक और उसके कार्टेल का कब्जा था। ऐसा इसलिए था क्योंकि बॉन्ड सौदे का सबसे अहम तत्व बाजार की जानकारी होती है: किसके पास अतिरिक्त यूनिट हैं, किसका कैश फ्लो तंग है, आदि। बैंकआम के एक पूर्व कर्मचारी ने याद करते हुए कहा, "मैंने जो भी सौदा प्रस्तावित किया, सिटीबैंक और उसके कार्टेल को उसकी जानकारी मिल जाती थी। हमें एक ऐसे ब्रोकर की सख्त जरूरत थी जो कार्टेल से जुड़ा न हो।"
हर्षद ही वह व्यक्ति थे जो इस जरूरत को पूरा करते थे।
बैंकआम और हर्षद एक-दूसरे के लिए ही बने थे। उस समय बैंकआम के कोषागार का नेतृत्व नीरज बत्रा कर रहे थे, जो बाद में प्राइम सिक्योरिटीज के प्रमुख बने। (प्राइम सिक्योरिटीज पर सितंबर 1992 में आयकर विभाग ने हर्षद से व्यापक रूप से संदिग्ध संबंधों के कारण छापा मारा था।) बत्रा और हर्षद स्टार ट्रेडर के रूप में उभरे। वे घनिष्ठ व्यापारिक मित्र बन गए, खासकर यूनिट बाजार में उनका दबदबा था। हर्षद का उदय कार्टेल के लिए खतरे का पहला संकेत था। वे उत्सुकता और चिढ़ के साथ उन पर नजर रख रहे थे। मेहता का एक और शुरुआती सहयोगी नरेश अग्रवाल था, जो बाद में कार्टेल में शामिल हो गया और हर्षद का कट्टर दुश्मन बन गया। 1989 में जब अग्रवाल ने ग्रिंडलेज़ छोड़कर अपना खुद का व्यवसाय शुरू किया, तब भी बैंक ने उनके साथ अपना संबंध बनाए रखा। चूंकि कार्टेल कभी-कभी उनके रास्ते में बाधा डालता था, इसलिए ग्रिंडलेज़, बैंकएम की तरह, एक गैर-कार्टेल ब्रोकर के साथ स्थिर संबंध बनाए रखने के लिए उत्सुक था। अग्रवाल, जिन्होंने संयोगवश अपने स्वतंत्र करियर में सिटीबैंक के साथ कभी लेन-देन नहीं किया था, ने एक ऐसा ब्रोकर दिलाने का वादा किया - हर्षद मेहता। हर्षद ग्रिंडलेज़ के साथ बहुत अच्छे संबंध बना बैठे। यह इस बात

शुरू कर दिया। वे अब हमारे सौदों को नजरअंदाज नहीं कर सकते थे और इसलिए उन्हें अपने अहंकार की कीमत चुकानी पड़ी।” वास्तव में, 1991-92 में सिटीबैंक ने हर्षद के साथ कुछ बहुत बड़े सौदे किए थे।
1987-90 के पूरे तीन वर्षों के दौरान, जब हर्षद मुद्रा बाजार में प्रवेश करने की कोशिश कर रहे थे, उन्होंने शेयर बाजारों में लाखों कमाए, जिसका एक हिस्सा उन्होंने मुद्रा बाजार के फंड को वहाँ लगाकर कमाया। यह सिलसिला 1991-92 के उथल-पुथल भरे दौर में चरम पर पहुँच गया, जब हर्षद ने शेयर व्यापार के लिए बैंकिंग प्रणाली का बेपरवाही से इस्तेमाल किया। हालाँकि, यह एक गहरा राज़ था। 1991 में, द इकोनॉमिक टाइम्स ने उनसे पूछा कि उनका पैसा कहाँ से आ रहा है। उन्होंने तुरंत जवाब दिया, "यह पैसा मेरे ग्राहकों से आया है, जो मुख्य रूप से कॉर्पोरेट संस्थाएँ हैं।" यूटीआई को छोड़कर, हर्षद सभी वित्तीय संस्थानों के प्रमुख ब्रोकर के रूप में उभरे और उस विशाल व्यक्तिगत संपत्ति को अर्जित करने की राह पर थे, जिसे आमतौर पर पीढ़ियों में जमा किया जाता है। 1989 से, वे एक ऐसे घर की तलाश में थे जो उनके चार भाइयों, उनकी माँ और लगभग 100 वर्षीय दादाजी के परिवार के लिए पर्याप्त बड़ा हो।
उपयुक्त अपार्टमेंट खोजने का काम हर्षद की पत्नी ज्योति को सौंपा गया था। अश्विन ने याद करते हुए कहा, "मुंबई में एक भी ब्रोकर ऐसा नहीं था जो उन्हें न जानता हो।" दो साल की खोज के बाद, 1990 में, उन्होंने माधुली में एक अपार्टमेंट खरीदा, जो तीसरी मंजिल का पूरा हिस्सा और चौथी मंजिल का आधा हिस्सा था। 15,000 वर्ग फुट का यह आलीशान अपार्टमेंट वर्ली में समुद्र के नज़ारे पेश करता है और इसके दोनों ओर विशाल टेरेस गार्डन हैं; समुद्र

की ओर वाले गार्डन को गोल्फ कोर्स में बदल दिया गया है। मेहता परिवार ने तीसरी मंजिल पर एक मिनी थिएटर और बिलियर्ड्स रूम बनाने की योजना बनाई थी, लेकिन काम अधूरा रह गया। 1992 में, अपार्टमेंट के कुछ हिस्से किसी निर्माण स्थल जैसे दिख रहे थे, तार लटक रहे थे और निर्माण सामग्री के ढेर लगे थे।
चौथी मंजिल का आधा हिस्सा एक गलियारे से बीच से विभाजित था; बाईं ओर डॉ. हितेश मेहता का कमरा था। यह पूरी तरह से सफेद रंग का था - सफेद दीवारें, संगमरमर का फर्श, सफेद संगमरमर से बना घोड़े का एक विशाल सिर और कुछ रंग के लिए लाल और नारंगी रंग के छींटे। गलियारे के बाईं ओर अश्विन का कमरा था, जहाँ से अरब सागर का मनोरम दृश्य दिखाई देता था और उसके ठीक सामने, दाईं ओर हर्षद का शयनकक्ष था, जहाँ मुख्य रंग काले और सुनहरे थे। इनमें से प्रत्येक शयनकक्ष कांच, धातु और क्रिस्टल से बनी चमकदार कलाकृतियों से सजा हुआ था, जो पेशेवर इंटीरियर डिजाइन और दिखावटीपन की अति को दर्शाता था। दीवारों पर चित्रों के बजाय, पेस्टल रंगों में लैमिनेटेड रेडीमेड डिजाइन लगे हुए थे। इन शयनकक्षों के नीचे, तीसरी मंजिल पर, रसोईघर था और तीसरी मंजिल के दूसरे हिस्से में चौथे भाई सुधीर मेहता का शयनकक्ष था। उनकी पार्किंग धीरे-धीरे मेहता परिवार द्वारा खरीदी गई असंख्य कारों से भर गई थी - कुल मिलाकर उनतीस कारें। हर्षद के गैराज का गौरव, निश्चित रूप से, प्रसिद्ध भूरे रंग की टोयोटा लेक्सस थी, जो 1991 में यूरोप और अमेरिका में आकर्षण का केंद्र थी, क्योंकि यह लक्जरी कार सेगमेंट पर जापानी आक्रमण का प्रतीक थी, जिस पर तब तक बीएमडब्ल्यू और मर्सिडीज बेंज का दबदबा था। हर्षद की लेक्सस भारत में आयात की गई पहली लेक्सस थी।

इन सबने हर्षद को शायद भारत का सबसे धनी और दिखावटी स्टॉकब्रोकर बना दिया था, लेकिन फिर भी, 1991 की शुरुआत में भी, बहुत कम लोग जानते थे कि वह कौन थे और क्या थे। कुछ लोग उन्हें एसीसी बुल कहते थे, क्योंकि वे शेयर की कीमत को 300 रुपये से 3000 रुपये और फिर 10,000 रुपये से भी ऊपर तक खींच लाते थे। (यहां तक कि हर्षद के दोस्त नेमिश शाह जैसे चतुर ब्रोकर भी 3500 रुपये पर एसीसी काउंटर से बाहर निकल गए और फिर खुलेआम अपना पछतावा व्यक्त किया।) 1991 में, जब हर्षद ने अपना घर और गाड़ियां खरीदीं, तो उन्हें 'बिग बुल' की उपाधि भी मिल गई - यह दो शब्दों का उपनाम उन लोगों के लिए आरक्षित है जिनके पास शेयरों में अपनी पसंद की आग लगाने की अद्भुत क्षमता होती है।
यह उपाधि मूल रूप से एमजे फेरवानी के पास थी, जब यूटीआई के अध्यक्ष के रूप में, वे 'खरीदें' बटन पर रखी अपनी तर्जनी उंगली से बाजार का भाग्य नियंत्रित करते थे। फिर आए हर्षद, जिन्होंने फेरवानी को कई बार पीछे छोड़ दिया। फेरवानी के पीछे पच्चीस साल पुरानी संस्था थी। हर्षद एक अकेले व्यक्ति थे। फेरवानी 20,000 करोड़ रुपये का लेन-देन करते थे, जबकि हर्षद उसके एक छोटे से हिस्से का। फेरवानी उस दौर में काम कर रहे थे जब यूटीआई ही बाजार का एकमात्र बड़ा खिलाड़ी था। हर्षद उनमें से एक थे।
फिर भी, अगले एक साल में हर्षद ने अपनी असाधारण क्षमता का प्रदर्शन करते हुए बाजार को अपनी मर्जी से 100 अंकों से भी अधिक ऊपर-नीचे कर दिया और खुद को बाजार का दिग्गज बना लिया। निवेशकों के बीच कानाफूसी होने लगी कि वह बीएसई को मार्जिन भुगतान के रूप में 100 करोड़ रुपये से अधिक के चेक पर हस्ताक्षर कर रहे थे (उन्होंने कहा कि यह सच नहीं था), कि उन्हें केंद्रीय बजट की जानकारी थी (यह असंभव था), और वह तस्करों का पैसा इधर-उधर कर रहे

थे (यह भी झूठ था)। लेकिन उन उत्साह भरे दिनों में, जब कीमतें आसमान छू रही थीं और हर्षद शेयर बाजारों में धूम मचा रहे थे, इन अफवाहों की जांच करने का समय किसके पास था? ये अफवाहें फैलती गईं और एक मिथक को जन्म दिया।

हर्षद के आदमी पहले से ही उस स्टॉक की घोषणा कर देते थे जिसे वह बढ़ावा देने की योजना बना रहा था, उसका लक्षित उच्चतम मूल्य और वह समय सीमा जिसके भीतर वह उसे हासिल कर लेगा। अक्सर जब उसका कोई कर्मचारी ट्रेडिंग रिंग में किसी नए स्टॉक की कीमत के बारे में पूछता था, तो उसकी कीमत आसमान छू जाती थी। स्वराज माज़दा के शेयर के मामले में हर्षद की लोकप्रियता चरम पर पहुंच गई थी। इस कंपनी का माज़दा इंडस्ट्रीज से कोई लेना-देना नहीं था, जो घाटे में चल रही लीजिंग कंपनी थी जिसे हर्षद ने अपने कब्जे में लेकर मुनाफे में बदल दिया था, सिवाय माज़दा नाम के। स्वराज माज़दा, जो हल्के वाणिज्यिक वाहन बनाती है, जापान की माज़दा और पंजाब सरकार का एक संयुक्त उद्यम है। हर्षद का इससे कोई संबंध नहीं था। फिर भी, इस अफवाह पर स्वराज माज़दा के शेयर की कीमत में उछाल आ गया कि हर्षद मेहता एक और "माज़दा कंपनी" खरीद रहे हैं।

उन्होंने असली माज़दा के साथ जो किया वह उल्लेखनीय था। जब उन्होंने इसे अपने कब्जे में लिया, तो 1980 के दशक के लीजिंग बूम के दौरान स्थापित माज़दा इंडस्ट्रीज एक "घाटे में चल रही लीजिंग कंपनी" थी, जैसा कि रानिना ने बताया। हर्षद ने छह-मासिक परिणामों के बजाय त्रैमासिक परिणाम प्रकाशित करने की योजना बनाई (लाभ 2.7 करोड़ रुपये तक था)। उन्होंने इसके साथ ही एक विज्ञापन भी जारी किया जिसमें नाटकीय बदलाव का वर्णन करते हुए

"डूम, बूम एंड ज़ूम" का नारा लगाया गया था। कंपनी को "ग्रोमोर कॉर्पोरेट" बताते हुए, विज्ञापन में रियल एस्टेट व्यवसाय, निर्यात और "नवीन वित्तीय साधनों" में विस्तार और सभी प्रमुख स्टॉक एक्सचेंजों में सूचीबद्ध होने का वादा किया गया था।

सितंबर 1992 तक मात्र छह महीनों में, माज़दा इंडस्ट्रीज ने पिछले वर्ष के 3.46 करोड़ रुपये के घाटे से उबरकर 3.38 करोड़ रुपये का शुद्ध लाभ अर्जित किया। इसकी आय का मुख्य स्रोत, लीजिंग, 3.28 करोड़ रुपये से घटकर मात्र 30 लाख रुपये रह गया। लेकिन इसकी भरपाई 5.19 करोड़ रुपये की "अन्य आय" से हो गई, जो शेयर व्यापार से प्राप्त कच्चा लाभ था। लगभग उसी समय, पीएनबी के अध्यक्ष जेएस वर्शनेया माज़दा के बोर्ड में शामिल हुए। हर्षद ने माज़दा पैकेजिंग का भी अधिग्रहण कर लिया और इसका नाम बदलकर माज़दा एंटरप्राइजेज कर दिया। कुछ ही महीनों में, मज़्दा

कीमतें आसमान छू गईं। 19 अक्टूबर को, कीमत मात्र 39 रुपये थी। दिसंबर तक यह बढ़कर 140 रुपये और फरवरी तक 400 रुपये हो गई। फिर अगले महीने एक ज़बरदस्त उछाल के साथ यह 1600 रुपये तक पहुंच गई, जिससे बाज़ार में ज़बरदस्त खरीदारी का माहौल छा गया। हर्षद की गिरफ्तारी के तीन महीने बाद, कीमत गिरकर 40 रुपये पर आ गई।

इन सबमें हर्षद कोई गुमनाम शख्स नहीं था जिसने चुपचाप तरक्की की हो। हर्षद से पहले के दिनों में, बाज़ार पर दबदबा सट्टेबाजी के ज़रिए ही बना रहता था। हर्षद आविष्कारशील (कुछ लोग तो इसे धोखेबाज़ी की हद तक मानते हैं), बेशर्म और बेहद महत्वाकांक्षी था। अपने प्रचारित जीवनशैली और बड़े-बड़े नारों के ज़रिए उसने

ज़बरदस्त प्रचार और व्यक्तिगत लोकप्रियता हासिल की, जिसका उसने बाज़ार को प्रभावित करने के लिए इस्तेमाल किया।

हर्षद एक आदर्श धोखेबाज़, एक विपरीत सोच वाला विचारक और एक महत्वाकांक्षी लक्ष्य-उन्मुख व्यक्ति था - ये सभी गुण उसमें समाहित थे। शेयर की कीमत का आकलन करने के लिए पारंपरिक तरीकों, जैसे कि मूल्य-आय अनुपात (पी/ई रेशियो), का इस्तेमाल करने वाले बाजार विश्लेषक हर्षद के विश्लेषण से दंग रह गए। हालांकि पी/ई रेशियो के उस स्तर को लेकर कोई पुख्ता नियम नहीं हैं, जिस पर किसी शेयर की कीमत पूरी तरह से निर्धारित होती है, फिर भी कुछ स्वीकार्य और आम तौर पर माने जाने वाले मापदंड मौजूद हैं। उदाहरण के लिए, 40 या 50 का पी/ई रेशियो आमतौर पर उच्च माना जाता है और यह बेचने का संकेत होता है। गंभीर बाजार विश्लेषकों का एक सामान्य नियम था: 15 से कम पी/ई रेशियो वाला शेयर अंडरप्राइस्ड होता है और 25 से अधिक पी/ई रेशियो वाला शेयर ओवरप्राइस्ड होता है।

हर्षद ने पी/ई रेशियो की पारंपरिक सीमाओं से बंधे रहने से इनकार कर दिया। उन्होंने अपने खुद के निवेश सिद्धांत प्रतिपादित किए, जिससे पूरा बाजार खरीदारी के लिए एकदम उपयुक्त प्रतीत होने लगा। उनका सिद्धांत दो आधारशिलाओं पर टिका था: पहला, किसी शेयर की कीमत उसकी वर्तमान आय से स्वतंत्र होती है (इसलिए पी/ई रेशियो अप्रासंगिक है) और दूसरा, उच्च कीमतों पर लोग बेचते नहीं, बल्कि खरीदते हैं! हर्षद का तर्क था कि बढ़ती अर्थव्यवस्था में, उच्च पी/ई अनुपात स्वयं विकास का एक बड़ा कारण है, ऐसे महंगे शेयरों को खरीदने का एक कारण है। “उच्च पी/ई

अनुपात वाला शेयर औसत से बेहतर प्रदर्शन करता है। इसलिए, आम धारणा के विपरीत, यह शेयर बेचने लायक नहीं है। बढ़ते बाजार में आप कम पी/ई अनुपात वाले शेयरों की तुलना में उच्च पी/ई अनुपात वाले शेयरों में अधिक मुनाफा कमा सकते हैं। 50 के पी/ई अनुपात वाले शेयर में 10% की आय वृद्धि का मतलब है कीमत में और वृद्धि। विदेशी कंपनियों के शेयर उच्च पी/ई अनुपात को आकर्षित क्यों करते हैं?” उन्होंने पूछा।

पी/ई अनुपात को मापदंड के रूप में खारिज करने के लिए हर्षद के पास एक दूसरा हथियार था: उनका प्रतिस्थापन लागत सिद्धांत, जो तेजी के महीनों के दौरान सबसे लोकप्रिय सिद्धांतों में से एक बन गया था। यह इस तर्क पर आधारित था कि एसीसी जैसी कंपनी का वास्तविक मूल्य केवल उसकी कमाई में नहीं है। इसकी ताकत इस तथ्य में निहित है कि समान उत्पादक परिसंपत्तियों को स्थापित करने में एक नए प्रवेशकर्ता को एसीसी की तुलना में कई गुना अधिक लागत आएगी। इसलिए, आज के भावों के अनुसार, ACC का मूल्य कम से कम उतना होना चाहिए जितना इसे बदलने में खर्च आएगा। एक ऐसे बाज़ार में जो किसी जुआघर से कम नहीं था, इस सिद्धांत ने कई लोगों को आकर्षित किया। और एक ऐसे बाज़ार में जो खरीदारी के लिए बेताब था, यह एक शानदार बहाना साबित हुआ।

हर्षाद ने योजना आयोग के सदस्य वी. कृष्णमूर्ति से बातचीत करते हुए इस सिद्धांत को और आगे बढ़ाया। फरवरी 1992 में, जब उनकी प्रसिद्ध बैठक हुई, तो कृष्णमूर्ति ने पूछा कि ACC की परिसंपत्तियों का वास्तविक मूल्य 3500 करोड़ रुपये होने के बावजूद, बाज़ार पूंजीकरण (कुल इक्विटी को बाज़ार मूल्य से गुणा

करने पर प्राप्त मूल्य) 5500 करोड़ रुपये कैसे हो सकता है? दूसरे शब्दों में, बाज़ार ने आज के भावों के अनुसार इसे बदलने में लगने वाली लागत से अधिक मूल्य कैसे निर्धारित किया? “मैंने कहा कि ACC के पास क्या है, यह महत्वपूर्ण नहीं है। सवाल यह है कि उसके पास क्या हो सकता था। अपने बाजार मूल्य का लाभ उठाते हुए, ACC अपनी वर्तमान पूंजी 56 करोड़ रुपये को दोगुना करके 2200 करोड़ रुपये और जुटा सकती है। इससे वह अपनी उत्पादन क्षमता में 70 लाख टन की वृद्धि कर सकती है। अगर ACC 100% लाभांश, यानी 56 करोड़ रुपये भी देती है, तो भी उसकी लागत 2-3% ही रहेगी।” दूसरे शब्दों में, बाजार ACC की साख का लाभ उठाकर सस्ते में धन जुटाने की क्षमता के लिए प्रीमियम दे रहा है। हर्षद ने ऐसे कई अन्य उदाहरण दिए। “Excel की पूंजी 70 करोड़ रुपये है और बाजार पूंजीकरण 600 करोड़ रुपये है। DCL पॉलिएस्टर का बाजार मूल्य उत्पादन शुरू होने से पहले ही 55 करोड़ रुपये था। तो फिर ACC में ऐसा क्या अलग है?”

हर्षद के पास निवेश के ऐसे कई सिद्धांत थे, कुछ चतुर और कुछ स्वार्थपूर्ण। हर्षद की इस व्याख्या को सुनिए कि लोग खरीद-फरोख्त के लिए किस प्रकार प्रेरित होते हैं: “जापान और जूनागढ़ के लोगों का मनोविज्ञान कुछ मायनों में एक जैसा है। विशिष्ट परिस्थितियों में, उच्च शिक्षित और निरक्षर समाज के लोग एक ही तरह से व्यवहार करते हैं। एक एमबीए धारक और पान बेचने वाला, दोनों में एक ही तरह की प्रेरणा होती है। यदि डॉव जोन्स का सिद्धांत न्यूयॉर्क के सबसे परिष्कृत बाजार पर लागू होता है, तो यह जामनगर में तेल व्यापार पर भी लागू होता है”, हर्षद ने सितंबर 1992 में अपनी रिहाई के बाद बिजनेस टुडे को दिए एक लंबे

साक्षात्कार में कहा।

“मांग-आपूर्ति-मूल्य का मूल आर्थिक नियम शेयर बाजारों में ठीक उलट काम करता है। पाठ्यपुस्तकें बताती हैं कि किसी वस्तु की कीमत तब अधिक होती है जब उसकी मांग कम होती है। साथ ही, आपूर्ति तब कम होती है जब कीमत कम होती है। शेयर बाजारों में, यह ठीक उल्टा होता है। यदि शेयर की कीमतें बढ़ रही हैं, तो मांग भी अधिक होती है। और जब कीमत गिर रही होती है, तो मांग भी गिरती है और आपूर्ति बढ़ जाती है।”

क्या यह सभी बाजारों में हमेशा सच होता है, यह संदिग्ध है। लेकिन भारत में तेज़ी और मंदी दोनों ही दौर में यह बात कुछ हद तक सच साबित हुई है। जनवरी 1991 के निराशाजनक दौर में, जब बीएसई का सूचकांक 1000 से नीचे गिर गया था, तब तो ब्लू-चिप शेयरों के भी खरीदार नहीं मिल रहे थे। लेकिन जब सूचकांक 3500 और 4000 के पार पहुंचा, तो उन्हीं शेयरों को ऊँची कीमतों पर खरीदने के लिए होड़ मच गई। हर्षद का तर्क था कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि शेयर बाजार मुख्य रूप से धारणा से संचालित होते हैं, प्रदर्शन से नहीं।

हर्षद का तर्क था कि किसी शेयर की कीमत उस शेयर के बारे में आपकी धारणा पर आधारित होती है, और यह धारणा उसके अतीत पर नहीं, बल्कि उसके भविष्य पर आधारित होती है। हर्षद ने ग्रेट ईस्टर्न शिपिंग का उदाहरण दिया। “जब नेमिश (शाह) ने इसे खरीदना शुरू किया, तब शेयर बोनस सहित 35 रुपये में उपलब्ध था। एक साल बाद, शिपिंग उद्योग में कोई बड़ा बदलाव नहीं आया। दोनों बैलेंस शीट देखिए। कोई बड़ा बदलाव नहीं। फिर भी कीमत 180 रुपये थी। नेमिश ने आपको

उस शेयर से जोड़ दिया”, हर्षद का तर्क है।

हर्षद का तर्क एक हद तक सही हो सकता था (उसके एक चतुर स्टॉक-ब्रोकर मित्र ने इसे "पूरी तरह बकवास" कहा), लेकिन इसके खतरनाक परिणाम हो सकते थे। इसका मतलब यह था कि हर्षद एक पूरी तरह से बेकार शेयर भी खरीद सकता था और चाहे वह कुछ भी खरीद रहा हो और किसी भी कारण से, उसकी कीमत आसमान छू सकती थी। हर्षद का यह धारणा सिद्धांत तब अपने तार्किक रूप से बेतुके अंत पर पहुँच गया जब कर्नाटक बॉल बेयरिंग और अमर डाईकेम जैसी कई घाटे में चल रही कंपनियों के शेयर सिर्फ इसलिए आसमान छू रहे थे क्योंकि कहा जा रहा था कि हर्षद उन्हें खरीद रहा है।

हर्षद ने बीएसई के संवेदनशील सूचकांक को अपने नियंत्रण में ले लिया और उसे 1500 और 2000 के पार ले गया, यहाँ तक कि 24 फरवरी 1992 को यह 2491 पर पहुँच गया।

फिर 29 फरवरी को केंद्रीय बजट आया और हर्षद ने फिर से ज़ोरदार उछाल मारा। दो महीने के भीतर ही हर्षद ने सूचकांक को एक और आश्चर्यजनक 2000 अंक ऊपर पहुँचा दिया, जिससे यह 22 अप्रैल को 4467 पर पहुँच गया, घोटाले की कहानी सामने आने से ठीक एक दिन पहले। इसके साथ ही, बीएसई पर शेयरों का मूल्य (बाजार पूंजीकरण) 1990 में 60,000 करोड़ रुपये से बढ़कर 1991 के अंत तक 125,000 करोड़ रुपये हो गया और फिर अगले चार महीनों में तेजी से बढ़कर 250,000 करोड़ रुपये से अधिक हो गया।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस उछाल का पूरा श्रेय हर्षद मेहता

को जाता है। 23 अप्रैल को घोटाले की कहानी सामने आने के बाद सूचकांक में अचानक गिरावट आई। 28 अप्रैल को, हर्षद के संकट में होने की जानकारी मिलने के बाद, जिस दिन बीएसई में पहली बार कारोबार शुरू हुआ, सूचकांक गिरकर 3896 पर आ गया, जो एक महीने पहले का स्तर था। 1992 के पहले तीन महीनों में, बाजार में जितनी तेजी आई, हर्षद का प्रचार उतना ही तेज होता गया। वह लगातार "खरीदो, खरीदो, खरीदो" का नारा लगाते रहे और अपने आक्रामक बयानों से इसे और मजबूत करते रहे। भीड़ मनोविज्ञान के विद्यार्थी हर्षद द्वारा फैलाई गई सामूहिक उन्माद की इस घटना पर बहस कर सकते हैं - ठीक वैसे ही जैसे एक दशक बाद केतन पारेख ने किया था। बेशक, बाद में हर्षद ने एशियन वॉल स्ट्रीट जर्नल से बड़ी मासूमियत से कहा था कि "मैंने सोचा था कि मैं एक जादूगर की तरह बनूंगा। मैंने सोचा था कि मैं सपने बेचना शुरू कर सकता हूं, क्योंकि किसी को तो यहां आकर सपने बेचने की जरूरत थी, कि संपत्ति बनाना कोई अपराध नहीं है, कि अगर आप हर्षद मेहता बनना चाहते हैं, तो शेयर बाजार में आएं।"
लोगों ने ऐसा किया, और जल्द ही हर्षद ने शेयर बाजार में अपनी नई प्रसिद्धि, लोगों को आकर्षित करने की अपनी क्षमता और धारणा के सिद्धांत का फायदा उठाते हुए एक नया घिनौना हथकंडा अपनाया: व्यापारियों के साथ गठबंधन करके उनके शेयरों की कीमतें बढ़ाना। हर्षद ने बाद में बिजनेस टुडे पत्रिका को बताया कि “प्रबंधन ने कभी अपने शेयरों के मूल्य पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया। मैंने उन्हें जागरूक किया। रिलायंस का भाव 130-140 रुपये था। हर कोई थक चुका था। म्यूचुअल फंड भारी मात्रा में शेयर खरीद रहे थे। कुछ नहीं हुआ। लगभग 80 लाख शेयर खरीदे गए। मैंने 140-170 रुपये पर खरीदना शुरू किया। मैंने 11 लाख शेयर खरीदे और

कीमत 370-390 रुपये तक पहुंच गई। क्या यह धारणा का मामला नहीं है?” व्यापारियों ने शेयर बाजार के इस नए धनाढ्य को जल्दी ही पहचान लिया। उन्होंने अपने शेयरों को बढ़ावा देने के लिए हर्षद से संपर्क किया। हर्षद ने उनके साथ एक समझौता किया। वह शेयरों की कीमतें बढ़ा देगा, बशर्ते वे उसे हिस्सेदारी दें। ठीक यही काम केतन पारेख ने बाद में किया।
1991 में, उन्होंने कुछ कंपनियों (अपोलो टायर्स, गुजरात अंबुजा) के शेयरों के बड़े-बड़े ब्लॉक खरीदे, लेकिन उनका इरादा इन कंपनियों पर कब्ज़ा करने का नहीं था, जैसा कि जल्द ही अनुमान लगाया गया। उन्होंने बोर्ड की सदस्यता की मांग भी नहीं की। उनका मकसद सिर्फ यह दिखाना था कि वे इन कंपनियों के शेयरों की कीमतों को कैसे प्रभावित कर सकते हैं। उन्होंने बड़ी हिस्सेदारी सिर्फ इसलिए खरीदी ताकि वे प्रमोटरों के सहयोगी के रूप में उभर सकें, और उन्हें यह एहसास दिला सकें कि उनकी कंपनियों का मूल्य उनके अनुमान से कहीं अधिक है। जैसे ही कीमतें बढ़ीं, हर्षद ने भारी मुनाफा कमाया क्योंकि उन्होंने कीमतें बढ़ने से काफी पहले ही बाजार से बाहर बड़े-बड़े ब्लॉक खरीद लिए थे। इससे अधिग्रहण की औसत कीमत बेहद कम हो गई। जब शेयर की कीमत काफी बढ़ जाती थी, तो म्यूचुअल फंड हमेशा इस लालच में आ जाते थे कि उनके सामने निवेश का एक अनूठा अवसर है और हर्षद अपने शेयर बेच देते थे। यह इनसाइडर ट्रेडिंग और म्यूचुअल फंड का सबसे घिनौना रूप था, जिसे हर्षद से पहले और बाद में कई ऑपरेटरों ने दोहराया।
उनके चतुराई से गढ़े गए, लेकिन संदिग्ध दिखने वाले तर्कों को जल्द ही अन्य बुल ऑपरेटरों ने अपना लिया, जो इस तेजी के लिए एक तर्कसंगत औचित्य की तलाश में थे। उनमें से एक पल्लव शेठ थे।

अप्रैल 1992 में उन्होंने बिज़नेस इंडिया को बताया कि "1992 की आखिरी तिमाही तक बाज़ार के 6000 के सूचकांक तक पहुँचने की उम्मीद की जा सकती है।" उन्होंने तर्क दिया कि इक्विटी निवेश के बारे में धारणा बदल गई है। शेठ ने कहा, "पी/ई अनुपात अब मुद्दा नहीं रहा।" और ऐसा क्यों? शेठ ने अमेरिका का उदाहरण दिया, जिसे एक स्थिर बाज़ार माना जाता है, लेकिन वहाँ जनरल मोटर्स और यूनियन कार्बाइड जैसी कंपनियों ने 1980 के दशक के अंत में घाटा दर्ज किया, फिर भी उनके शेयर क्रमशः 45 अमेरिकी डॉलर और 98 अमेरिकी डॉलर पर बिक रहे थे।
वित्त और निवेश के एक दूरदर्शी प्रोफेसर की तरह बोलते हुए शेठ ने कहा कि इसका कारण यह है कि पी/ई अनुपात जैसे पारंपरिक संकेतकों की तुलना में प्रतिस्थापन लागत को अधिक महत्व दिया जा रहा है। शेठ ने स्पष्ट किया कि आज के बाज़ार की अस्थिरता के सामने पारंपरिक संकेतक अपनी प्रासंगिकता खोते दिख रहे हैं। उन्होंने बिज़नेस इंडिया को बताया, "रिलायंस इंडस्ट्रीज का उदाहरण लीजिए।" “15 करोड़ शेयरों के लिए 500 रुपये प्रति शेयर के हिसाब से, वर्तमान निवेश 7500 करोड़ रुपये है। लेकिन अगर रिलायंस के प्लांट को बदला जाता है, तो आज इसकी लागत 20,000 करोड़ रुपये होगी। विशुद्ध वित्तीय दृष्टि से, मूलभूत सिद्धांत अब उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं। प्रबंधन के अच्छे इरादों और अच्छे प्रदर्शन पर जोर दिया जा रहा है। रिलायंस इसका एक अच्छा उदाहरण है। यूरो-बाजार में इसका इश्यू, गैस क्रैकर प्लांट और प्रस्तावित बिजली परियोजना लोगों को आकर्षित कर रही है क्योंकि इनके अच्छे भविष्य की संभावनाएं दिखती हैं।” शेठ ने तर्क दिया कि लोग भविष्य को ध्यान में रखते हुए शेयर खरीद रहे हैं। उन्होंने बिजनेस इंडिया को बताया कि वर्तमान कीमतों की

तुलना 1994-95 के संदर्भ में की जानी चाहिए, जब कंपनियां लाभ का एक अलग पैटर्न दर्ज करेंगी।
बाद में ये तर्क खोखले साबित हुए, खासकर तब जब यह स्पष्ट हो गया कि शेठ जैसे दलाल अंदरूनी सूचनाओं के आधार पर शेयरों का कारोबार करते थे और कीमतें बढ़ाते थे। उनकी नजर अगले कुछ हफ्तों और महीनों पर थी, वे निवेशकों को उपदेश देते हुए 1994-95 में अपने मामूली प्रयासों के फल मिलने का बेसब्री से इंतजार नहीं कर रहे थे। लेकिन जब हर्षद, पल्लव शेठ जैसे लोगों के साथ, बाज़ारों में धन के मसीहा के रूप में छाए हुए थे, तब जनता को यह विश्वास दिलाया गया कि हर्षद एक प्रतिभाशाली शेयर चयनकर्ता हैं, जो निवेश सिद्धांतों और शोध से शेयर चुनने की कला में माहिर हैं। हर्षद के भाई अश्विन, ज़ाहिर है, विश्वभर के प्रतिभूति संस्थानों की तरह एक शोध आधार विकसित करने के इच्छुक थे। लेकिन हर्षद उनसे पूरी तरह असहमत थे, उनका तर्क था कि भारत में शोध को कोई महत्व नहीं देता। हर्षद स्वयं यह साबित कर रहे थे कि भारत जैसे उथले और अनियमित बाज़ार में, जहाँ सबसे बड़े खिलाड़ी सरकारी स्वामित्व वाले, गैर-प्रतिस्पर्धी, सुस्त और बंधे हुए हैं, प्रचार और नारे ही सबसे शक्तिशाली विकास औषधि हैं।
बाहरी कारकों के अलावा, हर्षद के आत्मविश्वास के अपने कारण भी थे। उनका धारणा सिद्धांत, पी/ई अनुपात का खंडन और उद्योगपतियों के साथ सौदे ऐसे नवोन्मेषी और प्रभावी कदम थे जो केवल वही व्यक्ति उठा सकता था जो बाज़ार को भली-भांति जानता हो और उन जानकारियों का उपयोग करके जल्दी अमीर बन रहा हो। 1991 तक हर्षद इतने बहुमुखी हो चुके थे कि बाद में उन्होंने दावा किया, “मेरा मानना है कि बाज़ार का सबसे व्यापक अनुभव मुझे ही है। मैं एक

जॉबर, एक ब्रोकर और एक समय में सबसे बड़ा सट्टेबाज रहा हूँ। तेरह वर्षों से अधिक समय तक बाज़ार में रहकर मुझे निवेशकों की मानसिकता को समझने का अवसर मिला है, और दूसरी ओर, संस्थानों और कॉर्पोरेट प्रबंधन की मानसिकता को भी समझने का।”
हालाँकि, 1991 के अंत तक, यह ज्ञान एक खतरनाक दिशा में काम कर रहा था। हर्षद खुद को भगवान समझने लगे और इस तरह अपना नियंत्रण खोने लगे। अश्विन उनकी कार्यशैली और उनके द्वारा निर्धारित तेज़ गति से सहमत नहीं थे। उन्होंने अपने व्यवसाय को अलग करने की योजना बनाई। अश्विन ने कहा, “घर पर हमारा रिश्ता सौहार्दपूर्ण था, लेकिन दफ्तर में ठंडा पड़ गया था।” हर्षद सबसे बड़े ब्रोकर, बाज़ार के सबसे बड़े खिलाड़ी और सबसे धनी भारतीयों में से एक बन चुके थे। यदि वे इसी गति से आगे बढ़ते रहते, तो एक वर्ष के भीतर ही वे फोर्ब्स की अरबपतियों की सूची में शामिल हो जाते। लेकिन हर्षद ने धीमा होने से इनकार कर दिया। सफलता का नशा उनके सिर पर चढ़ गया था।

“मैं दिमाग से ज़्यादा दिल से काम करता हूँ। मेरी ताकत मेरी अंतरात्मा है। मैं कल्पना से काम लेता हूँ, सोच-समझकर नहीं”, हर्षद ने बाद में स्वीकार किया। लेकिन तेज़ी के दौर में यह कोई कमी नहीं लगती थी। उस समय उनके सपने बहुत बड़े थे। अक्टूबर 1992 के अंत में उन्होंने हमसे कहा, “मैं अंदर से जल रहा हूँ। मैं बड़े सपने देखना बंद नहीं कर सकता।” उदाहरण के लिए, 1991 के अंत से ही उनमें दुनिया की सबसे बड़ी सिक्योरिटी फर्म, मेरिल लिंच (जिसका भारत में कोठारी की डीएस पुरभूदास के साथ गठजोड़ है) को मुनाफे में मात देने की ज़बरदस्त इच्छा जाग उठी थी। उन्होंने

[illegible] in 1990-91 in [illegible] [illegible] [illegible] in in [illegible] in in [illegible] [illegible] in 690 [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] in [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] 1992 in [illegible] 1000 [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] in in [illegible] [illegible], in in [illegible] in [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] in in in [illegible] in [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] “[illegible] [illegible] 40,000 [illegible] in [illegible] in, in [illegible] in [illegible] [illegible] in in [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] in [illegible] [illegible] in in [illegible] [illegible] [illegible], in [illegible] in [illegible] [illegible] 200 [illegible] [illegible], [illegible] in in [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] in in [illegible] (Urdu), in in [illegible] (Urdu), 200 [illegible], in [illegible] in in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] in in [illegible] in [illegible] [illegible]” [illegible] in [illegible] [illegible] in in [illegible] in [illegible] in in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], “in in [illegible] [illegible] in [illegible] in in [illegible] in [illegible] in [illegible] [illegible]” [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] in: “[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in in [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible]” [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in: “in [illegible] [illegible] [illegible] in in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]?” in [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] in [illegible] in [illegible] [illegible] in [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible], in [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] [illegible] [illegible] in [illegible] in [illegible] [illegible]

क्योंकि कृष्णमूर्ति योजना आयोग के सदस्य के रूप में एक बेहद संवेदनशील पद पर थे और सार्वजनिक क्षेत्र के विनिवेश पैनल के प्रमुख थे।
अगर हर्षद को अपनी सफलता का प्रदर्शन करना था, तो उन्होंने ठीक वैसा ही किया।

10 जनवरी 1992 की सुबह, उन्होंने आधे पृष्ठ के अखबार के विज्ञापनों के माध्यम से अनजान लेकिन जिज्ञासु जनता पर चिल्लाते हुए कहा: "हर्षद मेहता झूठे हैं"। लिंटास द्वारा तैयार किया गया यह अभियान, जो स्पष्ट रूप से काले और सफेद रंग में था, उनकी ग्रोमोर समूह की कंपनियों की निवेश रणनीति को समझाने का एक हथकंडा था, एक ऐसी रणनीति जो कथित तौर पर अनुसंधान और विश्लेषण पर आधारित थी। विज्ञापन हर्षद के अति-स्पष्ट, उद्दंड और ढोल पीटने वाले स्वभाव को सटीक रूप से दर्शाता था। यह पहली बार था जब हर्षद ने किसी भी रूप में जनता से संवाद किया था। आखिरकार, उनकी मुख्य कंपनी, ग्रोमोर, एक गैर-सूचीबद्ध कंपनी थी, माज़दा की वार्षिक आम बैठक का समय अभी नहीं आया था और मीडिया ने भी उन्हें अभी तक नहीं पहचाना था।

विज्ञापन प्रकाशित होने के बाद, उन्हें पहचान मिली। फरवरी तक, सबसे बड़ी व्यावसायिक पत्रिका, बिज़नेस इंडिया और सबसे नई पत्रिका, बिज़नेस टुडे ने उन्हें अपने कवर पेज पर जगह दी और सबसे ज़्यादा बिकने वाली वीडियो पत्रिका, न्यूस्ट्रैक ने उनके बारे में एक विशेष लेख प्रकाशित किया, जिसमें उनकी शानदार जीवनशैली, खूबसूरत छतें, उनतीस कारें आदि का वर्णन किया गया था। इसके बाद यह खबर आई कि वे भारत के सबसे ज़्यादा करदाता हैं।

करोड़ों कमाने और गंवाने के बाद और एक दशक तक गुमनामी में काम करने के बाद, हर्षद मेहता

अचानक ज़बरदस्त प्रसिद्धि के साथ सामने आए। 28 फरवरी 1992 को, केंद्रीय बजट से एक दिन पहले, आयकर अधिकारियों ने उनके घर पर छापा मारा, लेकिन इससे दूरदर्शन को बजट की घोषणा के दिन उनका साक्षात्कार लेने से नहीं रोका जा सका। भारतीय अर्थव्यवस्था और पूंजी बाज़ारों पर टिप्पणी करने के लिए कहे जाने पर उन्होंने लाखों भारतीयों को अपने कई यादगार वाक्यों में से एक दिया: "भारत विश्व बाज़ार में एक टर्नअराउंड शेयर है।"

हर्षद शायद इस बात पर विश्वास करते थे, लेकिन वे एक योजना पर भी काम कर रहे थे। पूरे 1991 में, वह लगातार बैंकिंग प्रणाली के पैसे का इस्तेमाल अपने शेयर बाजार के कारोबार को चलाने के लिए कर रहा था। लेकिन उसकी स्थिति नाजुक थी। संदिग्ध लेन-देन के ज़रिए बैंक की धनराशि दांव पर लगाकर वह उधार के पैसों पर जी रहा था। उसे पैसा वापस करना था, जो वह तभी कर सकता था जब वह अपनी हिस्सेदारी का कुछ हिस्सा बेच देता। यह आसान नहीं था। अगर वह अपने शेयर बेच देता, तो कीमत धराशायी हो सकती थी क्योंकि अब हर्षद खुद शेयर बेच रहा था। वह उन्हें म्यूचुअल फंड के पोर्टफोलियो में डाल सकता था, लेकिन सबसे बड़ा म्यूचुअल फंड, कैनबैंक म्यूचुअल फंड, उसके साथ सौदे नहीं कर रहा था; साथ ही, हर बड़ा ब्रोकर इन फंडों का इस्तेमाल उसी तरह करने की कोशिश कर रहा था। मार्च 1992 में जब कीमतें आसमान छू रही थीं, तब हर्षद बाहर निकलने का रास्ता ढूंढ रहा था। “प्रवेश से ज़्यादा ज़रूरी है

प्रवेश करना। खरीदना आसान है। बेचो कहाँ? जब तक कि आपने बेचने के लिए बाज़ार न बनाया हो।” उसे लगा कि उसे एक नहीं बल्कि दो रास्ते मिल गए हैं।

पहला रास्ता था विदेशी निवेशकों को उन कीमतों पर भारतीय शेयर खरीदने के लिए राजी करना। उस समय भारतीय शेयर बाजार विदेशियों के लिए बंद थे, लेकिन वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में वादा किया था कि विदेशी फंडों को जल्द ही यहां निवेश करने की अनुमति दी जाएगी, जिसे उन्होंने अक्टूबर 1992 में पूरा किया। हर्षद ने इसे एक बड़ा अवसर समझा। उन्होंने अक्टूबर 1992 में कहा, "हमारे पास अपने शेयरों को पूरी दुनिया में बेचने की क्षमता है। भारत सबसे बड़ा अवसर है। यहां तक कि सूचकांक के 4500 के स्तर पर भी, यूटीआई के अध्यक्ष ने कहा था कि भारतीय बाजार निवेश के लिए एक बेहतरीन जगह हैं।"

दूसरा लक्ष्य संस्थागत खरीदारों के दायरे से बाहर निकलकर नए निवेशकों को लाना था। हर्षद ने व्यापारियों, नौकरशाहों और आम निवेशकों के बीच जो लोकप्रियता हासिल की थी, उसकी बदौलत नए निवेशक पहले से ही बड़ी संख्या में आ रहे थे। हर्षद ने बाद में कहा, "बाजार का विस्तार हो रहा था। हम एक वितरण नेटवर्क बनाने की योजना बना रहे थे। हम ग्रोमोर की कुछ कंपनियों को सार्वजनिक करने की भी योजना बना रहे थे, जिसका लक्ष्य लगभग 500-600 करोड़ रुपये जुटाना था। लेकिन उससे छह महीने पहले ही किस्मत ने अपना खेल खेला।"

यह सिर्फ किस्मत की बात नहीं थी। हर्षद के पतन का एक मुख्य कारण

बाज़ार में वर्चस्व स्थापित करने के लिए उनका अथक प्रयास और किसी भी कीमत पर इसे हासिल करने की उनकी कोशिश थी। 1987 में, हर्षद ने जिज्ञासावश मुद्रा बाज़ार में प्रवेश किया और उन्हें बैंकों और दलालों के एक स्थापित गिरोह से लड़ना पड़ा। जैसे ही उन्होंने वहाँ अपनी जगह बनाई, हर्षद को जल्द ही एहसास हुआ कि मुद्रा बाज़ार को एक ऐसे असीमित ईंधन भंडार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है जो शेयर बाज़ार में तेज़ी ला सकता है, जहाँ मुनाफा कमाना सबसे आसान होता है। ऐसा करते हुए उनका उन्हीं गिरोहों से टकराव हो गया।

हम पहले ही मुद्रा बाज़ार में हर्षद के युद्ध का दस्तावेजीकरण कर चुके हैं; यह युद्ध 1991 की शुरुआत में शेयर बाज़ार तक फैल गया। यही युद्ध घोटाले की कहानी का मूल है। हर्षद इस घोटाले में पूरी तरह से जीत रहे थे - चाहे सही तरीके से हो या गलत तरीके से - जब तक कि घोटाले का पर्दाफाश नहीं हो गया।
4

एक खूनी युद्ध

हर्षद ने मंदी के समर्थकों को बुरी तरह से हरा दिया था। तब तक उन्होंने अपनी स्थिति बदल ली थी

और तेज़ी के रुख अपना लिए थे, जिससे हर्षद एक निरर्थक युद्ध में संदिग्ध विजेता बनकर रह गए।

लेकिन हर्षद की जीत ही उसकी हार थी। उसने खुद अपना संतुलन खो दिया और अंततः वह अब तक के सबसे बड़े घोटाले का खलनायक बन गया।

कलकत्ता, 14 मार्च 1992: 9/2 हंगरफोर्ड स्ट्रीट के हरे-भरे, विशाल लॉन में, एक शानदार, सफेद दो मंजिला बंगले के चारों ओर, देश के सबसे प्रसिद्ध धन प्रबंधक अपने गिलास टकरा रहे थे। भीड़ में स्टॉकब्रोकर और विदेशी तथा बड़े भारतीय बैंकों के वित्त प्रमुखों का दबदबा था। आश्चर्य की बात यह थी कि हर्षद मेहता अनुपस्थित थे।

यह धन-व्यापारियों के लिए कोई साधारण अवसर नहीं था। यह अजय कायन की गृह प्रवेश पार्टी थी, जो चार प्रतिभूति और शेयर ब्रोकिंग फर्मों के नेटवर्क के सह-मालिक थे - जो भारत के सबसे शक्तिशाली नेटवर्कों में से एक है। वह अभी-अभी अपने नए घर में आए थे, जो शहर के मध्य में, प्रसिद्ध बेले व्यू नर्सिंग होम के पीछे स्थित था। यह एक ऐसा पता था जिससे देश का कोई भी स्थानीय व्यवसायी ईर्ष्या करेगा। कायन के घर में पॉलिश किए हुए संगमरमर के फर्श थे, जो प्राचीन वस्तुओं, क्रिस्टल, एक ही हाथीदांत से तराशी गई गणेश जी की प्रतिमा और विशाल जापानी फूलदानों से सजा हुआ था। प्रसिद्ध हेमंत ठक्कर द्वारा डिज़ाइन किया गया यह घर एक उत्कृष्ट कृति था। इसी घर पर अगस्त के अंत में आयकर अधिकारियों ने छापा मारा था।

उस ठंडी शनिवार शाम को जब कायन आगंतुकों का स्वागत कर रहे थे, तो वे सहज दिख रहे थे। (14 मार्च पांच दिवसीय उत्सव का पहला दिन था, जिसमें प्रत्येक दिन एक अलग समूह के लिए आरक्षित था - स्थानीय व्यापारी, बाहर से आए व्यापारी आदि)। प्रतिभूति और शेयर बाजार दोनों में एक प्रभावशाली खिलाड़ी, कायन ने आक्रामक अमेरिकी

बैंक सिटीबैंक और अमेरिकन एक्सप्रेस के साथ अपने व्यापारिक संबंधों और केनरा बैंक की दो शाखाओं - कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज और कैनबैंक म्यूचुअल फंड - के साथ अपने गहरे संबंधों के दम पर खूब तरक्की की थी। उस शाम कायन के पास जश्न मनाने के कई कारण थे। एक बड़ी गलती के चलते उन्होंने शेयर बाजार में महत्वपूर्ण शेयरों की शॉर्ट सेलिंग करके करोड़ों रुपये गंवा दिए थे, या कम से कम उनके प्रतिद्वंद्वियों का यही मानना था। लेकिन सिटीबैंक और कैनफिना जैसे दोस्तों के साथ, वह न केवल अपने नुकसान की भरपाई कर लेंगे, बल्कि मुनाफ़ा भी कमा लेंगे। कायन की प्रतिष्ठा बरकरार थी। कलकत्ता जैसे मरते शहर में, एक ऐसा व्यक्ति मौजूद था जो अपने पसंदीदा कॉर्पोरेट ग्राहकों के लिए पल भर में करोड़ों रुपये जुटा सकता था।

पार्टी ने इस बात को और भी पुख्ता कर दिया। विशाल लॉन के पार, मेहमान घर में और विशेष रूप से बनाए गए जुआघर में फैल रहे थे, जहाँ भारतीय शैली के दीवान और गद्दी रखे थे। बी प्रभा की थीम पेंटिंग से सजी सीढ़ियाँ मेहमानों को एक और बैठक कक्ष की ओर ले जा रही थीं, जहाँ से संगीत की गूंज सुनाई दे रही थी।

माहौल खुशनुमा था क्योंकि आमंत्रित लोग दुनिया जीतने के लिए तैयार थे। शराब और रमी टेबल पर ऊंचे दांव के बीच बातचीत चल रही थी, जो खिलाड़ियों द्वारा उठाए जाने वाले जोखिमों को दर्शाती थी। नरेश अग्रवाल ने एक बैंकर से कहा, "काउंटरपार्टी की किसे ज़रूरत है? बैंकों को सीधे दलालों के साथ कारोबार करना होगा।"

यह अफवाहों की जाँच करने और गपशप करने की एक शाम थी। एक बैंकर ने

एक बड़े ऑपरेटर से न्यूयॉर्क स्टॉक एक्सचेंज (एनवाईएसई) में सदस्यता हासिल करने की उनकी समूह की योजनाओं के बारे में पूछा। उन्हें लगभग साफ इनकार की उम्मीद थी, लेकिन इसके बजाय उन्हें पुष्टि मिली। और यह कोई बड़ा बुलिश निवेशक भी नहीं था। लेकिन बाद में उन्होंने बताया कि एनवाईएसई में सदस्यता मिलना कोई बड़ी बात नहीं थी। उन्होंने खुद ही जवाब दिया, "एनवाईएसई की सदस्यता की कीमत कितनी है? 775,000 अमेरिकी डॉलर। यह लगभग 2.5 करोड़ रुपये है। बूम के चरम पर बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (बीएसई) में सदस्यता खरीदने के लिए भी आपने इतना ही भुगतान किया था।" एक अन्य बैंकर एक लग्जरी यॉट के लिए बातचीत कर रहा था। एक बैंकर ने कहा, "मुझे लगता है कि वे एक क्रूज शिप की बात कर रहे थे।" बैंकएम के आलोक अग्रवाल ने चुटकी लेते हुए कहा, "मैं आजकल टोयोटा या सुजुकी नहीं चलाता। मैं माज़दा चलाता हूँ", हर्षद द्वारा माज़दा इंडस्ट्रीज के शेयरों के साथ किए जा रहे व्यवहार का जिक्र करते हुए।

वे सभी उस शाम वहीं मौजूद थे। केनरा बैंक के चेयरमैन एन.डी. प्रभु, आईटीसी के वित्त विशेषज्ञ फिरोज वेवैना, क्लासिक फाइनेंशियल के मुन्नू चंद, ब्रोकर पल्लव शेठ, परेश खंडवाला और जीतू श्रॉफ, बैंकएम के वित्त प्रमुख संदीप सचदेवा, व्यवसायी घनश्याम सारदा और, ज़ाहिर है, कायन के प्रमुख संरक्षक, के.के. बिरला के स्वामित्व वाली टेक्समैको के रमेश माहेश्वरी। लेकिन एक और खास समूह था - कायन के घनिष्ठ व्यापारिक सहयोगी: सिटीबैंक के ए.एस. थियागराजन और रमेश कुमार, बीएसई के अध्यक्ष और ब्रोकिंग फर्म डी.एस. पुरभूदास के मालिक हेमेंद्र कोठारी। इन लोगों ने एक अनौपचारिक गिरोह बनाया था, जो कायन और उनके साझेदार

उत्सव पारेख द्वारा नियंत्रित चार फर्मों के साथ मिलकर काम करता था।

इन चारों में से, कायन के सीधे स्वामित्व वाली प्रमुख कंपनी सी. मैकर्टिच एंड कंपनी, सरकारी प्रतिभूतियों के कारोबार में अपना दबदबा रखती थी। यह तब की बात है जब हर्षद मेहता ने एसबीआई और बैंकएम को अपने साथ मिलाकर 1991 में बड़े-बड़े सौदे करके यह मुकाम हासिल कर लिया था।

आम निवेशकों के लिए ये नाम बिल्कुल अनजान थे, कम से कम माज़दा इंडस्ट्रीज और ग्रोमोर जैसे नामों की तुलना में। हर्षद की लोकप्रियता के सामने कायन का नाम नगण्य लगता था। लेकिन कायन, जो उस समय लगभग पैंतीस वर्ष के थे और एक शांत स्वभाव के चतुर कारोबारी थे, ब्रोकिंग व्यवसाय में कहीं अधिक प्रभावशाली व्यक्ति थे। हर्षद मेहता की तरह, वे वित्तीय बाज़ार के सभी क्षेत्रों - यूनिट, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बॉन्ड, सरकारी प्रतिभूतियाँ और शेयर - में सक्रिय थे। हर्षद की तरह, उन्होंने इन सभी बाज़ारों में बड़ा दांव लगाया था। हर्षद की तरह, बाज़ार पर उनके मजबूत विचार थे और वे उन पर दांव लगाने को तैयार थे। और हर्षद की तरह, वे बुद्धिमान थे और जटिल सौदे करने में सक्षम थे।
लेकिन उनमें कुछ अहम अंतर थे। कायन, जो अपनी मनमोहक मुस्कान के साथ-साथ एक बेचैन कर देने वाली कठोर, भेदक निगाहों का भी इस्तेमाल करता था, प्रचार से दूर रहने वाला और शांत स्वभाव का था। हर्षद मुखर और उद्दंड था। कायन सौम्य था और संस्थाओं का सहारा लेना पसंद करता था। हर्षद अपने निजी खाते पर पैसा लगाने

की मिलीभगत से। उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से म्यूचुअल फंडों का समर्थन प्राप्त था, जो जनता से जुटाए गए धन से खूब मुनाफा कमा रहे थे। बाद में, तेज़ी से बढ़ते बाज़ार ने आम निवेशकों को आकर्षित किया और वे एक विशाल मौन बहुमत के रूप में उभरे, अनजाने में ही तेज़ी के दौर का समर्थन करते हुए। क्या यह हाल की घटना जैसा लगता है? हमने 1999-2000 में इसका एक और रूप देखा।
मंदी का गुट भी उतना ही शक्तिशाली था। वे संख्या में कम थे, तेज़ी के खेमे के मुकाबले अल्पसंख्यक थे, लेकिन उनके पास अनुभवी और स्थापित खिलाड़ी थे। अग्रवाल को कारोबार की पूरी जानकारी थी और वे विदेशी बैंकों के साथ बड़े सौदे करने में सक्षम थे। कायन एक समय के सबसे शक्तिशाली शेयर व्यापारी थे। मनु मानेक एक समानांतर स्टॉक एक्सचेंज की तरह थे, जिनका पूरे देश में नेटवर्क था और वे उन सभी को थोक में शेयर उपलब्ध कराते थे जिन्हें डिलीवरी में कठिनाई होती थी। यह गुट स्टॉक एक्सचेंज के समर्थन पर निर्भर था, जिसे वे अपना वैध क्षेत्र मानते थे। तेज़ी का दौर तो बाद में आया था। मंदी का गुट ज्यादातर पुराने स्थापित तंत्र का हिस्सा था।
गुट के सभी सदस्य शक्तिशाली थे, और हर कोई अपना विशिष्ट योगदान देता था। कोठारी के स्वामित्व वाली डीएस पुरभूदास, उस समय यूटीआई से सीधे संपर्क में रहने वाली एकमात्र ब्रोकर कंपनी थी, जब एमजे फेरवानी अध्यक्ष थे। कम भाग्यशाली ब्रोकरों का कहना है कि यूटीआई अक्सर कार्टेल सदस्यों को शॉर्ट-सेलिंग के कारण फंस जाने पर उन्हें बचाने के लिए शेयर बेच देती थी। दरअसल, मंदी के दौर में काम करने वाली कार्टेल के लिए यूटीआई को अपनी इच्छानुसार प्रतिक्रिया देने के लिए मजबूर करना बेहद

महत्वपूर्ण था। आखिरकार, 1990 तक, यूटीआई की हल्की सी भी हरकत बाजार को जुकाम होने जैसा माना जाता था।
फेरवानी हर्षद को कभी पसंद नहीं करते थे, इसलिए यूटीआई ने उनके लिए दरवाजे बंद कर दिए थे। फेरवानी ने तो वास्तव में उन्हें ब्लैकलिस्ट कर दिया था। लेकिन कुशल विक्रेता हर्षद ने हार मानने से इनकार कर दिया। जुहू बीच पर फेरवानी के साथ सुबह की सैर के दौरान उन्होंने अपना गुस्सा और निराशा व्यक्त की।

"आप एकमात्र ऐसी संस्था हैं जो मेरे साथ व्यापार नहीं कर रही हैं," हर्षद ने कहा।

"मैं ज्यादा कुछ कर भी नहीं सकता, है ना?" फेरवानी ने जवाब दिया।

“इसे मेरी असफलता के रूप में देखा जाता है। मैं इससे उबर नहीं पा रहा हूँ। हममें क्या कमी है? यूटीआई के अलावा कोई और हमारे साथ लेन-देन करने से इनकार नहीं करता।” हर्षद ने उनसे विनती की और फेरवानी मान गए।
हर्षद ने उन्हें कुछ लेन-देन के लिए राजी कर लिया, लेकिन वे कभी पूरे नहीं हुए। मेहता परिवार को लगता था कि इस प्रतिष्ठान की पहुँच बहुत गहरी है। यूटीआई के लिए इक्विटी ब्रोकरेज का कारोबार कुछ ही लोगों तक सीमित था। हर्षद के एक भाई ने कहा, “किसी और के इसमें घुसपैठ करने पर बहुत ईर्ष्या थी।” अन्य ब्रोकरों के भारी विरोध के बाद, यूटीआई ने दूसरों को भी हॉटलाइन दीं। हालाँकि, उनके फोन कोठारी के फोन से भी कम बजते थे।
एसए दवे के यूटीआई के अध्यक्ष बनने के बाद भी स्थिति में थोड़ा ही बदलाव आया (हालाँकि स्वीकृत ब्रोकरों की सूची में काफी

विस्तार हुआ और कई और लोगों को हॉटलाइन मिलीं) क्योंकि कार्टेल के डीलरों और यूटीआई के अध्यक्ष के अधीन काम करने वाले बहुत वरिष्ठ अधिकारियों से संबंध थे। दवे हर्षद के प्रति खुले विचारों वाले थे। जब बीएसई का संवेदनशील सूचकांक 2000 के स्तर को पार कर गया, तो उन्होंने हर्षद को बधाई देने के लिए फोन किया। फिर भी, हर्षद को बहुत कम कारोबार मिला। 1991 के अंत में, हर्षद ने डेव और यूटीआई के वरिष्ठ अधिकारियों को ग्रोमोर अनुसंधान टीम द्वारा प्रस्तुत एक प्रस्तुति दिखाई। फिर भी कोई कारोबार नहीं मिला।
दरअसल, मेहता परिवार के अनुसार, यूटीआई के अधिकारियों ने हर्षद के साथ घिनौनी चालें भी चलीं। 1991 में, ग्रोमोर के एक डीलर ने बैंकएम के साथ एक मनी मार्केट डील यूटीआई को सौंप दी। योजना यह थी कि यूटीआई के पास मौजूद 13% सार्वजनिक क्षेत्र के बॉन्ड के बदले पैसा उधार दिया जाए और मांग पर वही पैसा वापस ले लिया जाए। यूटीआई के अधिकारियों ने ग्रोमोर को वापस संपर्क करने का वादा करके विवरण लिख लिया। उन्होंने पूरे दिन फोन नहीं किया। दोपहर 4:30 बजे, यूटीआई ने ग्रोमोर के डीलर को सूचित किया कि अध्यक्ष ने निर्णय ले लिया है। सौदा रद्द हो गया। मेहता परिवार का दावा है कि सौदा एक कार्टेल सदस्य को मिल गया।
यूटीआई के अलावा, कार्टेल का समर्थन करने वाली प्रमुख संस्था सिटीबैंक थी, जो सबसे आक्रामक और चतुर ट्रेडिंग बैंक थी। कायन के
उनके प्रतिद्वंद्वियों का कहना है कि सी मैकर्टिच सिटीबैंक के करीबी सहयोगी थे, लगभग एक तरह से उनके ब्रोकर की तरह। सिटीबैंक के वित्त प्रमुख ने अपने डीलरों को निर्देश दिया कि कायन द्वारा लाए गए किसी भी सौदे को पूरा करें, यह कहते हुए कि "वह

बैंक का हिस्सा हैं।" बैंक ने इस बात से इनकार नहीं किया, लेकिन जोर देकर कहा कि उसे इन ब्रोकरों से बहुत अच्छे सौदे मिले थे और वे बैंक के प्रति बेहद वफादार थे। जैसा कि जनकीरामन समिति ने पता लगाया, सिटीबैंक के शीर्ष तीन ब्रोकरों में से दो सी मैकर्टिच और स्टीवर्ट एंड कंपनी थे। यूटीआई की तरह, कई ब्रोकरों और बैंकों को सिटीबैंक के सौदों से बाहर रखा गया था। कायन के साथ सिटीबैंक का संबंध एक व्यापक व्यापारिक श्रृंखला का हिस्सा था जिसमें आदित्य बिरला और कोठारी भी शामिल थे। जब बिरला की ग्रासिम इंडस्ट्रीज ने विदेशी इक्विटी जारी करने का फैसला किया, तो लीड मैनेजर मेरिल लिंच और आश्चर्यजनक रूप से सिटीबैंक थे, जो मेरिल की तुलना में एक छोटा खिलाड़ी है। मेरिल का भारतीय साझेदार डीएसपी फाइनेंशियल कंसल्टेंट्स था, जिसके मालिक कोठारी थे। कायन और उनके साथी उत्सव पारेख, लगभग सभी बिरला परिवार के प्रमुख ब्रोकर थे। कायन, के.के. बिरला साम्राज्य के एक प्रमुख कार्यकारी अधिकारी रमेश माहेश्वरी की ओर से भी काम कर रहे थे। बी.के. बिरला की बिरला सेंचुरी पोर्टफोलियो मैनेजमेंट लिमिटेड के बोर्ड में उत्सव पारेख भी शामिल थे।
बी.के. बिरला के बेटे आदित्य बिरला खुले तौर पर मंदी के पक्षधर थे और उन्होंने बाजार की तेजी को तर्कहीन बताया। एक व्यवसायी के लिए आश्चर्यजनक रूप से, उन्होंने कई विश्लेषकों को एक दस्तावेज भेजा जिसमें लंदन स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध यूनिलीवर और रेकिट एंड कोलमैन के कम मूल्य-आय अनुपात और बीएसई में सूचीबद्ध हिंदुस्तान लीवर और रेकिट एंड कोलमैन के बहुत उच्च मूल्य-आय अनुपात की तुलना करते हुए यह साबित करने का प्रयास किया गया कि भारतीय शेयरों की कीमत अधिक थी।

मुख्य रूप से सी. मैकर्टिच के नेतृत्व वाले इस समूह का सिटीबैंक के साथ एक अजीबोगरीब संबंध था (संभवतः कोठारी, जो सिटीबैंक के निवेश बैंकिंग प्रमुख ए.एस. थियागराजन के करीबी थे, ने ही अजय कायन को सिटीबैंक से मिलवाया था)। और शेयर बाजार संचालन के लिए केनरा बैंक, कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज और कैनबैंक म्यूचुअल पर उनका पूर्ण नियंत्रण था। इससे अन्य ब्रोकर हैरान और नाराज हो गए। थियागराजन के भाई, ए.एस. मूर्ति और ए.एस. नागराजन, बैंगलोर में मेगास्टॉक्स नामक एक ब्रोकिंग फर्म चलाते थे, जो "लगभग सी. मैकर्टिच की बैंगलोर शाखा की तरह चलती थी", ऐसा एक कलकत्ता ब्रोकर का कहना है।
थियागराजन के स्वयं के स्वीकारोक्ति के अनुसार, उनके लगभग 30% लेनदेन सी. मैकर्टिच और स्टीवर्ट एंड कंपनी के साथ हुए हैं। यह व्यवस्था सभी के लिए सुविधाजनक थी। चूंकि कैनफिना का मुख्यालय बैंगलोर में था, इसलिए कायन को वहां एक स्थानीय ब्रोकर की आवश्यकता थी। सिटीबैंक को भी कैनफिना के साथ अपने सौदों के लिए एक ब्रोकर की आवश्यकता थी, हालांकि, स्पष्ट कारणों से, उसने मेगास्टॉक्स के साथ सीधे लेन-देन नहीं किया।
कायन का कैनफिना और सिटीबैंक के साथ बहुत घनिष्ठ संबंध था। जब किसी वित्त कंपनी ने कैनफिना के साथ एक छोटा सीधा सौदा किया, तो कायन ने डीलर को फोन किया।

"तो, आपने इन दिनों कैनफिना के साथ लेन-देन शुरू कर दिया है?", कायन ने कहा।

“यह तो 5 करोड़ रुपये का छोटा सौदा है। लेकिन आपको कैसे पता?” हैरान डीलर ने पूछा।

कयान हँसे। “कैनफिना जो भी करता है, मुझे पता चल जाता है।” डीलर ने इसे कैनफिना से दूर रहने का संकेत समझा।
सार्वजनिक रूप से, बेशक, कयान ने सिटीबैंक, कैनफिना और कैनम्यूचुअल के साथ अपने घनिष्ठ संबंधों का ज़ोरदार बचाव किया। “ये संस्थान प्रदर्शन-उन्मुख लोगों द्वारा चलाए जाते हैं। इनके पास उत्कृष्ट डीलर हैं। उन्होंने मेरे साथ लेन-देन करना इसलिए चुना क्योंकि मेरा लेन-देन निष्पक्ष और उचित है। वे यह नहीं कह सकते कि हमने उन्हें नुकसान पहुँचाया है।” यही बात सभी ऑपरेटर कहते हैं।
लेकिन इससे दूसरों को नुकसान हुआ। मुंबई स्थित एक बड़े सिक्योरिटीज ब्रोकर को बेंगलुरु स्थित कैनफिना के कार्यकारी निदेशक, एमके अशोक कुमार से संपर्क करने में परेशानी हो रही थी। “अगर आप बेंगलुरु फोन करते, तो वे कहते कि वह किसी खास दिन मुंबई में होंगे और आपसे मिलेंगे”, यह ब्रोकर याद करते हैं। मुंबई पहुँचने के बाद, अशोक कुमार का पता नहीं चलता था। कुछ ट्रेडिंग बैंकों को भी कैनफिना के साथ लेन-देन करना उतना ही मुश्किल लगा। यह मायने रखता था। कैनफिना ने हजारों करोड़ के बॉन्ड खरीदे थे। “आपको कैनफिना से ही निपटना पड़ता था”, हताश ब्रोकर कहते हैं। एक तरफ ये दिग्गज खिलाड़ी थे और दूसरी तरफ हर्षद खड़े थे। 1990 तक, लड़ाई की रेखाएँ खींच दी गई थीं – एक तरफ प्रतिष्ठित कार्टेल और दूसरी तरफ नवोदित हर्षद, जिनका कैनफिना, ग्रिंडलेज़ और बैंकएम (शीर्ष तीन व्यापारी) के साथ नियमित लेन-देन था, लेकिन सबसे बड़े बैंक सिटीबैंक के साथ नहीं। एक तरफ बिना किसी ठोस वित्तीय समर्थन के बुलिश निवेशक थे और दूसरी तरफ संस्थागत समर्थन वाला एक स्थापित कार्टेल। उनका पहला युद्धक्षेत्र मुद्रा बाजार था, जहाँ हर्षद ने उसी कार्टेल के खिलाफ लड़कर

उन्हें बुरी तरह घायल कर दिया था। अगला और अंतिम युद्धक्षेत्र शेयर बाजार था।
हर्षद बताते हैं: “1990 और 1991 में हमने मुद्रा बाजारों में भारी अस्थिरता देखी। औसत ब्याज दर 19.5% थी। आप इस दर पर उधार लेकर 13% और 9% कर-मुक्त बांडों में निवेश नहीं कर सकते थे। प्रति यूनिट यील्ड 16% थी। इसलिए, आपको अपनी आधार सुरक्षा बदलनी पड़ी। हम इक्विटी की ओर मुड़े। मैं तेजी का समर्थक था जबकि कार्टेल मंदी का रुख अपना रहा था। कोठारी ने 1992 की शुरुआत में खुले तौर पर खुद को मंदी का समर्थक घोषित कर दिया। मुद्रा बाजार में हुए नुकसान ने उनके अहंकार को ठेस पहुँचाई। ‘यह कौन है?’ वह मेरे बारे में सोचते थे।” कार्टेल के प्रत्येक सदस्य ने निजी तौर पर हर्षद के प्रति घोर घृणा व्यक्त की, लेकिन सार्वजनिक रूप से यह दावा किया कि वे कोई शेखी बघारने वाले मंदीवादी नहीं थे और कोई लड़ाई नहीं थी।
मई 1990 तक बाजार स्थिर था – बॉम्बे सेंसिटिव इंडेक्स 700-800 पर था। लेकिन जल्द ही
इसके बाद यह धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगा, और जैसे-जैसे सप्ताह बीतते गए, इसकी गति और तेज होती गई। 2 अगस्त को इराक ने
कुवैत पर आक्रमण कर दिया। बाजार पर इसका कोई असर नहीं पड़ा और 9 अक्टूबर को यह 1602 के स्तर पर पहुंच गया। लेकिन यही इसकी चरम सीमा थी।
तेजी और भी तेजी से फीकी पड़ गई – मात्र पैंतालीस दिनों में सूचकांक गिरकर 25 जनवरी 1991 को 956 के निचले स्तर पर आ गया, खाड़ी युद्ध शुरू होने के ठीक बाद। केवल सात महीनों में, सूचकांक 100% ऊपर गया और 80% नीचे आ गया। ये सात महीने आने

वाले और भी तीव्र उतार-चढ़ावों के सूचक थे। इसने बाजार के खिलाड़ियों को और भी विभाजित कर दिया।
इस विभाजन के एक तरफ मंदी का अनुमान लगाने वाले लोग थे, जिनका मानना था कि 1200-1500 बाजार का स्वाभाविक स्तर है, जबकि दूसरी तरफ तेजी का अनुमान लगाने वाले लोग थे, जिनका मानना था कि 1000 पर सूचकांक अपने सबसे निचले स्तर पर है। तेजी का अनुमान लगाने वाले सही साबित हुए। 956 के सूचकांक स्तर से शेयर बाजार की तेजी फीकी पड़ने लगी और एक अभूतपूर्व उछाल आया। जून में, संसदीय चुनावों से ठीक पहले राजीव गांधी की हत्या कर दी गई। इससे राजनीतिक अनिश्चितता का माहौल बन गया, जो कारोबार का सबसे बड़ा दुश्मन है। हालांकि, शेयर बाजारों पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। साल के अंत तक, नरसिम्हा राव सरकार की "उदार" आर्थिक नीतियों के चलते बाजार रॉकेट की तरह ऊपर चढ़ गया।
22 अप्रैल को, घोटाले की खबर सामने आने से एक दिन पहले, सूचकांक 4467 के स्तर पर पहुंच गया था, जो 375% की वृद्धि थी, या वार्षिक आधार पर चौंका देने वाली 321% की वृद्धि थी। कुछ शेयरों में, हर्षद के पसंदीदा शेयरों जैसे अपोलो टायर्स में, उछाल दस गुना तक था। यह एक अभूतपूर्व घटना थी। इसने बाजार के जानकारों को दंग कर दिया, क्योंकि बाजार में तेजी और मंदी के दौर के बीच अधिकतम 40% तक का उतार-चढ़ाव देखा जाता था। ठीक यही घटना 1999-2000 में भी दोहराई गई।
तो, अगर मंदी का अनुमान लगाने वालों को लगता था कि बाजार का स्वाभाविक स्तर 1200 है, तो उससे 40% की वृद्धि या सूचकांक का 1600 तक पहुंचना उनके लिए बेचने का सही समय था। उन्होंने ऐसा ही किया। 1991 के मध्य से, कार्टेल और मेहता शेयर बाजार में आमने- सामने थे। मई 1991 में, जब सूचकांक 1300 के पार जाने की कगार पर

था, मंदी का अनुमान लगाने वालों ने जमकर शेयर बेचे। अश्विन के आरोप के अनुसार, तेजी और मंदी के बीच इस खींचतान में, म्यूचुअल फंड, विशेष रूप से कैनम्यूचुअल, ने "मंदी का अनुमान लगाने वालों के लिए अपना पोर्टफोलियो खोलकर" उनका साथ दिया। एक रिपोर्ट के अनुसार, कैनम्यूचुअल ने अपोलो टायर्स के 13 लाख शेयर 66-72 रुपये की रेंज में बेचे। तीन महीनों में, कीमत बढ़कर 230 रुपये हो गई। हालांकि सिटीबैंक ने इसकी पुष्टि या खंडन नहीं किया, लेकिन उसने भी यह मानते हुए अपने पोर्टफोलियो का कुछ हिस्सा बेच दिया कि यह बेचने का अच्छा समय था। विडंबना यह है कि उन्हीं विक्रेताओं ने उच्च स्तर पर अपना रुख बदल लिया और जिन शेयरों को उन्होंने पहले बेचा था, उन्हें फिर से खरीदने लगे। सिटीबैंक ने दावा किया कि उसने शेयरों की खरीद-बिक्री केवल सामान्य ट्रेडिंग रणनीति के तहत की और कभी भी खुले तौर पर मंदी का रुख नहीं अपनाया।
मेहता एक बड़े बुल थे, जो मनी मार्केट में अपनी स्थिति का इस्तेमाल करते हुए अपोलो, एसीसी और अन्य शेयरों को खरीद रहे थे, और इसके पीछे उनका जबरदस्त व्यक्तिगत प्रचार भी था। दूसरी ओर, कार्टेल के सदस्य कई मौकों पर एसीसी और अपोलो टायर्स, जो बिग बुल के दो पसंदीदा शेयर थे, पर शॉर्ट सेलिंग कर रहे थे। कोलकाता के एक प्रमुख ब्रोकर ने याद किया कि जनवरी की शुरुआत में कोलकाता में एक पार्टी में, कायन और उनके साथी दावा कर रहे थे कि सीमेंट उद्योग अपने चरम पर पहुंच चुका है।

अजय ने कहा, "सीमेंट के शेयरों में कोई हलचल नहीं है। मैंने अभी- अभी मैसूर सीमेंट्स (बिरला की कंपनी) से बात की है। एसीसी की हालत तो बस हर्षद की वजह से है।" उस दिन एसीसी का भाव 3000 रुपये

से ऊपर था। लगभग 15 दिन बाद, यह ब्रोकर कोलकाता में एक और डिनर में शामिल हुआ, जहां सी मैकर्टिच के लिए काम करने वाले हर्ष हिमात्सिंगका ने फिर से दावा किया कि एसीसी का भाव गिरेगा। इसके बजाय, एसीसी का भाव दोगुना हो गया। बाजार में तेजी का माहौल था।
एक जानकारी के अनुसार, 1991 के अंत तक कायन कई शेयरों में मंदी का रुख अपनाए हुए थे। संभवतः हर्षद मेहता के साथ सिटीबैंक की लड़ाई में वे एक भाड़े के निवेशक थे। कायन बेशक कई अन्य शेयरों में तेजी का रुख अपनाए हुए थे, जिनमें प्रमुख रूप से गुजरात नर्मदा फर्टिलाइजर कॉर्पोरेशन और सदर्न पेट्रोकेमिकल्स इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन के उर्वरक शेयर और सीईएससी लिमिटेड जैसी बिजली कंपनियां शामिल थीं। अप्रैल 1992 में, उन्होंने इन शेयरों का एक हिस्सा गिरवी रखकर पीयरलेस फाइनेंस से लगभग 6 करोड़ रुपये जुटाए। अफवाहें हैं कि जब एसीसी की कीमत 3000 रुपये तक पहुंच गई, तब इस समूह के एक सदस्य ने 3 लाख शेयर खरीद लिए - कुल मिलाकर 90 करोड़ रुपये। इसकी तुलना मेहता के कदम से करें: उन्होंने 30 रुपये प्रति शेयर पर अपोलो टायर्स के 26 लाख शेयर खरीदे, जिससे कीमत 400 रुपये तक पहुंच गई। इसका भुगतान किसने किया? बजट से पहले इस समूह के एक सदस्य ने अपोलो के 30 लाख शेयर कम कर दिए थे। उन्होंने 150 रुपये के विक्रय मूल्य के मुकाबले 275 रुपये पर अपना सौदा पक्का किया।
जितनी अधिक बिकवाली मंदी की ओर बढ़ रही थी, उतना ही बाजार ऊपर चढ़ रहा था। अपने अंतिम प्रयास में, मंदी ने नवंबर और दिसंबर 1991 में फिर से जोरदार प्रहार किया। लेकिन हर्षद ने लगभग निर्णायक पलटवार किया। अश्विन ने कहा, "यह हर्षद की एक विशिष्ट चाल थी।" नवंबर के अंत और दिसंबर के पूरे समय, हर्षद ने ऐसा आभास

दिया जैसे वह पूरी तरह थक चुके हों। वह शांत, सुस्त थे और पलटवार करने का कोई संकेत नहीं दिखा रहे थे। फिर, जनवरी में, जब बाजार खुला, हर्षद ने निर्णायक हमला किया। उन्होंने सभी एक्सचेंजों में अपने सभी पसंदीदा शेयरों की बड़े पैमाने पर और लगातार खरीदारी का आदेश दिया, मंदी के पैरोकारों को बेरहमी से पछाड़ दिया। यह मंदी के प्रतिरोध का अंत था। कायन ने अपने बेचने के फैसले का साहसपूर्वक बचाव किया। "जब हमने कहा कि मुनाफा बुक करने का यही सही समय है, तो कुछ अन्य लोगों को यह पसंद नहीं आया। अगर हर्षद चाहते थे कि हर कोई उनकी भाषा में बात करे तो मैं क्या कर सकता था?" यह जायज है लेकिन कुछ ज्यादा ही तर्कसंगत लगता है। आखिरकार, कार्टेल और हर्षद के बीच जो टकराव चल रहा था, वह बाज़ार की दिशा को लेकर केवल ज्ञान की लड़ाई नहीं थी। दोनों पक्षों ने ट्रेडिंग फ्लोर के बाहर हथियार तलाशने शुरू कर दिए।
हर्षद अपोलो, माज़दा, ब्लो प्लास्ट और गुजरात अंबुजा जैसी कॉर्पोरेट कंपनियों को लुभाने में लगा हुआ था और उनके शेयरों की बड़ी मात्रा खरीदकर उनकी कीमतें बढ़ा रहा था। अन्य कंपनियों के भी अपने पसंदीदा ब्रोकर थे। आईटीसी के ब्रोकर पल्लव शेठ थे, जबकि राजेंद्र बंथिया बॉम्बे डाइंग में तेज़ी का रुख अपनाए हुए थे। नवगठित तेज़ी के इस समूह ने कॉर्पोरेट सेक्टर के साथ फंड जुटाने के लिए सौदे किए और अपना एक अनौपचारिक कार्टेल बना लिया।
जहां हर्षद मनी मार्केट से पैसा निकालकर कॉर्पोरेट सेक्टर के साथ हाथ मिला रहा था, वहीं मंदी के दौर में आमतौर पर तीन हथियार होते थे। पहला था स्टॉक एक्सचेंजों के गवर्निंग बोर्ड का इस्तेमाल करके सेटलमेंट कीमतें तय करना, दूसरा था बड़े म्यूचुअल फंडों, मुख्य रूप से यूटीआई, को बिकवाने के लिए मजबूर

करना और तीसरा था आरबीआई और वित्त मंत्रालय जैसे अधिकारियों से सरकारी स्वामित्व वाली निवेश संस्थाओं को बिकवाली का आदेश दिलवाना।
ये सभी संस्थाएं सरकारी थीं। दरअसल, आरबीआई गवर्नर ने 10 मार्च को इन सभी संस्थानों की बैठक बुलाई और अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें बेचने का निर्देश दिया। लेकिन इसके बारे में अगले अध्याय में विस्तार से चर्चा करेंगे। पहले मूल्य निर्धारण तंत्र को समझते हैं।
बीएसई (उस समय अध्यक्ष हेमेंद्र कोठारी थे, जो लगातार कह रहे थे कि बाजार में अत्यधिक तेजी है) में निपटान संख्या 22 के तहत कई शेयरों के लिए मिलान शुल्क (या हवाला मूल्य जो विक्रेता खरीदार को देता है) बाजार दर से 15% तक कम था। कलकत्ता में, जहां शासी बोर्ड में स्टीवर्ट एंड कंपनी के सेवांतीलाल शाह जैसे लोगों का दबदबा था, अप्रैल 1992 में एसीसी पर निपटान मूल्य मात्र 7600 था, जबकि बाजार मूल्य 9500 था। 1991/92 के निपटान 24 के लिए एसीसी पर निर्धारित मार्जिन राशि
4 अप्रैल 1992 को समाप्त अवधि के लिए, खरीद पर 1500 रुपये और बिक्री पर 1000 रुपये थी, जिससे स्पष्ट रूप से शॉर्ट-सेलर्स को आसानी से छूट मिल गई।
हालांकि, बुलिश निवेशक अधिक मार्जिन दे रहे थे। इस अवधि के दौरान एसीसी शेयर के हवाला रेट में 125% की वृद्धि हुई (3700 रुपये से बढ़कर 8350 रुपये हो गया), जबकि खरीदारों द्वारा देय मार्जिन में 400% की वृद्धि हुई। साथ ही, बिचौलियों ने उच्च स्तर पर स्क्वायर-अप के प्रस्तावों को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। ऐसा प्रतीत होता था कि उनका उद्देश्य बुलिश फंडों को मौके पर ही भुगतान करने के लिए मजबूर करके उन्हें रोकना था।

यह तीसरा हथियार था जो नाकाम रहा। कार्टेल ने शायद अपनी पुरानी चाल दोहराने की कोशिश की, यानी संस्थागत लहर का फायदा उठाकर कुछ म्यूचुअल फंडों को बेचने के लिए मजबूर करना। कोलकाता स्थित एक ब्रोकर के अनुसार, "पहले यूटीआई बाजार को बना या बिगाड़ सकता था।" लेकिन ऐसा लगता है कि कार्टेल बैंकिंग प्रणाली के उस असीमित धन का अनुमान लगाने में विफल रहा, जिसे हर्षद जुटा सकता था और जिसका उपयोग वह सुबह के नाश्ते की तरह आसानी से बड़ी मात्रा में शेयर खरीदने में कर रहा था।
अंततः यह अहम की लड़ाई थी। “कार्टेल का दबदबा अब खत्म हो चुका था। हर्षद ने मंदी के दौर में रहने वाले कार्टेल के उस पूर्वानुमान को गलत साबित कर दिया था जिसमें उन्होंने कहा था कि बाजार जरूरत से ज्यादा गर्म है। इससे उन्हें बहुत दुख हुआ”, अश्विन ने कहा, जो व्यक्तिगत रूप से हर्षद द्वारा छेड़े गए इस आखिरी लड़ाई के खिलाफ थे। दोनों गुटों के बीच सुलह के कुछ प्रयास किए गए। हर्ष हिमातसिंहका और विवेक मुंद्रा, जो कलकत्ता में कायन के लिए भी काम करते थे, मुंबई तक आए और सुलह कराने की कोशिश की। दोनों पक्ष लगभग युद्धविराम पर सहमत हो गए थे, लेकिन कोठारी अपने रुख पर अड़े रहे।
तेजी के दौर में भी, कोठारी ने बीएसई अध्यक्ष के रूप में अपने सार्वजनिक पद का इस्तेमाल करते हुए निवेशकों को शेयर बाजार के बुलबुले के बारे में आगाह करना जारी रखा। दरअसल, वे इतने गुस्से में थे कि उन्होंने हर्षद और अश्विन को फोन करके कहा कि वे... व्यवहार ठीक रखो। “मैं तुम्हें किसी भी स्टॉक एक्सचेंज में काम करने से रोक सकता हूँ”, उन्होंने अश्विन को चेतावनी दी। 3 अप्रैल 1992 को, बीएसई के अध्यक्ष के रूप में अपना एक साल का कार्यकाल समाप्त करने के तुरंत बाद, उन्होंने द इकोनॉमिक

टाइम्स को बताया कि बीएसई सूचकांक पहले ही बहुत ऊँचा है और निवेशकों को इससे दूर रहना चाहिए। उन्होंने बिल्कुल सही कहा कि दिवालिया होने की कगार पर खड़ी कंपनियों के शेयर भी अवास्तविक रूप से ऊँचे दामों पर बिक रहे थे। इस खूनी जंग को रोकने वाला एकमात्र व्यक्ति कैनफिना के अशोक कुमार थे, जो कायन और हर्षद दोनों के करीबी थे। वे कायन को शांत रहने की सलाह दे रहे थे और हर्षद को धीरे चलने के लिए कह रहे थे। उन्होंने कोठारी से भी बात की। लेकिन जंग जारी रही।
मार्च 1992 तक, यह स्पष्ट हो गया था कि मंदी के समर्थकों को करारा झटका लगा था। अश्विन के अनुसार, तब तक उन्होंने अपना रुख बदल लिया था और तेजी के समर्थक बन गए थे, जिससे हर्षद एक निरर्थक युद्ध में संदिग्ध विजेता बनकर रह गए थे। लेकिन हर्षद की जीत ही उनकी हार थी। उन्होंने संतुलन खो दिया और अंततः अब तक के सबसे बड़े घोटाले में खलनायक बन गए। तब तक वे अकेले पड़ चुके थे। अन्य तेजी के समर्थक लगभग खेल से बाहर हो चुके थे।
जहां तक मंदी के समर्थकों की बात है, वे कैनफिना और सिटीबैंक के साथ अपने गठजोड़ के कारण आसानी से इस समस्या से निकल गए। हर्षद ने कहा, "उनके नुकसान सिटीबैंक के पीएमएस खातों में जमा कर दिए गए हैं।" उदाहरण के लिए, अप्रैल में सिटीबैंक ने अपने हाउस ब्रोकर्स, सी मैकर्टिच और स्टीवर्ट एंड कंपनी को 89 करोड़ रुपये का मुनाफा दे दिया। उसने म्यूचुअल फंड यूनिट्स को कृत्रिम रूप से कम दरों पर बेचा, जिन्हें बाद में दोनों ब्रोकर्स ने बहुत अधिक मुनाफे पर बेच दिया। इससे सिटीबैंक को कोई नुकसान नहीं हुआ। पैसा उसके पीएमएस ग्राहकों का था। इसके अलावा, स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक के फंड का एक हिस्सा हितेन दलाल के माध्यम से इस समर्थकों के पास पहुंच गया होगा। नरेश

अग्रवाल, जिनका सिटीबैंक से कभी कोई करीबी रिश्ता नहीं था, ने अपने नुकसान की भरपाई के लिए खुद ही इंतजाम कर लिए।
लेकिन इस सब हंगामे के बाद भी हर्षद को कोई पछतावा नहीं था। “कई ज़िम्मेदार लोगों ने कहा कि मैं कीमतों में हेराफेरी कर रहा था,” उन्होंने सितंबर 1992 के अंत में कहा। “मैं ऐसा कैसे कर सकता था? मैंने तो सिर्फ़ 500-600 करोड़ रुपये का निवेश किया था। बाज़ार में सबसे छोटे म्यूचुअल फंड के पास भी 1000 करोड़ रुपये से ज़्यादा का निवेश योग्य फंड था। मैं एक बड़ा व्यक्तिगत निवेशक था, लेकिन बाज़ार के मानकों के हिसाब से फिर भी छोटा था। बात यह है कि हर कोई खरीद रहा था। जब सूचकांक 1100 के स्तर पर पहुँचा, तो कुछ लोगों ने कहा, बस, यही है। हम शिखर पर पहुँच गए हैं। वे गलत थे। फिर हम 1800 पर पहुँचे। इस बार हर किसी ने कहा कि अब कीमतें और ऊपर नहीं जा सकतीं। हर कोई मंदी का अनुमान लगा रहा था।” किसी भी तरह, हर्षद खुद के ही शब्दों में, एक जानलेवा लड़ाई लड़ रहे थे। “या तो मारो या मारे जाओ,” उन्होंने बाद में इस लड़ाई का वर्णन इस तरह किया।
हर्षद ने स्टीयरिंग पर से नियंत्रण खो दिया और दुर्घटना हो गई। कायन ने सितंबर 1992 में फ्रंटलाइन पत्रिका को बताया कि उन्हें लगता था कि हर्षद एक "अपराधी किशोर" था। अगर वह थोड़ा और परिपक्व होता तो उसे इतना आघात न सहना पड़ता। यह बात कुछ हद तक सच है। करोड़ों रुपये की ज़रूरत ने हर्षद को अपनी सफलता का दिखावा करते हुए बड़ी-बड़ी रकमों से खेलने पर मजबूर कर दिया। उसने लगातार सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। मंदी के दौर में चल रही तेज़ी के लिए हर्षद को मुख्य कारण बताकर ध्यान भटकाना आसान हो गया।

यही ध्यान हर्षद के लिए मौत का फरमान साबित हुआ। इसी वजह से आरबीआई गवर्नर उसके पीछे पड़ गए। एक बार ऐसा हो जाने पर हर्षद के पास बचने का कोई रास्ता नहीं बचा।

7

हर्षद जाल में

विडंबना यह थी कि जहां आरबीआई और उसकी सहायक संस्था एसबीआई को संयुक्त रूप से इस घोटाले का पर्दाफाश करने का श्रेय मिलना चाहिए था,
वहीं एक संस्था सारा श्रेय खुद ले रही थी जबकि
दूसरी संस्था अपमानित और आरोपित हो रही थी।

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के कैश बॉक्स में हाथ डालते हुए हर्षद मेहता को किसने पकड़ा? सवाल तो सीधा है, लेकिन जवाब नहीं। जैसे छह अंधे लोग हाथी का वर्णन करते हैं, वैसे ही इस मामले में तीन आंशिक रूप से अंधे लोग थे - आयकर विभाग, भारतीय रिज़र्व बैंक और एसबीआई। जानवर: लाक्षणिक रूप से विशाल बैल।
पहला अध्याय बताता है कि कैसे एसबीआई अधिकारियों ने लापता प्रतिभूतियों के मामले का पर्दाफाश किया, सीतारामन को पकड़ा गया और धोखाधड़ी का पर्दाफाश हुआ। एसबीआई के नेक इरादे वाले सीएल खेमानी और आरएल कामत को इस बात का पता नहीं था कि आरबीआई गवर्नर भी अपनी जासूसी कर रहे थे। घोटाले की कहानी सामने आने के एक महीने बाद जब राजनेता उनके खिलाफ साजिश रचने लगे, तो उन्होंने दावा किया: "मैंने चोर को पकड़ा है।"
मधुबन में, जो एसबीआई मुख्यालय से कुछ ही दूरी पर स्थित एक ऊंची इमारत है और जहां उसके वरिष्ठ अधिकारी रहते हैं, लोगों में काफी आक्रोश था। उनका मानना था कि एसबीआई अधिकारियों के घरों पर सीबीआई के अंधाधुंध हमले और विशेष रूप से खेमानी की दयनीय

स्थिति के लिए आरबीआई गवर्नर पूरी तरह से जिम्मेदार थे। यह बात निराधार हो भी सकती है और नहीं भी। लेकिन विडंबना यह है कि जहां आरबीआई और उसकी 97% स्वामित्व वाली सहायक कंपनी एसबीआई को संयुक्त रूप से घोटाले की जांच करनी चाहिए थी, वहीं एसबीआई को अपमानित किया गया और कटघरे में खड़ा कर दिया गया।
तो आरबीआई गवर्नर एस. वेंकिटारमनन की प्रसिद्धि का कारण क्या था? यदि आप उनके द्वारा बताए गए घटनाक्रम पर विश्वास करें, तो आरबीआई को जानकारी थी, उसने जांच की और दोषियों को हथकड़ी पहनाई। कहानी 1991 में कुछ छोटे बैंकों से शुरू हुई। यह मामला हर्षद से बाद में, मार्च 1992 में जुड़ा।

वेंकिटारमनन को 22 दिसंबर 1990 को तत्कालीन प्रधानमंत्री चंद्र शेखर द्वारा आरबीआई के गवर्नर के रूप में नियुक्त किया गया था। यह नियुक्ति शेखर सरकार द्वारा एक शक्तिशाली व्यापारिक घराने के साथ किए गए समझौते का हिस्सा थी, जिसके पास वेंकिटारमनन का ऋणी होने के कारण थे। वेंकिटारमनन, जो 1986 से 1988 के बीच केंद्रीय वित्त सचिव थे, के लिए यह एक लंबे समय से देखे गए सपने को साकार करने जैसा था। इससे आरबीआई को अपने आप में सुधार करने का मौका भी मिला, क्योंकि लगातार गवर्नरों ने इसे नौकरशाही और संकीर्ण मानसिकता वाला बना दिया था। वेंकिटारमनन शायद पहले गवर्नर थे जो अपने से पहले के तीन गवर्नरों (जिनमें तत्कालीन वित्त मंत्री मनमोहन सिंह भी शामिल थे) के विपरीत, बाजार की बात सुनने के इच्छुक थे।
लेकिन 22 दिसंबर को बाजार उनके दिमाग में दूर-दूर तक नहीं था। आरबीआई में गवर्नर की कुर्सी संभालने के दो सप्ताह बाद ही भारत विदेशी ऋणों पर डिफ़ॉल्ट के कगार पर था। विदेशी मुद्रा भंडार

घटकर मात्र 1.1 अरब अमेरिकी डॉलर या दो सप्ताह के आयात के बराबर रह गया था। गवर्नर ने सोने की बिक्री और आयातकों पर कठोर ऋण प्रतिबंध लगाने जैसे कड़े राहत पैकेज लागू किए। यह एक दिशाहीन देश की साख को पुनः प्राप्त करने की एक महत्वपूर्ण लड़ाई थी। इस लड़ाई का नेतृत्व वेंकिटारमनन ने किया। बेशक, यह संकट राजीव गांधी सरकार द्वारा लिए गए अत्यधिक अल्पकालिक ऋणों के कारण पैदा हुआ था, जिसमें वेंकिटारमनन एक प्रमुख सदस्य थे। वाशिंगटन, लंदन और अन्य स्थानों की बार-बार यात्रा करते हुए, धन जुटाने के साथ-साथ गवर्नर बीआर (ब्रॉडकार्डेड डिपॉजिट) जैसी एक साधारण सी चीज़ की भी जाँच कर रहे थे – कागज़ की वो छोटी-छोटी पर्चियाँ जिन पर हज़ारों करोड़ रुपये का कारोबार होता था। मार्च 1991 में, गवर्नर को सूचना मिली कि मुद्रा बाजार में बीआर का दुरुपयोग हो रहा है, बैंक बिना प्रतिभूतियाँ रखे ही बीआर जारी कर रहे हैं। इससे बैंकों द्वारा अपने ब्रोकर-ग्राहकों की ओर से धोखाधड़ी से ऋण उत्पन्न किया जा रहा था। पदभार संभालने के ठीक तीन महीने बाद, गवर्नर ने ऐसे पाँच बैंकों की जाँच का आदेश दिया।

20 मार्च के एक निर्देश में, जिस पर "अत्यंत गोपनीय" अंकित था, उन्होंने बैंकिंग संचालन और विकास विभाग को यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया, बैंक ऑफ बड़ौदा, बैंक ऑफ इंडिया, केनरा बैंक और इंडियन बैंक के प्रतिभूति विभाग का निरीक्षण करने का आदेश दिया। हैरानी की बात यह है कि इस सूची (जिसे उन्होंने "उदाहरण के तौर पर" बताया) के नीचे गवर्नर ने लिखा: "चूँकि विदेशी बैंक भी इसमें शामिल हैं, इसलिए हमें सावधानी बरतनी होगी।" यह मामला लगभग गौण था और बाद में गहन बहस का विषय बन गया। क्या वेंकिटारमनन कुछ

विदेशी बैंकों को बचाने की कोशिश कर रहे थे? या फिर भारत की उन बैंकों द्वारा दिए गए ऋणों पर निर्भरता को देखते हुए वे अतिरिक्त सतर्कता बरत रहे थे?
विडम्बना यह है कि आरबीआई के पास ठीक इसी विषय पर निरीक्षण रिपोर्टों का भंडार था, यानी 1986 से ही संदिग्ध मुद्रा बाजार गतिविधियों से संबंधित रिपोर्टें मौजूद थीं। गवर्नर या उप-गवर्नर, अमिताभ घोष, को बस अपने ही घर की जांच करनी थी। कम से कम आधा दर्जन निरीक्षण रिपोर्टों में खुले तौर पर बैंक ऑफ कराड, विजया बैंक, सिंडिकेट बैंक, आंध्र बैंक, सिटीबैंक और अन्य बैंकों की संलिप्तता का उल्लेख किया गया था। लेकिन वहीं से जांच शुरू करने के बजाय, आरबीआई ने वेंकिटारमनन के आदेश पर एक नई जांच शुरू कर दी। अमिताभ घोष या तो पिछली निरीक्षण रिपोर्टों को भूल गए या उन्होंने ऐसा दिखाया जैसे वे मौजूद ही नहीं थीं।
आरबीई निरीक्षण लंबी प्रक्रिया होती है - यहां तक कि धोखाधड़ी के संदिग्ध मामलों में भी। जांच फाइलें आरबीआई को वापस मिलने के बाद, दो महीने और बीत गए, जिसके दौरान आरबीआई निरीक्षकों ने बारह सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की गहन जांच की। रिपोर्टों में बीआर के दुरुपयोग और कृत्रिम दरों पर अंधाधुंध सौदों की ओर इशारा किया गया और ऐसी प्रथाओं को रोकने के लिए दिशानिर्देश जारी करने की सिफारिश की गई। आरबीआई निरीक्षकों द्वारा पता लगाए गए 1991 के बीआर घोटाले के केंद्र में बैंक ऑफ कराड था। इसी बीच, जून 1991 में, आरबीआई ने तीन बैंकों की जांच की, जिन्होंने दलालों को वित्तपोषित या उनके माध्यम से लेनदेन किया था: बैंक ऑफ मदुरा, बैंक ऑफ कराड और आंध्र बैंक। संयोगवश,

फाइलें उप-गवर्नर अमिताभ घोष के पास गईं। उन्होंने लगभग दो महीने तक उन पर कोई कार्रवाई नहीं की।
उनके तर्क क्या थे? घोष ने गवर्नर से कहा, "एक ऑडिट कराया जाए।" इस सुझाव से उनकी अपनी निरीक्षण टीम पर अविश्वास स्पष्ट हुआ। घोष चार्टर्ड अकाउंटेंट फर्म बंसी मेहता से ऑडिट कराना चाहते थे, जो बाद में फेयरग्रोथ, कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज, कैनबैंक म्यूचुअल और भूपेन दलाल की कई कंपनियों जैसे घोटाले में शामिल संस्थानों के ऑडिटर या निदेशक पाए गए। घोष यह भी चाहते थे कि आरबीआई यूनाइटेड कमर्शियल बैंक की जांच करे, संभवतः समय खरीदने और ध्यान भटकाने के लिए।
गवर्नर ने स्पष्ट रूप से असहमति जताई। “यदि हम इन कुप्रथाओं को रोकने के लिए तुरंत निर्देश जारी नहीं करते हैं, तो हमें प्रतिकूल टिप्पणियों का सामना करना पड़ेगा।”
उन्होंने 23 जुलाई को घोष को लिखा, “मुझे चिंता है कि 20 मार्च 1991 को ही मैंने
इस ओर ध्यान दिलाया था, फिर भी अब तक कोई निवारक कार्रवाई नहीं की गई है। निर्देशों का मसौदा 26-7-91 को जारी करने के लिए तैयार रखा जाए। आरबीआई को इन मामलों में तेजी से कार्रवाई करनी होगी।” कुछ दिनों बाद
इसके बाद, 26 जुलाई को, घोष ने एक परिपत्र जारी किया जिसमें बीआर के उपयोग के लिए मापदंड निर्धारित किए गए थे। यह आरबीआई निरीक्षकों द्वारा बैंक ऑफ कराड को दोषी ठहराए जाने के पूरे दो महीने बाद हुआ था - कराड से जुड़े दलालों, निदेशकों और कर्मचारियों के लिए मामले को दबाने का पर्याप्त समय।
बेशक, जैसा कि बाद की घटनाओं से साबित हुआ, सभी ने घोष के दिशानिर्देशों को पूरी तरह से अनदेखा कर दिया। इस बात का कोई

सबूत नहीं है कि घोष ने अपने द्वारा हस्ताक्षरित परिपत्र को लागू करने का प्रयास किया। वास्तव में, बैंकों ने परिपत्र का विस्तृत जवाब दिया। इसमें एसबीआई और स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक भी शामिल थे, जहां उल्लंघन व्यापक रूप से हो रहे थे। स्टैंडर्ड चार्टर्ड का मामला तो लगभग हास्यास्पद था। यह आरबीआई के साथ लगातार पत्राचार में लगा रहा,
26 अगस्त, 4 सितंबर और 20 दिसंबर को तीन पत्र लिखकर स्पष्टीकरण मांगा और दावा किया कि वह परिपत्र का पूरी तरह से पालन कर रहा है। अनुपालन के प्रमाण के रूप में, उसने पत्र के साथ अपने पुख्ता नियंत्रण निर्देशों की प्रतियां भी संलग्न कीं!

पेसी नैट के मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित 4 सितंबर के पत्र में यह दावा किया गया था कि “हम सरकारी प्रतिभूतियों में बाजार दर के अलावा किसी अन्य दर पर बायबैक सौदे नहीं करते हैं... हम बैंक रसीदों के आधार पर सहायक सामान्य खाता बही (एसजीएल) फॉर्म जारी नहीं करते हैं।” इसके बाद, स्व-प्रमाणन अपने चरम पर पहुँचता है: “ब्रोकरों के माध्यम से हमारे द्वारा किए गए लेन-देन के संबंध में, हमारी नीति विशेष रूप से रूढ़िवादी है... हम ब्रोकर खाते बिल्कुल नहीं रखते हैं... अंत में, अंतर-बैंक बाजार में हमारे लेन-देन पूरी तरह से हमारे अपने वैधानिक/व्यापारिक उद्देश्य के लिए हैं और हम किसी भी ब्रोकर-ग्राहक के एजेंट के रूप में कार्य नहीं करते हैं...” यह सब, ज़ाहिर है, पूरी तरह से झूठा निकला।
आरबीई ने इस मामले को यहीं छोड़ दिया, हालाँकि दिसंबर तक, इक्यावन बैंकों ने घोषणा की थी कि वे परिपत्र का अनुपालन कर रहे हैं और उनमें से चौबीस ने आरबीआई को निवेश नीतियां और

प्रक्रियाएं भेज दी थीं। लेकिन उससे एक महीने पहले, एक ऐसी घटना घटी जो उस समय हानिरहित प्रतीत हो सकती थी। आरबीआई ने के.के. मुखर्जी को एसबीआई के निरीक्षण का काम सौंपा था, हालाँकि विशेष रूप से उसके प्रतिभूति लेन-देन का नहीं। उन्होंने एक प्रबंधन रिपोर्ट तैयार की। मुखर्जी, जो एक कठोर लेकिन अत्यंत सक्षम अधिकारी थे, ने एसबीआई के भारतीय डॉलर खाते पर टिप्पणी की। एसबीआई के अध्यक्ष मुखर्जी से असहमत थे। लेकिन महत्वपूर्ण बात यह नहीं थी।
मुखर्जी की रिपोर्ट में एसबीआई में एक "बैकअप विभाग" बनाने का सुझाव दिया गया था, जो इस बात की निगरानी करे कि बैंक के प्रतिभूति लेनदेन आरबीआई के दिशानिर्देशों और एसबीआई के केंद्रीय कार्यालय के दिशानिर्देशों के अनुरूप हैं या नहीं। यदि उनके सुझाव पर ठीक से अमल किया जाता, तो सीतारामन का काम विभाजित हो जाता और वे अधिक जवाबदेह बन जाते। लेकिन मुखर्जी ने बीआर और एसजीएल के उपयोग की जांच नहीं की। क्यों नहीं? शायद उस समय किसी को संदेह नहीं हुआ था। गवर्नर का स्पष्टीकरण यह था कि एसबीआई उस समय भारत विकास बांडों (आईडीबी) के विपणन में शामिल था, जिन्हें विदेशों से धन लाने के लिए बनाया गया था। आईडीबी विदेशी मुद्रा भंडार बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण साधन थे और आरबीआई को लगा कि ऐसी कोई भी जांच करना अनुचित होगा जिससे एसबीआई कर्मचारियों के मनोबल पर असर पड़े।
एसबीआई की त्रुटिपूर्ण प्रणाली पर मुखर्जी की वह एक टिप्पणी घोटाले के इतिहास में महत्वपूर्ण है। यह पहली बार था जब आरबीआई को हर्षद मेहता के एसबीआई के साथ लेन-देन में दखल देने का मौका मिला था, लेकिन अनजाने में वह मौका चूक गया। अगला मौका तीन महीने बाद आया। और यह आरबीआई के प्रयासों से नहीं था।

जब आरबीआई बैंकिंग प्रथाओं की जांच कर रहा था, तब हर्षद एक बेकाबू बुल की तरह उभरे और शेयरों के मूल्यों और कीमतों के बारे में प्रचलित धारणाओं को धराशायी कर दिया। लेकिन उनका प्रभाव सीमित था। शेयरों की कीमतों को अपने प्रतिद्वंद्वियों को चौंकाते हुए उछालना उनके लिए आसान था, लेकिन नई दिल्ली में सत्ता के केंद्र में हर्षद अनजान थे। 1991 के अंत में, मेहता परिवार ने फैसला किया कि उन्हें सरकार के साथ अपने संबंधों को मजबूत करने की जरूरत है। हर्षद कहते हैं, "हम नई दिल्ली में प्रवेश करना चाहते थे।" मेहता परिवार इस बात से भली-भांति अवगत था कि दलालों की प्रतिष्ठा अच्छी नहीं होती। "मैं बॉम्बे के एक और दलाल के रूप में नहीं देखा जाना चाहता था। हम खुद को पूंजी और मुद्रा बाजारों में जानकार और सर्वश्रेष्ठ स्थिति में स्थापित करना चाहते थे। हमारी प्रस्तुति ही हमारा प्रवेश द्वार थी।" अपने "संपर्क" को बेहतर बनाने की रणनीति के तहत, हर्षद ने कृष्णमूर्ति को चुना। यह सही चुनाव था। कृष्णमूर्ति अद्वितीय थे। वे एक सफल नौकरशाह (उद्योग सचिव रह चुके) और एक जाने-माने औद्योगिक प्रबंधक थे, जिन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र की दिग्गज कंपनियों, भारत हेवी इलेक्ट्रिकल, मारुति उद्योग और इस्पात प्राधिकरण का नेतृत्व किया था। वे स्वयं भी एक सफल व्यवसायी थे, जिन्होंने अपने दो बेटों के साथ मिलकर भारत और विदेशों में एक छोटा औद्योगिक साम्राज्य स्थापित किया था। अंत में, राजीव गांधी और कांग्रेस के एक छोटे से वर्ग के करीबी होने के कारण, वे एक महत्वाकांक्षी राजनीतिज्ञ भी थे।
हर्षद ने व्यवसायी एस.एन. चतुर्वेदी (जो कांग्रेस के एक वर्ग के बहुत करीबी थे और राजनीति में अपनी पकड़ बनाए रखना चाहते थे) से कृष्णमूर्ति से परिचय कराने का अनुरोध किया। चूंकि चतुर्वेदी,

गुलाम नबी आजाद के करीबी थे, जो एक महत्वपूर्ण चंदा जुटाने वाले और कांग्रेस नेता थे, इसलिए यह बात बाद में दिल्ली में खूब चर्चा का विषय बन गई। हर्षद के पास इसका तर्कसंगत स्पष्टीकरण है: “परिचय की ज़रूरत तो पड़ती ही है। दिल्ली में यही चलन है। बिना किसी संदर्भ के कुछ नहीं चलता। मैं तो नॉर्थ ब्लॉक के दरबान से भी आगे नहीं बढ़ पाता।”

18 फरवरी को हर्षद मेहता दिल्ली के योजना भवन में कृष्णमूर्ति से मिले और अपने आकर्षक निवेश सिद्धांतों और ज़बरदस्त बिक्री भाषण के मेल से उन्हें बेहद प्रभावित किया। हर्षद ने यह कहकर शुरुआत की कि “अगर आप सार्वजनिक क्षेत्र के शेयरों को सस्ते दामों पर बेचते रहे, तो सरकार गिर जाएगी।” उन्होंने सुझाव दिया कि कृष्णमूर्ति की अध्यक्षता में एक विनिवेश समिति को इस सौदे को आकर्षक ढंग से पेश करना चाहिए और ऋण-इक्विटी अदला-बदली के माध्यम से सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के ऋण का भुगतान करना चाहिए।
कृष्णमूर्ति प्रभावित हुए। बाद में उन्होंने कहा, “मैंने उन बैठकों में पूंजी बाज़ारों के बारे में उतना सीखा जितना मैंने अपने पूरे जीवन में नहीं सीखा।” इसका एक कारण यह भी था कि उन्हें शेयर बाज़ारों की बिल्कुल भी समझ नहीं थी। हर्षद ने यह कहकर उन्हें चकित कर दिया कि “पूंजी बाज़ार हमारी सभी मुख्य समस्याओं का समाधान कर सकते हैं: बेरोज़गारी, संसाधनों की कमी, मुद्रास्फीति आदि।” कृष्णमूर्ति यह जानने के लिए भी उत्सुक थे कि एसीसी के शेयर 10,000 रुपये तक क्यों पहुंच गए। और अगर एसीसी के शेयर इतने ऊंचे भाव पर बिक रहे हैं, तो सीमेंट कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया के शेयर किस भाव पर बिकने चाहिए।

बाद में कृष्णमूर्ति ने कहा, “ये वो व्यक्ति थे जिन्हें प्रेस ने वित्त जगत का सबसे प्रतिभाशाली युवा बताकर खूब सराहा था। वे मुझसे मिलने आए और मैंने उनका वैसे ही स्वागत किया जैसे मैं उन लोगों का करता हूं जिनके पास देश की आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए विचार होते हैं। विचारों और सूचनाओं के प्रति खुला रहना मेरा कर्तव्य है। मेहता आए और उन्होंने मुझे बताया कि उनके पास देश के भुगतान संतुलन की समस्याओं को हल करने के ठोस विचार हैं। मैंने उनसे कहा कि इन मामलों को संभालने के लिए मैं सबसे उपयुक्त व्यक्ति नहीं हूं क्योंकि इनका कार्यान्वयन वित्त मंत्रालय के हाथ में है। जब मुझे पता चला कि उनकी यात्रा का उद्देश्य संसाधनों पर चर्चा करना था, तो मैंने उन्हें पहले अपने सहयोगी डॉ. सी. रंगराजन के पास भेजा। उन्होंने कहा कि वे व्यस्त हैं और मेहता को वित्त सचिव से मिलने का सुझाव दिया। मैंने बस वित्त सचिव को फोन किया कि मेहता उनसे मिलना चाहते हैं। गीताकृष्णन ने उन्हें मिलने का समय दे दिया।”
मेहता ने वीबी देसाई एंड कंपनी के जीतू श्रॉफ के साथ मिलकर बीस मिनट का एक प्रेजेंटेशन दिया कि पूंजी बाजार को खोलकर फंड कैसे आकर्षित किया जा सकता है। उन्होंने यह भी बताया कि आज मेरिल लिंच जैसी निजी संस्थाओं के पास वित्तीय संस्थानों या एशियाई विकास बैंक या अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष/विश्व बैंक जैसी बहुपक्षीय वित्तपोषण एजेंसियों की तुलना में अधिक निवेश करने को है, जिनके साथ भारत कुछ सौ मिलियन डॉलर के लिए कठिन बातचीत में लगा हुआ है।
कृष्णमूर्ति और हर्षद के बीच इतनी अच्छी दोस्ती हो गई कि उनका रिश्ता जल्द ही व्यापारिक सौदों में तब्दील हो गया। हर्षद ने 1000 करोड़ रुपये की अधिकृत पूंजी के साथ ग्रोमोर पावर

कॉर्पोरेशन को पंजीकृत किया, संभवतः कृष्णमूर्ति के बड़े निगमों को चलाने के सामान्य प्रबंधन अनुभव और बीएचईएल को चलाने के विशेष अनुभव का लाभ उठाने के लिए। लेकिन इससे भी अधिक विवादास्पद बात यह थी कि हर्षद ने उन्हें बिना किसी गिरवी के पैसा भी दिया, जिसे सीबीआई ने कृष्णमूर्ति को फंसाने के प्रयास में रिश्वत करार दिया।
अश्विन ने बताया कि कृष्णमूर्ति के बेटे ने हमें फोन किया और कहा कि उन्हें इंडिया मीटर्स में और शेयर खरीदने के लिए 35 लाख से 75 लाख रुपये की जरूरत है। हमने अपने दिल्ली कार्यालय के मोहन खंडेलवाल को 35 लाख रुपये तक की राशि जारी करने के निर्देश भेजे। दिल्ली कार्यालय ने अंततः ब्याज, अनुबंध या गिरवी की गणना किए बिना 32.74 लाख रुपये का चेक सौंप दिया। उचित दस्तावेज़ीकरण के बिना किसी को तत्काल ऋण देना व्यापारियों के बीच असामान्य नहीं है। अश्विन ने कहा, "हर्षद किसी को भी पैसा दे देता था। हमारी मानसिक सीमा 20 लाख रुपये थी।" लेकिन कुछ लोगों को 32.74 लाख रुपये की राशि उस समय के 100,000 अमेरिकी डॉलर के सटीक मूल्य के समान संदिग्ध लग रही थी।
इस सब के दौरान, शेयर बाजार में तेजी जारी रही और मुद्रा बाजार अस्थिर बना रहा,
बैंक 26 जुलाई के परिपत्र की खुलेआम अवहेलना करते रहे। जनवरी 1992 में, एक प्रतिभूति डीलर ने राज्यपाल को एक बार फिर बीआर के व्यापक दुरुपयोग के बारे में सूचित किया। आरबीआई ने तीन बैंकों
- आंध्र बैंक, बैंक ऑफ कराड और बैंक ऑफ मदुरा - की जांच करने का फैसला किया। रिपोर्ट फरवरी के मध्य में आरबीआई को मिलीं। इनमें प्रतिभूति लेनदेन में भारी अनियमितताएं सामने आईं। बैंकों ने फर्जी सौदों में अपना नाम इस्तेमाल करना जारी रखा था।

डीबीओडी के कुछ अधिकारियों ने सुझाव दिया कि दलालों के खातों की जांच का काम सीबीआई या राजस्व खुफिया विभाग जैसी बाहरी जांच एजेंसियों को सौंप दिया जाए। लेकिन आरबीआई के लिए यह एक बहुत ही क्रांतिकारी विचार था, जहां दलालों के अस्तित्व को नकारने या उन्हें एक तरह की अनिवार्य बुराई मानने की परंपरा रही है। कार्यकारी निदेशकों में से एक, विमला विश्वनाथन ने इसी परंपरा का पालन करते हुए सीबीआई को शामिल करने के विचार का विरोध किया। उन्होंने 22 फरवरी के एक नोट में यह भी सुझाव दिया कि "गवर्नर अगली क्रेडिट पॉलिसी बैठक के बाद बैंक अध्यक्षों के साथ इस पर चर्चा करने का अवसर ले सकते हैं... उससे पहले, इन मुद्दों पर शीर्ष प्रबंधन की बैठक में चर्चा की जा सकती है।"
गवर्नर को विश्वनाथन की किसी भी मामले पर कार्रवाई करने में कुख्यात धीमी गति की जानकारी थी। इसलिए जब
3 मार्च को उन्हें यह नोट मिला, तो उन्होंने लिखा: “आगे चर्चा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हमें इस तरह के दुरुपयोग को रोकने के लिए कार्रवाई करनी होगी। हमें उन निदेशकों को हटाना होगा जो इसमें शामिल पाए गए हैं। बैंक ऑफ कराड को इस तरह के दुरुपयोग को रोकने के लिए कार्रवाई करने को कहा जाना चाहिए। क्या मैं आपको बता सकता हूँ कि कार्रवाई करने के लिए हमारे पास क्या अधिकार हैं? मैं आदेशों की इस तरह की खुली अवहेलना के मामलों में लाइसेंस रद्द करने की धमकी देते हुए स्पष्ट निर्देश जारी करना चाहता हूँ। बैंक फर्जी लेनदेन के माध्यम से दलालों को लाभ पहुंचा रहे हैं। कृपया इस पर चर्चा करें।”

अगली चर्चा 12 मार्च को डीबीओडी के मुख्य अधिकारी, एन.डी. परमेश्वरन, विश्वनाथन और गवर्नर के बीच हुई। गवर्नर को याद है

कि उन्होंने बैंक ऑफ कराड के अधिग्रहण का सुझाव दिया था। विश्वनाथन ने कहा कि बीआर अधिनियम की एक धारा के तहत, आरबीआई दोषी बैंकों के खिलाफ कार्रवाई कर सकता है, लेकिन उन्होंने इसका विरोध करते हुए कहा कि अधिग्रहण से हर तरह की अटकलें लगेंगी। “अभी बैंकिंग व्यवस्था में कोई व्यवधान न डालें। हम बैंकों के साथ ऋण नीति बैठकों में इस मामले पर चर्चा करेंगे,” उन्होंने कहा। गवर्नर ने विश्वनाथन के तर्कों के आगे झुककर एक घातक गलती की।
उन्होंने बाद में लिखा: “गवर्नर ने कहा कि यद्यपि हमें तुरंत कोई कठोर कदम उठाने की आवश्यकता नहीं है, फिर भी तीनों बैंकों को हमारे निर्देशों का उल्लंघन जारी रखने पर विभिन्न परिणामों की संभावना के बारे में एक कड़ा और अंतिम चेतावनी दी जानी चाहिए... तीनों बैंकों में की गई जांच में पाई गई अनियमितताओं की जानकारी उन्हें दी जानी चाहिए। हमें अध्यक्ष से लिखित पुष्टि प्राप्त करनी चाहिए कि ये अनियमितताएं दोबारा नहीं होंगी और वे हमारे जुलाई 1991 के परिपत्र का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित करेंगे।” कराड बैंक को एक बार फिर बरी कर दिया गया और गवर्नर ने विश्वनाथन को अपने मुखपत्र में शब्द डालने की अनुमति देकर, पूरी जांच प्रक्रिया शुरू करने के बाद स्वयं को लापरवाही के आरोप के लिए उजागर कर दिया।
चूंकि गवर्नर कराड बैंक के मामले की जांच कर रहे थे, इसलिए वे हर्षद घटनाक्रम पर भी बारीकी से नजर रख रहे थे। “सिस्टम में पैसा नहीं था, कर्जदारों को क्रेडिट नहीं मिल रहा था और एक ब्रोकर करोड़ों के शेयर खरीद रहा था? मुझे जिज्ञासा हुई,” उन्होंने कहा। “हर्षद को पैसा कहां से मिल रहा था?” यह पहली बार था जब मनी मार्केट घोटाले (बैंक ऑफ कराड द्वारा बीआर का

दुरुपयोग, आदि) और स्टॉक मार्केट घोटाले की जांच आरबीआई गवर्नर के कार्यालय में एक साथ हुई, जो भारतीय वित्त की रहस्यमयी दुनिया में पारंपरिक रूप से एक अलग-थलग कार्यालय रहा है। लेकिन वेंकिटारमनन खुद इस जुड़ाव से लगभग अनभिज्ञ थे।

उन्हें 28 फरवरी को हुए बहुचर्चित आयकर छापे (बजट से एक दिन पहले) से मिले सुरागों के आधार पर बीएसई के एक शीर्ष पदाधिकारी के कहने पर इस बात का पता चला। यह बजट भारतीय आर्थिक इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण बजटों में से एक था। इसकी उदारीकरण समर्थक नीतियों का लाभ उठाकर शेयर बाजार में तेजी से उछाल आया। यहां तक कि वित्त मंत्री ने भी महसूस किया कि शेयर बाजार में आई तेजी उदार नीतियों और उनके बजट भाषण में दिए गए इरादों का परिणाम थी। आयकर विभाग इससे प्रभावित नहीं हुआ। हर्षद के प्रतिद्वंद्वी दलालों में से एक से प्रेरित होकर, कुछ अधिकारी हर्षद मेहता के उदय को लेकर उत्सुक थे। हर्षद ने स्वयं इस उत्सुकता को और हवा दी। बिजनेस इंडिया और बिजनेस टुडे के फरवरी अंक के कवर पेज पर हर्षद की महंगी कारों, आलीशान समुद्रतटीय अपार्टमेंट और उनके द्वारा किए जा रहे भारी-भरकम लेन-देन का बखान किया गया था। उत्सुक होकर, आयकर विभाग ने उन पर एक बड़ा छापा मारने की योजना बनाई।
छापेमारी और उसके बाद की जांच का संचालन
चालीस वर्ष की आयु के आसपास के एक ईमानदार और दृढ़ निश्चयी उप निदेशक (जांच) सीपी रामास्वामी ने किया। लेकिन, हालांकि ईमानदारी आवश्यक थी, यह पर्याप्त नहीं था। हर्षद ने सब कुछ कंप्यूटरीकृत कर दिया था और अधिकारियों को महत्वपूर्ण रिकॉर्ड तक पहुंचने के लिए कंप्यूटर कोड तोड़ने पड़े। उन्होंने कोड

तोड़ने के लिए एक कंप्यूटर विशेषज्ञ को नियुक्त किया, लेकिन इसमें भी कई महीने लग गए।
फिर भी, आयकर विभाग ने आरबीआई को कई महत्वपूर्ण सूचनाएं दीं। एक यह थी कि मद्रास से भारी मात्रा में धन आ रहा था। अफवाह थी कि यह धन तमिलनाडु के एक शीर्ष राजनीतिक नेता का था। गवर्नर ने एसबीआई को बॉम्बे की मुख्य शाखा में हर्षद मेहता के चालू खाते की निगरानी करने का आदेश दिया, जहाँ सीतारामन उस समय निवेश विभाग में कनिष्ठ अधिकारी के रूप में कार्यरत थे। इसके बारे में आगे विस्तार से बताया जाएगा।
मार्च 1992 की शुरुआत में, घोटाले की ये अलग-अलग कड़ियाँ एक-दूसरे के समानांतर चलने लगीं। मुद्रा बाज़ारों में बीआर के दुरुपयोग के लिए कराड और अन्य बैंकों की आरबीआई की जाँच, शेयर बाज़ारों में हर्षद की बढ़ती लोकप्रियता को लेकर आयकर विभाग की जिज्ञासा, और कृष्णमूर्ति के साथ उनके बढ़ते संबंध। इन सबके बीच, जनता की सबसे अधिक चिंता का विषय और आरबीआई गवर्नर के मन में सबसे ऊपर था शेयर बाज़ार की तेज़ी और हर्षद के धन का स्रोत। वेंकीटारमन ने शेयर बाज़ार की इस तेज़ी में व्यक्तिगत रुचि दिखाई और इसे हर कीमत पर रोकना चाहते थे। उनका मानना था कि यह तेज़ी एक सट्टा बुलबुला था जो मुद्रा आपूर्ति और ऋण प्रवाह को बिगाड़ रहा था, जिससे ऋण उन क्षेत्रों में नहीं पहुँच पा रहा था जहाँ इसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी: नकदी की कमी से जूझ रहे भारतीय व्यापारी। क्या उन्हें भी किसी ने उकसाया था? यह कहना मुश्किल है, लेकिन उस साल कुम्बाला हिल्स के पॉश इलाके में स्थित उनके विशाल बंगले में अक्सर आने वालों में से एक हेमेंद्र कोठारी भी हुआ करते थे, जो बीएसई के अध्यक्ष थे। क्या कोठारी, जो उस समय हर्षद के खुलेआम आलोचक के रूप में जाने जाते

थे, ने राज्यपाल को हर्षद के धन के स्रोत की जांच करने की सलाह दी थी? वे निश्चित रूप से करीबी थे।
1986 में, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया ने मेरिल लिंच के साथ अपना पहला ऑफशोर म्यूचुअल फंड लॉन्च किया, जिसका डीएसपी फाइनेंशियल कंसल्टेंट्स के साथ सहयोग था, जिसे कोठारी नियंत्रित करते थे। जैसे ही डीएसपी ने मेरिल लिंच के सहारे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई, बड़े व्यापारियों को नए लाभ कमाने के अवसर दिखाई दिए। भारत से और अधिक ऑफशोर फंड, जिनमें निजी फंड और बड़े वाणिज्यिक ऋण शामिल थे, की उम्मीद में, हिंदुजा परिवार ने भारत में मेरिल लिंच से संपर्क किया, उसकी स्विट्जरलैंड स्थित निवेश बैंकिंग फर्म, अमास होल्डिंग्स के माध्यम से, जिसके दुनिया के कई हिस्सों में संयुक्त उद्यम और परिचालन थे।
हिंदुजा परिवार तत्कालीन वित्त सचिव वेंकिटारमनन को अच्छी तरह जानता था। कोठारी भी उनसे मिलते थे, जिनकी मुलाकात वित्त मंत्रालय के निवेश विभाग में कार्यरत आईएएस अधिकारी पीयूष मनकड़ के माध्यम से होती थी। भारत की अपनी एक यात्रा के दौरान, मेरिल लिंच के प्रबंध निदेशक माइकल वॉन क्लेम ने वेंकिटारमनन को बताया कि हिंदुजा परिवार भारत में उनका साझेदार बनना चाहता है और उन्हें उनकी सलाह चाहिए। गवर्नर ने बताया कि कोठारी एक छोटा व्यवसाय चलाते हैं और यदि वे सही सेवाएं प्रदान कर रहे हैं, तो मेरिल को उनके जैसे लोगों को आगे बढ़ने में मदद करनी चाहिए, न कि उन्हें किसी बड़े व्यापारिक घराने द्वारा बाहर कर देना चाहिए।

9 मार्च को, गवर्नर हैदराबाद गए और सार्वजनिक रूप से कहा कि यह तेजी सट्टेबाजी पर आधारित है और संस्थानों को बेचने के बारे

में सोचना चाहिए। उन्होंने कराड के मामले को पीछे छोड़ दिया था और पहली बार हर्षद के मामले की जांच शुरू की थी।
अगला दिन, 10 मार्च, महत्वपूर्ण था। बीमा कंपनियों (सभी सरकारी स्वामित्व वाली) के प्रमुख, फेरवानी और
यूटीआई के प्रमुख एस.ए. दवे, जो अब तक के सबसे बड़े म्यूचुअल फंड खिलाड़ी (यह भी सरकारी स्वामित्व वाली) हैं, सभी आरबीआई गवर्नर के साथ बैठक के लिए वहां मौजूद थे। उन्होंने शेयर की कीमतों में आई आश्चर्यजनक वृद्धि पर संक्षिप्त टिप्पणी के साथ बैठक शुरू की। उन्होंने कहा, “वर्तमान में शेयर बाजार में आई बेतहाशा तेजी का कारण सट्टेबाज हैं, न कि मूलभूत कारक। यह स्वस्थ स्थिति नहीं है। क्या आपको पता है कि कीमतें इस तरह क्यों बढ़ रही हैं?” कुछ ही लोगों को इसका अंदाजा था, सिवाय फेरवानी के, जो हमेशा तेजी की बात करते थे, पहले कोठारी के मित्र थे और अब उनके कट्टर दुश्मन बन गए थे। फेरवानी ने बॉम्बे में एक नए स्टॉक एक्सचेंज की स्थापना का प्रस्ताव रखा था (जिससे बाद में नेशनल स्टॉक एक्सचेंज का गठन हुआ), जिसका कोठारी बीएसई की सर्वोच्च स्थिति को बनाए रखने के लिए विरोध कर रहे थे। फेरवानी ने पुरजोर तर्क दिया कि यह एक स्वतःस्फूर्त तेजी थी, जो सरकार के आर्थिक उदारीकरण में बाजार के विश्वास को दर्शाती है। “हमें इसे बाधित करने के लिए कुछ भी नहीं करना चाहिए।” लगभग उसी समय उन्होंने इंडिया टुडे से कहा, “यह भारत में एक आर्थिक चमत्कार की शुरुआत है।”
गवर्नर इससे सहमत नहीं थे। उन्होंने संस्था प्रमुखों से पूछा: “क्या आपको नहीं लगता कि मुनाफा बुक करने का यह सही समय है?” उनमें से अधिकतर सैद्धांतिक रूप से सहमत थे, लेकिन उनकी अपनी समस्याएं थीं। यूटीआई जैसी स्वायत्त कंपनियां बेच सकती थीं,

लेकिन सरकार के पूर्ण स्वामित्व और नियंत्रण वाली बीमा कंपनियों जैसी अधिकांश अन्य कंपनियों के सामने एक वास्तविक समस्या थी। बीमा कंपनियों के एक प्रमुख ने कहा, "अगर हमारे बेचने के बाद कीमत और भी बढ़ जाती है, तो सरकारी लेखा परीक्षक और लोक लेखा समिति हमें गलत निर्णय के लिए फटकार लगाएंगे।"
फिर भी, संस्थानों ने आगे आकर चुनिंदा शेयरों की बिक्री का आदेश दिया। बीएसई का संवेदनशील सूचकांक 3547 से गिरकर 3316 पर आ गया
- एक ही दिन में 231 अंकों की गिरावट और अगले दिन 150 अंकों की और गिरावट। संयोगवश, हालांकि घोटाले की कहानी ने मई और अगस्त के बीच सबसे अधिक नुकसानदायक और परेशान करने वाली सूचनाओं का प्रवाह खोल दिया, सूचकांक 3000-3400 के दायरे से बहुत नीचे नहीं गया, वह स्तर जिस पर राज्यपाल ने घबराहट का बटन दबा दिया।

वेंकिटारमनन संस्थानों को बेचने के लिए कहने से संतुष्ट नहीं थे। 13 मार्च को, वे मद्रास स्टॉक एक्सचेंज द्वारा आयोजित दूसरे वार्षिक जे.वी. सोमयाजुलु स्मृति व्याख्यान को संबोधित करने के लिए मद्रास गए।
उन्होंने इस अवसर का लाभ उठाते हुए स्टॉक एक्सचेंजों से बाजार को ठंडा करने के लिए तत्काल कदम उठाने का आग्रह किया, जो विशिष्ट शेयरों की अत्यधिक सट्टेबाजी के कारण अतिगर्म हो गया था।
कुछ समय के लिए ऐसा लगा कि बाजार उनकी बात मान लेगा। 12 मार्च को,
संवेदनशील सूचकांक 80 अंक ऊपर गया, लेकिन फिर गिर गया और 20 मार्च तक लगभग 3100 के आसपास मंडराता रहा।

10 मार्च की बैठक और तेजी में उनकी निरंतर रुचि के परिणामस्वरूप, गवर्नर ने हर्षद मेहता और उनके धन के स्रोत पर ध्यान केंद्रित किया।
कई लोगों का मानना था कि हर्षद का पैसा दुबई स्थित अंडरवर्ल्ड डॉन और कॉरपोरेट सेक्टर से आता था। यूटीआई प्रमुख एस.ए. दवे, जो फेरवानी से भी ज्यादा हर्षद के प्रशंसक थे, ने सार्वजनिक रूप से बाजार में अवैध धन के प्रवाह की बात कही। लेकिन हर्षद के धन का स्रोत किसी को भी निश्चित रूप से पता नहीं था। यहां तक कि उनके प्रतिद्वंद्वियों को भी नहीं।

16 मार्च को राज्यपाल ने विश्वनाथन से बॉम्बे की मुख्य शाखा में हर्षद के चालू खाते का विवरण मांगा। विश्वनाथन ने एसबीआई के अध्यक्ष गोइपोरिया से संपर्क किया। गोइपोरिया ने शाखा से हर्षद के खाते का विवरण देने को कहा, जिसे उन्होंने शाम लगभग छह बजे विश्वनाथन को भेज दिया। उन्होंने राज्यपाल को विवरण दिखाया और एन.डी. परमेश्वरन को निम्नलिखित टिप्पणी के साथ एक नोट भेजा: “यह विवरण मुझे एसबीआई के अध्यक्ष ने शाम 6 बजे भेजा था। मैंने इसे राज्यपाल को दिखा दिया है। खाते में कई बड़ी (रेखांकित) जमा और डेबिट प्रविष्टियाँ हैं, और ये सभी हस्तांतरण प्रविष्टियाँ हैं। एसबीआई के अध्यक्ष ने कहा कि धनराशि कहाँ से आई/स्थानांतरित हुई, यह देखने के लिए वाउचरों की कल जाँच की जाएगी। हमारे अधिकारियों को भी इन प्रविष्टियों की जाँच करनी चाहिए। कृपया इस पर सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर कार्रवाई करें।”

उस समय हर्षद के खाते में आने-जाने वाली धनराशि की मात्रा चौंकाने वाली मानी गई। उदाहरण के लिए, 9 मार्च को खाता लगभग 186 करोड़ रुपये का था। खाते में आने-जाने वाली धनराशि अक्सर 30-40 करोड़ रुपये की होती थी। खातों के विवरण वित्त मंत्री को भेजे गए। राज्यपाल ने गोइपोरिया को फोन किया: “कृपया हर्षद मेहता के खाते पर निरंतर निगरानी रखें।” जहां हर कोई दुबई और अन्य जगहों से आने वाले फंड के सुराग ढूंढ रहा था, वहीं एसबीआई को पता चला कि मद्रास से हर्षद के खाते में सैकड़ों करोड़ रुपये आ रहे थे। हर्षद को पता चला कि उसका खाता जांच के दायरे में है
और उसने एसबीआई खाते का इस्तेमाल बंद कर दिया। आखिरी लेनदेन 14 मार्च को हुआ था – 48 करोड़ रुपये की निकासी, जिससे खाते में सिर्फ 1.61 करोड़ रुपये बचे थे।
सिक्योरिटीज कारोबार से जुड़े लोगों के लिए, हर दूसरे शुक्रवार को लेनदेन का हिसाब-किताब करना या उसे आगे बढ़ाना होता था। उनमें से अधिकांश के लिए 20 मार्च एक आम शुक्रवार जैसा ही था। लेकिन हर्षद के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण था। एसबीआई में उसका एक बड़ा बकाया था और वह उसे आगे बढ़ाना चाहता था। हालांकि, गोइपोरिया पहले से ही उसके चालू खाते की निकासी पर बड़ी चिंता से नजर रख रहे थे। उन्होंने अपने अधिकारियों को लेनदेन को आगे बढ़ाने से रोकने का आदेश दिया। हर्षद ने अपने राजनीतिक प्रभाव वाले नए मित्रों से संपर्क करना शुरू कर दिया।

23 मार्च से शुरू होने वाले सप्ताह में, आरबीआई गवर्नर दिल्ली में थे। अन्य बातों के अलावा, उन्होंने यूरोमनी सम्मेलन को संबोधित करने की योजना बनाई थी। उन्होंने थैचर मंत्रिमंडल के पूर्व मंत्री सेसिल पार्किंसन के तुरंत बाद भाषण दिया,

जिन्होंने ब्रिटिश सरकार के निजीकरण प्रयासों की देखरेख की थी। लगभग उसी समय सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के शेयरों के विनिवेश के सर्वोत्तम तरीकों का सुझाव देने के लिए कृष्णमूर्ति की अध्यक्षता में एक पैनल का गठन किया था। वेंकिटारमनन ने सुझाव दिया कि कृष्णमूर्ति इस अवसर का लाभ उठाकर पार्किंसन से बात करें, जिनके पास निजीकरण पर अच्छे विचार प्रतीत होते थे।
कृष्णमूर्ति ने इसके बजाय हर्षद मेहता के लिए अप्रत्यक्ष रूप से सिफारिश करने का अवसर लिया। उन्होंने सुझाव दिया, “वह एक प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। आपको उनसे मिलना चाहिए।” राज्यपाल ने कहा, “उन्हें स्वयं आने दें, आपकी सिफारिश पर नहीं।” इस बीच, हर्षद निधि के स्रोत की तलाश में लगे रहे।
यह एक मूर्खतापूर्ण दिन था जब हर्षद आरबीआई राज्यपाल से मिलने गए। उन्होंने अपने निवेश दर्शन और अपने पसंदीदा सिद्धांत को समझाया कि कैसे पूंजी बाजार और प्रत्यक्ष पोर्टफोलियो निवेश देश की घरेलू और विदेशी ऋण समस्या का समाधान हैं। राज्यपाल ने विनम्रतापूर्वक हर्षद से कहा कि वे उनसे पूरी तरह सहमत नहीं हैं, क्योंकि भुगतान संतुलन के मोर्चे पर दीर्घकालिक सुरक्षा का एकमात्र उपाय निर्यात बढ़ाना और पेट्रोलियम आयात जैसे विदेशी मुद्रा की खपत करने वाले खर्चों में कटौती करना ही हो सकता है। हर्षद ने हार नहीं मानी। “मैं आपको एक प्रस्तुति देना चाहता हूँ, महोदय। इसके लिए मुझे चार घंटे चाहिए।”
राज्यपाल ने कहा, “मैं आपके लिए चार घंटे नहीं दे सकता।”
तब हर्षद ने कहा: “आपको मुझसे क्या शिकायत है, महोदय? मुझे एसबीआई से समस्या है, वे मेरी मदद नहीं कर रहे हैं। मुझे बताया

गया है कि वे आपसे निर्देश ले रहे हैं, महोदय। कृपया उनसे बात करें।”
राज्यपाल ने हर्षद की उपस्थिति में गोइपोरिया को फोन किया, लेकिन चतुराई से उनके लिए कोई पैरवी नहीं की। इसके बजाय, उन्होंने गोइपोरिया को हर्षद के खाते पर नज़र रखना जारी रखने के लिए प्रोत्साहित किया। हालांकि, जेपीसी की सुनवाई के बाद यह आरोप लगाया गया है कि राज्यपाल ने बैंक से बात करके हर्षद मेहता का एसबीआई खाता सक्रिय करवाया था।
हर्षद को बड़ी रकम की सख्त जरूरत थी। वह ग्रोमोर कंपनियों के प्रारंभिक सार्वजनिक पेशकश (IPO) की योजना बना रहे थे, लेकिन इसमें अभी कुछ समय था। अप्रैल में, अश्विन मेहता ब्रिटेन गए, जहाँ उनकी मुलाकात हिंदुजा परिवार से हुई। संभवतः यह फेरवानी के मार्गदर्शन में हुआ था। लगभग उसी समय, हिंदुजा परिवार के किसी सदस्य ने आरबीआई गवर्नर को फोन किया और पूछा, "हम 150 मिलियन पाउंड लाना चाहते हैं। क्या कोई त्वरित तरीका है?" गवर्नर ने उनसे कहा, "आप इसे सामान्य विदेशी मुद्रा (अनिवासी) जमा योजना के तहत ला सकते हैं।"

फोन करने वाले ने पूछा, "क्या कोई और तरीका है?" गवर्नर को संदेह हुआ। उन्होंने हिंदुजा परिवार को ऐसा करने से मना कर दिया।
इन सबके समानांतर एसबीआई अपने निवेश पोर्टफोलियो का मिलान करने का प्रयास कर रहा था। एसबीआई को पता चला कि हर्षद ने
जिन प्रतिभूतियों के लिए भुगतान किया था, उन्हें वितरित नहीं किया था। हर्षद ने 13 अप्रैल से भुगतान करना शुरू किया, लेकिन 18 अप्रैल को उन्होंने भुगतान करने से इनकार कर दिया। तीन पखवाड़ों में किए गए ट्रेजरी बिल, राज्य ऋण और 11.5% केंद्रीय

ऋण में 360 करोड़ रुपये के डबल रेडी फॉरवर्ड लेनदेन को वापस लेने की नियत तारीख यही थी।

18 अप्रैल को, एसबीआई ने लेनदेन को दो और पखवाड़ों के लिए आगे बढ़ाने का फैसला किया। डील टिकट में लिखा है: “हमें समय बढ़ाने के अनुरोध को स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ रहा है क्योंकि ब्रोकर मेसर्स हर्षद एस मेहता ने अपनी
11.5% केंद्रीय ऋण देने में असमर्थता व्यक्त की है।” हर्षद ने बाद में 24 अप्रैल तक एसबीआई को अपना बकाया चुका दिया। आरबीआई यह जानने के लिए उत्सुक था कि यह कैसे हुआ। उसके निरीक्षकों ने पाया कि अधिकांश धनराशि (575 करोड़ रुपये)
ग्रिंडलेज से आई थी। 2 मई को, आरबीआई निरीक्षकों ने ग्रिंडलेज के चेक की बारीकी से जांच की और पाया कि धनराशि मूल रूप से नेशनल हाउसिंग बैंक (एनएचबी) से आई थी, जिसके चेक ग्रिंडलेज के पक्ष में थे।
जिन्हें हर्षद के खाते में जमा किया गया था। राज्यपाल को इसकी सूचना 4 मई को दी गई और अगले ही दिन से आरबीआई ने एसबीआई और ग्रिंडलेज़ पर एनएचबी को पैसा लौटाने के लिए दबाव बनाना शुरू कर दिया।

1 से 4 मई के बीच फेरवानी गोवा में थे। वे एनएचबी में अपने अधिकारियों के साथ लगातार संपर्क में थे।
एनएचबी के वरिष्ठ अधिकारियों ने 1 मई को जांच शुरू की और अगले सात दिनों में खुद को बचाने के लिए एक संक्षिप्त रिपोर्ट तैयार की। कार्यकारी निदेशक पी.के. पार्थसारथी द्वारा हस्ताक्षरित रिपोर्ट

5 मई को आरबीआई को प्रस्तुत की गई। लगभग उसी समय एक रात राज्यपाल को एक फोन आया। फोन करने वाले ने कठोर स्वर में कहा: "एसबीआई हर्षद को अपना बकाया दो सप्ताह के लिए आगे बढ़ाने की अनुमति दे दे। आप चैन से सो सकेंगे।" फोन करने वाला फेरवानी था।

24 अप्रैल से, जब हर्षद ने एसबीआई को अपना बकाया चुका दिया था, तब से वह एनएचबी का पैसा लौटाने के तरीके खोज रहा था, लेकिन उसे इस बात का अंदाजा नहीं था कि आरबीआई राज्यपाल कितनी तेजी से कार्रवाई कर सकते हैं। घोटाले के बाद उनकी पहली प्रतिक्रिया यही थी कि वे अपनी सारी संपत्ति बचाए रखें और समझौता न करें। वे एचयूडीको से 600 करोड़ रुपये का बॉन्ड जारी करने और इलाहाबाद बैंक से उसे सब्सक्राइब करवाने की बात कर रहे थे। इसके बाद वे एचयूडीको से पैसा लेकर इस सिलसिले को जारी रखते।
हर्षद गवर्नर को भी लगातार फोन कर रहे थे, लेकिन उन्होंने फोन नहीं उठाया। उन्होंने राजस्व सचिव के. गीताकृष्णन और वित्त मंत्री से भी मिलने की कोशिश की, लेकिन दोनों ने उन्हें नजरअंदाज कर दिया। हर्षद को सलाह दी गई कि वे अपनी हिस्सेदारी एसबीआई कैपिटल मार्केट्स को बेच दें, जो एसबीआई की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी है, ताकि एसबीआई के साथ उनका बकाया खत्म हो जाए। लेकिन वे इतने नासमझ थे कि उन्हें अपनी हिस्सेदारी बेचने पर लगने वाले पूंजीगत लाभ कर की चिंता सता रही थी। पल्लव शेठ और अश्विन ने उन्हें समझाया कि अगर उनके पास पूंजी ही नहीं बचेगी तो पूंजीगत लाभ पर बचत करने का कोई मतलब नहीं है। हर्षद ने उनकी बात नहीं मानी। इसके बजाय, उन्होंने एनएचबी के साथ एक नई देनदारी खड़ी कर ली।

"सिर्फ दो ही लोगों को पता था कि हम मुश्किल में हैं," अश्विन कहते हैं। उनमें से एक सिटीबैंक था, जिसे हर्षद के अंततः संकट में पड़ने पर स्पष्ट रूप से खुशी हो रही थी। लेकिन सिटीबैंक बाजार का एक शक्तिशाली खिलाड़ी था, व्यावसायिक सोच वाला और अच्छा सौदा देखते ही उसे हथियाने के लिए उत्सुक था, चाहे वह दुश्मन से ही क्यों न मिले।
लगभग 27 अप्रैल को, हर्षद ने सिटीबैंक के साथ अपने पोर्टफोलियो का एक हिस्सा बेचने के लिए बातचीत शुरू की, जिसकी बाजार कीमत उस समय 400 करोड़ रुपये थी। सिटीबैंक का जवाबी प्रस्ताव बेहद कम था: मौजूदा कीमत से 35% की छूट। सौदा विफल हो गया। और हर्षद द्वारा बनाया गया शेयर बाजार का बुलबुला कमजोर पड़ने लगा। मई के दूसरे सप्ताह तक, स्टैनचार्ट-बैंक ऑफ कराड-मेट्रोपॉलिटन बैंक घोटाले की कड़ी सामने आने लगी थी। लेकिन स्टैनचार्ट खुद समस्या की गंभीरता से अवगत नहीं था। चेयरमैन पेसी नट ने आरबीआई के वरिष्ठ अधिकारियों से मुलाकात की और बहुत आत्मविश्वास से भरे दिखे, हालांकि तब तक वे जान चुके थे कि बैंक गहरे संकट में है। दरअसल, यह हर्षद के घोटाले से भी कहीं अधिक जटिल और बड़ा घोटाला था, जिसमें वित्तीय क्षेत्र के कुछ नामी-गिरामी लोग शामिल थे। विदेशी बैंकों, संदिग्ध दलालों, एक दिखावटी व्यवसायी और शायद कुछ मंत्रियों की इस मिलीभगत ने महीनों तक जांचकर्ताओं को उलझाए रखा।

8

कब्जा करना

चूंकि आरबीआई की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी एनएचबी
को हर्षद ने धोखा दिया था, इसलिए आरबीआई ने अपनी सुरक्षा के लिए कार्रवाई शुरू कर दी। आरबीआई ने निष्कर्ष निकाला कि एनएचबी की रक्षा करना और एसबीआई तथा ग्रिंडलेज़ को करारा प्रहार करना ही सबसे अच्छा तरीका होगा।

एएनजेड ग्रिंडलेज़ बैंक के लंबे कद के ऑस्ट्रेलियाई मुख्य कार्यकारी अधिकारी डॉ. रॉबर्ट एडगर 5 मई 1992 का मंगलवार का दिन जल्दी नहीं भूलेंगे। अपनी पत्नी के साथ बांग्लादेश की यात्रा से लौटने के तुरंत बाद, उन्होंने उस सुबह काम शुरू ही किया था कि उन्हें नेशनल हाउसिंग बैंक के कार्यकारी निदेशक पी.के. पार्थसारथी का फोन आया।

“हमारे आपके साथ कुछ लेन-देन हुए हैं। कृपया उन्हें रद्द कर दें या धनराशि वापस कर दें,” पार्थसारथी ने मांग की।
एडगर हैरान रह गया। “कौन से लेन-देन? क्या आप मुझे विवरण दे सकते हैं?” उसने पूछा।

पार्थसारथी ने जवाब दिया कि ये कुछ बॉन्ड और यूनिट से संबंधित हैं, लेकिन उन्हें पक्का पता नहीं था। फिर उन्होंने अधिकारपूर्ण लहजे में सीधे-सीधे कहा: “हमारे पैसे आपके पास हैं

और इतना ही काफी होना चाहिए।”

एडगर ने उनसे कहा कि फोन पर इस बारे में बात करना व्यर्थ है और उन्हें ग्रिंडलेज़ को पत्र लिखना चाहिए। एडगर को ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा। उसी दिन, एनएचबी ने एडगर के कार्यालय में एक पत्र भेजा – एनएचबी (बी) संख्या 5048/आईएनवी-92 – जिस पर “गुप्त” अंकित था। (इससे ग्रिंडलेज़ पर एनएचबी के दावों की एक श्रृंखला शुरू हुई, जिन पर “गुप्त” अंकित था, जब तक कि ग्रिंडलेज़ ने सीधे-सीधे यह नहीं पूछ लिया कि रहस्य क्या है।)

एडगर ने 6 मई की सुबह 10 बजे बड़ी उत्सुकता से दो पन्नों का पत्र खोला। इस पर सहायक महाप्रबंधक सी रवि कुमार के हस्ताक्षर थे, जिन पर बाद में एनएचबी ने स्वयं धोखाधड़ी और जालसाजी का आरोप लगाया।

पत्र में यूनिटों (99.77 करोड़ रुपये) और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बांडों (152.25 करोड़ रुपये) में किए गए लेन-देन का विवरण था, जिसके लिए एनएचबी ने

ग्रिंडलेज़ को भुगतान किया था और जिसकी वापसी 5 मई को होनी थी। “हालांकि, दिन के अंत तक आपके बैंक से भुगतान नहीं हुआ। इस संबंध में, कृपया कार्यकारी निदेशक श्री पी.के. पार्थसारथी द्वारा आपसे की गई चर्चाओं को याद करें...”

एडगर ने रवि कुमार को जवाब में लिखा कि उन्हें इन सौदों की जानकारी नहीं थी और इसलिए वे “सौदों को वापस लेने के आपके

अनुरोध की सराहना नहीं करते।” उन्होंने उनसे “सौदों” को स्पष्ट करने और “यदि कोई दस्तावेज हों, तो हमारे खिलाफ आपके कथित दावे के समर्थन में हमें उपलब्ध कराने” का अनुरोध किया। इसके तुरंत बाद, एनएचबी और आरबीआई के अधिकारियों को पता चला कि रवि कुमार स्वयं इन कुटिल सौदों में गहराई से शामिल थे। इस बीच, पार्थसारथी चतुराई से गायब हो गए, उन्होंने एनएचबी अधिकारियों के खिलाफ न तो पत्रों पर हस्ताक्षर किए और न ही प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआरआई) पर, हालांकि वे परिचालन स्टाफ में सबसे वरिष्ठ थे।

उस समय एडगर को यह नहीं पता था कि घोटाले की जांच कर रहे आरबीआई के दो अधिकारियों, एन.डी. परमेश्वरन और विमला विश्वनाथन ने पता लगा लिया था कि हर्षद मेहता ने एसबीआई के बकाया का भुगतान करने के लिए जो पैसा लिया था, वह एनएचबी से ग्रिंडलेज़ में मेहता के खाते में चला गया था। एनएचबी अब खुद को इस मामले से अलग करने की कोशिश कर रहा था। हर्षद के पहलू को नजरअंदाज करते हुए, वह यह दावा कर रहा था कि उसने ग्रिंडलेज़ को कुछ "लेन-देन" के लिए सैकड़ों करोड़ रुपये का भुगतान किया था, जिन्हें वापस लिया जाना था।

एनएचबी में इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह हर्षद के साथ मिलीभगत करके उसे दिए गए पैसे को वापस लेने के लिए इतना सख्त रुख अपना सके। ग्रिंडलेज़ के साथ इस व्यावसायिक विवाद में, एनएचबी का रुख खुद आरबीआई गवर्नर द्वारा तय किया जा रहा था। लेकिन आरबीआई ने जिस बात को जानबूझकर नजरअंदाज किया, वह थी एनएचबी की खुद की गड़बड़ी। इसका संचालन इतना खराब था कि लंबे समय तक उसे खुद यह

भी नहीं पता था कि

ग्रिंडलेज़ के खिलाफ उसके "दावे" वास्तव में क्या थे। उदाहरण के लिए, 5 मई के पत्र में 13 अप्रैल के 9% कोल इंडिया बॉन्ड में हुए 19.26 करोड़ रुपये के लेन-देन का उल्लेख है।

जबकि FIR में बाद में दर्ज आंकड़ों के अनुसार यह आंकड़ा वास्तव में 13.26 करोड़ रुपये था।

ग्रिंडलेज़ के साथ पत्रों की बाद की लड़ाई में NHB की लापरवाही और भी स्पष्ट हो गई। 7 मई को, मुख्य महाप्रबंधक एस.डी. होसांगडी ने "सौदों" पर कोई और जानकारी दिए बिना ग्रिंडलेज़ के समक्ष NHB की मांग को दोहराया। उन्होंने लगभग बाद में सोचते हुए कहा: "यदि कोई अन्य लंबित दावे हों, तो हम आपसे अलग से अपने दावे करने का अधिकार सुरक्षित रखते हैं।" स्पष्ट रूप से, NHB अंधेरे में हाथ-पैर मार रहा था। उसी दिन कुछ घंटों बाद, इसने जादुई ढंग से 23 मार्च से 20 अप्रैल के बीच यूनिट (67.65 करोड़ रुपये) और बॉन्ड (215.20 करोड़ रुपये) में छह और सौदे निकाले।

यह पता चला कि ग्रिंडलेज़ को पैसे देने के बावजूद, इसके समर्थन में कोई दस्तावेज़ नहीं थे। इसने ग्रिंडलेज़ से तुरंत बैंक रसीदें देने का अनुरोध किया।

ग्रिंडलेज़ ने साफ इनकार कर दिया और यह भी पता लगाया कि उल्लिखित लेन-देन में से एक उसके पास नहीं था;

और न ही उसके किसी खाताधारक को पैसा मिला था। उसी पत्र (11 मई के) में, एडगर ने पहली बार खुलासा किया कि एनएचबी का पैसा हर्षद मेहता के खाते में गया था। एनएचबी पर दबाव बनाए रखने के अपने चतुर दांव के तहत, ग्रिंडलेज़ लगातार एनएचबी से लेन-देन के दस्तावेजी सबूत देने पर जोर देता रहा। जिन लेन-देन के बदले उसने पैसा दिया था, वे शायद फर्जी थे। एनएचबी का दावा हर पत्र में बदलता रहा। पहले कुछ पत्रों में, यह लेन-देन किए गए बॉन्डों का नाम तक नहीं बता सका, उन्हें सामान्य रूप से "पीएसयू बॉन्ड" कहकर संबोधित किया।

फिर भी, 12 मई के एक पत्र में, इसने इस तथ्य पर हैरानी और आश्चर्य व्यक्त किया कि ग्रिंडलेज़ ने एनएचबी के चेक हर्षद के खाते में जमा कर दिए थे। हालांकि, इससे भी अधिक चौंकाने वाली बात यह थी कि इसके अपने खाते अभी भी इतने अव्यवस्थित थे कि इसे अपने सौदों का पता लगाना अभी भी मुश्किल हो रहा था। यह बात 12 मई के पत्र के अनुलग्नक में परिलक्षित हुई - ग्रिंडलेज़ के साथ इसके बकाया सौदों की एक विस्तृत तालिका। इस तालिका में

11 दिसंबर 1991 और 21 फरवरी 1992 से पहले के नए लेन-देन शामिल थे। इसने पिछले पत्रों में उल्लिखित बकाया लेन-देनों को भी कम कर दिया। इस तालिका के अनुसार देय राशि: 520 करोड़ रुपये।

ग्रिंडलेज़ ने एनएचबी के दावों की लगातार बदलती और बढ़ती संरचना का उपहास और तिरस्कार के साथ स्वागत किया। लेकिन एनएचबी विचलित नहीं हुआ। होसांगडी ने ग्रिंडलेज़ को लिखा: “हमारे खाते ऑडिट के अधीन हैं और यदि

कोई और लेन-देन सामने आता है, तो हम आपके बैंक पर और दावे करने का अधिकार सुरक्षित रखते हैं।” 3 जून को, पहली मांग किए जाने के लगभग एक महीने बाद, एनएचबी आखिरकार लेन-देन की एक निश्चित सूची पर पहुंचा और 506 करोड़ रुपये का अंतिम दावा प्रस्तुत किया। इससे कुछ समय पहले, के जयभारत रेड्डी ने एमजे फेरवानी के स्थान पर एनएचबी के अंशकालिक अध्यक्ष का पद संभाला।

इस बीच, एनएचबी एसबीआई के साथ भी इसी तरह की उलझन पैदा कर रहा था। 27 अप्रैल को, घोटाले के सामने आने के चार दिन बाद, एसबीआई ने एनएचबी को पत्र लिखकर पूछा कि क्या बैंक के साथ कोई बकाया लेन-देन है। एनएचबी ने कहा कि ऐसा कोई लेन-देन नहीं है। लेकिन हमेशा की तरह, उसे वास्तव में कुछ पता नहीं था। उसने 25

अक्टूबर और 30 मार्च के बीच एसबीआई के साथ दस लेन-देन किए थे और उन सभी को एक ही दिन - 5 मई 1992 को रद्द किया जाना था।

5 मई को, एनएचबी को होश आया। रवि कुमार ने एसबीआई को एक पत्र लिखकर चार लेन-देन रद्द करने का अनुरोध किया।

जिनकी कुल राशि 262 करोड़ रुपये थी। 5 इसके बाद, एनएचबी ने अपनी गड़बड़ी से चार और बकाया लेन-देन निकाले।

कुल दावा 604.61 करोड़ रुपये था। 6

आश्चर्यजनक रूप से, इसमें स्टेट बैंक ऑफ पटियाला पर 44.97 करोड़

रुपये का दावा भी शामिल था। इन सभी को

5 मई को रद्द किया जाना था, संयोग से उसी दिन एनएचबी ने ग्रिंडलेज़ पर अपना पहला दावा किया था। एसबीआई ने अपने बहीखातों में इनमें से किसी भी लेन-देन के होने से इनकार किया और एनएचबी से कोई जवाब नहीं मिला। फिर तीन सप्ताह बाद, 27 मई को, एनएचबी की ओर से एक और मांग आई। इस समय तक एसबीआई के साथ एनएचबी के लेन-देन रहस्यमय तरीके से बढ़कर 724 करोड़ रुपये हो गए थे। इसमें 1991 के अंत के दो सौदे और 27 करोड़ रुपये का ब्याज शामिल था।

फिर 3 जून को, एनएचबी ने एक और मांग दावा दायर किया, जिससे कुल बकाया राशि 734.73 करोड़ रुपये हो गई। बाद में, ग्रिंडलेज़ के मामले की तरह ही, एनएचबी ने और भी रिकॉर्ड खंगाले, और अधिक जानकारी जुटाकर अपना दावा घटाकर 707.76 करोड़ रुपये कर दिया। हैरानी की बात यह है कि एनएचबी और ग्रिंडलेज़ व एसबीआई के बीच इस व्यावसायिक विवाद में, आरबीआई ने एनएचबी का पक्ष लिया और दूसरे पक्षों पर भुगतान करने का दबाव डाला।

यह समझना मुश्किल है कि राज्यपाल को एनएचबी का बचाव करने का कोई कारण कैसे सूझा। एनएचबी की स्थापना जुलाई 1988 में आरबीआई की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी के रूप में हुई थी, लेकिन घोटाले के उजागर होने तक इसका कोई निदेशक मंडल नहीं था। अधिनियम के अनुसार, निदेशक मंडल में विभिन्न क्षेत्रों, आरबीआई और सरकार से चुने गए चौदह सदस्य होने चाहिए थे।

7 ऐसा कोई उच्च स्तरीय निदेशक मंडल कभी गठित ही नहीं हुआ। इसके विपरीत, अप्रैल 1991 से इसका नेतृत्व एक अंशकालिक अध्यक्ष, कुशल सौदेबाज फेरवानी कर रहे थे, जिन्हें कार्यकारी निदेशक पार्थसारथी का सहयोग प्राप्त था। मूल रूप से, एनएचबी का उद्देश्य आवास को बढ़ावा देना था। तो फिर यह प्रतिभूति घोटाले में कैसे शामिल हो गया?

इस घटनाक्रम के केंद्र में फेरवानी थे, जो एनएचबी और तीन अन्य वित्तीय संगठनों के अंशकालिक अध्यक्ष के रूप में कई पूर्णकालिक प्रबंध निदेशकों से भी अधिक सक्रिय थे। फेरवानी की असीम ऊर्जा, उनकी दूरदृष्टि और राजनेताओं, बड़े व्यापारियों और नौकरशाहों को शामिल करते हुए बड़े बहुकोणीय सौदे करने की उनकी क्षमता एक महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देती है: एनएचबी इतनी बड़ी मुद्रा बाजार गतिविधियों में क्यों घसीटा गया और हर्षद को 1200 करोड़ रुपये के फर्जी सौदों में क्यों फंसाया?

फेरवानी भारतीय शेयर बाजार के मूल बिग बुल थे, यह उपनाम उन्होंने तब अर्जित किया जब यूटीआई के अध्यक्ष के रूप में वे अकेले ही शेयर बाजार को हिला सकते थे। नवंबर 1989 में वीपी सिंह के प्रधानमंत्री बनने के तुरंत बाद उन्हें उस पद से हटा दिया गया। यूटीआई ने 1988 में रिलायंस इंडस्ट्रीज को लार्सन एंड टुब्रो पर नियंत्रण हासिल करने की अनुमति दी थी, जिसके तहत रिलायंस को एलएंडटी के शेयरों का एक बड़ा हिस्सा एक गुप्त सौदे के तहत हस्तांतरित किया गया था। रिलायंस के अंबानी और सिंह 1985 से ही खुलेआम एक-दूसरे के विरोधी थे। दिलचस्प बात यह है कि अन्य वित्तीय संस्थानों के प्रमुखों को भी अंबानी परिवार को

एलएंडटी में प्रवेश दिलाने के लिए नियमों का उल्लंघन करना पड़ा, लेकिन फेरवानी को ही बर्खास्त किया गया।

फिर शरद पवार ने महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री के रूप में उन्हें महाराष्ट्र राज्य वित्तीय निगम का अध्यक्ष बनाया और चंद्र शेखर ने प्रधानमंत्री बनने पर उन्हें एनएचबी का प्रभार सौंपा। फेरवानी ने इन दोनों संस्थानों के साथ-साथ स्टॉक होल्डिंग कॉर्पोरेशन और इंफ्रास्ट्रक्चर लीजिंग एंड फाइनेंशियल सर्विसेज के लिए भी बड़ी योजनाएं बनाना शुरू कर दिया - ये दो अन्य संस्थान थे जिनके वे अध्यक्ष थे, हालांकि उनके पास कार्यकारी अधिकार नहीं थे।

वे ऊर्जावान, महत्वाकांक्षी और निर्णय लेने में तत्पर थे। लेकिन जैसा कि एल एंड टी के अधिग्रहण से साबित हुआ, वह बेपरवाह थे और किसी की मदद करने के लिए सौदेबाजी करने को हमेशा तैयार रहते थे। घोटाले की जांच शुरू होने पर अपना बचाव करने के लिए फेरवानी मौजूद नहीं थे। उन्होंने आखिरी दिन तक इस बात से इनकार किया कि एनएचबी द्वारा हर्षद मेहता के एसबीआई और ग्रिंडलेज़ खातों में करोड़ों रुपये जमा करने में उनका कोई हाथ था। कुछ ही लोगों ने उन पर विश्वास किया। वित्तीय बाजार के खिलाड़ियों के लिए, यह अपने दोस्तों और सहयोगियों को खुश करने के लिए फेरवानी का एक विशिष्ट तरीका था।
सच्चाई चाहे जो भी हो, एनएचबी एक बड़े घोटाले के लिए पूरी तरह तैयार था। आरबीआई द्वारा पेश की गई तस्वीर के विपरीत, यह किसी लूट का असहाय शिकार नहीं था। फेरवानी की अध्यक्षता में, एनएचबी ने मुद्रा बाजार में एक आक्रामक खिलाड़ी के रूप में खुद को

स्थापित किया। अप्रैल 1991 और 1992 के बीच, इसने 26,400 करोड़ रुपये के 1332 मुद्रा बाजार सौदे किए, जिनमें से अधिकांश कॉल मनी, सार्वजनिक क्षेत्र के बांड और यूनिट्स में थे। एसबीआई के साथ इसके विवादित लेनदेन अक्टूबर 1991 से शुरू होते हैं। फेरवानी, जो हर मायने में प्रबंध निदेशक की तरह काम करते थे, एनएचबी के फंड प्रबंधन विभाग में नियंत्रण, संतुलन और यहां तक कि आंतरिक नियंत्रण के सबसे बुनियादी स्वरूप की भी पूर्ण कमी के प्रभारी थे। सभी फंड प्रबंधन कार्यों का संचालन रवि कुमार द्वारा किया जाता था, जो न केवल एक डीलर थे बल्कि चेक पर हस्ताक्षर करने वाले भी थे। फंड प्रबंधन में सहायक प्रबंधक एस सुरेश बाबू उनकी सहायता करते थे। अप्रैल 1991 में, रवि कुमार ने अध्यक्ष से रेडी फॉरवर्ड डील करने का अधिकार मांगा और उन्हें यह अधिकार दे दिया गया। एनएचबी ने ऐसे बॉन्ड बेचे जो उसके बही- खातों में मौजूद ही नहीं थे और हर्षद मेहता को कॉल मनी लेनदेन के रूप में पैसे उधार दिए। उसने ट्रेजरी बिल और सरकारी ऋणों के कथित सौदों के बदले एसबीआई को पैसे दिए, लेकिन उसे कोई प्रतिभूति प्राप्त नहीं हुई। न ही एसबीआई के बही-खातों में इन सौदों का कोई रिकॉर्ड था।

यह संदेह बना रहा कि फेरवानी को इन सौदों की जानकारी थी और उसने इन्हें अधिकृत किया था। लेकिन 4 मई को, एडगर को फोन करने से एक दिन पहले, पार्थसारथी ने पूरी तरह से घटना की जानकारी होने से पहले ही खुद को और अध्यक्ष को किसी भी गलत काम से बरी कर दिया। आरबीआई गवर्नर को संबोधित उनका पत्र एनएचबी की करतूतों का बेहद हल्का संस्करण है।

इसमें कहा गया है कि एनएचबी ने हमेशा बैक-टू-बैक सौदे किए हैं, कभी किसी दलाल के माध्यम से नहीं, कभी अपना पैसा नहीं लगाया और उसके किसी भी सौदे को अध्यक्ष या कार्यकारी निदेशक द्वारा अधिकृत नहीं किया गया था। इस पत्र ने दो कनिष्ठ अधिकारियों पर दोष मढ़ने का प्रयास किया, लेकिन इस संदेह को दूर करने में विफल रहा कि किसी उच्च अधिकारी ने हर्षद मेहता को पैसा सौंपकर उनका पक्ष लेने का निर्णय लिया था। पार्थसारथी अपनी नौकरशाही मानसिकता और ढुलमुल रवैये के लिए जाने जाते थे; तो फिर यह नोट इतना स्पष्ट कैसे था? यह बिल्कुल स्पष्ट था कि इसे फेरवानी ने लिखवाया था, जिससे नोट का लहजा और अध्यक्ष को दोषमुक्त करने का ज़ोरदार प्रयास समझ में आता है।
फेरवानी की भूमिका पर संदेह के अलावा, पंजाब नेशनल बैंक के पूर्व अध्यक्ष, रहस्यमय एम. वर्षनेया पर भी एक बड़ा प्रश्नचिह्न लगा हुआ है, जो हर्षद की माज़दा इंडस्ट्रीज़ में भारी वेतन पर निदेशक थे। वर्षनेया एनएचबी के सलाहकार भी थे। उन्हें चुपचाप सेवानिवृत्त होने दिया गया और सीबीआई, जेपीसी या आरबीआई ने उनसे कभी पूछताछ नहीं की, जबकि वे हर्षद मेहता और एनएचबी के बीच सबसे स्पष्ट कड़ी थे।
फेरवानी के अलावा, सी. रंगराजन एनएचबी के एक अन्य महत्वपूर्ण निदेशक थे, जिनकी जगह बाद में आर. जानकीरामन ने ली। जब फेरवानी ने पद छोड़ा, तो बैंकिंग विभाग में अतिरिक्त सचिव के. जयभारत रेड्डी ने पदभार संभाला। संयोग से, जानकीरामन और रेड्डी दोनों एसबीआई में निदेशक थे। जब यह पता चला कि हर्षद ने आरबीआई की सहायक कंपनी को धोखा दिया है, तो आरबीआई ने अपनी सुरक्षा के लिए कदम उठाया। आरबीआई ने निष्कर्ष निकाला कि एनएचबी की रक्षा करना और एसबीआई तथा ग्रिंडलेज़ को कड़ी फटकार लगाना ही इसका सबसे

अच्छा तरीका होगा। आरबीआई ने एसबीआई और ग्रिंडलेज़ को हर्षद के खाते में जमा की गई राशि वापस करने के लिए मजबूर करने का फैसला किया। यह एक चालाकी भरा कदम था, लेकिन नैतिक रूप से संदिग्ध था, जिसे वित्त मंत्रालय का पूरा समर्थन प्राप्त था।
दरअसल, यह सुनियोजित तरीके से किया गया था। पार्थसारथी द्वारा अपना पत्र भेजने के तीन सप्ताह बाद, जयभारत रेड्डी ने भी राज्यपाल को पत्र लिखा, जिसमें लगभग वही बातें दोहराई गई थीं जो पहले पत्र में लिखी थीं। लेकिन एक छोटा सा अंतर था। रेड्डी ने पार्थसारथी की तरह मामले को खुलेआम लीपापोती नहीं की। उनके पत्र में स्वीकार किया गया कि "दुर्भाग्य से, हालांकि लेनदेन का विवरण एनएचबी के बहीखातों में दर्ज है, लेकिन संबंधित एनएचबी अधिकारियों ने लेनदेन के लिए आवश्यक दस्तावेज जैसे अनुबंध पत्र, लागत ज्ञापन और बैंक रसीदें प्राप्त नहीं की हैं।" रेड्डी ने बॉम्बे हाई कोर्ट के सेवानिवृत्त न्यायाधीश बी. लेंटिन के इस मत का हवाला दिया कि ग्रिंडलेज़ और एसबीआई द्वारा हर्षद के खाते में चेक जमा करना कानून के विरुद्ध था और उन्होंने गवर्नर से "मामले पर तत्काल ध्यान देने और इस कठिन परिस्थिति से निकलने में हमारी मदद करने" का अनुरोध किया।
गवर्नर ने गहन विचार-विमर्श किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे: आरबीआई और एनएचबी का हर्षद के विरुद्ध कोई दावा नहीं था। चूंकि ग्रिंडलेज़ और एसबीआई ने ही उनके खाते में चेक जमा किए थे, इसलिए मेहता के विरुद्ध बकाया राशि उन्हीं के बहीखातों में दर्ज होनी चाहिए थी। कम से कम एसबीआई ने कुछ राशि वसूल कर ली थी, लेकिन ग्रिंडलेज़ आरबीआई के साथ कड़ा रुख अपना रहा था और तर्क दे रहा था कि हर्षद जैसे व्यक्तिगत खाते में बैंकर चेक जमा करना "बाजार में स्वीकृत प्रथा" है। ग्रिंडलेज़ से बेहतर ढंग से

निपटने के लिए, आरबीआई पहले एसबीआई से भुगतान करवाकर एक उदाहरण पेश करना चाहता था। एक अर्थ में, गवर्नर का तर्क गलत नहीं था। लेकिन इसमें कुछ बेहद घिनौनी चालें, हितों के टकराव को रोकने वाले सिद्धांतों की बेशर्म अवहेलना,
या यहां तक कि कानून के स्पष्ट बिंदुओं का भी उल्लंघन शामिल था। संयोगवश, एसबीआई का यह नाटक 23 अप्रैल को शुरू हुआ, जिस दिन घोटाले का पर्दाफाश हुआ।
उस दिन एसबीआई की कार्यकारी समिति, जिसमें निदेशक मंडल के मुख्य सदस्य शामिल थे, की बैठक होनी थी। यह चार सदस्यीय समिति थी, जिसकी अध्यक्षता अध्यक्ष कर रहे थे। समिति के सदस्यों में से एक जानकीरामन थे, जिन्होंने एक ही समय में पांच भूमिकाएँ निभाकर हितों के टकराव के सिद्धांत का मज़ाक उड़ाया। वे एसबीआई की कार्यकारी समिति के सदस्य, आरबीआई के उप-गवर्नर, घोटाले की जांच के लिए आरबीआई द्वारा नियुक्त समिति के प्रमुख, एसबीआई और एनएचबी के निदेशक थे।
समिति ने अध्यक्ष से उसी सुबह टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित रिपोर्ट के बारे में पूछताछ की। गोइपोरिया ने स्वीकार किया: “हाँ, कहानी सच है। इसमें शामिल राशि 622 करोड़ रुपये से अधिक है।” उन्होंने दावा किया कि यह पैसा हर्षद मेहता से बरामद किया गया था, हालांकि 3-4 करोड़ रुपये का एक छोटा सा विवाद था, जिसे हर्षद ने दोहरी गिनती बताया था। इसके कुछ हफ्तों बाद, आरबीआई ने एसबीआई पर एनएचबी को वह पैसा वापस करने का दबाव डालना शुरू कर दिया जो हर्षद ने हिसाब बराबर करने के लिए दिया था। संयोगवश, आरबीआई द्वारा एसबीआई को लिखे गए पत्र पर एक कनिष्ठ अधिकारी के हस्ताक्षर थे।

न कि राज्यपाल या किसी उप राज्यपाल के। गोइपोरिया ने लगभग 22 मई को आरबीआई को जवाब दिया।
कार्यकारी समिति की अगली बैठक आरबीआई की इस मांग के साये में हुई कि एनएचबी को 706 करोड़ रुपये से अधिक का भुगतान किया जाए। गोइपोरिया ने कहा कि वह इस मामले को कार्यकारी समिति की मंजूरी के लिए भेजेंगे। कार्यकारी समिति का मानना था कि इस मामले पर पूरे बोर्ड के साथ चर्चा होनी चाहिए। गोइपोरिया ने बताया कि बोर्ड की बैठक कुछ ही सप्ताह पहले हुई थी, लेकिन सदस्यों ने एक और बैठक बुलाने पर जोर दिया।
यह बैठक 11 जून को निर्धारित की गई थी।
बैठक होने से ठीक पहले, गोइपोरिया को छुट्टी पर जाने के लिए कहा गया। एसबीआई के निदेशक आश्वस्त थे कि यह एनएचबी को भुगतान करने से इनकार करते हुए आरबीआई राज्यपाल को लिखे गए उनके गुस्से भरे पत्र के कारण हुआ था। एसबीआई के वरिष्ठ अधिकारियों का मानना है कि बैंक के कड़े रुख ने सीबीआई के आतंक को आमंत्रित किया, जिसके परिणामस्वरूप छापे, अभद्र पूछताछ और फोन लाइनें टैप की गईं। आरबीआई गवर्नर और वित्त मंत्रालय की भूमिका पेचीदा है, खासकर गोइपोरिया के इस्तीफे के मामले में।
गोइपोरिया 2 जून को छुट्टी पर गए थे। उसी सुबह 10:20 बजे उन्हें आरबीआई गवर्नर का फोन आया, जिसमें उनसे इस्तीफा देने को कहा गया। दस मिनट बाद, इससे पहले कि वे उस फोन पर कोई कार्रवाई कर पाते, एक और फोन आया। इस बार फोन करने वाले आर्थिक मामलों के विभाग के सचिव मोंटेक सिंह अहलूवालिया थे। उन्होंने गोइपोरिया से इस्तीफा देने के बजाय छुट्टी पर जाने को कहा। गोइपोरिया ने अपनी उलझन व्यक्त की। अहलूवालिया ने उन्हें वापस कॉल करने का वादा किया, जो उन्होंने पंद्रह मिनट बाद किया। गोइपोरिया को

आखिरकार छुट्टी पर जाना था, और वे चुपचाप बिना किसी दाग के 31 जुलाई 1992 को सेवानिवृत्त हो गए।
उनके दोस्तों के अनुसार, वे काफी राहत महसूस कर रहे थे कि उन्हें बढ़ते हुए उथल-पुथल का सामना नहीं करना पड़ेगा।

उन्होंने 22 मई को एनएचबी को भुगतान करने से इनकार करते हुए लिखे गए अपने गुस्से भरे पत्र का कोई जवाब मिलने से पहले ही पद छोड़ दिया।
दरअसल, 10 जून को, एनएचबी बोर्ड की बैठक से एक दिन पहले, जवाब आ गया था। इसे जनाकीरामन ने तैयार किया था, जिसमें उन्होंने घोषणा की थी कि एनएचबी और एसबीआई दोनों ही गलत थे। यह पत्र अगले दिन बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत किया गया।
11 जून की बैठक की अध्यक्षता श्रीकांत रूपारेल ने की, जो कोल्हापुर शुगर मिल्स के नियंत्रक और अठारह वर्षों से अधिक समय तक एसबीआई के गैर-कार्यकारी निदेशक रहे एक व्यवसायी थे। एजेंडा में दो बिंदु थे: प्रतिभूति घोटाले पर चर्चा और एनएचबी को भुगतान। रूपारेल ने कहा कि प्रत्येक निदेशक को अपने विचार व्यक्त करने की अनुमति होगी, हालांकि अध्यक्ष होने के नाते वे और दोनों प्रबंध निदेशक मतदान नहीं करेंगे।
बोलने वाले प्रत्येक निदेशक भुगतान के खिलाफ थे। ट्रेड यूनियनों के प्रतिनिधि (गोडबोले और अवस्थी) आरबीआई की कड़ी आलोचना कर रहे थे। जनाकीरामन एसबीआई और एनएचबी के बीच हुए पत्राचार को अपने साथ लाए थे। उन्होंने कहा, "आरबीई ने एक निर्णय लिया है और एसबीआई को उसका पालन करना चाहिए।" उन्होंने सुझाव दिया कि एसबीआई के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, धनराशि को एक एस्क्रो खाते (एक अलग खाता जिसमें जमा की गई

धनराशि का उपयोग विवाद में शामिल दोनों पक्षों की सहमति के बिना नहीं किया जा सकता) में रखा जाए। इस बिंदु तक, एनएचबी को भुगतान का मुद्दा तो उठा ही नहीं था, क्योंकि प्रस्ताव का इतना प्रबल विरोध था कि निदेशकों को पूरा विश्वास था कि इसे अस्वीकार कर दिया जाएगा।
शाम 5 बजे, दो सरकारी निदेशक, रेड्डी और जनकिरामन, एनएचबी की पहली बैठक में भाग लेने के लिए बैठक से चले गए। (जनकिरामन को पता था कि जनकिरामन की पहली रिपोर्ट प्रकाशित होने तक एनएचबी का पूर्ण गठित बोर्ड भी नहीं था। संभवतः उन्होंने अपनी पहली रिपोर्ट में इस तथ्य को जानबूझकर छिपाया था।) दोनों निदेशकों के जाने के बाद, एसबीआई के उप प्रबंध निदेशक, जो मुख्य रूप से पर्यवेक्षक के रूप में बैठक में उपस्थित थे, चले गए और वापस नहीं लौटे। इसके बाद जनकिरामन और रेड्डी ने एनएचबी की बैठक समाप्त की। नवगठित बोर्ड को दस्तावेजों का एक सेट
वितरित किया गया, जिसमें पार्थसारथी का 5 मई का पत्र भी शामिल था, जिसमें बताया गया था कि रवि कुमार और सुरेश बाबू नामक दो अधिकारियों ने शीर्ष अधिकारियों की जानकारी के बिना चेक पर हस्ताक्षर किए थे और लेन-देन को अधिकृत किया था।

निदेशकों में से एक, एच.टी. पारेख, जो भारतीय वित्त जगत के दिग्गज माने जाते हैं, ने सरकारी निदेशकों को बोर्ड गठित करने या प्रतिभूति लेन-देन को व्यवस्थित करने में विफल रहने के लिए फटकार लगाई। कुल मिलाकर, बैठक का उद्देश्य केवल यह दर्ज करना था कि पहली बार आयोजित बोर्ड बैठक एसबीआई की बैठक पर निर्भर थी, जिसे बीच में ही स्थगित कर दिया गया था ताकि रेड्डी और जानकीरामन एनएचबी की बैठक में भाग लेकर वापस आ सकें।

लेकिन इन दोनों निदेशकों के एसबीआई की बैठक में वापस आने से पहले, उन्होंने दो महत्वपूर्ण फोन किए। पहला वित्त मंत्री को और दूसरा आरबीआई गवर्नर को। इन दो बातचीत ने बैठक की दिशा बदल दी। दोनों निदेशक बैठक में वापस आए और एसबीआई बोर्ड को धमकी दी कि मंत्रालय आरबीआई अधिनियम के तहत एक निर्देश जारी करेगा, जिसमें बैंक को भुगतान करने के लिए कहा जाएगा। दोनों सरकारी निदेशकों ने अब कहा कि एस्क्रो खाता पर्याप्त नहीं है। वे न केवल एसबीआई से भुगतान पर निर्णय लेने की मांग कर रहे थे, बल्कि तत्काल भुगतान की भी मांग कर रहे थे।

दोनों निदेशकों को एसबीआई के उप प्रबंध निदेशक वी. महादेवन (जिन्हें अनौपचारिक रूप से बताया गया था कि वे अध्यक्ष पद के लिए संभावित उम्मीदवार हो सकते हैं) और पंजाब आनंद बैटरीज के प्रमोटर सी.एल. आनंद और पी.वी. सुब्बा राव का समर्थन प्राप्त था। रेड्डी और जनकीरामन ने तर्क दिया कि यदि एसबीआई भुगतान नहीं करता है, तो आरबीआई ग्रिंडलेज को एनएचबी को 506 करोड़ रुपये का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। हालांकि, इस बिंदु को बैठक के कार्यवृत्त से जानबूझकर हटा दिया गया था। दोनों निदेशकों में से एक ने बताया कि गवर्नर द्वारा लंदन में ग्रिंडलेज के शीर्ष अधिकारियों से मिलने के बाद, बैंक ने आरबीआई को लिखा था कि यदि एसबीआई भुगतान करने से इनकार कर रहा है तो ग्रिंडलेज क्यों न करे? जवाब में, एसबीआई के एक निदेशक ने जनकीरामन से पूछा कि यदि एनएचबी के बजाय सिटीबैंक या बैंक ऑफ अमेरिका ने हर्षद मेहता को भुगतान किया होता, तो क्या एसबीआई को तब भी भुगतान करने के लिए कहा जाता? कोई उत्तर नहीं मिला। उस

बैठक में, हर तीस मिनट में यह दोहराया गया कि हर्षद मेहता एनएचबी के दलाल नहीं थे। हालांकि, यह पूरी तरह सच नहीं था।

किसी भी मामले में, कुछ निदेशकों ने पूछा, अगर एनएचबी का कोई दलाल नहीं था और न ही होना चाहिए था, तो एसबीआई को पैसा कैसे मिला? यहां तक कि बकाया बीआर (बकाया लेनदेन) का पता लगाने के लिए बैंकरों की गोलमेज बैठक में भी, एनएचबी ने दावा किया था कि एसबीआई और ग्रिंडलेज़ के साथ उसका कोई बकाया बीआर नहीं है। यह भी समझ से परे है कि जहां बैंक ऑफ कराड और मेट्रोपॉलिटन को- ऑपरेटिव बैंक को उनके बकाया के लिए परिसमाप्त कर दिया गया, वहीं एनएचबी को क्यों न बचाया गया, चाहे उसके पीछे से कितनी भी बदबू क्यों न आ रही हो। एनएचबी के केवल दो अधिकारियों को गिरफ्तार किया गया है, जबकि एसबीआई के शीर्ष अधिकारी सीबीआई के छापों और पूछताछ के डर में जी रहे थे। दिलचस्प बात यह है कि एसबीआई की अपनी जांच से पता चला कि एसबीआई में हर्षद मेहता के खाते में जमा की गई एक बड़ी रकम समय-समय पर एनएचबी में वापस आ जाती थी। यह एनएचबी के इस्तेमाल की एक सुनियोजित प्रणाली को इंगित करता है जो उसके वरिष्ठ अधिकारियों की मिलीभगत के बिना संभव नहीं थी।

एसबीआई बोर्ड एक निर्देश के खतरे के आगे झुक गया और प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित कर दिया गया। और फिर अंत में, नाटक का अंत हुआ: एसबीआई ने भुगतान कैसे किया? उसने एक बार फिर हर्षद के खाते से पैसे काट लिए, जिसमें कोई बैलेंस नहीं था। असल में, एसबीआई को बिग बुल को बिना किसी गारंटी के 707 करोड़ रुपये का एक और भारी ओवरड्राफ्ट देने के लिए कहा गया! पीछे मुड़कर देखें तो, कई निदेशकों को अपने विरोध न करने पर शर्मिंदगी महसूस हुई।

उनमें से एक के अनुसार, “हमने दो कारणों से हार मान ली। पहला, एनएचबी को दिए गए लगभग 570 करोड़ रुपये एसबीआई की सहायक कंपनियों में वापस आ जाते, जहाँ से एनएचबी को मूल रूप से पैसा मिला था।” दूसरा, महादेवन को पूरा यकीन था कि एसबीआई गलत था। बेशक, किसी ने भी यह विश्लेषण नहीं किया कि चेक जारी करते समय धोखाधड़ी का कोई आपराधिक इरादा था या नहीं। एसबीआई निदेशकों के अनुसार, एनएचबी का कोई बैंक खाता नहीं था। उसने आरबीआई पर जारी किए गए बैंकर्स चेक दिए। चाहे वे एसबीआई के लिए थे या हर्षद मेहता के लिए, हर्षद के खाते में चेक जमा करने की कार्रवाई को ज़्यादा से ज़्यादा अनियमित ही कहा जा सकता है।

उस हास्यास्पद बोर्ड बैठक और एनएचबी को जबरन भुगतान के साथ ही यह खींचतान खत्म नहीं हुई। 25

जून को एसबीआई बोर्ड की फिर से बैठक हुई, इस बार वार्षिक खातों को मंजूरी देने के लिए। दो सरकारी निदेशक,

जानकीरामन और रेड्डी, जो 11 जून को एसबीआई बोर्ड की बैठक में उपस्थित थे, फिर से गायब थे। विडंबना यह है कि एसबीआई के वे निदेशक, जिन्होंने पहले एनएचबी को किए गए भुगतान का कड़ा विरोध किया था, अब लेखा परीक्षकों के सवालों का सामना कर रहे थे कि यह पैसा क्यों दिया गया और उन्हें इस भुगतान को सही ठहराने के लिए पत्राचार प्रस्तुत करना पड़ा। लेखा परीक्षकों ने उनसे यह भी पूछा कि 707 करोड़ रुपये का भुगतान कर-कटौती योग्य व्यय क्यों था।

इसके तुरंत बाद, पटना में एसबीआई की वार्षिक आम बैठक (एजीएम) आयोजित हुई। इस बार निदेशकों ने सरकार को आपातकालीन संदेश भेजकर अनुरोध किया कि एनएचबी को भुगतान करने के पक्ष में तर्क देने के लिए सरकारी निदेशकों को उपस्थित रहने दिया जाए। कुछ पदेन निदेशकों ने बोर्ड बैठक में हुई घटनाओं के बारे में सार्वजनिक रूप से बोलने की धमकी भी दी। उनकी महत्वाकांक्षाएं चकनाचूर हो गईं। अरुण जसवंतलाल और श्रीकांत रूपारेल को वार्षिक आम बैठक (एजीएम) में शामिल होने से रोक दिया गया। उनकी पटना की उड़ान बुक थी, लेकिन 13 और 14 जुलाई को एसबीआई के महादेवन और वीरेंद्र कुमार के फोन कॉल ने उनकी योजना रद्द कर दी और बैंक से उनका संबंध अचानक समाप्त कर दिया।

एसबीआई अधिनियम में 1988 में हुए एक संशोधन को अचानक लागू कर दिया गया था, जिसके तहत कोई भी निदेशक लगातार छह साल से अधिक समय तक बोर्ड में नहीं रह सकता था। एक त्वरित अधिसूचना जारी की गई। यह अधिसूचना केवल एसबीआई के स्वतंत्र निदेशकों पर लागू थी, लेकिन कर्मचारी संघों का प्रतिनिधित्व करने वाले निदेशकों को भी बदल दिया गया। कुछ लोगों के अनुसार, बोर्ड में अपने लोगों को बदलने के लिए संघों पर अप्रत्यक्ष दबाव डाला गया था।

किसका किसका कितना बकाया है, इस सब हिसाब-किताब में एक बहुत ही महत्वपूर्ण दावे पर कभी चर्चा नहीं हुई। हर्षद मेहता ने दावा किया कि एनएचबी पर उनके 250 करोड़ रुपये के मनी मार्केट सिक्योरिटीज बकाया हैं, जो अनौपचारिक गिरवी के रूप में उसे सौंपे गए थे। ये सिक्योरिटीज सीबीआई द्वारा जब्त कर ली गईं और कस्टोडियन को सौंप दी गईं। यह इस बात का एक और सबूत था कि एनएचबी

का दलाल के साथ उससे कहीं गहरा संबंध था जितना वह स्वीकार करने को तैयार था। बाद में एसबीआई ने हर्षद पर 707 करोड़ रुपये का मुकदमा करने की योजना बनाई।

ग्रिंडलेज़, ठीक एसबीआई जैसी ही स्थिति में, आरबीआई से लड़ता रहा। 5 नवंबर 1992 को, उसने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाई और भुगतान करने के अपने निर्णय की घोषणा की। उसे अब भी विश्वास था कि वह मध्यस्थता में पैसा वापस जीत लेगा। लेकिन यह अनिश्चित था। आरबीआई को ग्रिंडलेज़ द्वारा दूसरों को जारी किए गए चेक की प्रतियां मिल गई थीं, जिनमें स्पष्ट निर्देश थे कि उन्हें किसे जमा करना है। लेकिन व्यावसायिक विवादों के अलावा, ग्रिंडलेज़ ने आरबीआई को झुकने के लिए नई दिल्ली पर दबाव डालना जारी रखा। यह विदेशी बैंकों का अनदेखा चेहरा था। उनका प्रभाव और उनकी धृष्टता एक अलग अध्याय के योग्य है।
5
स्टैनचार्ट और पांचों का गिरोह

व्यक्तिगत रूप से देखा जाए तो पांचों के बीच कोई संबंध नहीं था। लेकिन भूपेन दलाल को

बीच में रख दें तो अचानक वे सभी एक साथ आ जाते हैं,

गहरे रूप से परस्पर जुड़े हुए।

12 मई 1992 की शाम थी। भूपेन दलाल, छह फुट लंबे और शालीन निवेश बैंकर, काम से लौटे थे और घर लाए कुछ फाइलों को देखने वाले थे।

निवेश बैंकिंग के अलावा उनके कई व्यावसायिक हित थे: एक डिपार्टमेंटल स्टोर, एक खाद्य प्रसंस्करण कंपनी, स्टॉक ब्रोकिंग और विदेशों में कई कंपनियां। एक छोटे से निजी बैंक में भी उनकी हिस्सेदारी थी।

तभी फोन की घंटी बजी।

दूसरी तरफ आर कन्नन थे, स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक के कार्यकारी निदेशक, जो निवेश बैंकिंग विभाग के प्रमुख थे, जिसमें उस समय कोषागार विभाग भी शामिल था। यह कॉल बॉम्बे के वित्तीय जगत के सबसे सम्मानित नामों में से एक भूपेन दलाल के शानदार करियर में एक बड़े झटके की शुरुआत थी। कॉल कुछ इस तरह थी:

“कन्नन बोल रहा हूँ, कृपया नैट से बात करें।”

परवेश सिंह नैट, जिन्हें लोकप्रिय रूप से पेसी के नाम से जाना जाता था, एक बेहद महत्वाकांक्षी बैंकर और भारत में स्टैंडर्ड चार्टर्ड के पहले भारतीय मुख्य कार्यकारी अधिकारी थे। बैंक को उच्च विकास पथ पर ले जाने में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। स्टैनचार्ट, जिसने 135 साल पहले भारत में परिचालन शुरू किया था और विदेशी बैंकों में दूसरा सबसे बड़ा शाखा नेटवर्क था, नाममात्र का मुनाफा कमा रहा था। भूपेन की तरह लंबा और संभ्रांत व्यक्तित्व वाला नैट, ब्रिटिश लहजे में बोलता था और अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता रखता था। भूपेन और नैट दोस्त थे, इसलिए जब उसने फोन किया, तो भूपेन को कुछ भी संदेह नहीं हुआ। पेसी ने ज्यादा कुछ नहीं कहा।

“भूपेन, मेरे ब्रोकर ने 250 करोड़ रुपये के बीआर (सरकारी प्रतिभूतियां) ले लिए हैं। मेरे रिकॉर्ड में कोई प्रतिभूति दर्ज नहीं है। क्या मैं उन्हें वापस ले सकता हूँ?”

“250 करोड़ रुपये? पेसी, आप क्या कह रहे हैं?”

नैट ने अपनी बात दोहराई। भूपेन, जो स्पष्ट रूप से हैरान था, ने उसे वापस कॉल करने का वादा किया।

नैट का जिक्र स्टैनचार्ट द्वारा हितेन दलाल नामक ब्रोकर को सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद के लिए दिए गए 250 करोड़ रुपये से था। हितेन ने अभी तक उन्हें वितरित नहीं किया था। उन्होंने जो रसीदें सौंपी थीं, वे एक अन्य बैंक, बैंक ऑफ कराड की थीं, जिसने हितेन से पैसा लिया था और जिसे हितेन को प्रतिभूतियाँ सौंपनी थीं। बैंक ऑफ कराड, जिसकी पूंजी मात्र 45 लाख रुपये थी, इतना छोटा बैंक था कि बहुत कम बैंक ही उससे सीधे लेन-देन करते थे। वित्तीय जगत में शायद ही कोई जानता था कि यह मुद्रा बाजार में एक बड़ा खिलाड़ी है। भूपेन और उनके बेटे मिलन का बैंक ऑफ कराड में 6.7% हिस्सेदारी के साथ निदेशक होना रहस्यमय था। भूपेन की हिस्सेदारी सबसे बड़ी निजी हिस्सेदारी थी। क्या बैंक ऑफ कराड द्वारा लिए गए पैसे के लिए वे व्यक्तिगत रूप से स्टैनचार्ट के प्रति उत्तरदायी थे?

उस एक फोन कॉल से भूपेन दलाल घटनाओं के एक ऐसे भंवर में फंस गए, जिसने उनकी तीन पीढ़ियों पुरानी बाजार प्रतिष्ठा को धूमिल कर

दिया और उनके मुख्य व्यवसाय, धन प्रबंधन और वित्तीय सलाहकार सेवाओं को नष्ट कर दिया। इससे भी बुरा यह था कि जिस व्यक्ति पर कभी यातायात उल्लंघन का भी मामला दर्ज नहीं हुआ था, भूपेन को तीस दिन पुलिस हिरासत में बिताने पड़े, जहाँ उनके साथ एक आम चोर जैसा व्यवहार किया गया। गिरफ्तारी से ठीक पहले, डरे हुए दलाल ने बिजनेस इंडिया से कहा, "मैंने तीस वर्षों में जो कुछ भी खड़ा किया है, वह सब धराशायी हो जाएगा। मैं अपना चेहरा भी नहीं दिखा सकता।"

30 अप्रैल से भूपेन पर धीरे-धीरे सबकी नज़रें टिकने लगी थीं, ठीक सात दिन बाद जब टाइम्स ऑफ इंडिया ने पहली बार इस घोटाले का खुलासा किया था। उन्हें इस बात का ज़रा भी अंदाज़ा नहीं था कि स्टैनचार्ट के मुख्यालय के रूप में इस्तेमाल होने वाली भव्य विक्टोरियन इमारत के अंदर माहौल तनावपूर्ण होता जा रहा था। स्टैनचार्ट के अधिकारी उस सुबह एक बड़े और जटिल घोटाले के भयानक सच से रूबरू हुए थे – एक ऐसा घोटाला जिसमें अंततः 250 करोड़ रुपये के उस अंतर से कहीं अधिक बड़ी रकम शामिल थी, जिसके कारण नैट को दलाल को फोन करना पड़ा था।

यह अंतर एक कबूलनामे के ज़रिए सामने आया। 30 अप्रैल को, बैंक के स्टार डीलर और "पेसी के चहेते" अरविंद मोहन लाल अपने बॉस, स्थानीय मुद्रा समूह के निदेशक रवि अय्यर के पास गए और उन्हें इस कमी के बारे में बताया। मनी एंड इन्वेस्टमेंट्स यूनिट के मैनेजर, जिनके अधीन चार डीलर काम करते थे, लाल ने अय्यर को बताया कि बैंक के पास कथित तौर पर खरीदी गई प्रतिभूतियों में 300 करोड़ रुपये की कमी थी। बैंक ने अपने ब्रोकर के माध्यम से पैसा

तो दे दिया था, लेकिन उसे कोई प्रतिभूति, सहायक सामान्य खाता बही रसीद या बीआर (सहायक सामान्य खाता बही रसीद) प्राप्त नहीं हुई थी। ब्रोकर का नाम था हितेन दलाल।
हैरान अय्यर, लाल के साथ बैठकर नुकसान का जायज़ा लेने की कोशिश कर रहे थे। उस समय बैंक में किसी को भी इस आपदा की जानकारी नहीं थी, हालांकि बाज़ार में यह अफवाहें फैली हुई थीं कि स्टैनचार्ट भी जल्द ही इस घोटाले में घसीटा जाएगा। अगले दस दिनों तक लाल और अय्यर ने हितेन से लेन-देन के बारे में पूछताछ की और उनसे प्रतिभूतियां उपलब्ध कराने का आग्रह किया ताकि इस कमी को पूरा किया जा सके। हितेन ने बड़ी मदद की। वह हर दिन बैंक आते और लगातार घबरा रहे लाल और अय्यर को आश्वस्त करते कि वह इस कमी को पूरा कर देंगे।
चिंताजनक रूप से, घाटा बढ़ता ही जा रहा था।

4 मई तक, यह चौंका देने वाला 900 करोड़ रुपये हो गया था। स्टैनचार्ट इस पैसे की भरपाई कैसे करेगा? हमेशा की तरह सूझबूझ से काम लेने वाले हितेन के पास एक तैयार उपाय था। वह अस्थायी रूप से इस घाटे को भरने के लिए और अधिक बीआर (सहायक सामान्य खाता बही रसीदें) प्राप्त करेंगे। "कहां से?" लाल और अय्यर ने पूछा। हितेन ने जवाब दिया, "मेट्रोपॉलिटन को-ऑपरेटिव बैंक से।"

5 मई तक, हितेन ने मेट्रो बैंक से 525 करोड़ रुपये का बीआर और 50 करोड़ रुपये का एसजीएल (SGL) प्रस्तुत किया। इनमें यूटीआई की (अस्तित्वहीन) इकाइयों में स्टैनचार्ट के निवेश को दर्शाया गया था। अय्यर ने जैसे-जैसे इन दस्तावेजों को देखा, उन्हें एहसास होता गया कि वे एक ऐसे घोटाले से निपट रहे हैं जो उनके बस से

बाहर है। शायद उन्होंने तब मेट्रो बैंक के बारे में सुना भी नहीं था, जो मात्र 14 लाख रुपये की पूंजी वाला एक छोटा सा बैंक था, जिसकी केवल एक शाखा थी।

रविवार, 10 मई को, अय्यर और लाल ने पेसी नट को उनके घर पर फोन किया और उन्हें समस्या के बारे में बताया। उसी रात उन्होंने अय्यर के बॉस कन्नन को फोन किया। नट ने अय्यर और लाल को अल्टामाउंट रोड स्थित अपने घर पर बुलाया था। पटियाला के शाही परिवार की सदस्य से विवाहित नट एक आलीशान अपार्टमेंट में रहते थे, जो प्राचीन फर्नीचर, चित्रों और किताबों से सजा हुआ था। उस दोपहर 2:30 बजे, नैट को पूरी कहानी बताई गई। उन्हें अपनी बात पर यकीन नहीं हुआ। उन्होंने लाल और अय्यर से कहा, "शायद आपके कंप्यूटर सिस्टम में कुछ गड़बड़ है।" खतरे की घंटी बजाने से पहले, वे यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि कहीं यह लेखा-जोखा की गलती तो नहीं है। रकम बहुत बड़ी थी।

स्टैनचार्ट के अधिकारियों ने अगले दो दिन (11 और 12 तारीख) नुकसान का आकलन करने और हितेन को वास्तविक अतिरिक्त प्रतिभूतियां उपलब्ध कराने के लिए मनाने में बिताए।
11 मई, सोमवार को हितेन 145 करोड़ रुपये के शेयर, डिबेंचर और सार्वजनिक क्षेत्र के बॉन्ड लेकर आए। उन्होंने अगले दिन और अधिक देने का वादा किया। मंगलवार को वे प्रतिभूतियों की एक नगण्य खेप लेकर आए। नैट को अपना फैसला लेने के लिए और इंतजार नहीं करना पड़ा।

बुधवार को लंदन स्थित स्टैनचार्ट के मुख्यालय को फोन करते हुए उन्होंने कहा, "मुझे लगता है कि यहाँ कुछ गड़बड़ है। हमें जांच करनी होगी और मेरे पास यहाँ इसके लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं।"
जल्द ही स्टैनचार्ट के बॉम्बे कार्यालय में मुख्यालय से अतिरिक्त कर्मचारियों की बाढ़ आ गई। दुर्भाग्य से, बैंक के लिए, उनमें से अधिकांश अज्ञानी, मनमानी करने वाले और अनुभवहीन निकले। उसी दिन नैट ने भूपेन दलाल को 250 करोड़ रुपये की कमी के बारे में फोन किया।
स्टैनचार्ट के भारतीय अधिकारियों ने हितेन दलाल को पकड़ लिया और उनसे बार-बार पूछताछ करके यह जानने की कोशिश की कि आखिर हुआ क्या था। हितेन कार्यालय समय के बाद हर दिन अपनी मैरून प्रीमियर 118NE कार से बैंक आते थे। हैरानी की बात यह है कि बैंक को अपने ही घर में चल रही गड़बड़ी को समझने में कम से कम दो सप्ताह लग गए, और उसके बाद अपने लेन-देन की तह तक पहुंचने में कई महीने लग गए। देखने में तो पंद्रह संदिग्ध सौदे लग रहे थे, लेकिन यह आंकड़ा बहुत भ्रामक था। इनमें से प्रत्येक पंद्रह सौदे से बीस से तीस जटिल लेन-देन जुड़े हुए थे, जो अलग-अलग दिशाओं में फैले हुए थे।
स्पष्ट रूप से, स्टैनचार्ट एक बड़ी मुसीबत में फंस गया था। इससे भी बुरी बात यह थी कि बैंक द्वारा 20 जून को दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) में किए गए दावों और आरबीआई द्वारा धोखाधड़ी की जांच के लिए नियुक्त जनकीरामन समिति को दी गई जानकारी में 92 करोड़ रुपये का अंतर था।
एफआईआर में कहा गया था कि स्टैनचार्ट ने 308 करोड़ रुपये "अन्य बैंकों को दिए थे, जिनके लिए उन बैंकों से कोई प्रतिभूति

प्राप्त नहीं हुई थी।" जुलाई में प्रकाशित जनकीरामन रिपोर्ट में यह आंकड़ा 400.35 करोड़ रुपये बताया गया और स्पष्ट रूप से कहा गया कि यह "बैंक द्वारा बताए गए अनुसार" था। क्या बैंक ने सीबीआई को कुछ और बताया और समिति को कुछ और? शुरू में तो ऐसा ही हुआ। बाद में उसने अपनी गलती सुधारी।
यह स्टैनचार्ट की खासियत थी। जब यह मामला सामने आया और उसके कामकाज का खुलासा हुआ, तो यह स्पष्ट हो गया कि 1988 में पुनर्गठन शुरू होने के बाद से ही बैंक तेजी से विकास की राह पर चल रहा था और इस चक्कर में उसने अपना नियंत्रण खो दिया था। पेसी नैट के नेतृत्व में, बैंक ने कॉर्पोरेट ऋण, खुदरा बैंकिंग और निवेश बैंकिंग को मजबूत करने के लिए बड़े पैमाने पर भर्तियां कीं। इसका आदर्श सिटिबैंक था, जो नियमों को चालाकी से दरकिनार करते हुए भारी मुनाफा कमा रहा था।
स्टैनचार्ट ने अपने लिए ऊंचे लक्ष्य निर्धारित किए। 1991 के मध्य में, कन्नन ने पहले वर्ष की शुरुआत में तय किए गए वार्षिक लाभ लक्ष्य में 25% की वृद्धि की और फिर लक्ष्य तिथि को अक्टूबर तक आगे बढ़ा दिया। उनके पूर्व सहयोगियों का कहना है कि नैट, जिन्होंने अंतिम विदेशी प्रमुख मैग्नस स्टर्लिंग का स्थान लिया था, सिटिबैंक को मुनाफे में पछाड़कर लंदन स्थित स्टैनचार्ट बोर्ड में जगह बनाने की इच्छा रखते थे। यह काफी हद तक संभव था। लेकिन जो बात इसे मुश्किल बना रही थी, वह थी मुद्रा अवमूल्यन, जिसने पाउंड स्टर्लिंग के संदर्भ में निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए भारतीय परिचालनों पर अधिक दबाव डाला। दबाव का एक अन्य स्रोत बैंक का यह दीर्घकालिक दृष्टिकोण था कि रुपया गिरता रहेगा, जिससे भविष्य के मुनाफे की तुलना में वर्तमान मुनाफा अधिक मूल्यवान हो जाएगा।

बड़े मुनाफे की होड़ ने निवेश बैंकिंग विभाग को सतर्क कर दिया। इसकी अध्यक्षता कन्नन कर रहे थे, जो एक तेजतर्रार और अथक सौदागर थे। कन्नन को 1990 में गैर-निधि व्यवसाय में उनकी विशेषज्ञता के लिए नियुक्त किया गया था, उदाहरण के लिए, अधिग्रहणों पर सलाह देना या कंपनियों के लिए धन जुटाने के सर्वोत्तम उपलब्ध साधनों पर परामर्श देना। वे अपने विभाग को अधिग्रहणों, विशेष रूप से बैंकों के अधिग्रहण में विशेषज्ञता रखने वाले एक प्रमुख निवेश बैंक के रूप में स्थापित करना चाहते थे, जिसे वे वित्तीय उदारीकरण के कारण एक अनछुआ लेकिन तेजी से बढ़ता हुआ क्षेत्र मानते थे। उन्होंने अपने गुरु बी रत्नाकर द्वारा नेदुंगडी बैंक के अधिग्रहण को पूरा करवाया, जो केनरा बैंक में उनके मार्गदर्शक थे, और बैंक ऑफ क्रेडिट एंड कॉमर्स इंटरनेशनल की बॉम्बे शाखा को एमिरेट्स बैंक को बेचने में मध्यस्थता करने का प्रयास किया।

वे शेयर बाजारों में भी प्रवेश करने की तैयारी कर रहे थे, जहां शेयरों की बढ़ती कीमतों ने चतुर निवेशकों, विशेष रूप से बड़े निवेशकों को अभूतपूर्व लाभ दिया, जो बाजार की गतिविधियों से आगे रहने के लिए अंदरूनी जानकारी का उपयोग कर सकते थे। उदाहरण के लिए, सिटीबैंक और एएनजेड ग्रिंडलेज़ बैंक तेजी से बढ़ते शेयर बाजार का लाभ उठाकर रिकॉर्ड मुनाफा कमा रहे थे। कन्नन ने एक स्टॉक-ब्रोकिंग फर्म, एक म्यूचुअल फंड और स्टैनचार्ट की संयुक्त उद्यम कंपनी, चोलमंडालम फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट को नया रूप देने की योजना बनाई।
दुर्भाग्यवश, स्टैनचार्ट का बड़ा कदम मुद्रा बाज़ारों में भारी उथल-पुथल (1991-92) के दौर में उठाया गया, जहाँ से वह भारी मुनाफा कमाने की योजना बना रहा था। बैंक ने बिना रुके, जल्दबाजी में और बिना यह देखे कि उसकी नियंत्रण प्रक्रियाओं का ठीक से पालन हो रहा है या नहीं, कदम उठा लिया। जैसा कि भूपेन दलाल ने बाद में तर्क दिया, किसी भी अन्य अंतरराष्ट्रीय बैंक की तरह, स्टैनचार्ट ने निश्चित रूप से प्रत्येक देश और एक ही देश के भीतर, प्रत्येक बैंक और व्यक्तिगत ब्रोकर के लिए पूर्व निर्धारित जोखिम सीमाएँ तय की होंगी। अंदरूनी सूत्रों के अनुसार, बैंक का भारत में संभवतः 200 मिलियन अमेरिकी डॉलर का जोखिम था और बैंक ऑफ कराड के लिए 2 करोड़ रुपये की सीमा थी। मेट्रो बैंक के लिए कोई सीमा नहीं थी।
जिसके 525 करोड़ रुपये के ब्रोकर्स को बैंक ने 5 मई को स्वीकार कर लिया, जबकि हर्षद मेहता घोटाले की खबरें ज़ोरों पर थीं। 1991-92 में, स्टैनचार्ट सभी बैंकों में प्रतिभूतियों का दूसरा सबसे बड़ा व्यापारी बनकर उभरा। देखने में तो इसमें कोई गड़बड़ी नहीं थी, सिवाय इसके कि स्टैनचार्ट के वरिष्ठ अधिकारियों ने यह

जानने की कोई कोशिश नहीं की कि उसके बकाया खाते (बीआर) कहाँ जा रहे हैं या उसके पास अन्य बैंकों के कितने बकाया बीआर हैं। अपूर्ण प्रतिभूति बाजार में, इससे धन की हेराफेरी के लिए काफी गुंजाइश बनी रही। बैंक की परिसंपत्ति-देयता समिति में कन्नन, नैट और डेविड गार्डिनर सहित अन्य लोग शामिल थे, जो निवेश, नकदी प्रवाह और निधि की स्थिति की समीक्षा करने के लिए हर पखवाड़े में एक बार मिलते थे।
घोटाले के सामने आने के बाद स्टैनचार्ट के शीर्ष प्रबंधन के मन में यह सवाल उठा कि अगर बैंक में 1300 करोड़ रुपये की कमी थी, तो नकदी प्रवाह विवरण में लाल निशान क्यों नहीं दिखा? इसका जवाब था: स्टैनचार्ट के पास वे काल्पनिक परिसंपत्तियाँ नहीं थीं जिन्हें उसने खरीदा था। इसके अलावा, उसने उन्हें अग्रिम रूप से बेच दिया था, जिससे लेनदेन नकदी-तटस्थ हो गया था। परिसंपत्ति की स्थिति से यह विसंगति सामने आ सकती थी, लेकिन स्पष्ट रूप से इसमें हेरफेर किया गया था।
मई और जून के दौरान जब घोटाले की कहानी सामने आई, तो यह स्पष्ट हो गया कि स्टैनचार्ट ने सिटीबैंक की नकल करने के प्रयास में सभी नियमों और सावधानियों को ताक पर रख दिया था, यहाँ तक कि अपने डीलिंग रूम और नियंत्रण की व्यवस्था में भी। इसके सबसे बड़े सौदे सबसे संदिग्ध खिलाड़ी हितेन दलाल के साथ हुए थे। एक मामले में, बैंक ने हितेन से सार्वजनिक क्षेत्र के बॉन्ड की फोटोकॉपी तक स्वीकार कर ली थी। एक बड़े अंतरराष्ट्रीय बैंक में इस तरह की भयावह प्रथाएँ एक रहस्य बनी हुई हैं। संभवतः, 1990 में हुए पुनर्गठन में ऐसे लोग शामिल हुए जिन्हें रूढ़िवादी बैंकिंग का बहुत कम अनुभव था और जो नियमों के प्रति उदासीनता की भावना लेकर बैंक में आए थे, जिसे बैंकिंग का 'काउबॉय स्कूल' कहा जाता है।

प्रकाश यार्डी की कहानी इसका एक उदाहरण है। यार्डी को बैंक छोड़ने के लिए कहा गया, जब उन्होंने मुख्यालय को एक रिपोर्ट भेजी जिसमें उन्होंने विस्तार से बताया कि मर्चेंट बैंकिंग डिवीजन को किन जोखिमों का सामना करना पड़ रहा है। लेकिन चूंकि एमबीडी बैंक के मुनाफे को बढ़ाने के मुख्य दांव में से एक था, इसलिए इसके अपने बजट और ऊंचे लाभ लक्ष्य थे। इसके अपने नैतिक नियम भी थे। एमबीडी के लाभ बढ़ाने के अभियान का नेतृत्व लंदन स्थित एमबीडी के प्रमुख, उत्साही रंजीत मथरानी कर रहे थे, जिन्होंने जनवरी 1988 में बैंक में कार्यभार संभाला था।

मथरानी, जिन्हें भारतीय एमबीडी प्रमुख सीधे रिपोर्ट करते थे, ने प्रोत्साहन-आधारित वेतन जैसी कुछ अच्छी व्यवस्थाएं लागू कीं, लेकिन उनके महत्वाकांक्षी लाभ लक्ष्य भारत में मर्चेंट बैंकिंग द्वारा पेश किए जाने वाले सीमित व्यावसायिक अवसरों से मेल नहीं खाते थे। यहां तक कि वे अवसर भी बैंकिंग नियमों द्वारा कड़ाई से सीमित थे। बैंक के एक शीर्ष अधिकारी कहते हैं, "कुछ लोगों के लिए ये नियम मुनाफा कमाने के रास्ते में अनावश्यक बाधाएं थे।"

भारत में मर्चेंट बैंकिंग (या निवेश बैंकिंग) मूलतः प्रारंभिक सार्वजनिक पेशकशों (IPO) का प्रबंधन था, जिसके लिए शुल्क इतना कम था कि विदेशी बैंकों के लिए, जिनके ओवरहेड खर्च बहुत अधिक थे, मुनाफा कमाना मुश्किल था। सिटीबैंक की तरह, जिसने यह बात बहुत पहले ही समझ ली थी, स्टैनचार्ट के कुछ वरिष्ठ अधिकारियों ने भी महसूस किया कि बैंक नियमों में ढील देकर ही मुनाफा कमा सकता है।

फिर भी, मुनाफा लक्ष्य से कम रहा और स्टैनचार्ट से कर्मचारी जाने लगे।

बैंक में कुछ अजीबोगरीब भर्तियां हुईं। एक ऐसे व्यक्ति को भर्ती किया गया जिसे ग्रिंडलेज़ ने अतिरिक्त लाभ कमाने के कारण निकाल दिया था। जब यह बात एमबीडी के एक वरिष्ठ अधिकारी को बताई गई, तो उन्होंने कहा: "अगर उसने अपने लिए पैसा कमाया है, तो वह बैंक के लिए भी कमाएगा।" एक अन्य कर्मचारी को उसके कैम्ब्रिज अकादमिक रिकॉर्ड के कारण भर्ती किया गया। उसने जल्द ही अपना खुद का ट्रेडिंग व्यवसाय शुरू कर दिया। बाद में वह व्यक्ति सोने की तस्करी के आरोप में वांछित पाया गया और उसका नाम इंटरपोल की सूची में भी था। स्टैनचार्ट के एक शीर्ष अधिकारी के अनुसार, "नए लोगों के आने से मूल्य संतुलन बिगड़ गया। पुराने अनुभवी बैंकरों की ओर से पर्याप्त संतुलन नहीं बन पाया।"

इसके परिणामस्वरूप एमबीडी ने कॉरपोरेट सेक्टर को और बाद में हितेन दलाल जैसे दलालों को साफ-सुथरे क्रेडिट के रूप में पैसा उधार दिया, जिस पर सख्त बैंकरों द्वारा सवाल उठाए जा सकते थे। एमबीडी को नकदी से भरपूर कंपनियों की सूची तैयार करने, उनसे पैसा उधार लेने और फिर उसे अंतर-कॉर्पोरेट बाजार में उधार देने के लिए कहा गया था। राष्ट्रीय केमिकल्स एंड फर्टिलाइजर्स, पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन (जिस पर ग्रिंडलेज के माध्यम से हर्षद मेहता को 300 करोड़ रुपये से अधिक का ऋण देने के लिए सीबीआई जांच चल रही है) और तेल कंपनियों जैसी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों से स्टैनचार्ट के खाते में पैसा आया।

इसका मतलब तीन बातें थीं: बैंक उधारकर्ता पर जोखिम ले रहा था, जिसे बैंक द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था क्योंकि यह मुख्यधारा के कॉरपोरेट ऋण के अंतर्गत नहीं आता था; जोखिम को बैलेंस शीट में नहीं दर्शाया गया था; और यह आरबीआई के आरक्षित आवश्यकता के नियम का उल्लंघन था। कॉरपोरेट धन एकत्र करना (स्पष्ट रूप से यूनिटों और बॉन्डों में निवेश करने के लिए लेकिन इसे उधार देना) एक प्रकार का छिपा हुआ जमा लेना था। लेकिन चूंकि बैंक वैधानिक तरलता अनुपात और नकद आरक्षित अनुपात को पूरा करने के लिए 40% आरक्षित नहीं कर रहा था, इसलिए यह आरबीआई के नियमों का उल्लंघन था। आरबीआई की जनाकीरामन समिति की तीसरी रिपोर्ट में बताया गया है कि सिटीबैंक को ठीक यही करते हुए पकड़ा गया था
- यह एक और उदाहरण है कि कैसे स्टैनचार्ट ने सिटीबैंक की तर्ज पर खुद को ढालने की कोशिश की।

क्रेडिट जोखिम मूल्यांकनकर्ता के रूप में, यार्डी ने यह बताने का प्रयास किया कि एमबीडी बैंक पर उच्च जोखिम थोप रहा था। ग्राहकों की व्यक्तिगत रूप से गहरी जानकारी रखने वाले कन्नन, पारंपरिक जोखिम-मूल्यांकन मानदंडों से कम चिंतित थे। उन्होंने कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज में अपने दिनों के दौरान ग्राहकों के साथ विकसित किए गए अपने व्यक्तिगत संबंधों और अपनी व्यावसायिक सूझबूझ पर भरोसा किया - जो प्रतिस्पर्धा में आगे रहने के लिए आवश्यक तत्व थे। उन्होंने यार्डी को यह बात बताई भी। लेकिन यार्डी अपनी बात पर अड़े रहे।

इन सबके बीच, स्टैनचार्ट मुख्यालय गहरी नींद में था। जब यार्डी ने सितंबर 1990 में स्टैनचार्ट पीएलसी बोर्ड (ब्रिटेन में मूल

बैंक) के एक सदस्य को सतर्क किया, तो उन्होंने कुछ निरीक्षकों को भेजा। उन्होंने गंभीर अनियमितताओं का पता लगाया। बकाया राशि मामूली थी – लगभग 111 करोड़ रुपये।

समस्याओं को अच्छी तरह से दबा दिया गया और यार्डी 14 दिसंबर को बैंक से बाहर हो गए। हालांकि, उस समय तक मथराणी भारतीय एमबीडी के प्रभारी नहीं थे। फरवरी 1991 में, नैट ने भारतीय मर्चेंट बैंक को मुख्य बैंक को रिपोर्ट करने के लिए कहा और कन्नन को एमबीडी के प्रमुख के रूप में पदोन्नत किया गया।

यह सवाल उठता है कि क्या इसका स्टैनचार्ट की बाद की मुश्किलों से कोई संबंध था। यार्डी के डर के विपरीत, स्टैनचार्ट को अपने मर्चेंट बैंकिंग कार्य के कारण नुकसान नहीं हुआ। लेकिन एक तरह से, इसके बैक ऑफिस में भुगतान संबंधी गड़बड़ियों के बीज उन दिनों के जोखिम लेने के रवैये से ही बोए गए थे। एमबीडी कर्मचारियों का जोखिम भरे वादे करने में सहजता का स्तर और ग्राहकों पर उनका भरोसा बेकाबू हो गया था। ट्रेजरी विभाग, जिसे एमबीडी के साथ मिलाकर इन्वेस्टमेंट बैंकिंग डिवीजन बनाया गया था, ने शायद अनजाने में ही बैंक ऑफ कराड जैसे छोटे बैंक और हितेन दलाल जैसे ब्रोकर के साथ प्रतिभूति लेनदेन करते समय वही लापरवाह और सहज दृष्टिकोण अपनाया। जब तक घोटाला सामने आया, स्टैनचार्ट की आंतरिक जाँच-पड़ताल पूरी तरह से ध्वस्त हो चुकी थी।

इससे भी बुरा यह हुआ कि जब अक्टूबर 1991 में आंतरिक लेखा परीक्षक द्वारा बैंक का निरीक्षण किया गया, तो उसे न केवल क्लीन

चिट दी गई, बल्कि विश्व स्तर पर सर्वश्रेष्ठ ट्रेजरी डिवीजनों में से एक के रूप में भी दर्जा दिया गया। इसके अलावा, दो और ऑडिट हुए,

एक 30 जून को और दूसरा 31 दिसंबर को, स्टैनचार्ट पीएलसी को अपने खातों को समेकित करने में मदद करने के लिए। इनमें से किसी में भी कोई अनियमितता नहीं पाई गई। अंततः सबसे बड़ी विडंबना यह थी कि स्टैनचार्ट, जहाँ कन्नन काम करते थे, और कैनफिना, जहाँ उन्होंने अपने कौशल को निखारा था, दोनों ही इस घोटाले में बुरी तरह से फंस गए - दोनों को एक ही ब्रोकर, हितेन दलाल ने ठगा था।

लेकिन इस सब में भूपेन दलाल की क्या भूमिका है?

सीबीआई के अनुसार, भूपेन स्टैनचार्ट से जुड़े विशाल और संदिग्ध घोटाले के केंद्र में थे। यह घोटाला हर्षद मेहता से जुड़े घोटाले के समानांतर चल रहा था। दोनों घोटाले में सिर्फ एक बुनियादी संबंध था - बीआर (बिजली बंद प्रतिभूतियां) और बेमेल लेनदेन का इस्तेमाल। मेहता ने पैसा जुटाने के लिए अप्राप्त प्रतिभूतियों और बीआर का इस्तेमाल किया था। बैंक ऑफ कराड ने भी ऐसा ही किया था। लेकिन समानता यहीं खत्म हो जाती है।

हर्षद शेयर बाजारों में पैसा लगा रहे थे, कीमतों को आसमान छूने वाली ऊंचाइयों तक पहुंचा रहे थे, और अपने विरोधियों दलालों के एक गिरोह के साथ अहंकार की लड़ाई में उलझे हुए थे। लेकिन भूपेन दलाल की कहानी अलग थी। भूपेन सीधे शेयर बाजार में सीधे तौर पर शामिल नहीं थे। इसके अलावा, हर्षद और नेशनल हाउसिंग बैंक के बीच

सीधे संबंध के विपरीत, यह मामला कहीं अधिक जटिल था। इसमें तीन पीड़ित और दो मुनाफाखोर थे। स्टैनचार्ट अकेला ऐसा बैंक नहीं था जिसे नुकसान उठाना पड़ा। हर्षद मेहता कांड के सामने आने के कुछ दिनों बाद, केनरा बैंक की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी कैनफिना को पता चला कि कराड द्वारा जारी और हितेन दलाल के माध्यम से प्राप्त 435.31 करोड़ रुपये के बीआर (बॉर्डर क्रेडिट) उसके पास फंसे हुए हैं। ये बीआर बिना किसी प्रतिभूति के थे। इसी तरह, कैनबैंक म्यूचुअल फंड में भी 104 करोड़ रुपये की कमी थी। दूसरी ओर, स्टैनचार्ट ने एक अन्य बैंक - छोटे से मेट्रो बैंक - से फर्जी बीआर स्वीकार किए थे। लेकिन स्टैनचार्ट के अनुसार, इस घोटाले में केवल भूपेन ही शामिल नहीं थे।

स्टैनचार्ट और कैनफिना के संदिग्ध ठगों के बारे में आपके विवरण के आधार पर, आप इसे 'पांच का गिरोह' कह सकते हैं। हर्षद मेहता घोटाले के सामने आने के दो सप्ताह से कुछ अधिक समय बाद और फेरवानी की मृत्यु के कुछ दिनों बाद, 'पांच का गिरोह' सामने आया। वे अज्ञात लोग थे। हितेन कौन? अभय कौन? जब उनके नाम पहली बार सामने आए तो हर कोई यही पूछ रहा था। जाहिर है, जनता से इन सज्जनों को जानने की उम्मीद नहीं थी। लेकिन एक छोटे से समूह को छोड़कर, वित्तीय क्षेत्र से जुड़े लोग भी इन लोगों से परिचित नहीं थे। सीबीआई और स्टैनचार्ट के अनुसार, इस मुख्य समूह में अभय नरोत्तम, जेपी गांधी, तेजू रुइया, हितेन दलाल और भूपेन दलाल शामिल थे। दो अन्य लोगों पर भी घोटाले के धन में हाथ होने का संदेह था। एक थे एस रामास्वामी, जो एक्सेल एंड कंपनी नामक एक छोटी ब्रोकिंग फर्म के मालिक थे, और दूसरे थे उद्योगपति हेमंत व्यास, जो बॉम्बे सिल्क मिल्स लिमिटेड और प्राग बोसिमी लिमिटेड

के नियंत्रक थे।

व्यक्तिगत रूप से देखा जाए तो इन पांचों के बीच कोई संबंध नहीं था। अभय नरोत्तम का हितेन दलाल से कोई संबंध नहीं था (हालांकि चार महीने बाद स्थिति बदल गई) और जेपी गांधी का तेजू रुइया से कोई संबंध नहीं था। लेकिन भूपेन दलाल को बीच में रख दें तो अचानक ये सभी आपस में गहराई से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। संबंध इतने गहरे थे कि सीबीआई ने उन सभी को पूछताछ के लिए जेल में डाल दिया। भूपेन के माध्यम से बने संबंध व्यापक थे और स्टैनचार्ट की नजरों में गहरा संदेह पैदा करते थे।

भूपेन और उनके बेटे बैंक ऑफ कराड में निदेशक थे, जिसे आरबीआई द्वारा मुद्रा छापने की दर पर बीआर जारी करते हुए पकड़ा गया था। यह अपने आप में कोई अपराध नहीं था। समस्या यह थी कि कराड और मेट्रो बैंक द्वारा जारी किए गए बीआर फर्जी थे। उनके समर्थन में कोई प्रतिभूतियां नहीं थीं। क्या इन दोनों बैंकों ने स्टैनचार्ट के पैसे का इस्तेमाल कुछ ऐसी प्रतिभूतियां खरीदने के लिए किया था, जो पाइपलाइन में होने का दावा कर रही थीं? नहीं। तो पैसा कहां गया? क्या भूपेन का इस पैसे के गायब होने में कोई हाथ था? भूपेन का कहना है कि उनका कोई हाथ नहीं था। उन्होंने आरबीआई को बताया कि "पहली बार, 14 मई 1992 को, बैंक ऑफ कराड के बकाया बीआर का विवरण बोर्ड को प्रस्तुत किया गया था।"

कुछ त्वरित, प्रारंभिक पूछताछ के बाद, स्टैनचार्ट को पता चला कि पैसा हितेन दलाल के खाते से बैंक ऑफ कराड के किसी ऐसे व्यक्ति के खाते में चला गया था जिसने बीआर जारी किए थे। नाम? अभय

नरोत्तम। उस समय साठ वर्ष के नरोत्तम, जिनका एक गोद लिया हुआ सात वर्षीय बेटा था, भूपेन दलाल से अच्छी तरह परिचित थे। वह पिछले अट्ठाईस वर्षों से भूपेन के सहयोगी थे। उनका सारा श्रेय भूपेन को ही जाता था – उनका पूरा स्टॉक-ब्रोकिंग करियर, जिसमें बीएसई में उनका खाता भी शामिल था। नरोत्तम बैंक ऑफ कराड के निदेशक भी थे। सितंबर 1990 तक उनके पास भूपेन की पावर ऑफ अटॉर्नी थी। स्टैनचार्ट और सीबीआई के लिए यह सवाल अनुत्तरित रह गया कि भूपेन को नरोत्तम की गतिविधियों के बारे में कैसे पता नहीं चला?
नरोत्तम अकेले नहीं थे। हितेन दलाल, जो लगभग पैंतीस वर्ष के थे और थोड़े मोटे थे, भूपेन के भतीजे थे, हालांकि दूर के रिश्तेदार थे। जनकीरामन समिति ने खुलासा किया कि नरोत्तम हितेन के नाम पर प्रतिभूति लेन-देन में भारी नुकसान दर्ज कर रहे थे। इस कड़ी की अंतिम कड़ी जेपी गांधी थे, जो भूपेन दलाल के चचेरे भाई थे। गांधी भूपेन चंपकलाल देवीदास के कर्मचारी थे और सभी के अनुसार, प्रतिभूति लेन-देन, विशेष रूप से संदिग्ध क्षेत्रों में आने वाले लेन-देन के माहिर थे।
पांचवां खिलाड़ी तेजू रुइया था, जो कई कंपनियों को नियंत्रित करता था, जिनमें सबसे प्रमुख किलिक निक्सन थी, जिसमें भूपेन दलाल निदेशक थे। वास्तव में, भूपेन ने ही उन्हें किलिक निक्सन पर कब्जा करने में मदद की थी। रुइया, जिन्होंने बाद में स्टैनचार्ट से 90 करोड़ रुपये से 125 करोड़ रुपये लेने की बात स्वीकार की, भूपेन के सबसे करीबी व्यापारिक सहयोगियों में से एक थे, जिनके संबंध भारत से परे भी थे। अपने बेटे की शादी के लिए भूपेन ने रुइया की रोल्स रॉयस उधार ली थी। संयोगवश, रुइया एक छोटे से बैंक के निदेशक थे। बैंक का नाम था - मेट्रोपॉलिटन

कोऑपरेटिव बैंक। स्टैनचार्ट और सीबीआई की जांच से बाद में पता चला कि उनके बीच पैसों का लेन-देन कितनी बेरोकटोक तरीके से होता था।
स्पष्ट रूप से, मेट्रो बैंक का इस्तेमाल एक माध्यम के रूप में किया जा रहा था। लेकिन कम से कम उसके पास कुछ संपत्ति तो थी और कपड़ा व्यापारियों को ऋण देने का उसका एक व्यवसाय भी था। रुइया द्वारा नियंत्रित दूसरा माध्यम एक दिखावटी कंपनी थी: धनराज मिल्स। यह सिर्फ नाम की मिल थी। 997,000 रुपये की पूंजी और मध्य मुंबई के कपड़ा जिले में स्थित एक छोटे से कार्यालय के साथ, धनराज मिल्स का मुख्य व्यवसाय रुइया के लिए नकदी बनाना था। यह 1958 और 1965 में इसे बंद करने के दो प्रयासों से बच गई। इसने लगभग एक करोड़ रुपये में कुछ अचल संपत्ति बेची, जिससे रुइया ने 1982 में जबरन अधिग्रहण के जरिए किलिक निक्सन को खरीद लिया। 1992 से, रुइया ऐशो-आराम की जिंदगी जी रहे हैं, जैसे अपने बेटे की शादी के लिए लंदन में पार्टियां आयोजित करना। उन्हें इतना सारा पैसा कहां से मिला? शायद उन्होंने इसे कमाया होगा। लेकिन मेट्रो बैंक कराड और हितेन दलाल से प्राप्त चेकों को धनराज मिल्स के खाते में जमा करने में भी व्यस्त था।
इस सांठगांठ में और भी बहुत कुछ था। चार्टर्ड अकाउंटेंट प्रदीप धरंधरकर और केएन व्यास को
19 मार्च 1991 को एमसीबी बोर्ड में सह-सदस्य बनाया गया। दोनों किलिक निक्सन में प्रबंधक थे। धरंधरकर ने 1992 के अंत में इस्तीफा दे दिया, जबकि व्यास निर्यात विभाग में काम करते रहे। एक अन्य प्रमुख संदिग्ध मेट्रो बैंक के अध्यक्ष
हेमंत व्यास थे, जिनके बारे में द इंडियन एक्सप्रेस ने 31 मई 1992 की एक रिपोर्ट में कहा था कि 1987 में उन पर विदेशी मुद्रा

संरक्षण और तस्करी निवारण अधिनियम के तहत मामला दर्ज होने वाला था। एक्सप्रेस ने आरोप लगाया कि वित्त मंत्री एन.डी. तिवारी, जिन्हें वह चाचा तिवारी कहते हैं, ने उन्हें बचाया था। व्यास पर पॉलिएस्टर धागे की तस्करी का आरोप था। न तो तिवारी और न ही व्यास ने इस कहानी का खंडन किया। व्यास ने एमसीबी बोर्ड द्वारा लिए गए निर्णयों के बारे में अनभिज्ञता जताई।
इसलिए, जैसा कि स्टैनचार्ट ने देखा, समीकरण बिल्कुल स्पष्ट था। भूपेन के भतीजे हितेन दलाल ने बैंक से सैकड़ों करोड़ रुपये निकाले थे और भूपेन के करीबी सहयोगी अभय नरोत्तम द्वारा उपलब्ध कराए गए बीआर (बैंक क्रेडिट) दिए थे। मेट्रो बैंक से भी कुछ बीआर आए थे, जो अप्रत्यक्ष रूप से भूपेन के व्यापारिक सहयोगी तेजू रुइया द्वारा नियंत्रित था। संभवतः कुछ पैसा भूपेन के पुराने कर्मचारी जेपी गांधी और रुइया को भी गया था। इन सबके बीच भूपेन फंसे हुए थे, जिनके खिलाफ कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं था। प्रेस ने उन्हें सरगना, मास्टरमाइंड कहा। मई 1992 के उत्तरार्ध में भूपेन को लगा कि उनके गले में फंदा कसता जा रहा है। वह क्या करेंगे?
उनके पास जवाब तैयार थे। “हितेन मेरे चचेरे भाई का बेटा है। मैं उससे तीन साल में सिर्फ दो बार मिला हूँ और वह भी सामाजिक अवसरों पर।”
उन्होंने कहा कि उनका बैंक ऑफ कराड से कोई लेना-देना नहीं है। “पिछले साल 27 जुलाई (1991) के बाद, जब मैं निदेशक बना, तब से मैंने कराड की बॉम्बे शाखा में एक बार भी दौरा नहीं किया। अभय ने मेरे साथ अट्ठाईस साल काम किया, लेकिन पिछले दो सालों में हमारा संपर्क बहुत कम रहा। जेपी गांधी ने 1973 में अपना कारोबार हमसे अलग कर लिया था। वह हमारे कार्यालय में बैठकर

अपना कोई काम कर रहे थे। वह बूढ़े हो रहे हैं और उनकी कोई संतान नहीं है। उनकी क्या रुचियां हैं?” और किताब महल स्थित सीबीआई कार्यालय में जेब में हाथ डाले, छपी हुई रेशमी कमीज पहने जिस व्यक्ति से उनकी मुलाकात हुई, उसके बारे में भूपेन ने कहा, “मुझे जरा भी अंदाजा नहीं था कि यह वही हेमंत व्यास हैं।” स्टैनचार्ट प्रभावित नहीं हुए।
भूपेन ने स्टैनचार्ट पर उन्हें झूठा फंसाने का आरोप लगाते हुए जमकर आलोचना की। तेजू रुइया के बारे में वह चुप रहे। घोटाला सामने आने पर रुइया ने खुद को एक निजी अस्पताल में भर्ती कराया, जबकि भूपेन को जेल में रहना पड़ा। भूपेन ने कोई नाराजगी नहीं दिखाई। न ही वह अभय नरोत्तम के बारे में कोई चर्चा करना चाहते थे।
भूपेन का बयान भी विरोधाभासी था। इंडिया टुडे (31 मई के अंक) से बातचीत में उन्होंने कहा, “हमारी फर्म नियमित रूप से प्रतिभूतियों का लेन-देन नहीं करती। लगभग 15 साल पहले हम प्रतिभूतियों में विशेषज्ञता रखते थे। लेकिन अब हमने अपने कारोबार का विस्तार कर लिया है, फिर भी बाजार में हमें प्रतिभूतियों के विशेषज्ञ के रूप में ही जाना जाता है।”
यह बात विचित्र थी। उनकी ब्रोकिंग फर्म, बीसीडी, वास्तव में दूसरी सबसे बड़ी प्रतिभूति ब्रोकर थी। अप्रैल 1991 से मार्च 1992 के बीच, बीसीडी ने 67,170 करोड़ रुपये की प्रतिभूतियों का लेन-देन किया – जो हर्षद मेहता के 61,318 करोड़ रुपये से कहीं अधिक था। बेशक, जानकीरमन समिति द्वारा प्रस्तुत ये आंकड़े एक तरह से भ्रामक थे। लेकिन इससे यह स्पष्ट हो जाता था कि बीसीडी प्रतिभूति बाजार में एक महत्वपूर्ण खिलाड़ी थी। इसके अलावा, आरबीआई अधिकारियों ने जल्द ही पता लगाया कि बैंक ऑफ कराड के

लगभग 35% प्रतिभूति लेन-देन बीसीडी द्वारा किए गए थे। इस पर भूपेन दलाल ने आरबीआई को बताया कि "बैंक ऑफ कराड के कार्यकारी अधिकारियों का यह पूरी तरह से निर्णय है कि वे किस ब्रोकर के माध्यम से खरीद/बिक्री करना चाहते हैं। मैंने बैंक ऑफ कराड को कभी नहीं कहा कि प्रतिभूतियों में उनका लेन-देन बीसीडी के माध्यम से किया जाना चाहिए।"

भूपेन दलाल ने पहली बार 1969 में बैंक में काम शुरू किया था। 15 फरवरी 1984 को बैंकिंग विनियमन अधिनियम में संशोधन के कारण उन्हें बोर्ड छोड़ना पड़ा। लगातार आठ वर्षों तक सेवा देने के बाद वे स्वतः ही निदेशक पद से हट गए। हालांकि नियमों के अनुसार उन्हें दो साल बाद बोर्ड में फिर से शामिल होने की अनुमति थी, लेकिन
उन्हें सात साल के अंतराल के बाद 27 जुलाई 1991 को फिर से बहाल किया गया। जब आरबीआई ने बैंक ऑफ कराड के सौदों को लेकर उन पर आरोप लगाया,
और उन्हें 25 मई 1992 को पद छोड़ने के लिए कहा, तो भूपेन ने चतुराई से आरबीआई के
9 मार्च के परिपत्र का हवाला दिया, जिसमें निजी क्षेत्र के बैंकों के निदेशकों की भूमिकाएं निर्दिष्ट की गई थीं। “मैंने हमेशा इन्हीं मानदंडों का पालन किया है। बैंक ऑफ कराड के कार्यकारी अधिकारियों के साथ मेरा संपर्क बहुत कम था।” उन्होंने तर्कसंगत रूप से यह भी बताया कि वे केवल एक गैर-कार्यकारी निदेशक थे और “आरबी के दिशानिर्देशों के अनुसार, उन्हें बैंक के दैनिक प्रबंधन में भाग नहीं लेना चाहिए था।” फिर उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा, “बोर्ड में आरबीआई का एक नामित

सदस्य भी था,” जिसके बारे में उन्होंने संकेत दिया कि वह भी समान रूप से उत्तरदायी होना चाहिए था।
क्या भूपेन दलाल इतने निर्दोष थे? वे प्रतिभूति लेनदेन की दुनिया से बिल्कुल भी अपरिचित नहीं थे। अपने करियर के शुरुआती दौर में, 1962 से 1976 के बीच, वे प्रतिभूति सौदों में गहराई से शामिल थे। तब व्यवसाय अलग था। बैंक के अध्यक्ष अक्सर स्वयं लेनदेन करते थे। भूपेन ने कहा, “आप यूटीआई के अध्यक्ष से लगभग हर दिन मिल सकते थे। नियम बहुत सख्त थे। बीस साल का अनुभव होने पर ही आप चेक पर हस्ताक्षर कर सकते थे। सभी चेक पर संयुक्त रूप से हस्ताक्षर किए जाने थे।”
फिर आया 80 का दशक। प्रतिभूति लेनदेन का कारोबार बहुत बढ़ गया। “जूनियर अधिकारियों को चेक पर हस्ताक्षर करने की अनुमति थी। एक हस्ताक्षरकर्ता भी ठीक था”, वे कहते हैं। “विदेशी बैंकों के कोषागार विभाग कम अनुभव वाले युवाओं द्वारा संचालित किए जा रहे थे। नियंत्रण व्यवस्था गड़बड़ा गई। डीलरों को काफी छूट मिल गई थी।” विडंबना यह है कि भूपेन ये बातें अपनी ही सिक्योरिटीज ब्रोकिंग फर्म, बीसीडी के बारे में कह सकते थे, जिसे वस्तुतः जेपी गांधी चलाते थे। लेकिन बड़ा सवाल यह है कि उन्हें कितनी जानकारी थी? उनके हाथों से कितना पैसा गुजरा और क्या उसमें से कुछ उनके पास रहा?
पूरा वित्तीय समुदाय इस बात से स्तब्ध रह गया कि भूपेन दलाल इतने बड़े घोटाले में शामिल हो सकते हैं। भारत के वित्तीय समुदाय के सबसे मुखर, वाक्पटु और नवोन्मेषी सदस्यों में से एक और मुंबई स्थित चंपकलाल इन्वेस्टमेंट एंड फाइनेंशियल कंसल्टेंट्स के शीर्ष अध्यक्ष के रूप में, उन्होंने खुद को अनिवासी भारतीयों के लिए एक व्यापारी बैंकर के रूप में स्थापित

किया था। लेकिन उनका नाम बैंक ऑफ कराड से जुड़ गया, जो महाराष्ट्र के गन्ना उत्पादक क्षेत्र में स्थित कराड नामक एक छोटे से कस्बे में मुख्यालय वाला एक शांत और महत्वहीन (या कम से कम सभी की यही धारणा थी) निजी बैंक था।
चंपकलाल देवीदास दलाल के इकलौते बेटे भूपेन ने बॉम्बे के सिडेनहैम कॉलेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त की और फिर अपने पिता की प्रतिष्ठित और सुस्थापित ब्रोकिंग फर्म में शामिल हो गए। वर्षों से उन्होंने एक परिष्कृत व्यावसायिक दृष्टिकोण विकसित किया था, जो उनकी योजनाओं को दिए गए वैश्विक आयाम में परिलक्षित होता था, तब भी जब आत्मनिर्भरता, न कि वैश्वीकरण, चर्चा का विषय थी। उन्होंने सिफको-हिल सैमुअल फंड नामक एक ऑफशोर फंड की कल्पना की और उसे स्थापित किया, उस समय जब भारत में केवल एक घरेलू म्यूचुअल फंड (यूटीआई) और उसी यूटीआई द्वारा एक ऑफशोर फंड (इंडिया फंड) था। दलाल ने सिफको (यूके) लिमिटेड भी शुरू किया। बाद में उन्होंने दुबई में सिफको एमिरेट्स नामक एक इकाई स्थापित की, जो अनिवासी भारतीयों को पोर्टफोलियो निवेश पर सलाह देती थी। आलोचकों का कहना है कि ये मनी लॉन्ड्रिंग के माध्यम थे, लेकिन प्रवर्तन एजेंसियों को इसका कोई सबूत नहीं मिला।
भूपेन के भारत से कुछ अनोखे संबंध थे। उदाहरण के लिए, वे बीजापुर के बाहरी इलाके में रहने वाले अपने आध्यात्मिक गुरु अन्ना सरदेशपांडे से महीने में कई बार मिलने जाया करते थे। अन्ना के शिष्य - धनी और प्रभावशाली दलाल, कुछ नौकरशाह और दर्जनों व्यापारी - देश भर से आते थे। भूपेन के बड़े बेटे मिलन का विवाह गुरु की बेटी से हुआ था।

भूपेन को मिले हर एक विजिटिंग कार्ड को संभाल कर रखते हैं (उनके पास हजारों कार्ड हैं)। पते और संपर्क नंबर उन्होंने बड़ी सावधानी से सहेज कर रखे हैं। उन्हें नाम तो याद नहीं रहते, लेकिन परिस्थितियाँ उन्हें तुरंत याद हो जाती हैं। भूपेन, जो कभी भी फोन का जवाब देना नहीं भूलते, ने 80 के दशक में अपने घर में फैक्स और टेलेक्स मशीनें लगवाई थीं। वे एक ऐसे व्यवसाय में रणनीतिक विचारक के रूप में जाने जाते थे, जहाँ कच्चे सौदेबाजी का बोलबाला था। एक बार वे सिर्फ एक सेमिनार में डेढ़ घंटे का व्याख्यान देने के लिए लंदन तक गए थे।
बॉम्बे में केंद्रित छोटे वित्तीय समुदाय में, धनी परिवार में जन्मे भूपेन ने एक संरक्षक की भूमिका निभाई। उदाहरण के लिए, उन्होंने अपने पूर्व कर्मचारी और बाद में स्टैनचार्ट के मर्चेंट बैंकिंग विभाग के प्रमुख आर शंकरन को स्वतंत्र करियर स्थापित करने में मदद की, संभवतः इसके लिए उन्होंने धन और कार्यालय स्थान भी उपलब्ध कराया। कई ब्रोकर और व्यवसायी स्वीकार करते हैं कि उन्हें उनसे मदद मिली है - अक्सर मुफ्त में। इनमें उदय बोस भी शामिल थे, जो बीएसई के कुछ गैर-गुजराती सदस्यों में से एक थे। जब बोस की सदस्यता का कुछ निदेशकों द्वारा विरोध किया गया, जिनमें एक प्रमुख ब्रोकर भी शामिल था जो बाद में बीएसई का अध्यक्ष बना, तो भूपेन ने अपनी पूरी ताकत लगाकर सदस्यता को आगे बढ़ाया। 1991 में एक बैठक में, उदय ने खुले तौर पर भूपेन को अपना गुरु बताया।
डीएस पुरभूदास के मालिक हेमेंद्र कोठारी भी निजी तौर पर भूपेन को अपना गुरु मानते थे। (यह एक अलग बात है कि घोटाला उजागर होने पर कोठारी ने भूपेन का कोई समर्थन नहीं किया।) कहानी यह है कि भूपेन के पिता ने ही कोठारी को शेयर बाजार में लाया था, जब वह

मोरारजी गोकुलदास मिल्स में उप बिक्री प्रबंधक के रूप में काम कर रहे थे। कोठारी के पिता शेयर बाजार में कोई भविष्य न देखकर अपनी ब्रोकिंग फर्म बंद करने वाले थे। भूपेन के पिता ने उन्हें अपने बेटे को ब्रोकिंग में शामिल करने के लिए राजी किया। भूपेन के सहयोगियों का दावा है कि कोठारी हर दिन दलाल स्ट्रीट स्थित बीसीडी कार्यालय में तीन घंटे बैठकर काम सीखते थे।
भूपेन वाक्पटु और व्यवस्थित हैं, इसलिए एक बेहतरीन शिक्षक और मार्गदर्शक हैं। उनके बेटे असीम और मिलन कहते हैं कि उन्होंने "भूपेन दलाल स्कूल ऑफ मैनेजमेंट" में प्रशिक्षण प्राप्त किया है। कुछ साल पहले, भूपेन ने अपने बेटों को कंपनी चलाने की कला सिखाने के लिए अपने घर के पास एक मेडिकल शॉप का जिम्मा लिया। उन्होंने दुकान को एक लिमिटेड कंपनी में बदल दिया ताकि उनके बेटे कंपनी अधिनियम और स्थानीय कानूनों के तहत फर्म के पंजीकरण और संचालन की प्रक्रिया से गुजर सकें। वे नियमित रूप से बोर्ड की बैठकें करते, सांकेतिक प्रस्ताव पारित करते और आम सभा की बैठकें आयोजित करते थे। भूपेन ने अपने छोटे बेटे असीम को प्रशिक्षण के लिए ब्रिटेन की एक छोटी स्टॉक-ब्रोकिंग फर्म हिल सैमुअल में भेजा।
घोटाले का खुलासा होने से पहले ही भूपेन ने सब कुछ योजना बना लिया था। चूंकि कठोर, राज्य-नियंत्रित आर्थिक व्यवस्था ने उन्हें अपने वित्तीय कौशल का उपयोग करने की बहुत कम गुंजाइश दी थी, इसलिए उन्होंने 80 के दशक के उत्तरार्ध में अन्य व्यवसायों में हाथ आजमाया। उन्होंने बंद पड़ी खाद्य कंपनी फूड्स एंड इन खरीदी, जो उनके नेतृत्व में मध्य पूर्व में उत्पादों का निर्यात करके अत्यधिक लाभदायक बन गई। 1991 में, उन्होंने बॉम्बे के एक पुराने डिपार्टमेंटल स्टोर और प्रतिष्ठित स्थान

स्वदेशी स्टोर्स को खरीदा। उनके बेटे असीम ने बाद में इसे एक आलीशान और उच्चस्तरीय बॉम्बे स्टोर में बदल दिया। लेकिन नरसिम्हा राव के आर्थिक उदारीकरण के शुरू होते ही, भूपेन अपने पहले प्रेम, वित्त की ओर लौट आए। उन्होंने खोए हुए समय की भरपाई के लिए बड़ी योजनाएँ बनाईं। सिफको ने एक म्यूचुअल फंड, एक वेंचर कैपिटल फंड और विदेशों में कार्यालय स्थापित किए। उनके पास निश्चित रूप से सभी संपर्क थे। उनमें सबसे प्रमुख आदित्य बिरला थे।
इस घोटाले ने सब कुछ तहस-नहस कर दिया। उनकी प्रमुख कंपनी, सिफको का राइट्स इश्यू रद्द कर दिया गया, उनकी बीएसई सदस्यता निलंबित कर दी गई और बीसीडी को किसी भी प्रकार के प्रतिभूति व्यापार से प्रतिबंधित कर दिया गया।

लेकिन जैसा कि उन्होंने 12 मई को फोन पर नैट से कहा था, यह बड़ा सवाल लंबे समय तक अनुत्तरित रहा। पैसा कहाँ गया? इससे एक और परेशान करने वाला सवाल उठा। आरबीआई, सीबीआई और अन्य एजेंसियां स्टैनचार्ट के धन के सुराग ढूंढने में इतनी उत्सुक क्यों नहीं थीं, कम से कम उतनी उत्सुक क्यों नहीं थीं जितनी वे हर्षद का पीछा करने में थीं?

10

स्टैनचार्ट का धन का सुराग

यह सब एक नाटक था। स्टैनचार्ट अभी भी अंधेरे में भटक रहा था। सीबीआई लेन-देन के जंगल में अपना रास्ता भटकती हुई प्रतीत हो रही थी।
और पांचों का गिरोह अधिकाधिक सहज होता जा रहा था।
ऐसा लग रहा था
जैसे किसी तरह का पर्दाफाश शुरू हो गया हो।

स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक का पैसा कहाँ गया? कोई स्पष्ट जवाब नहीं था, बस कई अस्पष्ट संकेत और पांचों के गिरोह के बीच के स्पष्ट संबंध थे। स्टैनचार्ट की रणनीति समस्या को व्यावसायिक रूप से सुलझाने की थी: देनदारों से बात करना, पता लगाना कि पैसा कहाँ गया और जितना संभव हो उतना वापस पाना।
12 मई 1992 को पेसी नट द्वारा भूपेन दलाल को किए गए फोन कॉल के बाद, बैंक और गैंग ऑफ फाइव ने कई दौर की लंबी चर्चाएँ कीं।

21 मई को, भूपेन दलाल, हितेन दलाल, पेसी नट और आर कन्नन ताज महल होटल के विशिष्ट क्लब 'द चैंबर्स' में इस गड़बड़ी को सुलझाने के लिए मिले। उस दिन उनका उद्देश्य बकाया और वसूली योग्य सटीक राशि निर्धारित करना था। स्टैनचार्ट के अनुसार, राशि इस प्रकार थी: बैंक ऑफ कराड से स्वीकार किए गए बीआर के मद में 350 करोड़ रुपये; बैंक ऑफ कराड को किए गए भुगतान के साथ मेट्रोपॉलिटन कोऑपरेटिव बैंक से जुड़े लेनदेन पर 400 करोड़ रुपये; और मेट्रो

बैंक के माध्यम से भेजे गए 550 करोड़ रुपये। इन निधियों का उपयोग किसने किया? हितेन दलाल: 720 करोड़ रुपये और अभय नरोत्तम, टीबी रुइया और जेपी गांधी: कुल मिलाकर 580 करोड़ रुपये। यह एक बहुत मोटा अनुमान था। इतने बड़े घाटे से निपटने के लिए यह अनुमान बहुत कम था।
भूपेन दलाल ने बैठक की शुरुआत करते हुए कहा, “अगर स्टैनचार्ट को यह सारा पैसा गंवाना पड़ा तो इस घोटाले के भारत के लिए वैश्विक स्तर पर गंभीर परिणाम होंगे। हमारे हित में यही है कि हम मामले को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लें।” स्टैनचार्ट के बयान के अनुसार, जो अधिक सुसंगत प्रतीत होता था, उन्होंने गांधी के बकाया की जिम्मेदारी लेने पर भी सहमति जताई।
स्टैनचार्ट के आंतरिक दस्तावेजों के अनुसार, हितेन ने 160 करोड़ रुपये की अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान करने पर सहमति जताई, जिसमें रिलायंस, लक्ष्मी मशीन वर्क्स, फाइजर, भारत फोर्ज (80 करोड़ रुपये) के शेयर, सैंडोज़ और कुछ अन्य कंपनियों के डिबेंचर (10 करोड़ रुपये) और कैंट्रिपल/कैनस्टार जैसी म्यूचुअल फंड इकाइयां (70 करोड़ रुपये) शामिल थीं। उन्होंने IRFC बॉन्ड (120 करोड़ रुपये) और बैंक ऑफ अमेरिका द्वारा "अज्ञात लेनदेन" के माध्यम से जारी किए गए अन्य बॉन्ड और बीआर की "अतिरिक्त होल्डिंग" (65 करोड़ रुपये) का पता लगाने पर भी सहमति जताई। कुल मिलाकर, शेयर और बॉन्ड 345 करोड़ रुपये के थे - हितेन का हिस्सा। विस्तृत चर्चा के बाद, स्टैनचार्ट ने एक प्रकार की भुगतान अनुसूची तय की। हितेन ने सुझाव दिया कि बैंक ऑफ कराड 155 करोड़ रुपये का केंद्रीय ऋण और 125 करोड़ रुपये के IDBI और ICICI बॉन्ड - कुल 280 करोड़ रुपये - का भुगतान करे। उन्होंने 185 करोड़ रुपये के IRFC बॉन्ड और बैंक ऑफ अमेरिका के बॉन्ड का पता

लगाने पर सहमति जताई। उन्हें कैंट्रिपल की बिक्री के बदले 305 करोड़ रुपये के शेयर/डिबेंचर, 21 करोड़ रुपये की यूनिट और 205 करोड़ रुपये नकद भी लाने थे। शेष राशि - 350-450 करोड़ रुपये - का उपयोग अन्य बैंकों के घाटे की भरपाई के लिए किया गया था। स्टैनचार्ट के अधिकारी शायद कुछ नुकसानों को बट्टे खाते में डालने के आदी थे। बाद में, उन्होंने कुछ रकम वसूलने के लिए कैनफिना और सिटीबैंक के खिलाफ दावे दायर किए।
इस व्यवस्था में समस्या यह थी कि यह पूरी तरह से हितेन के बयानों पर आधारित थी। स्टैनचार्ट के अधिकारियों ने शायद उन पर विश्वास कर लिया था। उस समय, समझौते की उम्मीदें बहुत प्रबल थीं; वे दिन में कई बार बैंक से कितनी रकम वापस मिलेगी, इसका त्वरित हिसाब लगाते थे। लेकिन क्या हितेन सच बोलने की स्थिति में थे? क्या उनका ऐसा कोई इरादा भी था? बैंकरों का कहना है कि हितेन अपने लेन-देन को प्रमाणित करने के लिए कभी कोई अनुबंध नहीं देते थे। फिर भी, देश के सबसे अच्छे और सबसे बड़े बैंकों, विशेष रूप से सिटीबैंक जैसे विदेशी बैंकों ने उनके साथ बड़े लेन-देन किए थे। अगले कुछ हफ्तों में, उन्होंने बार-बार आंकड़ों में संशोधन किया।

शनिवार, 23 मई, स्टैनचार्ट के अधिकारियों के लिए महत्वपूर्ण था। वे धोखाधड़ी में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल होने के संदेह वाले सभी प्रमुख व्यक्तियों को चैंबर्स में एक लंबी चर्चा के लिए इकट्ठा कर सकेंगे। लेकिन उससे पहले, सुबह के समय, इंडिया टास्क फोर्स के निदेशक राजाह बनर्जी (बनर्जी, एक स्पष्टवादी, बेचैन स्वभाव के व्यक्ति थे जिनकी आंखें झुकी हुई थीं और ब्रिटिश लहजा लगभग सटीक था। उन्हें नेट द्वारा लंदन से

अतिरिक्त सहायता मांगने के दो दिन बाद हवाई जहाज से बुलाया गया था। वे बैंक में 25 वर्षों से कार्यरत थे) और आर कन्नन, बॉम्बे के सबसे दक्षिणी छोर पर स्थित कफ परेड के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर में आरबीआई के बैंकिंग संचालन और विकास विभाग के मुख्य अधिकारी एन.डी. परमेश्वरन से मुलाकात करेंगे।

"असंतुलित बीआर सहित, इस घोटाले में स्टैनचार्ट की क्या भूमिका है?" परमेश्वरन ने पूछा, जो एक लंबे, दुबले-पतले, पतले चेहरे और घनी भौंहों वाले व्यक्ति थे और देखने में किसी वामपंथी यूनियन नेता जैसे लगते थे।
स्टैनचार्ट दो बातों से प्रेरित था: पहला, यह उम्मीद कि बैंक बातचीत के माध्यम से अपना पैसा वापस पा लेगा और दूसरा, इस संवेदनशील चरण में गोपनीयता महत्वपूर्ण थी। इसलिए, जब परमेश्वरन ने स्टैनचार्ट के अधिकारियों से सही स्थिति के बारे में पूछा, तो उन्होंने सीधे-सीधे बात टाल दी। “इसमें दोहरी गिनती का बड़ा मामला है,” उन्होंने अस्पष्ट जवाब दिया। परमेश्वरन ने उन्हें बताया कि बैंक ऑफ कराड के पीछे का गिरोह पांच लोगों का था – जिनके नाम स्टैनचार्ट पहले से जानता था और जिनके साथ स्टैनचार्ट दिन में बाद में विचार-विमर्श करने वाला था।

परमेश्वरन ने कहा, “सारा पैसा पहले नरोत्तम के पास गया और वहां से तीन-चार खातों में।”
कुछ और बातें हुईं और बैठक समाप्त हो गई। यह मुश्किल से पंद्रह मिनट चली। परमेश्वरन आरबीआई के एक उप-गवर्नर से मिलने के लिए

जल्दी में निकल गए। उनके मन में एक गहरा संदेह था: स्टैनचार्ट अपने लेन-देन के बारे में अधिक पारदर्शी क्यों नहीं था?
शाम 4 बजे, घोटाले की संदिग्ध स्टैनचार्ट शाखा में शामिल सभी लोग द चैंबर्स में चार घंटे की लंबी बैठक के लिए मिले। भूपेन दलाल, अभय नरोत्तम, हितेन दलाल और तेजू रुइया उपस्थित थे। महत्वपूर्ण बात यह थी कि गांधी, जिसे हितेन ने मुख्य साजिशकर्ता बताया था, अनुपस्थित था। स्टैनचार्ट की ओर से जेआर हीटन, एरिक नस्लुंड, पेसी नैट, आर कन्नन और वसीम सैफी उपस्थित थे।
चर्चा शुरू होने से पहले ही, बेहद सहज और प्रभावशाली वक्ता भूपेन ने अपनी भूमिका स्पष्ट कर दी: “मैं यहाँ बैंक ऑफ कराड से अपने जुड़ाव के कारण और नैट और कन्नन के अनुरोध पर समझौता कराने के लिए आया हूँ।” भूपेन ने फिर कैनफिना के साथ अपने इसी तरह के मामले का जिक्र किया, जहाँ नरोत्तम और अन्य लोग मौजूद थे। कैनफिना का घाटा लगभग 450 करोड़ रुपये आंका गया था। इसके बाद चर्चा विशिष्ट जिम्मेदारियों की ओर मुड़ गई।
नरोत्तम ने स्वीकार किया कि बैंक ऑफ कराड में उनके खाते का उपयोग हितेन के सभी प्रतिभूति लेनदेन की प्राप्तियों और भुगतानों को रूट करने के लिए किया जाता था। तरीका सरल था। हितेन मौखिक रूप से नरोत्तम को बताते थे कि कहाँ क्या भेजना है और नरोत्तम उसे बैंक ऑफ कराड के लिए लिखित निर्देशों में बदल देते थे। नरोत्तम का इसमें क्या हित था?

नरोत्तम ने कहा, “मुझे रूटिंग करने के लिए कमीशन मिलता था।”

“बस इतना ही?” स्टैनचार्ट के अधिकारियों ने पूछा।

“खैर, नासिक की एक डेयरी में करीब 30 करोड़ रुपये लगे हैं।” डेयरी का कारोबार अच्छा नहीं चल रहा था, इसलिए स्टैनचार्ट को वह पैसा वापस मिलने की कोई उम्मीद नहीं थी। उन्होंने तेजू रुइया से संपर्क किया, जो दिखावटी तौर पर भले आदमी की भूमिका निभा रहे थे। उन्होंने 90 करोड़ से 125 करोड़ रुपये के बीच रकम लेने की बात कबूल की।
उस रकम का इतना बड़ा अंतर चौंकाने वाला था। अनुभवी कारोबारी और दलाल सैकड़ों करोड़ रुपये के कथित तौर पर गायब हुए पैसे की बात ऐसे कर रहे थे मानो वह मामूली रकम हो। इससे भी ज्यादा हैरानी की बात यह थी कि नरोत्तम और रुइया के उन लेन-देन को लेकर अलग-अलग विचार थे। नरोत्तम ने कहा कि वे रुइया की ओर से किए गए प्रतिभूति लेन-देन थे। इसमें कुछ नुकसान भी शामिल होंगे, जिससे बढ़ी हुई रकम का पता चलता है। रुइया असहमत थे। उन्होंने कहा कि वे ऋण थे, और बाद में जोर देकर कहा कि रकम 90 करोड़ रुपये ही थी।

“मैं इसे चुका दूंगा,” उन्होंने कहा। “लेकिन मैं चाहता हूं कि कैनफिना भी इस व्यवस्था का हिस्सा हो।”
ज़ाहिर है, वह खुद नुकसान नहीं उठाना चाहते थे। रुइया के पास पैसा चुकाने की एक अनोखी रणनीति थी: “मैं अपनी किसी कंपनी से पब्लिक इश्यू जारी करवाऊंगा। मुझे लगभग तीन महीने चाहिए।” शायद वह इशारा कर रहे थे कि स्टैनचार्ट इस “एक से लेकर दूसरे को चुकाने” वाले पब्लिक इश्यू में मर्चेंट बैंकर की भूमिका निभा सकता है।

मीटिंग के बीच में – शाम छह बजे – हितेन को बुलाया गया। उन्होंने कुछ सनसनीखेज बातें कहीं। “दोष मुझ पर मत डालो। उन्हें पता है कि क्या हुआ था।” उनका इशारा रुइया, नरोत्तम और भूपेन की ओर था।

स्टैनचार्ट के अधिकारियों ने पूछा, “क्या आपने कोई पैसा उधार दिया है? या शेयर बाजार में नुकसान हुआ है?”

हितेन ने जवाब दिया, “मैंने कोई पैसा उधार नहीं दिया है। शेयर बाजार में कुछ नुकसान हुआ है।”
बाद में, हितेन ने नरोत्तम की ओर इशारा करते हुए कहा, “बैंक ऑफ कराड में उनके खाते में सभी भुगतान दर्ज हैं। उनसे कहिए कि वे मिलान के लिए सभी खाते सौंप दें।” यह शायद हितेन द्वारा स्टैनचार्ट को दिए गए कुछ विश्वसनीय बयानों में से एक था। भूपेन ने हितेन की ओर मुड़कर कहा, “आपको अपने सारे खाते हमें सौंपने होंगे। अगर आपको अपने लेन-देन समझने में दिक्कत हो रही है, तो हम मध्यस्थों की मदद लेंगे। इस मामले को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझाना होगा।” जिन मध्यस्थों का ज़िक्र किया गया, वे कलकत्ता के दलाल अजय कायन और मनोज धूपेलिया थे। हितेन ने बताया कि उनके पूर्व नियोक्ता जीतू श्रॉफ उन्हें मंज़ूर हैं। उसी समय, प्रवासी होने के अपने विशिष्ट अहंकार के साथ, नासलंड ने सुझाव दिया कि बैंक ब्रिटेन से लेखाकारों को बुलाकर “नरोत्तम और हितेन के खातों की जाँच करवाए।”
हितेन ने स्वीकार किया कि उन्होंने मूल प्रमाणपत्रों के बजाय न्यूक्लियर पावर कॉर्पोरेशन बॉन्ड की फोटोकॉपी जमा की थीं। उन्होंने माना, “मैंने मूल प्रमाणपत्र कैनरा बैंक को दे दिए हैं।”

पूरी बैठक के दौरान, जेपी गांधी की भूमिका स्पष्ट नहीं थी। स्टैनचार्ट के अनुसार, भूपेन ने गांधी के नुकसान या बकाया की ज़िम्मेदारी लेने पर सहमति जताई, यह कहते हुए कि उन्हें गांधी के संपर्कों की जानकारी नहीं थी। लेकिन बाद में भूपेन ने इससे इनकार कर दिया। “मैंने बस इतना कहा था कि मैं गांधी जी के साथ खड़ा रहूंगा,” उन्होंने दावा किया।
भूपेन ने नरोत्तम, हितेन और रुइया को स्टैनचार्ट के साथ समझौता करने की सलाह दी, क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के विपरीत, स्टैनचार्ट व्यावसायिक रूप से अधिक लचीला होगा।
बैठक के अंत में, स्टैनचार्ट नरोत्तम के खातों की जांच करना चाहता था। उसने दावा किया कि भूपेन और नरोत्तम ने इसका विरोध किया। बाद में, नरोत्तम मान गए। कन्नन ने नरोत्तम से कहा, “क्या आप अपने कर्मचारियों को फोन करके खातों को तैयार रखने के लिए कह सकते हैं?” कन्नन के ऐसा कहते ही, गैंग ऑफ फाइव में से एक को फोन करते हुए देखा गया, शायद नरोत्तम के कार्यालय में। बैठक समाप्त हो गई और बाहर आराम करते हुए, हितेन ने एक हल्की-फुल्की टिप्पणी की: “अब लड़ाई बड़े और छोटे के बीच है।”
बैठक के बाद, वसीम सैफी और अय्यर स्टॉक एक्सचेंज के पास वर्दान चैंबर्स स्थित नरोत्तम के कार्यालय गए। वह बंद था। रात के ग्यारह बजे, स्टैनचार्ट का एक अधिकारी अपने अंगरक्षक के साथ वहाँ पहुँचा ताकि नरोत्तम को किताबों को चुराने की कोशिश करने पर पकड़ा जा सके। उसे कुछ भी संदिग्ध नहीं मिला। अगला दिन रविवार था। स्टैनचार्ट ने नरोत्तम के दफ्तरों पर कड़ी निगरानी रखी, लेकिन कुछ भी नहीं मिला।
कुछ दिनों बाद, नरोत्तम ने चर्चगेट स्टेशन के सामने स्थित बच्चा नर्सिंग होम में अपना नाम लिखवा लिया। उसके रिश्तेदारों

ने बताया कि वह गहरे सदमे में था और मानसिक रूप से टूटने की कगार पर था। उन्होंने कहा कि उन्हें उसकी जान का खतरा था। उन्होंने नर्सिंग होम का गलत नाम और पता दिया था और बाद में पता चला कि उन्होंने नरोत्तम की हालत को बढ़ा-चढ़ाकर बताया था। स्टैनचार्ट भूपेन और उसके गिरोह के साथ बातचीत कर रहा था, साथ ही साथ सीबीआई को कम से कम परेशानी के साथ जांच में शामिल करने के तरीके भी तलाश रहा था। सीबीआई अनिच्छुक थी। इसलिए, स्टैनचार्ट ने हर संभव प्रयास शुरू कर दिया। उसने भारत सरकार के शक्तिशाली अटॉर्नी जनरल जी रामास्वामी से संपर्क करने में कामयाबी हासिल की।
24 मई को उन्होंने सीबीआई निदेशक विजय करण से अपने विभाग और स्टैनचार्ट के अधिकारियों के बीच बैठक आयोजित करने का अनुरोध किया। करण सहमत हो गए।

25 मई को दोपहर 12:30 बजे, नॉर्थ ब्लॉक स्थित गृह मंत्रालय में करण के कार्यालय में, करण और सीबीआई के प्रमुख जांचकर्ता
के. माधवन ने स्टैनचार्ट के नासलंद और कन्नन से मुलाकात की। इस बैठक में नेशनल हाउसिंग बैंक के कार्यवाहक अध्यक्ष और संयुक्त सचिव (बैंकिंग) के. जयभारत रेड्डी भी उपस्थित थे। करण ने बैठक की शुरुआत रामास्वामी के सीबीआई से स्टैनचार्ट की समस्याओं पर ध्यान देने के अनुरोध का जिक्र करते हुए की।

“दुर्भाग्यवश, सीबीआई का अधिकार क्षेत्र केवल सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों तक ही सीमित है। इसके अलावा, उसके संसाधन भी सीमित हैं।” लेकिन उन्होंने माधवन को स्टैनचार्ट के मामले को शामिल करने के तरीके सुझाने के लिए आमंत्रित किया।

माधवन अनिच्छुक थे। तब जयभारत रेड्डी ने बात की।

उन्होंने कहा, “हो सकता है कि स्टैनचार्ट के जमाकर्ताओं का जनहित सीबीआई के हस्तक्षेप का आधार बन सके।” यह तर्क अन्य लोगों को रास नहीं आया।
करण और माधवन ने संयुक्त रूप से सुझाव दिया कि बैंक निम्नलिखित कदम उठाए: पहला, मुंबई स्थित एक आपराधिक वकील से परामर्श करके मामला तैयार करें। दूसरा, मुंबई के पुलिस आयुक्त राममूर्ति के पास औपचारिक शिकायत दर्ज कराएं और उसकी एक प्रति माधवन को भेजें। तीसरा, आरबीआई की सहायता लें। माधवन ने नैट, कन्नन और डेरिक रीड के साथ संपर्क में रहने और हर संभव सहायता करने का वादा किया।
इसी बीच, जयभारत रेड्डी ने शिकायत की कि पिछले एक साल में स्टैनचार्ट प्रबंधन से कोई भी उनसे एक बार भी नहीं मिला। वह उस मामले का जिक्र कर रहे थे जिसमें बैंक ऑफ बड़ौदा, जिसमें वह निदेशक थे, ने अपने वार्षिक खाते पास कर दिए थे, जबकि स्टैनचार्ट पर उसका 50 करोड़ रुपये का बकाया था। यह स्पष्ट नहीं था कि रेड्डी ने सीबीआई को स्टैनचार्ट का मामला सौंपने के लिए बुलाई गई बैठक में इस बात का जिक्र क्यों किया।

स्टैनचार्ट ने परमेश्वरन के साथ भी अपनी बातचीत जारी रखी। 28 मई की सुबह 10 बजे नासलंद और कन्नन परमेश्वरन के कार्यालय में पहुँचे। उन्होंने नैट के उस अनुरोध का जिक्र किया जिसमें उन्होंने बैंक ऑफ कराड और आंध्र बैंक के लेन-देन की जाँच के लिए आरबीआई की जांच में स्टैनचार्ट के अधिकारियों को शामिल करने की बात कही थी।

परमेश्वरन ने कहा, "यह बुद्धिमानी नहीं होगी।" उनका मानना था कि आरबीआई जैसे नियामक प्राधिकरण का किसी एक बैंक के अधिकारियों के साथ जुड़ना बदनामी को बढ़ावा देगा। आरबीआई पर पक्षपात करने का आरोप लगेगा, और वह भी किसी विदेशी बैंक के प्रति।

उन्होंने स्टैनचार्ट के दोनों अधिकारियों से पूछा, "आप मुझे संदिग्ध लेन-देन की सूची क्यों नहीं देते?" उन्होंने आगे कहा, "मैं कराड बैंक और अन्य बैंकों से संबंधित लेन-देन के भुगतान किए गए चेक और वाउचर एकत्र करूँगा।" कन्नन और नासलंद संतुष्ट हो गए। वे यह जानने के लिए भी उत्सुक थे कि पैसा कहाँ गया। इस पर परमेश्वरन की टिप्पणी बहुत कुछ कहती है।

उन्होंने कहा, "कुछ पैसा अन्य बैंकों द्वारा पिछले लेन-देन को निपटाने या पुनर्भुगतान के लिए इस्तेमाल किया गया है।" बाद में, हितेन ने स्टैनचार्ट के अधिकारियों से यही बात अलग लहजे में कही। लेकिन अंततः इस मामले की आगे जांच नहीं की गई।

स्टैनचार्ट के अधिकारियों ने पूछा, "क्या कैनफिना लेनदेन के संबंध में कुछ किया जा रहा है?"

परमेश्वरन ने कहा, "मैं केनरा बैंक से बात करूंगा और संयुक्त कार्रवाई शुरू करूंगा।" उन्होंने बार-बार जोर देकर कहा कि वे इस पूरे मामले की तह तक जाने के लिए उत्सुक हैं। और उनकी एक सलाह थी: "अपने सभी दावों को दर्ज कराएं और उन पर कार्रवाई करें।"

स्टैनचार्ट सीबीआई, आरबीआई और गैंग ऑफ फाइव के साथ बातचीत कर रहा था, उसी दौरान प्रतिभूति घोटाले के प्रमुख व्यक्ति हितेन के साथ उसका एक अजीब रिश्ता बन रहा था। ऊपरी तौर पर ऐसा प्रतीत होता था कि
घोटाले के उजागर होने के बाद दोनों के बीच संबंध काफी सौहार्दपूर्ण थे। 11 मई को हितेन ने स्टैनचार्ट को लिखा, जिसने प्रतिभूतियों में अपनी कमी का आकलन 1253 करोड़ रुपये किया था। हितेन के पत्र के लहजे से संकेत मिलता है कि वे सहयोग करने के मूड में थे:
जब तक आप सटीक स्थिति का पता लगाने के लिए सुलह प्रक्रिया जारी रखते हैं और जब तक मैं आपको ऊपर बताई गई कमियों के लिए भौतिक स्टॉक और/या बैंक रसीदें देने का प्रयास करता हूं, तब तक मैंने आपको अनुलग्नक में सूचीबद्ध स्टॉक, शेयर और डिबेंचर आदि सौंप दिए हैं। मैं आपको अतिरिक्त शेयर, स्टॉक और डिबेंचर सौंपूंगा, जिन्हें अलग से सूचीबद्ध किया जाएगा... ऊपर बताई गई कमी और/या आगे पता चलने वाली कमियों के लिए सुरक्षा के तौर पर...
मैं आपको अंतिम सुलह पूरी होने पर किसी भी नुकसान से बचाने के लिए भी सहमत हूं... मैं बैंक द्वारा उपरोक्त को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक अन्य दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने के लिए भी सहमत और पुष्टि करता हूं।
हालांकि, पत्र का समझौतावादी लहजा पूरी तरह से भ्रामक है। हितेन ने 27 मई को स्टैनचार्ट को फिर से पत्र लिखा,
जिसमें उन्होंने न केवल अपने पहले के बयानों को वापस लिया, बल्कि स्टैनचार्ट पर धमकी, दबाव और

अन्य कई आरोप भी लगाए। उनके अनुसार, 18 मई को रवि अय्यर ने उन्हें 11 मई की तारीख वाला पत्र लिखने/हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया।
यहाँ उनकी अपनी ज़ुबान में लिखी गई पूरी कहानी है, जो उनके 27 मई के पत्र से ली गई है, जिसमें सभी टाइपिंग की गलतियाँ भी शामिल हैं:
श्री अय्यर ने सुलह संबंधी समस्याओं के सिलसिले में मुझे अपने कार्यालय में खाली लेटरहेड के साथ उपस्थित होने पर जोर दिया। तदनुसार, 18-5-92 को मैं उनके कार्यालय में था, जब उन्होंने मेरे कुछ खाली लेटरहेड ले लिए और 11-5-92 की तारीख वाला पत्र तथा 12-5-92 और 13-5-92 की तारीख वाले दो अन्य पत्र आपके कार्यालय के एक अधिकारी द्वारा तैयार और टाइप करवाकर मुझे हस्ताक्षर के लिए सौंप दिए। मैं उन पर हस्ताक्षर करने को तैयार नहीं था क्योंकि उनमें कई गलत बयान थे, लेकिन मुझे धमकी दी गई कि यदि मैंने उन पर हस्ताक्षर नहीं किए, तो स्टैंडर्ड चार्टर्ड मेरे खिलाफ आपराधिक मुकदमा चलाकर मुझे गिरफ्तार करवा देगा और मुझे बर्बाद कर देगा। इन परिस्थितियों में, मैं अकेला था, इसलिए धमकी, दबाव और जबरदस्ती के कारण मुझे उक्त पत्रों पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश होना पड़ा। इसी बीच,
9/11 मई को आपराधिक अभियोजन, गिरफ्तारी और उत्पीड़न की धमकी देकर, आपके श्री अय्यर ने मुझे जबरन शेयरों और स्टॉक का एक गट्ठा आपको सौंपने के लिए मजबूर किया, जिसे उन्होंने जल्द से जल्द मुझे लौटाने का वादा किया था। उक्त पत्र में मद 4 में 45 करोड़ रुपये मूल्य की प्रतिभूतियों का उल्लेख है, जो आपके द्वारा प्राप्त बीआर (बॉर्डर स्टेटमेंट) में दर्ज हैं, लेकिन आपके रिकॉर्ड से कथित तौर पर गायब हैं।

हितेन ने आगे दावा किया कि उन्होंने केवल स्टैनचार्ट के ब्रोकर के रूप में काम किया, और उसे खरीदारों और विक्रेताओं के नामों की जानकारी दी। कई लेन-देनों में, अभय नरोत्तम ने मेट्रो बैंक और बैंक ऑफ कराड के ब्रोकर के रूप में काम किया था। स्टैनचार्ट ने इन दोनों बैंकों के बीआर (बॉर्डर स्टेटमेंट) स्वीकार किए और सीधे उन्हें भुगतान किया। हितेन लिखते हैं:
मैंने केवल आपके ब्रोकर के रूप में काम किया। इसलिए इन लेन-देनों और/या आपके द्वारा दावा की गई कथित कमी के संबंध में भुगतान के लिए मेरी जवाबदेही या जिम्मेदारी का कोई सवाल ही नहीं उठता। मुझे किसी भी प्रकार के शेयर या डिबेंचर गिरवी रखने की कोई बाध्यता नहीं थी… कृपया दिनांक 11/5/92, 12/5/92 और 13/5/92 के उक्त पत्रों को रद्द माना जाए… कृपया उन शेयरों और प्रतिभूतियों को भी वापस कर दें जिन्हें आपने गलत तरीके से रोक रखा है…
इसके बाद स्टैनचार्ट ने हितेन के अनुसार एक घिनौनी चाल चली। उन्होंने स्टैनचार्ट को चार चेक दिए थे – दो दिसंबर 1991 के, एक फरवरी का और एक मार्च 1992 का। बैंक ने उन्हें मई में प्रस्तुत किया,
हितेन के साथ विवाद के चरम पर, और चेक बाउंस हो गए। रविवार, 31 मई को, स्टैनचार्ट ने हितेन को अपने कार्यालय में बातचीत के लिए बुलाया और उन्हें एक कानूनी नोटिस सौंपा जिसमें उनके खिलाफ मुकदमा चलाने की मांग की गई थी। हितेन कहते हैं कि वे स्तब्ध रह गए।

8 और 15 जून के अपने पत्रों में, वे दावा करते हैं कि उन्होंने बैंक से बार-बार अनुरोध किया था कि विभिन्न समायोजनों के लंबित

रहने तक चेक रोक दिए जाएं। चेक प्रस्तुत नहीं किए जाने चाहिए थे। दरअसल,
बैंक को 24 दिसंबर की तारीख वाले आखिरी चेक को जमा करने में पाँच महीने क्यों लगे? हितेन ने लिखा, "इतनी बड़ी रकम के चेक को जमा करने में इतनी लंबी देरी का कोई स्पष्टीकरण नहीं है, और वास्तव में इसका कोई स्पष्टीकरण हो ही नहीं सकता।" हितेन को बाद में इस मामले में दोषी ठहराया गया।
अजीब बात यह है कि पत्रों की इस जंग ने बैंक अधिकारियों और हितेन को एक साथ बैठने और
कॉफी की चुस्कियाँ लेते हुए पैसे के लेन-देन पर चर्चा करने से नहीं रोका। 1 जून की दोपहर 4:30 बजे, हितेन स्टैनचार्ट के कुछ अधिकारियों से मिले, जिनमें सैफी भी शामिल थे, जिन्होंने कार्यवाही का विवरण लिखा। हितेन ने कई महत्वपूर्ण खुलासे किए, जिन्हें बाद में सीबीआई को सौंप दिया गया। उदाहरण के लिए, उन्होंने कहा कि भूपेन, नरोत्तम और गांधी एक समूह के रूप में मिलकर काम कर रहे थे, जिसके कारण स्टैनचार्ट में इतना बड़ा घोटाला हुआ। उन्होंने इस समस्या की जड़ 1991 के मध्य तक बताई - लगभग संसद चुनावों के समय। प्रश्न-उत्तर सत्र कुछ इस प्रकार चला:

“जेपी गांधी ने मुझसे स्टैनचार्ट को यूनिट बेचने के लिए संपर्क किया था। बैंक ऑफ कराड बीआर उपलब्ध कराएगा।”

“लेकिन पैसा कहाँ गया?” स्टैनचार्ट के अधिकारियों ने पूछा। हितेन के पास पूरी बात नहीं थी।

“इस समूह द्वारा बैंक ऑफ इंडिया या इलाहाबाद बैंक में पैदा किए गए घाटे को भरने के लिए पैसे की ज़रूरत थी, जिसके पूर्व अध्यक्ष भूपेन दलाल के करीबी माने जाते थे।”
क्या पैसा केवल स्टैनचार्ट से ही गया?

“यहां तक कि एलआईसी (जीवन बीमा निगम) म्यूचुअल फंड के पोर्टफोलियो में भी कमी हो सकती है।”
हितेन किसके साथ लेन-देन कर रहे थे?

“अन्य बैंकों के साथ सभी लेन-देन में अभय नरोत्तम ब्रोकर थे। अक्टूबर 1991 तक उनके पास भूपेन दलाल की पावर ऑफ अटॉर्नी थी। उन्हें बिचौलिए के रूप में काम करने के लिए कमीशन दिया गया होगा।”
लाभार्थी कौन थे?

“जेपी गांधी इस पूरे मामले के पीछे का दिमाग थे। लेकिन उन्होंने पैसे का इस्तेमाल नहीं किया होगा। भूपेन दलाल और तेजू रुइया को इसका फायदा मिला। भूपेन बिड़ला जैसे कई व्यापारिक घरानों से जुड़े थे, लेकिन तेजू रुइया उनके सबसे करीबी थे। जेपी गांधी ने मुझे गांधी की अनुपस्थिति में कराड के सभी सौदों के लिए रुइया से संपर्क करने को कहा था।”
हितेन ने स्टैनचार्ट को तेजू रुइया की खर्चीली जीवनशैली के बारे में बताया। “उन्होंने हाल ही में अपने बेटे की शादी पंद्रह दिनों तक धूमधाम से मनाई।”
क्या कुछ पैसा विदेश भेजा गया है?

हितेन अब अंदाजे से ही बात कर रहे थे। “भूपेन के कई एनआरआई संपर्क हैं, जिनकी वजह से उनके लिए पैसा विदेश भेजना आसान हो गया होगा।” हितेन ने यह भी दावा किया कि कैनफिना और स्टैनचार्ट में हुई कमियों के अलावा, इस घोटाले में उनका कोई और हाथ नहीं है।
सबसे अहम सवाल, यानी पैसा कहाँ गया, इस पर हितेन का जवाब बेहद दिलचस्प था:
“जेपी गांधी और अन्य लोगों ने लगभग 600 करोड़ रुपये इस्तेमाल किए होंगे – उन्हें खुद नहीं पता कैसे। 400-450 करोड़ रुपये अन्य बैंकों के घाटे की भरपाई में इस्तेमाल किए गए हैं और बाकी, लगभग 300 करोड़ रुपये, मेरे खाते में हैं।” स्टैनचार्ट ने हितेन से पहले ही 350 करोड़ रुपये की प्रतिभूतियाँ ले ली थीं। हितेन ने अपने पत्र में दावा किया है कि ये प्रतिभूतियाँ उन्हें वापस की जानी थीं।
उस दोपहर स्टैनचार्ट के अधिकारियों की मौजूदगी में हितेन पश्चाताप कर रहे थे। क्या उन्हें एहसास था कि उन्होंने जो किया वह अक्षम्य था? “हाँ”, हितेन ने कहा। उनकी धूर्तता को जानते हुए स्टैनचार्ट के अधिकारी संतुष्ट नहीं हुए।

10 जून को हितेन को स्टैनचार्ट बुलाया गया और स्टैनचार्ट के ग्रुप सिक्योरिटी के एचएच गैरिक और चोंग वांग लियोंग ने उनसे पूछताछ की। शाम 5 बजे अस्थायी सुरक्षा कार्यालय में साक्षात्कार शुरू हुआ और 6:15 बजे समाप्त हुआ। स्टैनचार्ट अभी भी अंधेरे में हाथ-पैर मार रहा था। उस बैठक के विवरण से सब कुछ स्पष्ट हो जाता है। बैंक अभी भी "संपत्ति का पता लगाने के लिए शुरुआती बिंदु निर्धारित करने", हितेन के बैंक के साथ संबंधों

को स्थापित करने और कर्मचारियों की मिलीभगत और संभावित रिश्वतखोरी के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था।

बैठक का विवरण देने वाले स्टैनचार्ट के आंतरिक दस्तावेज़ में लिखा है, "हितेन दलाल एक बेहद साधारण व्यक्ति हैं और निश्चित रूप से ऐसे व्यक्ति नहीं हैं जिन्हें आमतौर पर एक सफल ब्रोकर से जोड़ा जा सके।" हितेन पूरे साक्षात्कार के दौरान टालमटोल करते रहे। जब भी बैंक अधिकारियों ने उन्हें विशिष्ट लेन-देन के बारे में फंसाने की कोशिश की, तो उनका एक ही रटा-रटाया जवाब होता था: "मुझे रिकॉर्ड की जांच करनी होगी, जिसका मिलान मैं और मेरी पत्नी कर रहे हैं। इस प्रक्रिया में लगभग एक सप्ताह और लगेगा।" उन्होंने जो बात नहीं बताई, और जिसे स्टैनचार्ट द्वारा नियुक्त जासूसों की एक टीम ने पता लगाया, वह यह थी कि हितेन और उनकी पत्नी अपने खाते भी जला रहे थे।
हितेन दस साल से अधिक समय से स्टैनचार्ट के साथ लेन-देन कर रहे थे। उन्होंने पुष्टि की कि इतने वर्षों में उन्होंने अपने लिए अच्छा ही किया था। स्टैनचार्ट से उनका संबंध तब शुरू हुआ जब वे वी.बी. देसाई के साथ थे और 1988 में जब उन्होंने अपना खुद का व्यवसाय शुरू किया तब भी यह संबंध जारी रहा। साक्षात्कार का बाकी हिस्सा भी काफी रोचक था।
बैंक में उनका संपर्क किनसे था?
केवल डीलरों से।
क्या स्टैनचार्ट ने प्रतिभूतियाँ प्राप्त करने से पहले ही पैसा जारी कर दिया था?
हाँ।

ऐसा कितनी बार हुआ?
ज़्यादा बार नहीं।
क्या बैंक हितेन की ओर से अपने बहीखातों में शेयर रखता था? हाँ।
क्या व्यवस्था थी?
हितेन मई में समाप्त होने वाले वर्ष के लिए 15% यील्ड पर सहमत हुए थे। लेकिन फिर बाज़ार स्थिर हो गया और उन्होंने स्टैनचार्ट को बताया कि आने वाले वर्ष के लिए कोई निश्चित यील्ड नहीं होगी। क्या उन्होंने इस बारे में वरिष्ठ प्रबंधन में किसी से बात की, जैसे कि अध्यक्ष पेसी नट या कार्यकारी निदेशक आर. कन्नन?
वे उनसे वार्षिक स्टैनचार्ट ब्रोकर्स पार्टी के अलावा कभी नहीं मिले थे।
हितेन ने स्टैनचार्ट के पूछताछकर्ताओं को यह भी बताया कि उन्होंने दो मौकों पर बैंक को संकट से उबारा था, जब बैंक के पास लॉन्ग पोजीशन थी और उनके पास शॉर्ट पोजीशन थी।
उन्होंने स्टैनचार्ट की मदद क्यों की?
हितेन कोई कारण नहीं बता सके।
क्या बैंक के कर्मचारियों या डीलरों के साथ उनके कोई सामाजिक संपर्क थे?
वार्षिक ब्रोकर्स पार्टी के अलावा कोई नहीं।
क्या उन्होंने कभी बैंक को अनुकूल दरें या जानकारी दी थी? नहीं।

हितेन ने कहा, "मुझे दूसरों ने धोखा दिया और मेरा इस्तेमाल किया।"

स्टैनचार्ट के पूछताछकर्ताओं ने पूछा, "आपका क्या मतलब है?"

हितेन ने कहा, "मैंने बैंक ऑफ कराड... जेपी गांधी और अभय नरोत्तम पर भरोसा किया था। मुझे कभी एहसास नहीं हुआ कि वे प्रतिभूतियां वितरित नहीं करेंगे। बैंक के डीलर जनवरी से ही डिलीवरी के लिए दबाव डाल रहे थे।"

"क्या आप सामान्य परिस्थितियों में डिलीवरी कर पाते?"

हितेन ने जोर देकर कहा, "मैं मई तक, जो कि सुलह का सामान्य महीना है, निश्चित रूप से शेयर वापस ले लेता।"
स्टैनचार्ट की पूछताछ के दौरान हितेन दार्शनिक अंदाज़ में आ गए। स्टैनचार्ट के मिनट्स में लिखा है, "ऐसा लग रहा था जैसे उन्होंने अपनी किस्मत मान ली हो। उनका कहना है कि वे इस समस्या से भागेंगे नहीं।"
अब वे क्या करेंगे?

उन्होंने कहा, "मैं ब्रोकर के तौर पर काम करना जारी रखना चाहूंगा।" फिर कुछ देर रुककर उन्होंने आगे कहा, "हालांकि मुझे पता है कि अब कोई मुझ पर भरोसा नहीं करेगा।"
2 जून को शाम 5 बजे, स्टैनचार्ट के अधिकारी एसईबीआई के अध्यक्ष जी.वी. रामकृष्ण से मिलने गए, जिन्होंने हर संभव मदद का वादा किया। उनका खास सुझाव था: "इंटरपोल की मदद लें।" जाहिर है, बहुत से लोग इस बात से आश्वस्त थे कि पैसा विदेश में छिपाया गया है। रामकृष्ण, जो उस समय तिरसठ वर्ष के थे और जिन्हें घर बैठे ही

जांच-पड़ताल करने का शौक था, उनके पास कोई पुख्ता जानकारी नहीं थी, लेकिन उनका संदेह गहरा था।
स्टैनचार्ट ने समझौते के लिए कई और प्रयास किए। शुरुआती बातचीत में शामिल लोगों में से एक एच.टी. पारेख थे, जो आईसीआईसीआई के पूर्व अध्यक्ष और वित्तीय क्षेत्र के जनक माने जाते थे। यह विचित्र है कि भूपेन दलाल और स्टैनचार्ट दोनों एक 81 वर्षीय व्यक्ति के दरवाजे पर मदद के लिए अलग-अलग कतार में खड़े थे, जिसका धोखाधड़ी से कोई लेना-देना नहीं था।
मई के मध्य तक, संदेह की सुई भूपेन के सहयोगियों, नरोत्तम, गांधी और रुइया की ओर इशारा कर रही थी। भूपेन ने अपना नाम साफ़ करने के लिए फ़ोन करना शुरू कर दिया। वह वित्त मंत्री मनमोहन सिंह और वाणिज्य सचिव मोंटेक सिंह अहलूवालिया से मिलने में मदद के लिए अपने सभी परिचितों को बेतहाशा फ़ोन कर रहे थे। उन्होंने जिन लोगों को फ़ोन किया उनमें से एक देव आहूजा थे, जो पहले सिटीबैंक में थे और बाद में उन्होंने 20 वीं सेंचुरी फाइनेंस नाम से एक वित्तीय सेवा कंपनी शुरू की थी। आहूजा ने भूपेन को एचडीएफसी के प्रबंध निदेशक दीपक पारेख से संपर्क करने का सुझाव दिया। भूपेन ने रविवार को दीपक को फ़ोन किया। दीपक कोई भी आश्वासन देने को तैयार नहीं थे। भूपेन हताश थे।

भूपेन ने कहा, "कोई भी मुझसे मिलने को तैयार नहीं है। क्या आप दिल्ली में किसी से मेरी मुलाक़ात करवा सकते हैं?"
दीपक ने चतुराई से उन्हें टाल दिया। उन्होंने कहा, "मैं एक छोटा आदमी हूँ। मैं आपकी किसी से मुलाक़ात नहीं करवा सकता।" भूपेन कोशिश करते रहे।

उन्होंने पूछा, "क्या एचटी पारेख मदद कर सकते हैं?"

"आप उनसे खुद क्यों नहीं बात करते?" दीपक लौट आया।
भूपेन सीबीआई की आसन्न गिरफ्तारी से बुरी तरह डरा हुआ था। लेकिन उसकी एक और बड़ी चिंता थी। जैसे-जैसे स्टैनचार्ट घोटाले के कुछ अधूरे खुलासे सामने आने लगे, सेबी ने बीएसई पर घोटाले में शामिल ब्रोकरों को निलंबित करने का दबाव बढ़ा दिया। भूपेन भी उनमें से एक था, जो बीसीडी और रामदास एंड कंपनी, दो कंपनियों के माध्यम से काम कर रहा था। सीबीआई की निगरानी में, भूपेन बीएसई द्वारा निलंबन को रोकने के लिए बेताब था। भूपेन को पता नहीं था कि नैट पहले ही एचटी पारेख से मिल चुका था।
मई के तीसरे सप्ताह में, नैट को आरबीआई गवर्नर का फोन आया। वह उनसे अकेले मिलने गया। यह अजीब था क्योंकि बाकी सभी मुलाकातों में वह स्टैनचार्ट के बोर्ड के निदेशक डेविड ब्रूघम के साथ गया था। कुछ दिनों बाद, ब्रूघम और नैट फिर से गवर्नर के कार्यालय में मिले। गवर्नर ने कहा, "एचटी पारेख से बात करो। शायद उनके पास तुम्हारे लिए कोई समाधान हो।" राज्यपाल ने ऐसा सुझाव क्यों दिया?
हरिदास मुंद्रा घोटाले के दौरान एलआईसी के सलाहकार रहे स्वर्गीय एच.टी. पारेख वित्तीय बाज़ार की गहरी समझ रखते थे, सभी बाज़ारियों से परिचित थे और उनका बहुत सम्मान करते थे। व्यावहारिक और ईमानदार माने जाने वाले और दबाव से अप्रभावित रहने वाले पारेख को शायद कोई समाधान नज़र आ गया था। उनका इसमें कोई स्वार्थ नहीं था और वे वित्त मंत्री को अच्छी तरह जानते थे। घोटाले से पहले, पारेख हर्षद से एक चैरिटी संस्था में दान देने

के लिए मिले थे। हर्षद अपनी कारों के बारे में बात करने में ज़्यादा रुचि रखते थे।
एच.टी. पारेख ने अपने करियर की शुरुआत हरकिस्सोंदास लक्ष्मीदास से की थी, जो बॉम्बे के सबसे बड़े ब्रोकरों में से एक थे और भूपेन दलाल के पिता के स्वामित्व वाली बी.सी.डी. के समान ही थे, जिनके लिए पारेख के मन में बहुत सम्मान था। "वे शेयर बाज़ार के बादशाह थे," वे याद करते हैं। हालांकि, पारेख भूपेन के उतने करीब नहीं थे। "वे अलग थे।" “वह बहुत चालाक है”, पारेख ने बस इतना ही कहा।
मई के तीसरे सप्ताह में, पारेख ने नैट से मिलने की सहमति दी क्योंकि वह स्टैनचार्ट की संलिप्तता के बारे में जानना चाहता था। नैट के सवालों के जवाबों से वह कुछ खास प्रभावित नहीं हुआ। नैट ने 300 करोड़ रुपये की प्रतिभूतियों का जिक्र किया था जो स्टैनचार्ट ने “उनसे” (यानी हितेन से) जब्त की थीं। पारेख ने नैट से कहा, “भूपेन भी इसमें शामिल है। कुछ पैसा देश से बाहर गया होगा। आपको 300 करोड़ रुपये तो मिल गए हैं, लेकिन शिकायत दर्ज कराए बिना आपको और 300 करोड़ रुपये नहीं मिलेंगे।” (नैट ने इसकी सूचना स्टैनचार्ट में अपने वरिष्ठ सहयोगियों को दी।) लेकिन पारेख ने ये सब कैसे कहा? क्या उन्होंने किसी समय भूपेन से रकम चुकाने को कहा था? और उन्हें ये आंकड़ा कैसे पता चला?
अचानक, देव आहूजा समेत कई असंबंधित लोग 400 करोड़ रुपये की रकम का जिक्र कर रहे थे। स्टैनचार्ट के अधिकारियों ने वसूली की अपनी अनगिनत गणनाओं में इसे दर्ज किया था। कम से कम दो दलालों ने इस आंकड़े के बारे में सुना था। संक्षेप में, भूपेन की जिम्मेदारी 400 करोड़ रुपये आंकी जा रही थी, जबकि इसका कोई आधार

नहीं था। लेकिन पारेख ने अपनी पहली मुलाकात में भूपेन से वास्तव में क्या कहा था?

भूपेन ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "मैं निर्दोष हूं। मैंने किसी भी दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं।" पारेख को लगा कि सौदा हो सकता है। उन्होंने भूपेन से कहा, "पहले कुछ पैसे दे दो।" अगले दिन जब भूपेन ने उन्हें फिर से फोन किया, तो पारेख ने कहा, "मैं चार्टर्ड बैंक के अधिकारियों के साथ आपसे मिलना चाहता हूं।" बाद में, अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए भूपेन ने स्टैनचार्ट मामले का ब्यौरा देते हुए एक संक्षिप्त नोट भेजा। दूसरी ओर, नैट ने एफआईआर दर्ज कराने की पारेख की सलाह को ध्यान में रखते हुए, उन पर मध्यस्थता करने का दबाव बनाया। नैट से मुलाकात के तीन दिन बाद, पारेख त्रिपक्षीय बैठक में बैठने के लिए सहमत हो गए।
कुछ दिनों बाद, ब्रूघम, पेसी नैट, भूपेन और पारेख समझौते के लिए द चैंबर्स में एकत्रित हुए। भूपेन से जुड़ी सभी बैठकों की तरह, यह बैठक भी बेनतीजा रही। उन्होंने बार-बार कहा, "मेरे पास पैसे नहीं हैं। मैं इसमें शामिल नहीं हूं।" भूपेन ने पहले पारेख से समझौते की बात की होगी, लेकिन अब स्टैनचार्ट अधिकारियों के साथ औपचारिक बैठक में वे मुकर गए। वे पूरी तरह चुप हो गए। कन्नन कहते हैं, "ब्रूघम समझौते के लिए बहुत उत्सुक थे। अगर कोई समझौता होने की संभावना होती, तो वे उसे तुरंत स्वीकार कर लेते।" लेकिन भूपेन जाहिर तौर पर झुकने को तैयार नहीं थे। लेकिन बातचीत यहीं खत्म नहीं हुई। ब्रूघम ने एक और प्रयास किया।

लगभग 5 जून को स्टैनचार्ट को आभास हुआ कि सीबीआई शायद इस घोटाले की जांच करेगी। नैट, ब्रूघम, भूपेन और कन्नन ओबेरॉय होटल के

बेल्वेडेयर क्लब में आखिरी बार मिले। भारत में ब्रूघम की यह आखिरी बैठक थी, और पहली बैठक थी जिसका संचालन उन्होंने स्वयं किया, एक दर्शक की अपनी पिछली भूमिका को छोड़कर।
उन्होंने बैठक की शुरुआत एक खतरनाक घोषणा के साथ की: "अगर अगले चौबीस घंटों के भीतर समझौता नहीं हुआ, तो हम सीबीआई के पास जाएंगे।" स्टैनचार्ट ने अपना दांव खेल दिया था। आखिरी दांव। एक ऐसा दांव जो भूपेन को हिला सकता था। कुछ घंटे नहीं, बल्कि शायद हफ्तों जेल में बिताने की बदनामी... सीबीआई की कड़ी पूछताछ... लेकिन भूपेन टस से मस नहीं हुए। ब्रूघम ने अपना रुख जारी रखा। उन्होंने भूपेन की आंखों में सीधे देखते हुए कहा, "बाकी लोग आप पर उंगली उठा रहे हैं।" “आपको वसूली की जिम्मेदारी लेनी होगी,” उन्होंने कहा।
भूपेन ने उनकी बात अनसुनी कर दी। उन्होंने पलटवार किया, जो स्टैनचार्ट के साथ तीन सप्ताह की बातचीत के दौरान और उसके बाद भी उनकी हमेशा की रणनीति थी। उन्होंने स्टैनचार्ट पर वहीं हमला किया जहां उसे सबसे ज्यादा चोट पहुंचती थी—उनकी अपनी नियंत्रण और संतुलन प्रणाली की कमी। उन्होंने उन विशिष्ट लेन-देनों की ओर इशारा किया जहां स्टैनचार्ट की कमजोरियां साफ दिख रही थीं।

“चलिए अब विशिष्ट लेन-देनों की बात नहीं करते,” कन्नन ने कहा। “चलिए पैसे की बात करते हैं।” भूपेन ने इस बात को टाल दिया। ब्रॉघम ने हार मान ली। कुल मिलाकर, बैठक लगभग पंद्रह मिनट तक चली। भूपेन का रुख़ रत्ती भर भी नहीं बदला था। स्टैनचार्ट के पास अब कोई चारा नहीं बचा था। उसे सीबीआई में शिकायत दर्ज करानी ही होगी। थोड़ी देर बाद, ब्रूघम अपना सामान पैक करने के लिए चले गए और भूपेन घर की ओर चल दिए।

लगभग उसी समय, कन्नन की इस घोटाले के एक प्रमुख व्यक्ति से एक महत्वपूर्ण बातचीत हुई। उस व्यक्ति ने कहा, "शायद भूपेन आखिरकार बेगुनाह साबित हो गए हैं।" वह भूपेन के निर्दोष होने के दृढ़ और लगातार रुख़ से प्रभावित थे। कन्नन को बताया गया, "मैंने फैसला कर लिया है कि जो भी होगा, मैं उसकी ज़िम्मेदारी लूंगा।" कन्नन ने पूछा, "आप क्या करेंगे?"

कन्नन ने कहा, "हम यहां धोखाधड़ी की बात कर रहे हैं और मैं इसकी ज़िम्मेदारी नहीं लेने वाला। अगर यह गलती होती तो मैं इसे स्वीकार कर लेता। लेकिन इस समस्या का 80% हिस्सा सौदेबाजी कक्ष की धोखाधड़ी है और बाकी पर्दे के पीछे की मिलीभगत है।" मुझे पता है कि मैं समस्या का हिस्सा नहीं रहा हूँ, लेकिन कम से कम समाधान का हिस्सा तो बन सकता हूँ।”

“हाँ, बैंक को इसमें आपकी अहमियत नज़र आती है।” तभी अचानक कन्नन को एक लालच दिया गया। “आप यहाँ अपना खुद का व्यवसाय क्यों नहीं शुरू कर लेते?” उस व्यक्ति ने पूछा। “शंकरन की तरह।”
शंकरन की तरह? वही आर शंकरन जो स्टैनचार्ट में मर्चेंट बैंकिंग प्रमुख थे और जिनकी जगह कन्नन ने बाद में ली थी? जो स्टैनचार्ट में आने से पहले भूपेन की कंपनी चंपकलाल इन्वेस्टमेंट एंड फाइनेंस में काम करते थे? वही शंकरन जो आधी रात को लोगों को फोन करके भूपेन की बेगुनाही के बारे में घंटों भाषण देते थे? शंकरन कन्नन के दूर के चचेरे भाई भी थे, लेकिन दोनों के बीच गहरी दोस्ती नहीं थी। कन्नन उत्सुक हो गए।

“मैंने खुद का अच्छी तरह विश्लेषण किया है। मैं नौकरी में तो अच्छा हो सकता हूँ, लेकिन अपना खुद का व्यवसाय चलाने में नहीं,” उन्होंने समझाया। “मैं दूसरों से थोड़ा ज़्यादा उद्यमी हूँ, लेकिन मैं अपना खुद का व्यवसाय चलाना बिल्कुल नहीं चाहता।” मैं यहाँ कुछ और महीनों तक रहना चाहता हूँ, कोई हल निकालूँगा और फिर चला जाऊँगा।
हैरानी की बात यह थी कि दूसरे व्यक्ति ने हार मानने से इनकार कर दिया। उसने शंकरन की सफलता का बखान किया। और फिर उसने चौंकाने वाली बात कही। "अगर आप भूपेन से पूछेंगे तो वह आपको 10-15 लाख रुपये दे सकता है।" उन्होंने बहुत से लोगों की मदद की है।” कन्नन का मुंह खुला रह गया। अगले ही दिन स्टैनचार्ट किसी के खिलाफ मुकदमा दायर करने जा रहा था और यहाँ उसे उसी व्यक्ति से अपना खुद का उद्यम शुरू करने के लिए पैसे उधार लेने का लालच दिया जा रहा था।
अगले दिन स्टैनचार्ट के अधिकारी माधवन के कार्यालय में थे। लेकिन हैरानी की बात यह थी कि एफआईआर पूरे दो हफ्ते बाद,
20 तारीख को दर्ज की गई। इसके दो कारण थे। पहला, सीमित संसाधनों के कारण सीबीआई अभी भी किसी विदेशी बैंक का मामला लेने को लेकर आश्वस्त नहीं थी, खासकर ऐसे बैंक का जो सब कुछ बताने को तैयार नहीं था। दूसरा, माधवन की कानूनी पृष्ठभूमि से प्रभावित सतर्क कार्यशैली थी।
उस दो हफ्ते के दौरान, स्टैनचार्ट के अधिकारी कम से कम तीन बार माधवन के कार्यालय गए, जहाँ उस तेजतर्रार जासूस ने एफआईआर में हर छोटी-बड़ी बात को बारीकी से जांचा। हर बार सुधार के बाद, माधवन स्टैनचार्ट से एफआईआर का मसौदा वापस लेने को कहते। वह नहीं चाहते थे कि अदालत को पता चले कि सीबीआई शिकायतकर्ता के

साथ मिलीभगत कर रही है। क्योंकि इससे स्टैनचार्ट का मामला कमजोर हो जाता। कुछ बैठकों के बाद, माधवन ने सीबीआई अधिकारी एसजी गाधे को बुलाया और फिर से कुछ संशोधन किए। कुछ दिनों बाद, अपने प्रचार-प्रसार के प्रति सजग रवैये के कारण सीबीआई के भीतर ही बढ़ते अलगाव का सामना कर रहे माधवन ने एक और बैठक बुलाई। उसमें उन्होंने गाधे के साथ-साथ एक और सीबीआई अधिकारी, संभरिया को भी शामिल किया। अंततः, 20 जून की सुबह 9:30 बजे,
एफआईआर दर्ज की गई।

अगले कुछ दिनों में, तेजू रुइया को छोड़कर, गैंग ऑफ फाइव और उसके सभी साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया। रुइया ने सीबीआई की पूछताछ से बचने के लिए संदिग्ध रूप से बॉम्बे अस्पताल में शरण ली। गिरफ्तार किए गए सभी लोगों को एक महीने बाद जमानत पर रिहा कर दिया गया। लेकिन यह सब एक दिखावा था। स्टैनचार्ट अभी भी अंधेरे में भटक रहा था और अपनी खराब जनसंपर्क रणनीति से खुद को नुकसान पहुंचा रहा था। सीबीआई लेन-देन के जाल में उलझकर अपना रास्ता भटकती हुई प्रतीत हो रही थी। और गैंग ऑफ फाइव की स्थिति और भी मजबूत होती जा रही थी। ऐसा लग रहा था मानो मामले को दबाने की कोशिश शुरू हो गई हो।

इसके बाद, स्टैनचार्ट ने कानूनी कार्रवाई शुरू कर दी। उसने चार बाउंस चेक के लिए हितेन दलाल पर मुकदमा किया। उसने न्यूयॉर्क में सिटीबैंक पर 117 करोड़ रुपये का मुकदमा भी किया और मेलबर्न और सैन फ्रांसिस्को में क्रमशः एएनजेड ग्रिंडलेज बैंक और बैंकएम पर लगभग 335 करोड़ रुपये का मुकदमा करने की योजना बनाई। कुल मिलाकर, स्टैनचार्ट ने 990 करोड़ रुपये की वसूली के लिए दस

बैंकों और म्यूचुअल फंडों के खिलाफ चौबीस वसूली दावे दायर किए।
जिन बैंकों पर मुकदमा चलाया गया उनमें एनएचबी, आंध्र बैंक, आंध्र बैंक फाइनेंस सर्विसेज, कैनबैंक म्यूचुअल फंड, कैनफिना, स्टेट बैंक ऑफ पटियाला और करूर वैश्य बैंक शामिल थे।

इनमें से अधिकांश प्रयास अनिश्चित थे।

सुपरबैंकर

उन्होंने अवसर और मुनाफे को अलग करने वाले नियमों के जाल को पार करते हुए

राजनीति, व्यापार और सरकार के विभिन्न क्षेत्रों के संदिग्ध लोगों के साथ सौदे किए।

इस प्रक्रिया में, उन्होंने अपने जैसे लोगों की एक पीढ़ी तैयार की, जो उनके नेतृत्व की कसम खाते थे और उनकी शैली को अपनाते थे।

यह जून 1992 का मध्य था और हर्षद मेहता की चोरी और घोटाले की कड़ी पूरी तरह से सबके सामने आ चुकी थी। उसी समय आरबीआई गवर्नर को एक और संकेत मिला जो घोटाले का तीसरा आयाम बन गया। उन्हें सूचना मिली कि फेयरग्रोथ फाइनेंशियल सर्विसेज, स्वर्गीय बी रत्नाकर, केनरा बैंक के पूर्व अध्यक्ष द्वारा शुरू की गई एक नई कंपनी, मुश्किल में है। फेयरग्रोथ ने आंध्र बैंक से ऋण लिया था, लेकिन उसे चुकाने में कठिनाई हो रही थी। गवर्नर ने आंध्र बैंक के अध्यक्ष के.आर. नायक को फोन किया।

“फेयरग्रोथ में आपका कितना निवेश है?”

नायक ने अनभिज्ञता जताते हुए कहा, “फेयरग्रोथ में हमारा कोई निवेश नहीं है।”

कुछ दिनों बाद गवर्नर ने फिर फोन किया, इस बार वे अधिक आश्वस्त थे। उन्होंने वही प्रश्न दोहराया और साथ ही पूछा, “क्या आपके पास पूरी तरह से प्रतिभूतियां हैं?”

“हां,” नायक ने कहा।

गवर्नर ने तीखे लहजे में पूछा, “क्या आपके पास फेयरग्रोथ द्वारा जारी की गई कोई प्रतिभूति रसीद है?”

नायक ने दावा किया कि आंध्र बैंक फाइनेंशियल सर्विसेज (एबीएफएसएल) के पास पर्याप्त भौतिक प्रतिभूतियां हैं जिनका बाजार मूल्य फेयरग्रोथ द्वारा लिए गए ऋण को कवर करने के लिए पर्याप्त है। उन्होंने झूठ बोला।

वास्तव में, आंध्र बैंक की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी एबीएफएसएल, सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों से ऋण लेकर फेयरग्रोथ को उधार देने के कारण भारी कर्ज में डूबी हुई थी। ऋण राशि बहुत अधिक थी और फेयरग्रोथ इसे चुकाने के लिए संघर्ष कर रही थी।

इसी बीच, आरबीआई के गैर-बैंकिंग वित्तीय सेवाओं के प्रभारी कार्यकारी निदेशक एस.एस. तारापोर भी इस मामले में शामिल हो गए। वे फेयरग्रोथ के प्रबंध निदेशक के. धर्मपाल को अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने उनसे पूछा कि क्या कोई समस्या है। धर्मपाल ने इससे इनकार किया। लेकिन तारापोर ने महसूस किया कि वे बेचैन हैं। अगले कुछ हफ्तों में, हर्षद मेहता और स्टैनचार्ट के बाद फेयरग्रोथ घोटाले की तीसरी कड़ी बनकर उभरा। कुछ मायनों में यह और भी चौंकाने वाला था, क्योंकि इसने वाणिज्य मंत्री पी. चिदंबरम और योजना आयोग के सदस्य वी. कृष्णमूर्ति जैसे प्रभावशाली और महत्वाकांक्षी लोगों को बेनकाब कर दिया।

फेयरग्रोथ की कहानी इसके संस्थापक बी. रत्नाकर से शुरू होती है, जिनकी मृत्यु 2 फरवरी 1992 को 56 वर्ष की आयु में हुई थी, घोटाले के सामने आने से ठीक तीन महीने पहले। कुछ पर्यवेक्षकों के अनुसार, फेयरग्रोथ घोटाला अपरिहार्य था। फेयरग्रोथ कंपनी अपने जोखिम लेने वाले प्रमोटर, अपने शिष्यों के लिए निर्धारित तीव्र विकास दर और 1991-92 के गतिशील शेयर बाजार का एक खतरनाक संयोजन थी। रत्नाकर, उनके पिछले रिकॉर्ड को देखते हुए, इसे किसी और तरीके से नहीं कर सकते थे। उनका जीवन एक प्रेरणादायक कहानी है।

केनरा बैंक में अपने 32 साल के करियर में वे तेजी से आगे बढ़े और 46 साल की उम्र में किसी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक के सबसे युवा अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक बने। उन्होंने राजनीति, व्यापार और सरकार से जुड़े विभिन्न लोगों के साथ संदिग्ध सौदे करके उन नियमों के जाल को पार किया जो अवसर और मुनाफे को अलग

करते हैं। इस प्रक्रिया में, उन्होंने रत्नाकर के अनुयायियों की एक पूरी पीढ़ी तैयार कर दी, जो उनके नेतृत्व की प्रशंसा करते थे और उनकी कार्यशैली को अपनाते थे। इसी शैली के व्यापक प्रभाव ने अप्रत्यक्ष रूप से इस घोटाले को अंजाम दिया।

रत्नाकर कर्नाटक के सागर जिले में एक गरीब टिकट एजेंट के नौ बच्चों में सबसे बड़े थे। मैसूर में मुफ्त छात्रावास आवास और परीक्षा शुल्क का भुगतान करने वाले उदार प्रधानाचार्य ने उन्हें स्नातक होने में मदद की। बैंक में चुने जाने से पहले, युवा रत्नाकर ने कभी पतलून नहीं पहनी थी। उनका सामान्य पहनावा सफेद पजामा और कमीज होता था। अपने भीतर, रत्नाकर के मन में एक अलग पहचान बनाने की प्रबल इच्छा थी। इसी इच्छा ने उन्हें अपने बैंकिंग करियर के पांच अलग-अलग चरणों से गुज़ारा: बॉम्बे में उनका कार्यकाल, जहाँ उन्होंने शुरुआती सफलता का स्वाद चखा, दिल्ली में उनका पहला बड़ा अवसर, मद्रास में असाधारण पहचान, और फिर दिल्ली में बड़ी उपलब्धियाँ, जिन्होंने उन्हें बैंगलोर में कैनरा बैंक के मुख्यालय में अंतिम प्रसिद्धि तक पहुँचाया, जहाँ वे अध्यक्ष बने।

बैंक में शामिल होने के लगभग दो साल बाद, रत्नाकर ने बॉम्बे में काम करने का विकल्प चुना, "क्योंकि महानगर का विशाल आकार एक बहुत बड़ा दायरा प्रस्तुत करता है और दूरदृष्टि के विकास के लिए अवसर प्रदान करता है," उन्होंने बाद में कहा। उन्होंने पहले डेढ़ साल लगभग बैंक में ही बिताए। वे रात में बैंक काउंटर पर सोते थे, बैंकिंग परीक्षा (CAIIB) देने के लिए समय निकालते थे और साथ ही हिंदी और संस्कृत का अध्ययन भी करते थे।

लगभग उसी समय उनकी शादी प्रेमा से हुई, जो सी श्रीनिवास राव की भतीजी थीं। राव एक निदेशक थे जिन्होंने रत्नाकर को बैंक में शामिल किया था। रत्नाकर के पिता प्रेमा के पिता की गजानना ट्रांसपोर्ट कंपनी में काम करते थे। राव, जो रत्नाकर को बेटे की तरह मानते थे, ने ही उनकी शादी करवाई। उन्होंने शादी की तैयारियों के लिए परिवार के गहने और कपड़े खरीदने के लिए रत्नाकर को 5000 रुपये उधार भी दिए।

बंबई में रहते हुए, रत्नाकर ने घर-घर जाकर जमा राशि जुटाने का काम शुरू किया, जिसे "उन दिनों बड़े बैंकर अपनी शान के खिलाफ समझते थे", उन्होंने कहा। दो साल के भीतर, चौबीस साल की उम्र में, रत्नाकर बैंक के सबसे युवा प्रबंधक बन गए। लेकिन यह तो बस शुरुआत थी। "बंबई में शाखाओं की जबरदस्त सफलता के बाद, जब मैं आराम कर सकता था, तभी उत्तर में शाखाएं खोलने के लिए लोगों को प्रस्ताव मिला। कोई तैयार नहीं था, लेकिन मैंने दिल्ली जाने की पेशकश की", रत्नाकर ने याद किया। सत्ताईस वर्ष की आयु में उन्होंने राजधानी में बैंक की पहली शाखा स्थापित करने की चुनौती स्वीकार की, जहाँ उन्होंने भारत में व्यापार करने की बारीकियां सीखीं। हालाँकि वे युवा थे और शहर के कामकाज से अनभिज्ञ थे, फिर भी उन्होंने जल्द ही शक्तिशाली नौकरशाहों, सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के प्रमुखों और पक्षपाती राजनेताओं के साथ व्यापक संपर्क स्थापित कर लिया – ये सभी सौदे करने के लिए उत्सुक थे।

अगले पाँच वर्षों में उन्होंने चार शाखाएँ स्थापित कीं, जो

शायद बहुत तेज़ विकास था। उन्हें मद्रास भेज दिया गया। बाद में उन्होंने कहा, “मुझे ऐसा लगा जैसे मैं फील्ड मार्शल मानेकशॉ हूँ, जिन्हें कृष्णा मेनन ने बर्खास्त कर दिया था, लेकिन वे सेना प्रमुख बनकर वापस आए।”

मद्रास में रत्नाकर की उपलब्धियाँ वास्तव में असाधारण थीं। उन्होंने स्वयं बैंक की आंतरिक पत्रिका श्रेयस को दिए एक साक्षात्कार में गर्व से कहा, “मैं वहाँ किसी को नहीं जानता था। ऐसी स्थिति से उस मुकाम तक पहुँचना जहाँ लोग मेरे बारे में बात करने लगे, मैं इसे एक बड़ी उपलब्धि मानता हूँ।” माउंट रोड शाखा में उन्होंने मात्र तीन वर्षों में जमा राशि को 1.5 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 26.10 करोड़ रुपये कर दिया। इस एक शाखा में मद्रास शहर की कुल बैंक जमा राशि का 8% हिस्सा था। यह चारों दक्षिणी राज्यों में सबसे बड़ी शाखा भी थी। रत्नाकर ने श्रेयस को बताया, “यह सफलता मेरे लिए बेहद मार्मिक थी क्योंकि मुझे गुस्से में दिल्ली से स्थानांतरित कर दिया गया था, और इसके बाद मुझे उच्च पद पर वापस स्थानांतरित होना पड़ा।”

मद्रास में अपने कार्यकाल के दौरान, बैंक प्रत्येक लाख जमा राशि पर अधिकारियों को 100 रुपये का प्रोत्साहन देता था। 1972 के मध्य में, बैंक ने यह योजना बंद कर दी, क्योंकि रत्नाकर ने इतनी अधिक जमा राशि जुटा ली थी कि उन्हें प्रोत्साहन के रूप में पूरे 2 लाख रुपये देने पड़ते। इसके बजाय, बैंक ने शाखा को 25,000 रुपये का पुरस्कार दिया।

दिल्ली में क्षेत्रीय प्रबंधक, मंडल प्रबंधक और उप महाप्रबंधक

के रूप में उन्होंने नेटवर्क को 25 शाखाओं से बढ़ाकर 106 और जमा राशि को 21 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 248 करोड़ रुपये कर दिया। एक बहिर्मुखी व्यक्ति होने के नाते, उन्होंने इस दौरान राजनेताओं और व्यापारियों के बीच व्यापक संपर्क नेटवर्क भी विकसित किया। दो छोटे-छोटे दौरों में

वे संयुक्त महाप्रबंधक बने और फिर सितंबर 1981 में कार्यकारी निदेशक। 30 जून 1982 को वे केनरा बैंक के प्रमुख बने – सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में सबसे कम उम्र के प्रमुख।

रत्नाकर नवोन्मेषी विचारों से परिपूर्ण थे, जिन्हें वे निरंतर और निर्बाध भाषण के माध्यम से प्रभावी ढंग से व्यक्त करते थे। “अगर उनके साथ एक कमरे में पाँच लोग होते, तो बाकी लोगों को बोलने का मुश्किल से ही मौका मिलता था। बेशक, वे एक आकर्षक वक्ता थे”, स्वर्गीय डीपी धर के पुत्र विजय धर ने याद करते हुए कहा, जो कभी इंदिरा गांधी के करीबी कांग्रेस के शीर्ष नेता थे। उनका अत्यधिक आत्मविश्वास, जो कभी-कभी शेखी बघारने जैसा लगता था, केंद्र में रहने की इच्छा और आलोचना या असहमति को स्वीकार न कर पाने की उनकी अक्षमता कभी-कभी लोगों को परेशान करती थी। लेकिन रत्नाकर की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी प्रबल महत्वाकांक्षा थी।

एनडी प्रभु, जो उनके बाद अध्यक्ष बने, कहते हैं कि रत्नाकर की दूरदृष्टि एक सपना नहीं बल्कि एक सटीक लक्ष्य थी। सन् 1958 में, महज बाईस वर्ष की आयु में, बैंक में प्रशिक्षु के रूप में शामिल होने के दो साल बाद ही, रत्नाकर ने प्रभु को यह दावा करके चौंका

दिया कि वह अध्यक्ष बन सकते हैं। 1982 में जब वे वास्तव में अध्यक्ष बने, तो उन्होंने एसबीआई के साथ प्रतिस्पर्धा स्थापित कर ली, न कि जमा राशि के मामले में - जिसे वे भ्रामक मापदंड मानते थे - बल्कि शुद्ध लाभ और नवाचारों के मामले में। इससे उनके और एसबीआई के अध्यक्ष डीएन घोष के बीच कड़ी प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई।
दोनों की कार्यशैली बिल्कुल विपरीत थी, लेकिन दोनों एक-दूसरे के प्रति बेहद जुनूनी थे, ऐसा दोनों के करीबी संपर्क में रहने वाले ब्रोकरों का कहना है। उनकी कोई भी बातचीत शुरू होती, कुछ ही मिनटों में एक-दूसरे की गतिविधियों पर चर्चा में बदल जाती। घोष को रत्नाकर का आत्मविश्वास पसंद नहीं था और रत्नाकर का मानना था कि आरबीआई अनुचित रूप से उनके विचारों और नवाचारों को घोष के विचारों के पक्ष में दबा रहा है। इस कथित नुकसान के बावजूद, रत्नाकर ने एसबीआई को चौंकाने वाली गति से पीछे छोड़ दिया। जून 1982 में, केनरा बैंक की पूंजी और भंडार 15 करोड़ रुपये थे। छह साल बाद यह बढ़कर 241.50 करोड़ रुपये हो गया - एसबीआई के अलावा अन्य राष्ट्रीयकृत बैंकों में सबसे अधिक। 1987 में, अध्यक्ष के रूप में अपने अंतिम पूर्ण वर्ष में, ऊर्जावान रत्नाकर, जिन्हें तब तक सुपरबैंकर का नाम दिया जा चुका था, ने क्रेडिट कार्ड लॉन्च किए और तीन सहायक कंपनियां स्थापित कीं - कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज, कैनबैंक म्यूचुअल फंड और कैन फिन होम्स। केनरा बैंक ने हर अवसर को अद्भुत गति से भुनाया, और प्रबंधन के इस सिद्धांत से प्रेरित था कि "लक्ष्य रचनात्मकता में बाधा हैं क्योंकि वे अतीत पर आधारित होते हैं।" 1987 में, एसबीआई के आकार के एक छोटे से हिस्से के बराबर रहे केनरा बैंक ने 45 करोड़ रुपये का लाभ दर्ज किया, जो एसबीआई के

45.5 करोड़ रुपये के लाभ से मामूली अंतर से पीछे था। लेकिन कैनफिना ने एसबीआई कैपिटल मार्केट्स को पछाड़ दिया और कैनम्यूचुअल ने, शुरुआत में थोड़ी लड़खड़ाने के बाद, तेजी से आगे बढ़ते हुए नए रिकॉर्ड बनाए।
के.एम. बलिगा, जिनकी रत्नाकर से पहली मुलाकात 1969 में हुई थी और जो बाद में नई दिल्ली में अध्यक्ष कार्यालय में उनके दाहिने हाथ बन गए, ने बताया कि कैसे रत्नाकर ने सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के बैंकिंग कारोबार पर एसबीआई के एकाधिकार को चुनौती दी। सरकारी दिशानिर्देशों के अनुसार, इन कंपनियों को सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के साथ बैंकिंग करना अनिवार्य था। “वे सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों और उनके संबंधित मंत्रालयों से कहते थे कि एसबीआई 100% सरकारी स्वामित्व वाला भी नहीं है – इसके 3% शेयर निजी स्वामित्व में हैं। केनरा बैंक पूरी तरह से सरकारी स्वामित्व वाला है। इसलिए, दिशानिर्देशों के अनुसार, केनरा बैंक को प्राथमिकता मिलनी चाहिए।” इस तरह के तर्क और समझाने की क्षमता से कई महत्वपूर्ण खाते हासिल हुए। ये उदाहरण उनके प्रत्यक्ष योगदान को दर्शाते हैं। लेकिन रत्नाकर का व्यापक योगदान, उनकी सच्ची विरासत, धर्मपाल और आर कन्नन जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों को चुनकर उनमें जोश और लगन जगाने में थी। इन व्यक्तियों ने वाणिज्यिक बैंकिंग, मर्चेंट बैंकिंग और म्यूचुअल फंड में उनके लिए उत्कृष्ट प्रदर्शन किया और अटूट व्यक्तिगत और व्यावसायिक निष्ठा दिखाकर उनका आभार व्यक्त किया। एक अत्यधिक विनियमित व्यवस्था में शीर्ष प्रदर्शन करने वालों की एक पीढ़ी को प्रेरित करने में रत्नाकर की सफलता को सबसे उल्लेखनीय प्रबंधकीय सफलताओं में से एक माना जाना चाहिए।

रत्नाकर "प्रशासन के लिए पदानुक्रम और योगदान के लिए समानता" में विश्वास करते थे। यह एक कठोर प्रणाली में प्रोत्साहन डालने का एक शानदार तरीका था। उन्होंने प्रतिभाशाली कर्मचारियों को उनके वरिष्ठों को दरकिनार करते हुए चुनौतीपूर्ण कार्य सौंपे। साथ ही, उन्होंने वेतनमान सहित पदानुक्रमित संरचना का पालन किया, जिससे सभी कर्मचारी संतुष्ट रहे। रत्नाकर ने अपने अधीनस्थों के साथ काम करके, उन्हें चुनौतियों में धकेलकर और अक्सर उनके लिए समाधान ढूंढकर उनमें अटूट निष्ठा की भावना भी पैदा की। यहाँ एक उदाहरण है।
जुलाई 1984 के एक धुंधले दिन, कैनरा बैंक के मर्चेंट बैंकिंग विभाग के प्रबंधक आर. कन्नन, पूंजी निर्गम नियंत्रक के साथ एक पेचीदा मामले को सुलझाने के लिए मुंबई से दिल्ली जा रहे थे। रोश, एक गैर-सूचीबद्ध कंपनी, विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम के अनुसार अपनी हिस्सेदारी घटाकर 74% करना चाहती थी। इसके लिए उसे अपनी 14% इक्विटी जनता को बेचनी थी। लेकिन कानून के अनुसार, 20% से कम सार्वजनिक हिस्सेदारी वाली कोई भी कंपनी सूचीबद्ध नहीं हो सकती थी। लेकिन कैनरा बैंक, जो इस अनूठे मामले को संभाल रहा था, ने फिर भी एक आवेदन दाखिल करने का फैसला किया, जिसमें यह प्रावधान था कि यदि अनुमति नहीं मिली तो निर्गम रद्द कर दिया जाएगा।
जैसे ही कन्नन हवाई अड्डे पहुंचे, उन्होंने रत्नाकर को बेंगलुरु की उड़ान के लिए कतार में इंतजार करते देखा। कन्नन ने उन्हें संक्षेप में मामला समझाया। दिल्ली में, कन्नन ने पूंजी निर्गम नियंत्रक के एक कनिष्ठ अधिकारी से इस मामले पर चर्चा की, जिन्होंने कैनरा बैंक के प्रस्ताव का पुरजोर विरोध किया। दोनों ने नियंत्रक डी.आर. मेहता, जो बाद में एसईबीआई के अध्यक्ष

बने, से मध्यस्थता करने का अनुरोध किया। लेकिन उन्हें ऐसा करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। मेहता ने उन्हें बताया कि रत्नाकर ने पहले ही फोन करके तर्क दिया था कि FERA और CCI के दिशानिर्देशों के बीच विवाद में FERA का दिशानिर्देश अधिक महत्वपूर्ण है। जाहिर है, रत्नाकर उस सुबह बेंगलुरु से 100 किलोमीटर दूर एक जिले में थे। उन्होंने न केवल त्वरित समाधान निकाला, बल्कि मेहता को फोन करके उन्हें समझाने का समय भी निकाल लिया।
रत्नाकर की एक और रणनीति थी बैंक और उसके सफल व्यक्तियों की प्रशंसा करना, ताकि "अन्य लोग भी सफल व्यक्तियों से प्रेरणा लेकर उनसे समान या उच्चतर लक्ष्य और विचार निर्धारित करें। एक बार सफलता मिल जाए तो पहचान अपने आप मिल जाती है। फिर आपके पास एक श्रोता वर्ग होता है और आप नशे में चूर हो जाते हैं क्योंकि लोग आपको देख रहे होते हैं", वे अक्सर कहते थे। उन्होंने यह छोटी सी प्रबंधन तरकीब कन्नन पर भी आजमाई।
1987 में, रत्नाकर ने पाया कि कन्नन एक उत्कृष्ट प्रदर्शनकर्ता होने के बावजूद, बहुत कम चर्चित थे। इसलिए, उन्होंने कन्नन और उनके बॉस, एम.वी. कामथ को मर्चेंट बैंकर श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन पुरस्कार के लिए नामांकित किया। पुरस्कार वितरण के बाद, बैंक के वार्षिक व्यापार योजना सम्मेलन के दौरान, रत्नाकर ने कन्नन और कुछ अन्य अधिकारियों को एक पर्ची भेजी, जिसमें उनसे यह बताने को कहा गया कि उन्हें अपनी उपलब्धियों के लिए क्या प्रेरित किया। कन्नन को मंच पर बुलाया गया। उन्होंने पांच मिनट तक जोश और उत्साह से भाषण दिया, जिससे पूरा हॉल तालियों से गूंज उठा। एक ही झटके में रत्नाकर ने कन्नन की छवि बदल दी।

रत्नाकर भारतीय बैंकिंग के विकास में बाधक नियमों का पालन करके इतना अधिक लाभ नहीं कमा सकते थे। उन्होंने नियमों का बहुत कम सम्मान किया (जो कभी-कभी बेहद मूर्खतापूर्ण थे), और कानूनी और नैतिक के बीच की रेखा पर खतरनाक ढंग से चलते रहे। स्वाभाविक रूप से, वे आरबीआई और वित्त मंत्रालय में छिपे संदेह और तिरस्कार का निशाना बन गए।
रत्नाकर, अपनी ओर से, आरबीआई के प्रति खुले तौर पर अवज्ञाकारी थे। अप्रैल 1988 में, जब आरबीआई ने केनरा बैंक की पोर्टफोलियो प्रबंधन योजना पर प्रतिबंध लगा दिया, तो उन्होंने लगभग 700 करोड़ रुपये के अपने पोर्टफोलियो को कॉर्पोरेट निवेश सलाहकार सेवाओं के तहत कैनफिना में स्थानांतरित कर दिया। सीआईएएस में जमा 4000 करोड़ रुपये की यही हिस्सेदारी घोटाले के बाद कैनरा बैंक को दिवालिया होने के कगार पर ले आई। कैनरा बैंक ने वैधानिक तरलता अनुपात और नकद आरक्षित अनुपात की आवश्यकताओं का कई बार उल्लंघन भी किया और उस पर जुर्माना लगाया गया।
आरबी और वित्त मंत्रालय ने उनके प्रस्तावों को खारिज करके जवाबी कार्रवाई की। जब कैनम्यूचुअल ने सुझाव दिया कि म्यूचुअल फंड का प्रबंधन एक परिसंपत्ति प्रबंधन कंपनी के तहत किया जाए, तो आरबीआई अधिकारियों ने इस विचार का मज़ाक उड़ाते हुए कहा, "जल्द ही आप ऋण देने के लिए एक अलग सहायक कंपनी और जमा के लिए एक अलग सहायक कंपनी की मांग करेंगे।" लगभग एक साल बाद जब एसबीआई को एसबीआई कैपिटल मार्केट्स और एसबीआई म्यूचुअल फंड के बीच चीनी दीवार की आवश्यकता का एहसास हुआ, तो इसी विचार को स्वीकार कर लिया गया।
विकास-समर्थक और व्यापार-समर्थक रुख के कारण, रत्नाकर ने व्यापार जगत में मित्रों का एक व्यापक नेटवर्क विकसित किया और

उनके लिए ऋण देने से इनकार करना मुश्किल हो गया। केनरा बैंक पर खराब कर्ज़ों का बोझ था, लेकिन उनकी हमेशा मदद करने की प्रवृत्ति ने उन्हें उद्योगपतियों, साथी बैंकरों और दोस्तों से कृतज्ञता दिलाई, जिन्होंने अपने करियर के महत्वपूर्ण पड़ावों पर उनके "नवीन" समाधानों से लाभ उठाया था।
ओर्के सिल्क मिल्स के नियंत्रक कपाल मेहरा एक बार नकदी की तंगी से जूझ रहे थे, जब रत्नाकर ने रातोंरात उनकी मदद की। भारतीय परिवहन निगम के अध्यक्ष टीसी गुप्ता ने 1988 में बिज़नेस वर्ल्ड (जिसने संयोगवश "सुपरबैंकर" शब्द गढ़ा था) को बताया कि जब वे सिंडिकेट बैंक की रूढ़िवादी नीति से परेशान थे, तो उन्होंने रत्नाकर से संपर्क किया, जिन्होंने टीसीआई को अगली सुबह बैंक से ड्राफ्ट लेने के लिए कहा। टीसीआई खाता केनरा बैंक में स्थानांतरित हो गया। रत्नाकर को नियमों को तोड़ने और अपने दोस्तों की मदद करने के लिए प्रेरित करने वाली बात उनकी "हमेशा समाधान खोजने" की इच्छा थी। इसका एक बेहतरीन उदाहरण वी कृष्णमूर्ति के साथ उनकी मित्रता है, जिन पर बाद में हर्षद और फेयरग्रोथ दोनों से संबंध रखने का आरोप लगा था।
एक ऐसे कड़े नियमों वाले माहौल में, जहाँ नौकरशाही के कड़े नियम उद्यम और व्यावसायिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता को सीमित करते थे, भारत के सबसे प्रसिद्ध टेक्नोक्रेट्स में से एक कृष्णमूर्ति और सबसे गतिशील बैंकरों में से एक रत्नाकर की जोड़ी स्वाभाविक रूप से बेजोड़ थी। कृष्णमूर्ति ने कहा, “कम से कम दो ऐसे मौके आए जब रत्नाकर ने मेरे करियर में मेरी मदद की, जब मेरी अपनी क्षमता और प्रतिष्ठा दांव पर लगी थी। रत्नाकर ने उप महाप्रबंधक के रूप में ऐसे काम किए जो अन्य बैंकों के अध्यक्ष भी नहीं कर पाए थे, और हम घनिष्ठ मित्र बन गए।”

कृष्णमूर्ति के भारत हेवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड के अध्यक्ष बनने के तुरंत बाद, जब कंपनी के सामने इस बीमार विशालकाय कंपनी को पटरी पर लाने की चुनौती थी, तब कंपनी के पास कर्मचारियों के वेतन के लिए 4 करोड़ रुपये तक देने के लिए भी पैसे नहीं थे। अगर चेक बाउंस हो जाते, तो कर्मचारी हतोत्साहित और उग्र हो जाते। कृष्णमूर्ति ने कहा: “मैं अपने मुख्य बैंकर एसबीआई के पास गया और मदद मांगी। उन्होंने इनकार कर दिया। मैंने कई अन्य अध्यक्षों से बात की और सभी ने मना कर दिया। तब किसी ने मुझे रत्नाकर से संपर्क करने की सलाह दी, जो उस समय केवल उप महाप्रबंधक थे। मैंने उनसे पूछा और उनकी प्रतिक्रिया तुरंत हां थी। रत्नाकर ने पहले धनराशि जारी की और फिर अनुमति के लिए पत्र लिखा।”
बाद में, कृष्णमूर्ति को मारुति उद्योग लिमिटेड का अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक बनाया गया, जो एक बीमार सार्वजनिक क्षेत्र की कार कंपनी थी और इंदिरा गांधी के लिए शर्मिंदगी का कारण बन चुकी थी। मारुति के परिसर में दो बैंक थे, “जिनके साथ कंपनी का भारी बकाया था और उनका समर्थन खो चुकी थी”, कृष्णमूर्ति ने याद किया। “मैंने पूछा, अब जब हम कंपनी को पुनर्जीवित कर रहे हैं, तो क्या वे फिर से हमारे बैंकर बनेंगे? उन्होंने न केवल इनकार किया, बल्कि उनमें से एक ने बकाया राशि की वसूली के लिए हम पर मुकदमा भी कर दिया।” कृष्णमूर्ति ने एक बार फिर रत्नाकर से संपर्क किया। कैनरा बैंक मारुति का बैंकर बन गया।

“जब रत्नाकर फेयरग्रोथ की शुरुआत कर रहे थे और उन्होंने मुझसे निवेश करने और अपने बोर्ड का सदस्य बनने के लिए कहा, तो जाहिर है मैं मना नहीं कर सकता था”, कृष्णमूर्ति ने कहा। खासकर तब जब

रत्नाकर अपने स्वतंत्र करियर में खुद को साबित करने के दौर से गुजर रहे थे। कृष्णमूर्ति उनकी सफलता में हर संभव मदद करना चाहते थे। मारुति के सबसे बड़े डीलरों में से एक और रत्नाकर की उदारता से लाभान्वित होने वाले केएल राजघरिया भी ऐसा ही चाहते थे। रत्नाकर ने उन्हें केनरा बैंक से ऋण दिलाने में मदद की, जिसे राजघरिया समय पर चुकाने में असफल रहे।
रत्नाकर की सफलता ने उन्हें जितने मित्र दिए, उतने ही शत्रु भी। इसका सबसे अच्छा उदाहरण बेंगलुरु में उनके द्वारा बनवाए गए एक करोड़ रुपये के मकान को लेकर सीबीआई द्वारा उनके खिलाफ दायर रहस्यमय मामला है। रत्नाकर ने कहा कि उन्होंने मकान बनाने में 400 रुपये प्रति वर्ग फुट खर्च किए थे; जबकि सीबीआई का अनुमान 750 रुपये प्रति वर्ग फुट था। बेंगलुरु स्थित सीबीआई के उप पुलिस अधीक्षक के.आर. गंगाधरन द्वारा तैयार की गई प्रारंभिक जांच रिपोर्ट में रत्नाकर द्वारा अध्यक्ष पद के दुरुपयोग से अर्जित 12 अन्य संपत्तियों का उल्लेख किया गया है।
इनमें नोएडा (गाजियाबाद) में 500 वर्ग मीटर जमीन, बेंगलुरु के मुनीश टावर्स और मणिपाल टावर्स में फ्लैट, नई दिल्ली के आज़ाद अपार्टमेंट, बेंगलुरु में एक बंगला, नई दिल्ली में दो व्यावसायिक संपत्तियां, गुरुग्राम के पालम विहार में संपत्ति और महरौली में एक एकड़ कृषि भूमि शामिल थी।
यह रिपोर्ट 4 दिसंबर 1988 को दायर की गई थी, रत्नाकर की सेवानिवृत्ति के ठीक पांच महीने बाद। सीबीआई ने वास्तव में कभी आरोपपत्र दाखिल नहीं किया। लेकिन यह मामला रत्नाकर के सिर पर तलवार की तरह लटका रहा।
विजय धर याद करते हैं कि रत्नाकर ने सीबीआई मामले में कई लोगों से मदद मांगी, लेकिन मामले को दबाने के हर प्रयास ने सीबीआई को

इसे आगे बढ़ाने के लिए और भी दृढ़ बना दिया। एक बार कार्मिक मंत्री पी चिदंबरम ने सीबीआई अधिकारियों से कहा, “इस मामले में कोई दम नहीं है। मैं कानून को आपसे बेहतर जानता हूं।” अधिकारी और भी मजबूत मामले के साथ वापस आए। इस घटना और आरबीआई के साथ लगातार टकराव ने रत्नाकर को बुरी तरह से अलग-थलग कर दिया और उन्हें यह दृढ़ विश्वास हो गया कि उनके साथ अन्याय हो रहा है। यह विश्वास तब और भी गहरा हो गया जब वे 1988 में, महज 52 वर्ष की आयु में, दो कार्यकाल अध्यक्ष के रूप में सेवा देने के बाद केनरा बैंक से बाहर हो गए। 1989 और 1990 के अधिकांश भाग में, वे अपने लिए किए गए वादों के अनुसार मिलने वाले महत्वपूर्ण पदों की प्रतीक्षा कर रहे थे। सेवानिवृत्ति के तुरंत बाद उन्होंने कहा, “मैं सरकार की ऐसी भूमिका में सेवा करना चाहता हूं जिससे मुझे कुछ संतुष्टि मिल सके। अगर मुझे वह चुनौती नहीं मिलती है तो मैं कुछ अपना करना चाहूंगा... मैं कुछ ऐसा करना चाहूंगा जिसका प्रभाव हो।” उनके ये शब्द कितने दूरदर्शी साबित हुए!
ऐसी अफवाहें थीं कि रत्नाकर को आरबीआई के उप-गवर्नर, बैंकिंग सचिव और विलय होने वाली मिनरल्स एंड मेटल्स ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन और स्टेट ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन के अध्यक्ष पदों के लिए विचार किया जा रहा था। उन्हें अंतिम पद मिलना लगभग तय था, लेकिन संदिग्ध समय पर, उनके खिलाफ सीबीआई द्वारा लंबित मामले के बारे में द इंडियन एक्सप्रेस में एक छोटा सा लेख प्रकाशित हुआ। रत्नाकर की किस्मत खुल गई। विडंबना यह है कि एक्सप्रेस ग्रुप को नियंत्रित करने वाले परिवार का एक हिस्सा बाद में फेयरग्रोथ में बड़े शेयरधारक बन गया।
1990 में, वीपी सिंह सरकार सत्ता में आई और कांग्रेस से मजबूत संबंध रखने वाले रत्नाकर ने सरकार में पद पाने की उम्मीद छोड़

दी। बीएचईएल के पूर्व अध्यक्ष एसवीएस राघवन विलय किए गए एसटीसी और एमएमटीसी के अध्यक्ष बने। रत्नाकर के पास एकमात्र विकल्प अपना खुद का व्यवसाय शुरू करना था।

9 जुलाई 1990 को, सरकार में एक पद की प्रतीक्षा करते-करते निराश और हताश होकर, जिससे उन्हें "कुछ संतुष्टि" मिल सके, रत्नाकर ने एक करोड़ रुपये की पूंजी के साथ फेयरग्रोथ फाइनेंशियल सर्विसेज की शुरुआत की। बाद में, उन्होंने फेयरग्रोथ बैनर के तहत पांच अन्य कंपनियां शुरू कीं: फेयरग्रोथ इन्वेस्टमेंट्स, फेयरग्रोथ होम फाइनेंस, फेयरग्रोथ फैक्टर्स, फेयरग्रोथ एक्जिम और फेयरग्रोथ एजेंसीज। प्रबंध निदेशक के. धर्मपाल द्वारा संचालित प्रमुख कंपनी फेयरग्रोथ फाइनेंशियल से अन्य सेवाओं के वित्तपोषण का मुख्य स्रोत बनने की उम्मीद थी।
फेयरग्रोथ ने चौंका देने वाला मुनाफा कमाना शुरू कर दिया। लेकिन अचानक फरवरी 1992 की शुरुआत में रत्नाकर का निधन हो गया। उनके शिष्य धर्मपाल अगले दो महीनों की भारी उथल-पुथल में हर्षद मेहता, हितेन दलाल और स्टैनचार्ट की तरह ही बौखला गए। उचित हो या न हो, फेयरग्रोथ अत्यधिक विकास का मामला था। इसने एबीएसएफएल के साथ भारी बकाया जमा कर लिया था और कुछ पैसा ब्रोकर पल्लव शेठ के पास रखा हुआ था। द्वितीयक बाजार में उथल-पुथल मची हुई थी, कीमतें गिर रही थीं। सुपरबैंकर की बनाई कंपनी तेजी से पतन की ओर बढ़ रही थी।

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] 1999 [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

□□□ □□ □□□□ □□□□ □□ □□□ □□□□□ □□□□□ □□ 31 □□□□□□ 2001 □□ □□□□ □□ □□□, □□ □□ □□□ □□ □□□□ □□□ □□□ □□□ □□□

दिवंगत जेपी गांधी, जो प्रतिभूति सौदों के सरगना थे, उन्होंने भूपेन दलाल के साथ दशकों तक काम किया और स्टैनचार्ट घोटाले में दलाल के सहयोगी होने का संदेह था।

जीतू श्रॉफ, वी बी देसाई ब्रोकिंग फर्म के संचालक थे। उन्हें शेयर बाजार में हर्षद मेहता का मार्गदर्शक माना जाता है।

[illegible] [illegible] [illegible] [

12

फेयरग्रोथ की कहानी

रत्नाकर की मृत्यु के कुछ ही महीनों बाद उनका संगठन ध्वस्त हो गया। उनकी असीम ऊर्जा ने उनकी ही रचना को नष्ट कर दिया। उनके चहेते शिष्य
सत्ता के लिए एक भयंकर संघर्ष में उलझ गए।

फेयरग्रोथ के पतन के साथ ही भारतीय वित्तीय क्षेत्र के सबसे आशाजनक प्रयोगों में से एक का पतन हो गया। बी. रत्नाकर का सपना था कि फेयरग्रोथ ब्रांड नाम के तहत देश भर में वित्तीय सुपरमार्केट की एक श्रृंखला स्थापित की जाए - यही सपना उन्होंने कैनरा बैंक के लिए भी देखा था जब उन्होंने कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज और कैनफिन होम्स की शुरुआत की थी। नौकरशाही हस्तक्षेप से मुक्त फेयरग्रोथ में उनका सपना साकार हो सकता था।
जैसा कि उन्होंने बिजनेस टुडे को (प्रेस को दिए अपने आखिरी साक्षात्कार में) बताया था, वे फेयरग्रोथ नाम से कुछ प्रमुख शहरों में एक बड़ा कार्यालय (लगभग 15,000 वर्ग फुट) खोलना चाहते थे। "इसे फेयरग्रोथ कंपनियों के लिए छह या आठ कार्यालयों में विभाजित किया जाएगा, जिनमें से प्रत्येक लगभग 2000 वर्ग फुट का होगा।" इसके अलावा,
नेदुंगडी बैंक 9 की एक शाखा भी होगी, जिस पर रत्नाकर ने 1991 के अंत में नियंत्रण हासिल कर लिया था। उनका विज़न एक ऐसी संरचना बनाना था जिससे उपभोक्ता/निवेशक बैंक शाखा का उपयोग करके पैसे

जमा या निकाल सकें, फेयरग्रोथ फाइनेंशियल या फेयरग्रोथ इन्वेस्टमेंट्स के माध्यम से शेयरों में निवेश कर सकें, फेयरग्रोथ होम फाइनेंस से गृह ऋण ले सकें और फेयरग्रोथ एजेंसीज़ से चुनिंदा उपभोक्ता वस्तुएं खरीद सकें - सब कुछ एक ही छत के नीचे।
इसके अलावा, अपनी ख्यातिप्राप्त गतिशीलता और नवोन्मेषी क्षमता के साथ, रत्नाकर रतन टाटा (टाटा कंपनियों के लिए और एक वाणिज्यिक बैंक की स्थापना पर सलाह देने के लिए) और आदित्य बिरला के साथ दक्षिण-पूर्व एशिया में एक संयुक्त उद्यम के लिए गठबंधन करने के कगार पर थे। फेयरग्रोथ फैक्टर्स, वैश्य बैंक, इंटरनेशनल फाइनेंस कॉर्पोरेशन और सिंगापुर स्थित कंपनी डीबीएस के बीच एक चार-पक्षीय उद्यम भी विचाराधीन था।
लेकिन शुरुआत से ही, फेयरग्रोथ समझौता और तदर्थवाद पर आधारित था। रत्नाकर ने कैनरा बैंक के विभिन्न विभागों से कुछ भरोसेमंद सहयोगियों को चुना और उन्हें अलग-अलग व्यवसायों का प्रभार सौंपा। के. धर्मपाल पहले कैनबैंक म्यूचुअल फंड के महाप्रबंधक थे, आर. लक्ष्मीनारायण, फेयरग्रोथ के कार्यकारी निदेशक, कैनफिना में कार्यकारी उपाध्यक्ष थे, ए. करुणाकर शेट्टी, फेयरग्रोथ होम फाइनेंस के प्रबंध निदेशक, कैनफिन होम्स के प्रबंध निदेशक थे। और फिर थे के.आर.एन. शेनॉय, फेयरग्रोथ इन्वेस्टमेंट्स के प्रबंध निदेशक, जो "नवीन" मनी मार्केट सौदों के विशेषज्ञ के रूप में जाने जाते थे, जिनके कारण कभी-कभी सिंडिकेट बैंक मुश्किल में पड़ जाता था। इन सबमें आर. कन्नन की अनुपस्थिति स्पष्ट थी, जिन्होंने कैनफिना छोड़कर स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक में एक आकर्षक वेतन पर नौकरी कर ली थी और बाद में रत्नाकर द्वारा नेदुंगडी बैंक के गुप्त अधिग्रहण में

मध्यस्थता की थी। रत्नाकर मजाक में कहते थे, "कन्नन अभी भी विदेशी बैंकों के प्रति आकर्षित हैं। वह जल्द ही मान जाएंगे।" लेकिन कन्नन शायद कभी शामिल ही नहीं होते। उन्हें पता था कि रत्नाकर के चमचमाते लोग जीतने वाली टीम नहीं बना सकते और बाईपास सर्जरी के बाद भी जिस तरह से रत्नाकर खुद पर काम का बोझ बढ़ा रहे थे, उससे उनकी खुद की स्थिति भी संदिग्ध लग रही थी। फेयरग्रोथ टीम को एकजुट रखने वाला एकमात्र कारक रत्नाकर स्वयं थे। लेकिन वे भी एक सीमा से आगे स्थिरता नहीं ला सके क्योंकि उनके कर्मचारियों के बीच मतभेद थे। उदाहरण के लिए, बैंगलोर स्थित आर लक्ष्मीनारायण, बॉम्बे स्थित प्रबंध निदेशक धर्मपाल से सहमत नहीं थे। धर्मपाल ने कहा, "बैंगलोर कार्यालय शुरू से ही स्वतंत्र रूप से काम कर रहा था। कम से कम फरवरी (1992) तक वे अध्यक्ष के संपर्क में थे और उनकी मृत्यु के बाद भी वे अपने दम पर काम करते रहे। आखिरकार, पंजीकृत कार्यालय तो वही था।"
अन्य बुनियादी समझौते भी थे। कागजों पर, फेयरग्रोथ इन्वेस्टमेंट्स को शेयर बाजार से संबंधित गतिविधियाँ जैसे शेयर ब्रोकिंग, पोर्टफोलियो प्रबंधन, शेयर शॉप, निवेशक क्लब, इक्विटी अनुसंधान और अंडरराइटिंग करने का दायित्व सौंपा गया था। अंततः कंपनी का संचालन मुद्रा बाजार विशेषज्ञ के.आर.एन. शेनॉय के हाथों में आ गया, और आश्चर्य की बात यह है कि इसका संचालन धर्मपाल के हाथों में नहीं आया, जो पहले कैनम्यूचुअल का संचालन कर रहे थे और एक महान इक्विटी ट्रेडर के रूप में जाने जाते थे।
फिर से, यह विचित्र था कि धर्मपाल को फेयरग्रोथ फाइनेंशियल की जिम्मेदारी सौंपी गई, जिसे लीजिंग, हायर परचेज़, कॉर्पोरेट सलाह, परामर्श और सार्वजनिक निर्गम प्रबंधन जैसी सेवाएं

प्रदान करनी थीं। ये मर्चेंट बैंकिंग गतिविधियां थीं, जो कैनफिना की सेवाओं से मिलती-जुलती थीं, जिनमें धर्मपाल को बहुत कम अनुभव था।
इन सभी कंपनियों के बोर्ड एक तरह से दरबार की तरह थे, जहां रत्नाकर राजा थे और व्यापारियों, टेक्नोक्रेट्स, मनी मैनेजर्स, स्टॉकब्रोकर्स और राजनीतिक बिचौलियों सहित विभिन्न प्रकार के लोग दरबारी थे, जिनके चयन का एकमात्र मानदंड रत्नाकर के प्रति उनकी वफादारी थी। फेयरग्रोथ इन्वेस्टमेंट्स और फेयरग्रोथ फाइनेंशियल रत्नाकर के प्रशंसक क्लबों की तरह प्रतीत होते थे। फेयरग्रोथ फाइनेंशियल के निदेशक हितकारी पॉटरीज़ के मालिक वेद कपूर और इंदिरा गांधी के मंत्रिमंडल में एक प्रमुख मंत्री रहे दिवंगत डीपी धर के पुत्र विजय धर थे। कपूर, रत्नाकर और धर का बेंगलुरु में प्रेरणा मोटर्स नाम से एक संयुक्त उद्यम था, जिसके पास टेल्को ट्रकों की डीलरशिप थी। बोर्ड के अन्य सदस्य थे:
वी. कृष्णमूर्ति (योजना आयोग के सदस्य बनने से पहले), के.एल. राजघरिया (मारुति वाहनों के बड़े डीलर), अपोलो हॉस्पिटल्स के प्रताप रेड्डी, बीपीएल ग्रुप के नियंत्रक टीपीजी नाम्बियार और प्रीमियर ऑटो के विनोद दोषी।

कृष्णमूर्ति, जिन्होंने स्वयं को राजीव गांधी का वफादार बताया था, वीपी सिंह के शासनकाल में हाशिए पर थे। वे एक नई भूमिका की तलाश में थे जब रत्नाकर ने उन्हें बोर्ड में पद की पेशकश की। स्वाभाविक रूप से, उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। धर की दोस्ती रत्नाकर से तब हुई जब वे दिल्ली में उप महाप्रबंधक थे, और यह दोस्ती वर्षों तक गहरी होती गई। धर, जो श्रीनगर में ब्रॉडवे

होटल के मालिक हैं और दिल्ली में संपत्तियों का विकास कर चुके हैं, राजघरिया और कृष्णमूर्ति के साथ फेयरग्रोथ से जुड़े शुरुआती लोगों में से एक थे। राजघरिया शायद रत्नाकर के सबसे करीबी थे। कैनरा बैंक छोड़ने के बाद, रत्नाकर एक साल से अधिक समय तक राजघरिया के साथ नई दिल्ली के लाजपत नगर स्थित उनके घर में रहे। यहीं पर उन्हें पहला दिल का दौरा पड़ा था।

फेयरग्रोथ इन्वेस्टमेंट्स के बोर्ड सदस्य भी इसी तरह विविध पृष्ठभूमि के थे। उनमें प्रमुख थे वस्त्र निर्माता प्रदीप पालीवाल, जिनकी पत्नी रश्मी एक वस्त्र डिजाइनर और कैप्टन सतीश शर्मा की पत्नी स्टेरा शर्मा की करीबी दोस्त थीं। पालीवाल की कंपनी पालवेल एक्सपोर्ट्स थी, जिसे बैंक ऑफ इंडिया और बैंक ऑफ बड़ौदा ने ऋण दिए थे। पालीवाल को बैंकों की कार्यप्रणाली, मुद्रा बाजार की जानकारी थी और उन्हें इस बात का भी अच्छा-खासा अंदाजा था कि कौन किस बैंक का अध्यक्ष बनेगा। वे रत्नाकर के बेहद करीबी थे और कभी-कभी केनरा बैंक की जमा राशि बढ़ाने में उनकी मदद भी करते थे। बोर्ड के अन्य सदस्य कांग्रेस सांसद तीरथ राम अमला (विजय धर के ससुर), स्टॉक ब्रोकर राजेंद्र बंथिया और वेद प्रकाश थे, जो मोटर जनरल फाइनेंस नामक एक पुरानी वित्तीय कंपनी को नियंत्रित करते थे।

फेयरग्रोथ के बोर्ड के सदस्य भले ही अव्यवस्थित लग रहे थे, लेकिन उस समय इसका कोई खास महत्व नहीं था, क्योंकि धर्मपाल के व्यापारिक कौशल की बदौलत फेयरग्रोथ फाइनेंशियल अच्छा मुनाफा कमा रही थी। मार्च 1991 में, एक साल से भी कम समय में, फेयरग्रोथ ने एक करोड़ रुपये की पूंजी पर 1.1 करोड़ रुपये का मुनाफा कमा

लिया था, जबकि धर्मपाल ने कई महत्वपूर्ण निर्णय लेने में गलतियां की थीं। रत्नाकर एक बार फिर से अपनी छाप छोड़ रहे थे। वह शेयर बाजार में उतरने की योजना बना रहे थे, लेकिन जाहिर तौर पर कई प्रभावशाली लोग इसके खिलाफ थे। वित्त मंत्रालय ने निर्देश जारी किया कि तीन साल से कम समय से चल रही किसी भी वित्तीय कंपनी को शेयर जारी करने की अनुमति नहीं दी जाएगी। फेयरग्रोथ का रास्ता रुक गया। सितंबर 1991 में, इसने और शेयर जारी किए जिससे पूंजी बढ़कर 5 करोड़ रुपये हो गई। आवंटियों में पी चिदंबरम भी शामिल थे।

1992 की शुरुआत तक, फेयरग्रोथ भारी मुनाफा कमा रही थी। जून 1992 के अंत में, जब कंपनी ने शेयरों का जायजा लिया, तो दो साल पुरानी कंपनी के लिए आंकड़े चौंकाने वाले थे। फेयरग्रोथ ने 7000 करोड़ रुपये से अधिक के शेयरों का कारोबार किया, जिसमें लगभग 500 करोड़ रुपये का मुख्य बाजार ऋण (मनी मार्केट और अंतर-कॉर्पोरेट जमा) शामिल था। मार्च 1992 के लिए, फेयरग्रोथ की आय 89 करोड़ रुपये थी, जिसमें से शेयर व्यापार से 66 करोड़ रुपये, मनी मार्केट व्यापार से 21 करोड़ रुपये और मर्चेंट बैंकिंग और बिल डिस्काउंटिंग से 2 करोड़ रुपये प्राप्त हुए। इसके विपरीत, खर्च मात्र 8 करोड़ रुपये था, जिससे कर-पूर्व लाभ बढ़कर 81 करोड़ रुपये हो गया, जिस पर कंपनी को 38 करोड़ रुपये कर चुकाना था। धर के अनुसार, बोर्ड को इस बात की जरा भी जानकारी नहीं थी कि क्या चल रहा है। “वित्त की समझ सिर्फ दो निदेशकों में थी: नाम्बियार और राजघरिया। बोर्ड की एक बैठक में नाम्बियार ने पूछा, “आप इतना मुनाफा कैसे कमा सकते हैं?”

रत्नाकर बेफिक्र थे। वे वित्तीय क्षेत्र के जल्द ही उदारीकरण की उम्मीद में बड़ी योजनाओं में लगे हुए थे। जनवरी 1992 के अंत में, वे व्यापारी बैंकर विजय मेहता और हर्ष वर्धन (जो पहले वायुदूत के प्रमुख थे) से फेयरग्रोथ एयरलाइंस शुरू करने के बारे में बात कर रहे थे।

दुर्भाग्यवश, कुछ दिनों बाद, 2 फरवरी को, रत्नाकर का शानदार करियर उस समय थम गया जब दिल का दौरा पड़ने से उनका निधन हो गया। इसका मुख्य कारण था: कम यात्रा करने की अनिच्छा और अधिक अनुशासित जीवन जीने में असमर्थता। उनकी मृत्यु के कुछ ही महीनों बाद उनका संगठन ध्वस्त हो गया। उनकी असीम ऊर्जा ने उनकी ही रचना को नष्ट कर दिया। उनके चहेते शिष्यों ने सत्ता के लिए एक कड़वे संघर्ष में खुद को उलझा लिया।

संभवतः रत्नाकर को इसका पूर्वाभास था। उन्होंने वेद कपूर के दामाद और भारत में आर्थर एंडरसन के प्रमुख सिड खन्ना को समूह के लिए एक प्रबंधन संरचना सुझाने के लिए नियुक्त किया था। उन्होंने फेयरग्रोथ होल्डिंग्स लिमिटेड का गठन किया, जो एक होल्डिंग कंपनी थी, जिसके प्रमुख फेयरग्रोथ प्रबंधकीय अधिकारी थे। निदेशकों को बोर्ड की सदस्यता प्राप्त होती। इस योजना के तहत, जिसकी जानकारी धर्मपाल को थी, रत्नाकर स्वयं 30% हिस्सेदारी रखने की योजना बना रहे थे और फेयरग्रोथ फाइनेंशियल (के धर्मपाल), फेयरग्रोथ इन्वेस्टमेंट्स (केआरएन शेनॉय) और फेयरग्रोथ होम फाइनेंस (एके शेट्टी) के तीन मुख्य निदेशकों में से प्रत्येक के पास 20% हिस्सेदारी होती, तथा फेयरग्रोथ फाइनेंशियल के कार्यकारी निदेशक आर लक्ष्मीनारायण के पास 10%

हिस्सेदारी होती।

रत्नाकर की मृत्यु के एक महीने के भीतर ही यह स्पष्ट हो गया कि यह ढांचा बहुत कमजोर था। अब अपरिहार्य प्रश्न यह था कि रत्नाकर के न रहने पर शीर्ष कौन होगा? रत्नाकर के बड़े बेटे, जो बेंगलुरु में फेयरग्रोथ एजेंसीज चला रहे थे, बहुत युवा थे और धर्मपाल के समकक्ष नहीं थे। धीरे-धीरे उनकी पत्नी प्रेमा रत्नाकर का नाम स्वीकार्य होने लगा। लेकिन सभी खुले तौर पर सहमत नहीं थे। रत्नाकर के अंतिम संस्कार के बाद, कन्नन ने अध्यक्ष पद के लिए केनरा बैंक के पूर्व कर्मचारी और फिर सिंडिकेट बैंक के अध्यक्ष रहे आर एस पाई का नाम प्रस्तावित किया। लेकिन धर्मपाल के अपने विचार थे। रत्नाकर की मृत्यु के दो दिन बाद, कन्नन ने उनकी मृत्यु के बाद उन्होंने घोषणा की, "अध्यक्ष होना कोई कानूनी अनिवार्यता नहीं है।" बाद में, जब बेंगलुरु में हुई बोर्ड बैठक में आर.एस. पाई का नाम सामने आया, तो सामान्यतः शांत स्वभाव के धर्मपाल क्रोधित हो उठे। उन्होंने दावा किया कि फेयरग्रोथ की सफलता के पीछे उन्हीं जैसे पेशेवर लोगों का हाथ है और वे किसी भी बाहरी व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त करने के प्रयास का विरोध करेंगे। बोर्ड ने प्रेमा रत्नाकर को अध्यक्ष चुना।

क्या धर्मपाल स्वतंत्र रूप से काम कर रहे थे? इसका एक सुराग फेयरग्रोथ फाइनेंशियल के शेयरधारिता पैटर्न में मिलता है। शुरुआत में एक करोड़ रुपये की पूंजी सितंबर 1991 तक बढ़कर 5 करोड़ रुपये और मार्च 1992 तक, रत्नाकर की मृत्यु के दो महीने बाद, 8.6 करोड़ रुपये हो गई थी। धर ने बाद में कहा कि बोर्ड को

शेयरधारिता में हुई इस अंतिम वृद्धि का विवरण नहीं पता था।

कई नए शेयरधारकों ने इस पूंजी वृद्धि में सदस्यता ली थी। अजय कायन और पल्लव शेठ जैसे ब्रोकर, जो मूल ग्राहक थे, इस पूंजी में शामिल नहीं थे। नए प्रवेशकों में इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप को नियंत्रित करने वाले परिवार का एक गुट और चार्टर्ड ब्रोकर एस. गुरुमूर्ति शामिल थे। एक लेखाकार जो कभी द इंडियन एक्सप्रेस के लिए रिलायंस इंडस्ट्रीज के खिलाफ खोजी कहानियां लिखा करता था।

क्या वे धर्मपाल को मजबूत कर रहे थे ताकि अंततः वह फेयरग्रोथ पर कब्जा कर सके? कोई भी बोर्ड सदस्य इन नए सदस्यों के इतना करीब नहीं था जितना धर्मपाल था। हालांकि, उन्होंने फेयरग्रोथ को नियंत्रित करने के किसी भी प्रयास से इनकार किया। भले ही धर्मपाल वास्तव में धीरे-धीरे अधिग्रहण का प्रयास कर रहा था, कुछ ही लोग उसे चुनौती दे सकते थे। अन्य निदेशकों को याद है कि अप्रैल 1992 तक वह अत्यधिक आत्मविश्वास से भर गया था, क्योंकि उसने शेठ के माध्यम से शेयर व्यापार में भारी मुनाफा कमाया था, जिसके पास उसने 230 करोड़ रुपये जमा किए थे।

फेयरग्रोथ की रणनीति सरल थी: कहीं से भी और हर जगह से उधार लेना और शेयर बाजारों में निवेश करना। इसने दो मुख्य स्रोतों की पहचान की। एक था कॉर्पोरेट धन - छोटा और बड़ा - जिसमें सार्वजनिक निर्गम से प्राप्त आय भी शामिल थी। 1991 के अंत से, धर्मपाल दक्षिण और पश्चिम भारत में ऐसे कॉर्पोरेट ग्राहकों की तलाश कर रहा था। दरअसल, घोटाले की कहानी सामने आने से पहले, रत्नाकर के करीबी और फेयरग्रोथ इक्विटी का एक बड़ा हिस्सा रखने वाले कायन

को लगा कि कॉर्पोरेट धन इस तेज़ी को और बल मिल रहा था। लेकिन इसका मुख्य स्रोत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और बैंकों से प्राप्त अधिशेष धन था। इसके दो माध्यम थे: सिंडिकेट बैंक और हैदराबाद स्थित आंध्र बैंक की वित्तीय सेवा सहायक कंपनी, आंध्र बैंक फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड। बैंकों का चुनाव रत्नाकर और फेयरग्रोथ की कार्यशैली के बारे में बहुत कुछ बताता है।

विजया बैंक, सिटीबैंक, आंध्र बैंक और विशेष रूप से सिंडिकेट बैंक, जहां फेयरग्रोथ इन्वेस्टमेंट के प्रबंध निदेशक शेनॉय निवेश विभाग चलाते थे, मुद्रा बाजार के मूल खिलाड़ी थे। सिंडिकेट बैंक ने बायबैक सौदों पर आरबीआई के नियमों का उल्लंघन किया और दलालों के लिए लेनदेन का अग्रेषण किया, उन्हें बिना किसी प्रतिभूति के साफ अग्रिम राशि दी। 1987 में, इसने आरबीआई को 23 करोड़ रुपये का जुर्माना अदा किया। यह रिलायंस इंडस्ट्रीज के संदिग्ध वित्तपोषण और फिर रिलायंस के शेयरों का समर्थन करने में भी शामिल रहा है। सिंडिकेट बैंक का फेयरग्रोथ से गहरा संबंध था।

लोकप्रिय धारणा के विपरीत, रत्नाकर ने वास्तव में एन.डी. प्रभु को अपना उत्तराधिकारी बनाने के लिए तैयार नहीं किया था।

वह आर.एस. पाई को नियुक्त करने के इच्छुक थे, जो एक पूर्व कैनबैंकर, जो बाद में सिंडिकेट बैंक के अध्यक्ष बने। घोटाले का खुलासा होने के बाद, पाई के पास फेयरग्रोथ फाइनेंशियल के 35,000 शेयर पाए गए। उनके नेतृत्व में सिंडिकेट बैंक ने फेयरग्रोथ के उद्देश्यों को बखूबी पूरा किया। नवंबर 1991 में, जब बाजार में

तेजी थी और फेयरग्रोथ, हर्षद और अन्य ब्रोकरों की तरह, धन की तलाश में था, सिंडिकेट ने पोर्टफोलियो प्रबंधन योजना के तहत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से धन स्वीकार करना शुरू कर दिया। इसने 337 करोड़ रुपये एकत्र किए, जिसमें से इसने

90 करोड़ रुपये फेयरग्रोथ इन्वेस्टमेंट्स को सौंप दिए। स्पष्ट रूप से, यह पैसा फेयरग्रोथ समूह को दिया गया एक स्पष्ट अग्रिम था। घोटाले के सामने आने के तीन महीने बाद भी, 46 करोड़ रुपये से अधिक मूल्य के शेयर अभी भी फेयरग्रोथ फाइनेंशियल के नाम पर थे। सिंडिकेट बैंक ने किशोर नरोत्तमदास अमरचंद के माध्यम से लगभग 200 करोड़ रुपये का लेन-देन भी किया था, जिसके अंतिम लाभार्थी फेयरग्रोथ की दो कंपनियां थीं। यह सिंडिकेट बैंक से प्राप्त एक स्पष्ट ऋण था।

एबीएफएसएल, जैसे फेयरग्रोथ अपने शुरुआती दौर में थी। दरअसल, दोनों कंपनियां जुड़वां बच्चों की तरह पली-बढ़ीं, हालांकि कुछ मायनों में वे एक-दूसरे से बेहद अलग थीं। एक नियमबद्ध सरकारी बैंक की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी थी, जबकि दूसरी निजी क्षेत्र की कंपनी थी। फेयरग्रोथ की स्थापना अगस्त 1990 में हुई थी। आरबीआई से एबीएफएसएल की स्थापना की अनुमति 6 दिसंबर 1990 को मिली; इसका निगमन फरवरी 1991 में हुआ और इसने 1 जुलाई 1991 से कारोबार शुरू किया।

आंध्र बैंक के अध्यक्ष के.आर. नायक थे, जो इससे पहले रत्नाकर की अध्यक्षता में केनरा बैंक के महाप्रबंधक थे। एबीएफएसएल के उद्देश्य कैनफिना या फेयरग्रोथ फाइनेंशियल के समान ही व्यापक

थे: लीजिंग, मर्चेंट बैंकिंग, हायर परचेज और, निश्चित रूप से, प्रतिभूतियों की खरीद-बिक्री।
पता चला कि न तो फेयरग्रोथ और न ही एबीएफएसएल को इन सेवाओं में कोई दिलचस्पी थी। एबीएफएसएल एक साधारण ऋणदाता बन गया और फेयरग्रोथ एक उधारकर्ता-सह-निवेशक। उन्होंने वित्तीय गतिविधियों की एक विस्तृत श्रृंखला को खंगाला, ताकि सबसे लाभदायक और तार्किक व्यावसायिक क्षेत्र तक पहुँच सकें। कैनफिना, स्टैनचार्ट और सिटीबैंक की तरह, एबीएफएसएल भी आरबीआई के पीएमएस संबंधी दिशानिर्देशों को बेधड़क दरकिनार करते हुए हजारों करोड़ रुपये जुटा रहा था। दूसरी ओर, फेयरग्रोथ ने हर्षद, हितेन दलाल या सिटीबैंक की तरह, बाजार में सक्रिय रहने के लिए धन का एक स्रोत खोज लिया था।
रणनीति यह थी कि एबीएफएसएल विभिन्न सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से ऋण लेगा और उस धन को फेयरग्रोथ को 'सुरक्षा रसीद' के बदले एक निश्चित प्रतिफल पर सौंप देगा।
फेयरग्रोथ बदले में उस धन को तेजी से बढ़ते शेयर बाजारों में निवेश करेगा। एक वर्ष के भीतर, एबीएफएसएल ने भी तेजी से ऋण लेना शुरू कर दिया। जून 1992 की शुरुआत में, जब घोटाले के खुलासे के बाद कंपनी का कामकाज ठप हो गया, तब तक उसके पास 'निवेश सेवा' मद के अंतर्गत 188 करोड़ रुपये और 'अंतर-कॉर्पोरेट जमा' के रूप में 400 करोड़ रुपये से अधिक की राशि थी। इसमें 493 करोड़ रुपये की भौतिक संपत्ति, 96 करोड़ रुपये की बैंक रसीदें और शेष राशि हैदराबाद और मुंबई के बैंक खातों में जमा थी। फेयरग्रोथ, जिसने 1769 करोड़ रुपये प्राप्त किए, एबीएफएसएल के पैसे का उपयोग करने वाली अकेली कंपनी नहीं थी। हितेन दलाल को 1156 करोड़ रुपये, स्टैनचार्ट को 522 करोड़ रुपये, ब्रोकर वीबी देसाई को

115 करोड़ रुपये और नेशनल हाउसिंग बैंक को 194 करोड़ रुपये मिले। ये सभी कंपनियां शेयर बाजार में निवेश करने के लिए इस पैसे का इस्तेमाल कर रही थीं।
फेयरग्रोथ के साथ निष्पक्षता बरतते हुए, यह कहा जा सकता है कि वह एबीएफएसएल की जानकारी के बिना उसके पैसे का दुरुपयोग नहीं कर सकती थी। लेकिन घोटाले के सामने आने के बाद, एबीएफएसएल ने इस मामले पर आक्रोश जताया, खुद को निर्दोष साबित करने की कोशिश की और दावा किया कि उसके साथ धोखा हुआ है। “उन्हें पता था कि पैसा बाज़ार संचालन में लगाया जा रहा है,” धर्मपाल ने कहा। “हम उन्हें 25-30%, और कभी-कभी तो 40% तक का रिटर्न कैसे दे सकते थे, यह इस बात पर निर्भर करता था कि उधार की दर क्या थी? समझौता यह था कि फेयरग्रोथ सिक्योरिटी रसीदें या ‘ट्रस्ट रसीदें’ जारी करेगा और गलत तरीके से यह घोषित करेगा कि एबीएफएसएल की ओर से बॉन्ड या यूनिट खरीदे गए हैं। वास्तव में, वह पैसा बाज़ार में लगाया जाएगा और जब तक ब्याज के चेक आते रहेंगे, एबीएफएसएल को डिलीवरी की मांग नहीं करनी थी।”

जब 23 अप्रैल को घोटाले की कहानी सामने आई, तो हर बैंक की तरह, एबीएफएसएल ने भी जल्दबाजी में अपने संचालन को साफ करना शुरू कर दिया। उसने फेयरग्रोथ से अप्रैल के अंत तक एसआर में उल्लिखित सभी सिक्योरिटीज देने को कहा। जाहिर है, ये मौजूद ही नहीं थीं। पैसा शेयरों के रूप में था और इसका कुछ हिस्सा ब्रोकरों के पास जमा था। ब्रोकरों की हड़ताल के कारण स्टॉक एक्सचेंज बंद होने की वजह से फेयरग्रोथ तुरंत अपनी होल्डिंग्स को बेचकर एसआर में उल्लिखित यूनिट और बॉन्ड नहीं खरीद सका।

मई 1992 के अंत में, जब तेजी से बढ़ती फेयरग्रोथ के संकट में होने की अफवाहें बाजार में फैलने लगीं, तो धर्मपाल ने, घोटाले में शामिल अन्य सभी लोगों की तरह, इन अफवाहों का दृढ़ता से खंडन किया।
मई के तीसरे सप्ताह में, आर लक्ष्मीनारायण सिंगापुर से लौटे। 24 मई को, उन्हें कमी और
संदिग्ध जालसाजी के बारे में पता चला। 28 मई को, उन्होंने धर्मपाल को इसके बारे में बताया। असहाय धर्मपाल ने जानकारी को दबाने की कोशिश की। यहां तक कि उनके करीबी अधिकारियों को भी सच्चाई नहीं बताई गई। आधिकारिक तौर पर, फेयरग्रोथ ने घोषणा की कि उस पर केवल 3-4 करोड़ रुपये का बकाया है।
तभी आरबीआई गवर्नर ने आंध्र बैंक के अध्यक्ष,
के.आर. नायक को बुलाया, और फेयरग्रोथ का खेल खत्म हो गया। 17 जून को, एस.एस. तारापोर और आर जनकीरामन ने एबीएफएसएल को फेयरग्रोथ के साथ अपने बकाया का पूरा विवरण प्रस्तुत करने का आदेश दिया। एबीएफएसएल द्वारा प्रस्तुत विवरण आरबीआई को संतुष्ट नहीं कर सका।
अगला दिन निर्णायक था। 18 जून को एबीएफएसएल को 100 करोड़ रुपये का भुगतान देय हो गया। फेयरग्रोथ ने भुगतान में चूक की।
20 जून को आरबीआई ने एक बार फिर एबीएफएसएल के पास मौजूद संपत्तियों की बकाया स्थिति और वसूली योग्य मूल्य के बारे में पूछा। जो जानकारी सामने आई, वह थी फेयरग्रोथ की
एबीएफएसएल के प्रति 240 करोड़ रुपये की देनदारी, जिसके बदले में फेयरग्रोथ ने बेंगलुरु में 151 करोड़ रुपये के शेयर और 70 करोड़ रुपये के बॉन्ड तथा मुंबई में 19 करोड़ रुपये के शेयर और 32 करोड़ रुपये के बॉन्ड जमा किए थे। कागजों पर तो यह ठीक लग रहा

था, लेकिन यह सिर्फ कागजी कार्रवाई थी। फेयरग्रोथ के पास वास्तव में कोई संपत्ति नहीं थी।

25 जून को, 100 करोड़ रुपये के भुगतान की देय तिथि के ठीक एक सप्ताह बाद, एबीएफएसएल ने आर लक्ष्मीनारायण को बताया कि वह अपने पास मौजूद प्रतिभूतियों को बेचकर अपना बकाया चुका देगा। लक्ष्मीनारायण ने उनसे अनुरोध किया कि वे कुछ समय के लिए रुकें क्योंकि बाजार मंदी में था। इसके बजाय, फेयरग्रोथ ने एबीएफएसएल को 150 करोड़ रुपये के बॉन्ड और इक्विटी शेयर की पेशकश की। अंततः उसने 101.59 करोड़ रुपये मूल्य के वित्तीय उपकरण वितरित किए। अगले दिन, आरबीआई के अधिकारी बेंगलुरु और मुंबई स्थित एबीएफएसएल के कार्यालयों में पहुंचे और प्रमाणपत्रों की फोटोकॉपी ले लीं। तीन दिन बाद, वे फेयरग्रोथ के बेंगलुरु कार्यालय गए और प्रतिभूतियों को जब्त कर लिया। ये जाली थीं। जाहिर तौर पर, बेंगलुरु कार्यालय के किसी व्यक्ति ने तीन यूटीआई प्रमाणपत्रों का मूल्य बढ़ाने के लिए उनमें कुछ शून्य जोड़ दिए थे। अन्य प्रतिभूतियों में, 9% एचयूडीको बॉन्ड (45 करोड़ रुपये) और 9% एनटीपीसी बॉन्ड (15 करोड़ रुपये) के आवंटन पत्र नकली थे। मुंबई में जमा किए जाने वाले 19 करोड़ रुपये के यूनिट्स के लिए यूटीआई से केवल एक पावती ही मिली थी। फेयरग्रोथ को यूटीआई से प्रमाणपत्र लेने थे और उन्हें एबीएफएसएल को सौंपना था। उसने प्रमाणपत्र प्राप्त कर लिए, लेकिन उन्हें एबीएफएसएल को नहीं सौंपा। अंत में, एबीएफएसएल के पास फर्जी आवंटन पत्र, छेड़छाड़ किए गए यूनिट प्रमाणपत्र और 20% छूट पर अंकित 42 करोड़ रुपये के बॉन्ड रह गए। फेयरग्रोथ को 206.42 करोड़ रुपये की कमी थी। इसके विपरीत, एबीएफएसएल के पास 101.59

करोड़ रुपये के शेयर और बॉन्ड थे, जिससे लगभग 105 करोड़ रुपये का शुद्ध बकाया रह गया।

एबीएफएसएल के प्रबंध निदेशक, वाई सुंदर बाबू, अधिक प्रतिभूतियां जुटाने के लिए 2 जुलाई को मुंबई गए। लेकिन आरबीआई और इंतजार करने को तैयार नहीं था। उसने उसी दिन औपचारिक शिकायत दर्ज कराई और फेयरग्रोथ की संपत्तियों को जब्त कर लिया गया। फेयरग्रोथ बोर्ड की अगले दिन मुंबई में एक आपातकालीन बैठक हुई, जिसमें सुंदर बाबू विशेष आमंत्रित थे।
बोर्ड ने आश्वासन दिया कि वह कमी को पूरा करने के लिए पर्याप्त शेयर, प्राप्य और पट्टे पर ली गई संपत्तियां उपलब्ध कराएगा। प्रस्ताव को बैठक के विवरण में दर्ज किया गया और प्रेमा रत्नाकर ने हस्ताक्षर किए। फेयरग्रोथ की 22 जून तक की संपत्ति और देनदारियों का विवरण आरबीआई के पास दाखिल किया गया।
इसमें 33.54 करोड़ रुपये का अधिशेष दिखाया गया। फेयरग्रोथ बोर्ड की 5 और 6 जुलाई को बेंगलुरु में फिर से बैठक हुई और उसने एबीएफएसएल को एक पत्र सौंपा जिसमें 84.87 करोड़ रुपये की प्रतिभूतियां, 10 करोड़ रुपये के शेयर और 20.41 करोड़ रुपये के अल्पकालिक ऋण आरक्षित किए गए थे। आरबीआई को इस तरह के आरक्षण पर आपत्ति जतानी चाहिए थी, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। हालांकि, राज्यपाल ने फेयरग्रोथ को वित्तीय सहायता देने के अनुरोध को ठुकरा दिया।
एबीएफएसएल बोर्ड ने मद्रास में एक आपातकालीन बैठक की और महाप्रबंधक बी श्रीनिवास राव को बॉम्बे जाकर विशेष न्यायालय में याचिका दायर करने के लिए अधिकृत किया ताकि फेयरग्रोथ की कुछ संपत्तियां, जो

एबीएफएसएल के लिए आरक्षित की गई थीं, जारी की जा सकें। 13 जुलाई को राव घोटाले की रकम वसूलने के लिए विशेष न्यायालय के तहत नियुक्त संरक्षक एके मेनन के पास गए। उन्होंने राव को जाने- माने वकील अतुल सेतलवाड से मिलवाया। सेतलवाड ने राव को विशेष न्यायालय में याचिका दायर करने के लिए मेनन की मदद लेने की सलाह दी। एबीएफएसएल के अधिकारी मेनन के संपर्क में रहे, जिन्होंने एबीएफएसएल के दावे के आधार पर विशेष न्यायालय में आवेदन करने का वादा किया।

दावा 25 जुलाई को अंतिम रूप दिया गया, और उसके बाद राव और सुंदर बाबू ने वित्त मंत्रालय के आर्थिक मामलों के विभाग में सलाहकार अशोक देसाई से मुलाकात की। इसी समय मेनन ने अचानक अपना इरादा बदल दिया और एबीएफएसएल को स्वयं विशेष न्यायालय में याचिका दायर करने के लिए कहा। मेनन, अटॉर्नी जनरल और सीएसई के अध्यक्ष अजीत डे के साथ लंबी चर्चा के बाद, यह निर्णय लिया गया कि विशेष न्यायालय अध्यादेश लागू होने से पहले रखे गए खाली हस्तांतरण वाले प्रतिभूतियों को एबीएफएसएल को हस्तांतरित कर दिया जाएगा। यह राशि 135 करोड़ रुपये थी। फेयरग्रोथ के पास मौजूद तृतीय पक्ष संपत्तियों के लिए, जिन्हें कुर्क किए जाने के बाद चिह्नित किया गया था, एबीएफएसएल आंध्र बैंक के नाम पर उन्हें हस्तांतरित करने के लिए विशेष न्यायालय में आवेदन करेगा।

19 जुलाई को, एबीएफएसएल ने सीबीआई में औपचारिक शिकायत दर्ज कराई और विशेष न्यायालय अध्यादेश से पहले और बाद में उसके पास मौजूद संपत्तियों को जारी कराने का प्रयास किया। यह एक और उदाहरण था जहां आपराधिक प्रवृत्ति ने व्यावसायिक हितों को

दरकिनार कर दिया। धर्मपाल के अनुसार, फेयरग्रोथ के पास एबीएफएसएल को देय राशि से अधिक संपत्ति हमेशा से ही थी। दिसंबर में भी, जब बीएसई का संवेदनशील सूचकांक गिरकर 2000 पर आ गया था, तब भी फेयरग्रोथ की संपत्ति 5 करोड़ रुपये से अधिक थी। लेकिन यह पैसा फेयरग्रोथ के पास नहीं था। इसका एक बड़ा हिस्सा पल्लव शेठ जैसे दलालों के पास था। जब घोटाला सामने आया, तब शेठ पर फेयरग्रोथ का 105 करोड़ रुपये बकाया था। अप्रैल के अंत से जून 1992 के बीच, उन्होंने लगभग 45 करोड़ रुपये का भुगतान किया था। जुलाई में, जब एबीएफएसएल ने अपनी आपराधिक शिकायत दर्ज कराई, तब भी फेयरग्रोथ पर शेठ का 60 करोड़ रुपये बकाया था, जबकि फेयरग्रोथ पर एबीएफएसएल का कुल बकाया 100 करोड़ रुपये से थोड़ा अधिक था।

सीबीआई को पैसे की वसूली में कोई खास दिलचस्पी नहीं थी। 21 अगस्त को, उसने यूनिट प्रमाणपत्रों में जालसाजी करने वाले सहायक उपाध्यक्ष आर गणेश और उपाध्यक्ष एस श्रीनिवासन को गिरफ्तार किया। बाद में, सीबीआई के खिलाफ दायर एक मामले में, उन्होंने शिकायत की कि जब वे बेंगलुरु के आरटी नगर स्थित सीबीआई कार्यालय गए, तो डीएसपी डीबी देसाई के नेतृत्व में तीन अधिकारियों ने श्रीनिवासन को प्रताड़ित किया।
उन्होंने श्रीनिवासन को लात-घूंसे मारकर और घूंसे मारकर जबरन धर्मपाल को जालसाजी में फंसाने का बयान लेने की कोशिश की। श्रीनिवासन ने इनकार कर दिया। तब उन्होंने उसे पीटना शुरू कर दिया। अधिकारियों ने धमकी दी कि अगर उसने बयान पर हस्ताक्षर नहीं किए तो उसे गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया जाएगा।

श्रीनिवासन ने हस्ताक्षर कर दिए, लेकिन बाद में मुक्के वापस ले लिए। एक अन्य पुलिस शिकायत में,
फेयरग्रोथ के एक अन्य गिरफ्तार कर्मचारी गोपाल शंकर अय्यर ने दावा किया कि 28 अगस्त को उन्हीं तीन अधिकारियों ने धर्मपाल को फंसाने वाले बयान पर हस्ताक्षर करने के लिए उसे प्रताड़ित किया था।

7 सितंबर को, सीबीआई ने धर्मपाल और लक्ष्मीनारायण को गिरफ्तार कर लिया। रत्नाकर बहुत पहले सीबीआई के जाल से बच निकला था, लेकिन उसके आदमी अब पकड़े गए। उनके मेंटर की ऊर्जा, प्रतिनिधिमंडल की शैली और 'प्रदर्शन' पर जोर देने के कारण ही वे इस घोटाले में फंस गए थे।
असल में, फेयरग्रोथ अकेली रत्नाकर की बनाई चीज़ नहीं थी जो खराब थी; आखिर यह कैनफिना और कैनम्यूचुअल, जो रत्नाकर के पहले के एक्सपेरिमेंट थे, की पैदाइश थी। ये दोनों भी स्कैम से तबाह हुए थे, ठीक वैसे ही कारणों से जैसे फेयरग्रोथ बर्बाद हुआ था। 1994 में, कलकत्ता के एक विवादित रियल एस्टेट डेवलपर, आचार्य अरुण देव, एक बचाने वाले के तौर पर सामने आए। धर्मपाल की बनाई एक डील में, उन्होंने फेयरग्रोथ में रत्नाकर का हिस्सा ले लिया और कुछ समय तक कॉन्सेप्ट कम्युनिकेशंस – एक फाइनेंशियल एडवरटाइजिंग एजेंसी के मालिक निर्मल सुचांती के साथ कंपनी चलाई।
हालांकि, अरुण देव दूसरी दिक्कतों में फंस गए और उन्होंने अपना हिस्सा हीरा व्यापारी करसन पटेल को बेच दिया। फेयरग्रोथ ने अपने सभी इंस्टीट्यूशनल कर्ज़ चुका दिए, IT अधिकारियों के साथ

एक सेटलमेंट किया और अब उस पर कोई बाहरी देनदारी नहीं है। यह डी- नोटिफाई होने वाली पहली स्कैम-प्रभावित एंटिटी बन सकती है।

13

अजीब बातें

कैनफिना और कैनम्यूचुअल के साथ-साथ फेयरग्रोथ की कहानी इस बात का उदाहरण है कि
इस स्कैम के पीछे किस तरह की फाइनेंशियल हिम्मत है।

इन लोगों को देखिए। लोगों की नज़र में ये सभी इस स्कैम में संदिग्ध थे: फेयरग्रोथ के के धर्मपाल, आर लक्ष्मीनारायण और केआरएन शेनॉय, आंध्रा बैंक के केआर नायक, सिंडिकेट बैंक के आरएस पई, कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज़ के अशोक कुमार, कैनबैंक म्यूचुअल फंड के अनिल नरिचानिया। इन सभी के प्रोफेशनल पैरेंट एक ही थे। ये सभी बी रत्नाकर के आदमी थे, जिन्होंने उनके साथ केनरा बैंक, कैनफिना या कैनम्यूचुअल में मिलकर काम किया था, ये दोनों मनी और स्टॉक मार्केट के सबसे एग्रेसिव और लापरवाह ऑपरेटर थे।
हर्षद मेहता, पल्लव शेठ और अजय कायन ने पैसा कमाया। स्टैनचार्ट ने सब गँवा दिया। लेकिन अगर कैनफिना और कैनम्यूचुअल मार्केट प्लेयर्स को सैकड़ों करोड़ रुपये नहीं दे रहे होते, तो कोई पैसा न डूबता और न ही मिलता। कैश या तो पब्लिक सेक्टर कंपनियों से कैनफिना में आता था या आम घरों और दूसरे बैंकों से कैनम्यूचुअल में आता था। वहां से, यह पेरेंट बैंक के खजाने में और फिर कुछ

चुनिंदा, पसंदीदा ब्रोकर्स के ग्रुप की जेब में जाता था, जिनके बीच गलत रिश्तों का एक नेटवर्क था। इस प्रोसेस में, उन सभी ने दूर के रिश्ते, इनसाइडर ट्रेडिंग, सही जानकारी और अपने भरोसेमंद क्लाइंट्स के प्रति ज़िम्मेदारी जैसे वेस्टर्न नियमों को तोड़ा। कैनफिना और कैनम्यूचुअल के साथ-साथ फेयरग्रोथ की कहानी इस फाइनेंशियल हिम्मत का उदाहरण है जिसने इतने बड़े स्कैम को जन्म दिया।
जब स्कैम सामने आया, तो कैनफिना के पास बैंक ऑफ कराड द्वारा जारी किए गए 374.35 करोड़ रुपये के बेकार बैंक रिसीट/सब्सिडियरी जनरल लेजर पाए गए, जिसमें हितेन दलाल के ज़रिए किए गए तीन ट्रांज़ैक्शन शामिल थे। कैनम्यूचुअल भी हितेन दलाल के साथ किए गए दो ट्रांज़ैक्शन में 103.82 करोड़ रुपये के बैंक ऑफ़ कराड BRs के बाउंस होने के मामले में फंसा हुआ था। एक ट्रांज़ैक्शन 2008 के 11.5% सेंट्रल लोन का 58.39 करोड़ रुपये का था। कैनम्यूचुअल ने बाउंस हुए बैंक ऑफ़ कराड SGL को अपने SGL से बदल दिया, इसे सिटीबैंक को बेच दिया, वापस ले लिया और सितंबर 1991 में स्टैनचार्ट को फिर से बेच दिया। SGL फिर से बाउंस हो गया और स्टैनचार्ट ने कैनम्यूचुअल पर कानूनी दावा किया। कैनफिना और कैनम्यूचुअल का पैसा असल में बैंक ऑफ़ कराड में अभय नरोत्तम के अकाउंट में चला गया था। इस सब में शामिल कैनम्यूचुअल का अधिकारी अनिल नरिचानिया, असिस्टेंट जनरल मैनेजर था। ये ट्रांज़ैक्शन सिर्फ़ उदाहरण के लिए हैं। ये उन सभी चीज़ों को नहीं दिखाते जो कैन ट्विन्स ने तब से की थीं, जब से वे बने थे। सबसे पहले कैनफिना आया, जो जून 1987 में लॉन्च हुआ। रत्नाकर ने इसे मैनेज करने के लिए अपने सबसे युवा और होशियार लोगों को चुना, उन्हें आइडिया दिए और उन्हें अपने दम पर

काम करने की आज़ादी दी। उनके सबसे सफल शागिर्दों में से एक आर कन्नन थे, जो स्टैनचार्ट में इन्वेस्टमेंट बैंकिंग के हेड थे, जब बैंक में स्कैम हुआ था। कन्नन ने कैनफिना में अपनी स्किल्स को और बेहतर किया था, जहाँ वह एक मर्चेंट बैंकर थे, और कंपनियों के पब्लिक इश्यू बनाने से शुरुआत की थी। रत्नाकर ने उन्हें केनरा बैंक के एक अनजान डिपार्टमेंट से लिया और मर्चेंट बैंक में पोस्ट किया। 1987 में, जब कैनफिना ने काम करना शुरू किया, तो कन्नन एक स्केल III, मिडिल मैनेजमेंट ऑफिसर थे। उन्होंने तेज़ी से बढ़ते मार्केट में अच्छा परफॉर्म करने के लिए खुद को कड़ी मेहनत करने के लिए मजबूर किया और एक साल के अंदर सीनियर वाइस-प्रेसिडेंट बन गए। अगले तीन सालों में, वह एग्जीक्यूटिव वाइस-प्रेसिडेंट और फिर एग्जीक्यूटिव डायरेक्टर बने।
कैनफिना, SBI कैपिटल मार्केट्स का रत्नाकर का जवाब था, जिसे इसने डेडिकेशन और एंटरप्राइज के साथ क्लाइंट्स को सर्विस देकर पीछे छोड़ दिया था। कैनफिना के उस समय के मैनेजिंग डायरेक्टर जीए शेनाई ने 1988 में बिज़नेसवर्ल्ड मैगज़ीन को यह कहानी सुनाई थी। कैनफिना न्यूक्लियर पावर कॉर्पोरेशन के बॉन्ड इश्यू को हैंडल कर रहा था। NPC प्रॉस्पेक्टस को फाइनल करने से एक दिन पहले, उन्हें एहसास हुआ कि एक और सिग्नेचर की ज़रूरत है। प्रॉस्पेक्टस अगले दिन फाइल किया जाना था लेकिन NPC चेयरमैन दिल्ली में थे। कैनफिना ने उसी रात अपने एक ऑफिसर को दिल्ली भेजा। उसने सिग्नेचर लिया और अगली सुबह प्रॉस्पेक्टस फाइल करने के लिए समय पर लौट आया। यह एक पब्लिक सेक्टर मर्चेंट बैंक के लिए असामान्य और प्रभावशाली था।
इस तरह के काम का दूसरा पहलू लापरवाही थी। SBI कैपिटल मार्केट्स और कैनफिना ज़्यादा से ज़्यादा पब्लिक इश्यू को

हैंडल करने की पागल दौड़ में शामिल हो गए। यह मुकाबला अपने आप में एक अंत बन गया और कैनफिना ने कई प्रोमो को सपोर्ट किया।

गलत पब्लिक इश्यू लाने में SBI कैपिटल मार्केट्स ने अपने पेरेंट बैंक की ताकत और पहुंच का इस्तेमाल किया, जिससे कंपनियों को उसे मर्चेंट बैंकिंग मैंडेट देने के लिए मजबूर होना पड़ा। दूसरी ओर, कैनफिना ने उन कंपनियों की पहचान की, जिन्हें पब्लिक होना चाहिए था और उन्हें एक्टिवली मनाया और प्रोजेक्ट्स और फाइनेंसिंग पर सलाह दी। इन दोनों द्वारा मार्केट और प्रमोट किए गए इनमें से कई इश्यू 1984 और 1985 में मार्केट में आए, जो एक ज़बरदस्त बुल रन की ऊंचाई पर थे, जिसने पहली बार कैपिटल मार्केट में छोटे इन्वेस्टर्स की भीड़ को खींचा। कई कंपनियों ने इसका फायदा उठाकर पैसा उठाया और भाग गईं। इनमें से कुछ इश्यू को तीन डेवलपमेंट फाइनेंस इंस्टीट्यूशन्स ने अप्रेज और फंड भी किया था।
एक लीड मैनेजर के तौर पर, कैनफिना के ऑपरेशन्स पब्लिक को साफ दिख रहे थे। बॉन्ड ट्रेडिंग में इसकी लापरवाही सिर्फ क्लोज्ड मनी मार्केट में ही पता थी। यह इतना एग्रेसिव था कि एक समय पर यह PSUs के लगातार तेरह बॉन्ड इश्यू लेने में कामयाब रहा, खासकर केनरा बैंक के डिपॉजिट्स को बढ़ाने के लिए। यह इलाका एमके अशोक कुमार का था, जिन पर बैंक ऑफ़ कराड के 374 करोड़ रुपये के BRs और SGLs के लिए कैनफिना को खुला छोड़ने में क्रिमिनल लापरवाही का आरोप था।
एक ब्रोकर के मुताबिक, अक्सर जब दूसरे ब्रोकर और बैंक अधिकारी बॉन्ड जारी करने वाले PSU के फाइनेंस डायरेक्टर के कमरे के

बाहर इंतज़ार करते थे, तो अशोक कुमार अंदर जाते और पूरा मामला लेकर चले जाते थे। कैनफिना ने पेरेंट बैंक, पब्लिक सेक्टर कंपनियों और खास ब्रोकरों के साथ अलायंस के नेटवर्क के ज़रिए उनमें तेज़ी से ट्रेड किया। असल में, जुलाई और नवंबर 1991 में कैनफिना का 9% इंडियन रेलवे फाइनेंस कॉर्पोरेशन बॉन्ड की अनजाने में खरीद सबसे लापरवाही भरे कामों में से एक थी, जिसने मार्केट प्लेयर्स को कमर्शियल फ्रॉड में धकेल दिया। अप्रैल 1991 में बॉन्ड पर इंटरेस्ट रेट्स लिबरलाइज़ होने के बाद से इन बॉन्ड की वैल्यू कम हो गई। ऐसे नुकसान को छिपाना इस स्कैम के पीछे की मुख्य वजहों में से एक था। लेकिन कैनफिना के बारे में बाद में।
कैनम्यूचुअल की अपनी ही मुश्किलें थीं। इसे ब्रोकर्स के एक छोटे ग्रुप और पेरेंट बैंक की प्राइवेट जागीर के तौर पर इस्तेमाल किया जा रहा था। यह खास तौर पर इसलिए शर्मनाक था क्योंकि CanMutual का दावा था कि यह एक हाई-परफॉर्मिंग फंड है, जिसे “छोटे इन्वेस्टर्स” सब्सक्राइब करते हैं। फंड्स दूसरे बैंकों और ब्रोकर्स से आते थे। बदले में, CanMutual अपने फंड्स को अपने बड़े “इन्वेस्टर्स” के कहने पर चलाने के लिए तैयार हो गया। CanMutual का फ्रॉड पहले दिन से ही शुरू हो गया था, लेकिन चार साल बाद GV रामकृष्ण के अंडर SEBI के इंस्पेक्शन की वजह से इसका पर्दाफाश हुआ। शुरू से ही, CanMutual एक अनरेगुलेटेड माहौल में काम करता था, जिसे रत्नाकर की बेहिसाब एनर्जी चलाती थी। यह बात CanMutual के बनने के तरीके से भी साफ थी।

28 फरवरी 1987 को शाम 6 बजे, रत्नाकर नई दिल्ली के क्लैरिजेस होटल में एक टेलीविज़न के सामने बैठकर राजीव गांधी को बजट

स्पीच देते हुए देख रहे थे। गांधी ने ऐलान किया कि इंडियन पब्लिक सेक्टर बैंकों को म्यूचुअल फंड शुरू करने की इजाज़त दी जाएगी। रत्नाकर मुश्किल से स्पीच खत्म होने का इंतज़ार कर रहे थे। उन्होंने कुछ स्टेशनरी ली और जल्दी से म्यूचुअल फंड शुरू करने के लिए एक एप्लीकेशन का ड्राफ्ट तैयार किया। इसे टाइप करके अगली सुबह फाइनेंस मिनिस्ट्री भेज दिया गया, जिससे केनरा बैंक दूसरे उम्मीदों से आगे निकल गया। केनरा बैंक इसका हकदार था। रत्नाकर ने 1985 में ही RBI को म्यूचुअल फंड शुरू करने की परमिशन के लिए लिखा था। लेकिन बैंक की कुछ नया करने और एक्सपेरिमेंट करने की इच्छा को RBI के नियमों के पक्के अधिकारी लगातार रोकते रहे। आखिरकार, 19 दिसंबर 1987 को बड़े जोश के साथ केन म्यूचुअल शुरू हुआ। सुपरबैंकर रत्नाकर की शुरुआत होने के अलावा, यह बड़ी UTI के बाहर पहला म्यूचुअल फंड था। रत्नाकर ने इसे शुरू करने के लिए कैनफिना से एक ग्रुप बनाया, और के धर्मपाल को ग्रुप का हेड बनाने के लिए कहा। उसी समय, SBI कैपिटल मार्केट्स ने SBI म्यूचुअल फंड शुरू करने की तैयारी की। दोनों ने परमिशन के लिए RBI में अप्लाई किया। जैसे-जैसे स्कीम फाइनल हो रही थीं, बैंकों में टेंशन साफ दिख रही थी। रत्नाकर न सिर्फ़ कैनबैंक की स्कीम को सबसे पहले लाना चाहते थे, बल्कि रिटर्न के मामले में भी SBI से आगे निकलना चाहते थे। हैरानी की बात नहीं है कि कैनबैंक ने SBI मैग्नम के 12% से ज़्यादा के “अश्योर्ड” रिटर्न की घोषणा का इंतज़ार किया और फिर 12.5% से ज़्यादा रिटर्न की घोषणा की।

दरअसल, फेयरग्रोथ रत्नाकर की एकमात्र ऐसी कंपनी नहीं थी जो विवादों में घिरी थी; आखिरकार, यह रत्नाकर के पहले के प्रयोगों, कैनफिना और कैनम्यूचुअल की ही संतान थी। ये दोनों कंपनियां भी घोटालों से बुरी तरह प्रभावित हुईं, और इसके कारण फेयरग्रोथ के पतन के कारणों से काफी मिलते-जुलते थे।

1994 में, कलकत्ता स्थित विवादास्पद रियल एस्टेट डेवलपर आचार्य अरुण देव एक उद्धारकर्ता के रूप में सामने आए। धर्मपाल द्वारा आयोजित एक समझौते के तहत, उन्होंने फेयरग्रोथ में रत्नाकर की हिस्सेदारी ले ली और कुछ समय के लिए कॉन्सेप्ट कम्युनिकेशंस (एक वित्तीय विज्ञापन एजेंसी) के मालिक निर्मल सुचांती के साथ मिलकर कंपनी का संचालन किया।

हालांकि, अरुण देव अन्य समस्याओं में फंस गए और उन्होंने अपनी हिस्सेदारी हीरा व्यापारी करसन पटेल को बेच दी। फेयरग्रोथ ने अपने सभी संस्थागत ऋणों का भुगतान कर दिया, आयकर अधिकारियों के साथ समझौता कर लिया और अब उस पर कोई बाहरी देनदारी नहीं है। यह घोटाला प्रभावित पहली ऐसी कंपनी बन सकती है जिसे डी-नोटिफाई किया जाएगा।

एक जटिल जाल

कैनफिना और कैनम्यूचुअल के साथ-साथ फेयरग्रोथ की कहानी इस घोटाले की जड़ में छिपी वित्तीय धृष्टता का उदाहरण है।

इन लोगों को देखिए। आम जनता की नज़र में ये सभी घोटाले के संदिग्ध थे: फेयरग्रोथ के के धर्मपाल, आर लक्ष्मीनारायण और केआरएन शेनॉय, आंध्र बैंक के केआर नायक, सिंडिकेट बैंक के आरएस पाई, कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज के अशोक कुमार, कैनबैंक म्यूचुअल फंड के अनिल नारिचानिया। इन सभी का एक ही पेशेवर पृष्ठभूमि थी। ये सभी बी रत्नाकर के आदमी थे, जिन्होंने केनरा बैंक, कैनफिना या कैनम्यूचुअल में उनके साथ मिलकर काम किया था। कैनम्यूचुअल, जिनमें से आखिरी दो मुद्रा और शेयर बाजार में सबसे आक्रामक और लापरवाह संचालकों में से थे, ने इन सभी के साथ मिलकर काम किया था।

हर्षद मेहता, पल्लव शेठ और अजय कायन ने पैसा कमाया। स्टैनचार्ट ने इसे गंवा दिया। लेकिन अगर कैनफिना और कैनम्यूचुअल ने बाजार के खिलाड़ियों को करोड़ों रुपये उपलब्ध नहीं कराए होते, तो न तो कोई पैसा गंवाया जाता और न ही कमाया जाता। यह पैसा या तो सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से कैनफिना में आया या आम घरों और अन्य बैंकों से कैनम्यूचुअल में। वहां से यह पैसा मूल बैंक के खजाने में और चुनिंदा, पसंदीदा दलालों के एक समूह की जेबों में चला गया, जो आपस में घनिष्ठ संबंधों के जाल में फंसे हुए थे। इस प्रक्रिया में, उन्होंने निष्पक्ष संबंधों, इनसाइडर ट्रेडिंग, पर्याप्त खुलासे और अपने ग्राहकों के प्रति उत्तरदायित्व जैसे पश्चिमी मानकों का उल्लंघन किया। कैनफिना और कैनम्यूचुअल के साथ-साथ फेयरग्रोथ की कहानी, इस तरह के वित्तीय दुस्साहस का उदाहरण है जिसने इतने बड़े घोटाले को जन्म दिया।

जब घोटाला सामने आया, तो पता चला कि कैनफिना के पास बैंक ऑफ कराड द्वारा जारी 374.35 करोड़ रुपये की बेकार बैंक रसीदें/सहायक सामान्य खाता बही थीं, जो हितेन दलाल के माध्यम से किए गए तीन लेन-देन से संबंधित थीं। कैनम्यूचुअल भी हितेन दलाल के साथ किए गए दो लेन-देन में बैंक ऑफ कराड की 103.82 करोड़ रुपये की बाउंस हुई बैंक रसीदों में फंसा हुआ था। एक मामला 2008 के 11.5% ब्याज दर वाले केंद्रीय ऋण के 58.39 करोड़ रुपये का था। कैनम्यूचुअल ने बैंक ऑफ कराड के दिवालिया हो चुके एसजीएल को अपने बैंक से बदल दिया, उसे सिटीबैंक को बेच दिया, फिर उसे वापस हासिल कर लिया और सितंबर 1991 में स्टैनचार्ट को बेच दिया। एसजीएल फिर से दिवालिया हो गया और स्टैनचार्ट ने कैनम्यूचुअल पर कानूनी दावा किया। दरअसल, कैनफिना और कैनम्यूचुअल का पैसा अभय नरोत्तम के बैंक ऑफ कराड स्थित खाते में गया था। इस पूरे मामले में शामिल कैनम्यूचुअल के अधिकारी अनिल नारिचानिया थे, जो सहायक महाप्रबंधक थे। ये लेन-देन केवल उदाहरण मात्र हैं। ये कैन की स्थापना के बाद से उनके द्वारा किए गए सभी कार्यों का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं।

सबसे पहले जून 1987 में कैनफिना की शुरुआत हुई। रत्नाकर ने इसके प्रबंधन के लिए अपने सबसे युवा और प्रतिभाशाली लोगों को चुना, उन्हें विचार दिए और उन्हें अपने दम पर काम करने की स्वतंत्रता दी। उनके सबसे सफल शिष्यों में से एक आर. कन्नन थे, जो स्टैनचार्ट में निवेश बैंकिंग के प्रमुख थे, जब बैंक घोटाले की चपेट में आया। कन्नन ने कैनफिना में अपने कौशल को निखारा था, जहां वे एक मर्चेंट बैंकर थे और उन्होंने कंपनियों के सार्वजनिक निर्गम जारी करने से शुरुआत की थी। रत्नाकर ने

उन्हें केनरा बैंक के एक छोटे से विभाग से चुना और मर्चेंट बैंक में तैनात किया। 1987 में, जब कैनफिना ने परिचालन शुरू किया, कन्नन स्केल III के मध्य प्रबंधन अधिकारी थे। उन्होंने तेजी से बढ़ते बाजार में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने के लिए कड़ी मेहनत की और एक साल के भीतर वरिष्ठ उपाध्यक्ष बन गए। अगले तीन वर्षों में, वे कार्यकारी उपाध्यक्ष और फिर कार्यकारी निदेशक बन गए।

कैनफिना, रत्नाकर की एसबीआई कैपिटल मार्केट्स को टक्कर देने वाली कंपनी थी, जिसे उसने समर्पण और उद्यमशीलता के साथ ग्राहकों को सेवा प्रदान करके पीछे छोड़ दिया।

कैनफिना के तत्कालीन प्रबंध निदेशक जी.ए. शेनाई ने 1988 में बिजनेसवर्ल्ड पत्रिका को यह कहानी सुनाई थी। कैनफिना न्यूक्लियर पावर कॉर्पोरेशन के बॉन्ड निर्गम का प्रबंधन कर रही थी। एनपीसी प्रॉस्पेक्टस को अंतिम रूप देने से ठीक पहले, उन्हें एहसास हुआ कि एक और हस्ताक्षर की आवश्यकता है। प्रॉस्पेक्टस अगले दिन दाखिल किया जाना था, लेकिन एनपीसी अध्यक्ष दिल्ली में थे। कैनफिना ने उसी रात अपने एक अधिकारी को दिल्ली भेजा। उन्होंने हस्ताक्षर प्राप्त किए और अगली सुबह प्रॉस्पेक्टस दाखिल करने के लिए समय पर वापस आ गए। यह एक सार्वजनिक क्षेत्र के मर्चेंट बैंक के लिए असामान्य और प्रभावशाली था।

इस तरह के प्रयास का दूसरा पहलू लापरवाही थी। एसबीआई कैपिटल मार्केट्स और कैनफिना ने अधिकतम सार्वजनिक निर्गमों को संभालने की होड़ लगा दी। यह प्रतिस्पर्धा अपने आप में एक

लक्ष्य बन गई और कैनफिना ने कई प्रमोटरों को संदिग्ध सार्वजनिक निर्गमों को जारी करने में मदद की। एसबीआई कैपिटल मार्केट्स ने अपने मूल बैंक की ताकत और पहुंच का इस्तेमाल करते हुए कंपनियों को मर्चेंट बैंकिंग के आदेश सौंपने के लिए मजबूर किया। दूसरी ओर, कैनफिना ने उन कंपनियों की पहचान की जिन्हें सार्वजनिक होना चाहिए था और उन्हें सक्रिय रूप से राजी किया और परियोजनाओं और वित्तपोषण पर सलाह दी। इन दोनों द्वारा विपणन और प्रचारित किए गए कई बॉन्ड 1984 और 1985 में बाज़ार में आए, जो एक रोमांचक तेज़ी के चरम पर थे और जिसने पहली बार बड़ी संख्या में छोटे निवेशकों को पूंजी बाज़ार में लाया। कई कंपनियों ने इसका फायदा उठाकर पैसा जुटाया और निकल गईं। इनमें से कुछ बॉन्ड का मूल्यांकन और वित्तपोषण तीन विकास वित्त संस्थानों द्वारा भी किया गया था।

एक प्रमुख प्रबंधक के रूप में, कैनफिना का संचालन जनता के लिए स्पष्ट था। बॉन्ड ट्रेडिंग में इसकी लापरवाही केवल बंद बाजार में ही जानी जाती थी। यह इतनी आक्रामक थी कि एक समय इसने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा जारी किए गए तेरह बॉन्ड लगातार खरीदे, मुख्य रूप से केनरा बैंक की जमा राशि बढ़ाने के लिए। यह क्षेत्र एमके अशोक कुमार के अधिकार क्षेत्र में था, जिन पर बैंक ऑफ कराड के 374 करोड़ रुपये के बीआर और एसजीएल बॉन्ड में कैनफिना को जोखिम में डालने के लिए आपराधिक लापरवाही का आरोप है।

एक ब्रोकर के अनुसार, अक्सर जब अन्य ब्रोकर और बैंक अधिकारी बॉन्ड जारी करने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी के वित्त

निदेशक के कमरे के बाहर इंतजार करते रहते थे, तब अशोक कुमार अंदर जाकर पूरा इश्यू खरीद लेते थे। कैनफिना ने मूल बैंक, सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों और प्रमुख ब्रोकरों के साथ गठबंधन के नेटवर्क के माध्यम से आक्रामक रूप से इन बॉन्डों का व्यापार किया। वास्तव में, जुलाई और नवंबर 1991 में कैनफिना द्वारा अनजाने में 9% इंडियन रेलवे फाइनेंस कॉर्पोरेशन बॉन्डों की खरीद सबसे लापरवाह कृत्यों में से एक थी जिसने बाजार के खिलाड़ियों को व्यावसायिक धोखाधड़ी में धकेल दिया। अप्रैल 1991 में बॉन्डों पर ब्याज दरों के उदारीकरण के बाद से इन बॉन्डों का मूल्य गिर गया था। ऐसे नुकसानों को छुपाना इस घोटाले के पीछे प्रमुख प्रेरक कारकों में से एक था। लेकिन कैनफिना के बारे में और अधिक जानकारी बाद में।

कैनम्यूचुअल की अपनी अलग ही समस्या थी। इसका उपयोग ब्रोकरों के एक छोटे समूह और मूल बैंक की निजी जागीर के रूप में किया जा रहा था। यह विशेष रूप से निंदनीय था क्योंकि कैनम्यूचुअल ने खुद को एक उच्च प्रदर्शन वाला फंड होने का दावा किया था, जिसमें "छोटे निवेशकों" ने निवेश किया था। यह धनराशि अन्य बैंकों और दलालों से आई थी। इसके बदले में, कैनम्यूचुअल ने अपने बड़े "निवेशकों" के निर्देशों के अनुसार अपने फंडों का संचालन करने पर सहमति जताई। कैनम्यूचुअल का घोटाला पहले दिन से ही शुरू हो गया था, लेकिन चार साल बाद जीवी रामकृष्ण के नेतृत्व में एसईबीआई द्वारा किए गए निरीक्षण के कारण इसका पर्दाफाश हुआ। शुरुआत से ही, रत्नाकर की असीम ऊर्जा से प्रेरित होकर, कैनम्यूचुअल अनियंत्रित वातावरण में संचालित होता रहा। यह कैनम्यूचुअल के गठन के तरीके में भी स्पष्ट था।

28 फरवरी 1987 को शाम 6 बजे, रत्नाकर नई दिल्ली के क्लेरिज होटल में टेलीविजन से चिपके बैठे राजीव गांधी का बजट भाषण देख रहे थे। गांधी ने घोषणा की कि भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को म्यूचुअल फंड स्थापित करने की अनुमति दी जाएगी। रत्नाकर भाषण के समाप्त होने का बेसब्री से इंतजार कर रहे थे। उन्होंने कुछ स्टेशनरी ली और तुरंत म्यूचुअल फंड स्थापित करने के लिए एक आवेदन का मसौदा तैयार किया। इसे टाइप करके अगली सुबह वित्त मंत्रालय को सौंप दिया गया, जिससे केनरा बैंक अन्य दावेदारों की कतार में सबसे आगे निकल गया। केनरा बैंक इसके योग्य था। रत्नाकर ने 1985 में ही आरबीआई को पत्र लिखकर म्यूचुअल फंड स्थापित करने की अनुमति मांगी थी। लेकिन बैंक की नवाचार और प्रयोग करने की इच्छा को नियमों से बंधे आरबीआई अधिकारियों ने लगातार बाधित किया।

अंततः, 19 दिसंबर 1987 को कैन म्यूचुअल की स्थापना बड़े उत्साह के साथ हुई।

यह सुपरबैंकर रत्नाकर का ही सपना था, साथ ही यह विशाल यूटीआई के बाहर पहला म्यूचुअल फंड था। रत्नाकर ने इसे स्थापित करने के लिए कैनफिना से एक समूह बनाया और के. धर्मपाल को समूह का नेतृत्व सौंपा। साथ ही, एसबीआई कैपिटल मार्केट्स ने एसबीआई म्यूचुअल फंड स्थापित करने की तैयारी की। दोनों ने आरबीआई से अनुमति के लिए आवेदन किया। योजनाओं को अंतिम रूप दिए जाने के दौरान बैंकों में तनाव स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा था। रत्नाकर न केवल कैनबैंक की योजना को पहली योजना बनाना चाहते थे, बल्कि

प्रस्तावित रिटर्न के मामले में एसबीआई से आगे निकलना भी चाहते थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि कैनबैंक ने एसबीआई मैग्नम द्वारा अपने "सुनिश्चित" 12% से अधिक रिटर्न की घोषणा का इंतजार किया और फिर 12.5% से अधिक रिटर्न की घोषणा की।

रत्नाकर द्वारा उत्पन्न प्रतिस्पर्धात्मक ऊर्जा इतनी प्रबल थी कि कैनम्यूचुअल का दलालों के साथ गठजोड़ और अंततः 1992 के घोटाले में उसका फंसना लगभग अपरिहार्य था। आखिरकार, कैनम्यूचुअल की शुरुआती खरीद - जो फंड के औपचारिक रूप से लॉन्च होने से पहले की गई थी - हर्षद मेहता के दलाल स्ट्रीट स्थित ग्रोमोर कार्यालय में एक छोटी सी पूजा के बाद उनके माध्यम से की गई थी। हर्षद और कैनम्यूचुअल के बीच यही एकमात्र संबंध था, जिसके अधिकारी कभी निवेश संबंधी निर्णय लेने के लिए ग्रोमोर के अनुसंधान केंद्र का उपयोग करते थे।
कैनम्यूचुअल छोटे निवेशकों के बीच काफी लोकप्रिय लग रहा था। इसे एक पेशेवर रूप से संचालित और कुशल संस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया था। घोटाले के बाद भी, संयुक्त संसदीय समिति के प्रश्नों के उत्तर में, कैनम्यूचुअल ने बड़े गर्व से दावा किया: "इस फंड का उद्देश्य छोटे बचतकर्ताओं और निवेशकों को पूंजी बाजार की अपार वृद्धि क्षमता तक पहुंच प्रदान करना और उनके निवेश पर अधिकतम लाभ सुनिश्चित करना है।" यह एक बड़ा धोखा था। जब 1991 में एसईबीआई ने इसके संचालन की बारीकी से जांच की, तो उसने दलालों के साथ अनुचित मिलीभगत, अपर्याप्त रिकॉर्ड-रखरखाव और कैनफिना, कैनम्यूचुअल और केनरा बैंक के बीच सांठगांठ का खुलासा किया, जिसमें प्रत्येक बैंक एक ही धन का हेरफेर करके दूसरे के प्रदर्शन को बढ़ावा दे रहा था।

कैनम्यूचुअल ने कैनस्टार योजना के लिए कैनफिना को ऑफर लेटर की शर्तों का उल्लंघन करते हुए अधिक ब्रोकरेज का भुगतान किया। इसने अंधाधुंध तरीके से एक योजना से दूसरी योजना में धन हस्तांतरित किया, जिसके लिए न्यासी बोर्ड ने स्पष्ट रूप से पूर्ण अनुमति दी थी, हालांकि एसईबीआई निरीक्षकों को इसका कोई सबूत नहीं मिला। इन हस्तांतरणों से फंड को एक योजना को अत्यधिक व्यापार से बचाने में मदद मिली। इसका मतलब यह था कि एक योजना के यूनिट धारकों को दूसरों की कीमत पर लाभ हुआ। कैनशेयर ने उत्कृष्ट परिणाम और पहले वर्ष का बोनस घोषित किया। सबसे बड़ा लाभार्थी स्वयं केनरा बैंक था, क्योंकि वह कैनशेयर और कैनग्रोथ का सबसे बड़ा सब्सक्राइबर था।
कैनम्यूचुअल ने कैनशेयर के असाधारण प्रदर्शन का खूब प्रचार किया, जिससे अधिक से अधिक छोटे निवेशक योजनाओं में निवेश करने के लिए आकर्षित हुए। इसके साथ ही, अपनी नई योजनाओं की जबरदस्त सफलता सुनिश्चित करने के लिए, कैनम्यूचुअल ने पिछली योजनाओं से धन निकालकर उनमें लगाया। एसईबीआई की आपत्तियों के बावजूद, यह खेल 1991 के अंत तक चलता रहा, जब नियामक ने अस्थायी रूप से कैंट्रिपल योजना को रोक दिया।
कैनम्यूचुअल का मूल बैंक सहित बड़े निवेशकों के साथ गठजोड़ और छोटे निवेशकों से निवेश आने का उसका झूठा दावा कोई नई बात नहीं है। इसकी शुरुआत पहली योजना, कैनशेयर से हुई थी। दक्षिण में प्रचार बैठकों में कैनबैंक के अधिकारियों के साथ गए एक ब्रोकर याद करते हैं कि उन्हें खाली बैठक कक्ष मिले और वे निराश होकर लौटे। कैनशेयर ने जनता से केवल 4 करोड़ रुपये जुटाए। रत्नाकर अपनी विफलता स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, इसलिए उन्होंने सदस्यता जुटाने का प्रयास शुरू किया। बेंगलुरु के उनके एक

उद्योगपति मित्र ने 5 करोड़ रुपये का निवेश किया। केनरा बैंक ने भी कुछ निवेश किया और सदस्यता राशि बढ़कर 23 करोड़ रुपये के सम्मानजनक स्तर पर पहुंच गई। कैनशेयर सफल रहा और इसने म्यूचुअल फंड की ग्रोथ यूनिट्स की मांग पैदा की। बाद में, एक अन्य योजना, कैनस्टार ने इसी तरह के तरीकों का उपयोग करके रिकॉर्ड 1000 करोड़ रुपये जुटाए। केनरा बैंक इन सभी योजनाओं में एक बड़ा निवेशक था, जिसने म्यूचुअल फंड और कैनफिना का उपयोग अपनी जमा राशि बढ़ाने के लिए किया।
1990 तक, कैनम्यूचुअल के पास यह तय करने का कोई तर्कसंगत तरीका नहीं था कि क्या खरीदना है और क्या बेचना है। यह ब्रोकरों के कहने पर ही काम करता था। कैनम्यूचुअल के पास न तो ब्रोकरों का कोई पैनल था और न ही इसने निवेश की सीमाएं निर्धारित की थीं। अप्रैल 1991 तक तो प्रतिभूति सौदों के लिए इसके पास सौदे की पर्चियाँ भी नहीं थीं। धीरे-धीरे, दलालों ने सचमुच में सारा नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया। अजय कायन और उत्सव पारेख का कहना है कि हितेन दलाल नरिचानिया के कमरे को अपना कमरा बना लेते थे। पारेख बताते हैं, "कभी-कभी हितेन नरिचानिया की कुर्सी पर बैठ जाते थे, जबकि नरिचानिया मेज के दूसरी तरफ ऐसे बैठते थे जैसे वे वहाँ अजनबी हों।"
हितेन कैनफिना और कैनम्यूचुअल दोनों के सबसे बड़े डीलर थे, लेकिन कायन, पारेख और पल्लव शेठ जैसे अन्य लोग भी थे। इनमें से कुछ दलालों ने आम निवेशकों की कीमत पर फंड को पूरी तरह से लूट लिया, जिन्हें मुद्रास्फीति के साथ तालमेल बिठाने में मुश्किल से ही सक्षम लाभांश मिलता था। यूटीआई और कैनम्यूचुअल जैसे म्यूचुअल फंड उच्च-उपज वाले बॉन्ड बाजार और शीर्ष स्तर के इक्विटी बाजार में हजारों करोड़ रुपये का लेन-देन कर रहे थे।

वहाँ, अंतर्विभागी व्यापार और बड़े आक्रामक निवेशक होने के स्वाभाविक लाभों के कारण, उनके पास सालाना अपने मुनाफे को दोगुना या तिगुना करने का मौका था। घोटाले के सामने आने से पहले, सबसे बड़ा रहस्य यह था कि सारा मुनाफा कहाँ जा रहा था। जाहिर है, पैसा कुछ चुनिंदा ब्रोकरों के निजी खातों में गया था। सरकारी म्यूचुअल फंड का छोटे निवेशकों के प्रति प्रेम धराशायी हो गया। कैनम्यूचुअल के सबसे बड़े इक्विटी ब्रोकर एस.के. झावेरी थे, जिनका सार्वजनिक चेहरा पल्लव शेठ थे (टर्नओवर का 18.38%)। कायन और पारेख ने तीन अलग-अलग फर्मों के माध्यम से 16% हिस्सा हासिल किया।
कैनफिना के मामले में भी लगभग यही कहानी है। केनरा बैंक और आरबीआई द्वारा नियुक्त ऑडिटर शंकर अय्यर एंड कंपनी की जांच में पता चला कि इसका बैक ऑफिस, जहाँ लेनदेन संसाधित होते हैं, पूरी तरह से अव्यवस्थित था। ब्रोकरों के कॉन्ट्रैक्ट नोट और कॉस्ट मेमो गायब थे, 11.5% 2010 के केंद्रीय ऋणों के लिए फॉरवर्ड कॉन्ट्रैक्ट नोट कुछ मामलों में उपलब्ध नहीं थे, इसके सबसे बड़े ब्रोकर हितेन दलाल ने कई मामलों में कॉन्ट्रैक्ट नोट जारी नहीं किए थे और ब्रोकरों द्वारा कॉन्ट्रैक्ट नोटों में प्रतिपक्षों के नाम का खुलासा नहीं किया गया था।
कैनफिना के पास ब्रोकरों और बैंकों के लिए कोई जोखिम सीमा नहीं थी, बकाया फॉरवर्ड कॉन्ट्रैक्ट या तैयार फॉरवर्ड कॉन्ट्रैक्ट की रिपोर्टिंग की कोई प्रणाली नहीं थी और न ही बीआर का कोई व्यवस्थित रिकॉर्ड था। ब्रोकर (हर्षद और हितेन) अक्सर अपने लिए पोजीशन लेते थे और फिर प्रतिपक्षों की तलाश करते थे। एसईबीआई के आदेशों के तहत, कैनफिना को मजबूर होना पड़ा

20 जुलाई 1992 को अपने मर्चेंट बैंकिंग संचालन को निलंबित करना पड़ा।
फिर भी, शीर्ष कैनबैंकर्स और कैनफिना के अधिकारियों ने कैनफिना के प्रति अद्भुत वफादारी दिखाई। 1992 की गर्मियों में जब यह परिसमापन के कगार पर था, तब पूर्व अध्यक्ष एन.डी. प्रभु क्रोधित और असहाय महसूस कर रहे थे। प्रभु 1992 की शुरुआत में सेवानिवृत्त हो गए और केनरा बैंक के नए प्रमुख, जे.वी. शेट्टी, केनरा बैंक की अनूठी जोखिम लेने की संस्कृति से अपरिचित थे। प्रभु ने कहा, "बैंक हमेशा अपने कर्मचारियों को जोखिम लेने के लिए प्रोत्साहित करता था और जो भी ऐसा करता था, उसे विश्वास होता था कि बैंक उसका साथ देगा।" लेकिन ठीक इसी तरह के संस्थागत और संवेदनहीन जोखिम लेने के कारण फेयरग्रोथ, कैनम्यूचुअल और कैनफिना का पतन हुआ।
उदाहरण के लिए, 10 करोड़ रुपये की पूंजी वाली कैनफिना ने 1987 में रिलायंस जी-सीरीज़ डिबेंचर निर्गम के लिए एक सुरक्षा जाल बनाने का फैसला किया।
यह सुरक्षा जाल इलाहाबाद बैंक और वी.बी. देसाई द्वारा संयुक्त रूप से प्रदान किया गया था। इसके तहत, यदि डिबेंचर की कीमत एक निश्चित सीमा से नीचे गिर जाती, तो बैंक द्वारा उन्हें वापस खरीदने की व्यवस्था की गई थी। कुछ ही दिनों में यह स्पष्ट हो गया कि जी-सीरीज़ और सुरक्षा जाल योजनाएँ पूरी तरह विफल रहीं। निवेशक अपने शेयर बेचने के लिए कतार में लगने लगे, और इलाहाबाद बैंक ने एक दिन भीड़ देखकर घबराकर बायबैक रोक दिया। वी.बी. देसाई का प्रस्ताव तो और भी जल्दी विफल हो गया।
केनरा बैंक ने दावा किया कि उसने बायबैक जारी रखा, लेकिन वह इतना भयभीत था कि उसने इसे मुंबई के उपनगर माहिम में एक ही

केंद्र तक सीमित कर दिया। वहाँ भी काम बहुत धीमी गति से चल रहा था और पहले ही दिन जब भीड़ बेकाबू हो गई, तो बैंक को पुलिस बुलानी पड़ी। यह किसी बड़ी कंपनी द्वारा पेश किया गया पहला और आखिरी सुरक्षा जाल था। ब्रिटेन में ब्रिटिश पेट्रोलियम के विनिवेश मुद्दे से प्रेरित और मुद्रा बाजार पर वाघुल समिति द्वारा प्रस्तावित यह अवधारणा समय से पहले ही विफल हो गई। प्रभु ने बाद में दावा किया कि अवधारणा सही थी और कैनफिना ने वास्तव में इस सौदे से लाभ कमाया था। लेकिन सबसे चौंकाने वाली बात केनरा बैंक की वह संस्कृति है जिसने अपनी सहायक कंपनी को, जिसकी पूंजी मात्र 10 करोड़ रुपये थी, इतना बड़ा जोखिम उठाने के लिए प्रोत्साहित किया, जिससे अगर उसने निवेशकों को धोखा न दिया होता और मुंबई के उपनगर में केवल एक शाखा में योजना न चलाई होती, तो बैंक दिवालिया हो जाता। आरबीआई ने बैंक पर कड़ी कार्रवाई की, लेकिन प्रभु अविचलित रहे।
प्रभु इस बात से भी स्तब्ध थे कि कैनफिना ने देश के सबसे बड़े बॉन्ड व्यापारी अशोक कुमार के साथ कैसा व्यवहार किया। दुबले- पतले, सांवले और किसी विद्रोही की तरह दृढ़ निश्चयी अशोक कुमार इस बात से नाराज और आहत थे कि बैंक ने उनकी रक्षा के लिए कोई प्रयास नहीं किया। लेकिन केनरा बैंक के अध्यक्ष जेवी शेट्टी कुछ खास नहीं कर सकते थे, हालांकि कलकत्ता स्थित यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया के पूर्व अध्यक्ष के रूप में वे बैंक-ब्रोकर गठजोड़ और संदिग्ध सौदों के बारे में अवश्य जानते थे। आखिरकार, केनरा बैंक, कैनफिना और कैनम्यूचुअल के प्रमुख ब्रोकर सी. मैकर्टिच, यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया के भी एक महत्वपूर्ण ब्रोकर थे।

शेट्टी ने पाया कि 31 मार्च तक कैनफिना की पोर्टफोलियो प्रबंधन योजना में 3162 करोड़ रुपये थे। इसने पीएमएस से संबंधित आरबीआई के सभी प्रमुख नियमों का उल्लंघन किया। एक ही व्यक्ति के पास अपने निवेश और ग्राहकों के निवेश दोनों का नियंत्रण था। कैनफिना ने न तो पोर्टफोलियो ग्राहकों के प्रति अपनी देनदारी का खुलासा किया और न ही इसे अपनी बैलेंस शीट में दर्शाया। इसने अपने बॉन्ड पोर्टफोलियो पर नुकसान भी दर्ज नहीं किया था। ऐसे संदिग्ध वित्तीय विवरणों के आधार पर, कैनफिना ने 100 करोड़ रुपये का लाभ घोषित किया और प्रीमियम पर सार्वजनिक निर्गम लाने की योजना बना रही थी।
मूल बैंक और कैनम्यूचुअल द्वारा कैनफिना का भरपूर उपयोग किया गया था। इसने कैनम्यूचुअल की कैनडबल, कैनट्रिपल, कैनस्टार और कैनप्रीमियम योजनाओं के लिए अधिकांश सदस्यता प्रदान की। कैनफिना ने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बॉन्ड इस शर्त पर खरीदे कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम केनरा बैंक में जमा करें। कैनफिना के पास 300 करोड़ रुपये की सावधि जमा में जमा थे और केनरा बैंक में उसका एक बड़ा चालू खाता था। कैनरा बैंक द्वारा कैनफिना पर पूर्ण नियंत्रण के इतने स्पष्ट प्रमाण होने के बावजूद, बैंक ने जेपीसी के नियंत्रण संबंधी प्रश्नों के टालमटोल भरे उत्तर दिए। कैनफिना के अस्पष्ट उत्तरों की पराकाष्ठा बैंक ऑफ कराड के साथ उसके 1988 में शुरू हुए संबंधों के विवरण से और भी बढ़ जाती है।
जेपीसी ने पूछा, "क्या कैनफिना ने बैंक ऑफ कराड की वित्तीय स्थिति का आकलन किया था?"
उत्तर: वित्तीय स्थिति का आकलन कैनफिना द्वारा नहीं किया गया था।

क्या कैनफिना को कारोबार शुरू करते समय बैंक ऑफ कराड की पूंजी की जानकारी थी?
उत्तर: कैनफिना ने इस पहलू पर ध्यान नहीं दिया था।
इसके बाद कैनफिना ने एक अहंकारी और अज्ञानतापूर्ण उत्तर दिया। उसने जेपीसी को बताया कि मुद्रा बाजारों में प्रतिभूतियों का लेन-देन सैकड़ों करोड़ रुपये का होता है और इस प्रकार उसका प्रतिपक्षी बैंक की चुकता पूंजी से कोई संबंध नहीं है। यह पूरी तरह से असत्य है। स्टैनचार्ट, कैनफिना और कैनम्यूचुअल के प्रति भारी देनदारी की तुलना में बैंक ऑफ कराड की छोटी इक्विटी ने ही आरबीआई को इसे परिसमाप्त करने के लिए मजबूर किया, जिससे सभी के दावे खतरे में पड़ गए।
पता नहीं क्यों, केनरा बैंक बाहरी दुनिया के सामने असाधारण आत्मविश्वास दिखा रहा था।
चेयरमैन जे.वी. शेट्टी ने 30 मई 1992 को नई दिल्ली में प्रेस को बताया कि यह बड़ा घोटाला महज "भ्रम" था। यह मामूली भ्रम इसलिए पैदा हुआ क्योंकि "कई बैंकों के नेटवर्क से जुड़े कई बैंक रसीदों का मिलान करना था।" शेट्टी को कुछ ही महीने पहले चेयरमैन नियुक्त किया गया था। उनसे ज्यादा जानकारी की उम्मीद नहीं थी। शेट्टी ने सिर्फ इतना स्वीकार किया कि कैनफिना को कुछ नुकसान होगा, लेकिन नुकसान का आकलन करना अभी जल्दबाजी होगी।
बिजनेस स्टैंडर्ड की 30 मई 1992 की एक रिपोर्ट के अनुसार, "कैनफिना के किसी भी गलत काम में शामिल होने से इनकार करते हुए, उन्होंने कहा कि यह सिर्फ बैंकों के आपसी भरोसे की पारंपरिक प्रथा के तहत काम कर रहा था। कैनफिना के पोर्टफोलियो प्रबंधन ग्राहक कंपनी के साथ खड़े हैं।" कुछ हफ्तों बाद यह बयान खोखला साबित हुआ जब यह स्पष्ट हो गया कि पोर्टफोलियो ग्राहक अपना

पैसा वापस करने के लिए दबाव डाल रहे थे। कैनफिना इतनी बुरी तरह डूब चुकी थी कि शेट्टी के लिए उसे बचाने की कोशिश करना नामुमकिन था।

20 मई 1992 को, केनरा बैंक के कार्यकारी निदेशक शेट्टी
के. लक्ष्मीनारायण, कैनफिना के प्रबंध निदेशक एपी राव और कार्यकारी उपाध्यक्ष अशोक कुमार ने हितेन दलाल, अभय नरोत्तम, भूपेन दलाल, टीबी रुइया और अन्य लोगों से ताज महल होटल के चैंबर्स में मुलाकात की ताकि यह पता लगाया जा सके कि पैसा कहाँ गया था। जैसा कि स्टैनचार्ट की चर्चाओं में हुआ था, तीन घंटे की बैठक में केवल एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप ही हुए। हितेन दलाल और अभय नरोत्तम ने बताया कि जेपी गांधी ने अधिकांश पैसा ले लिया था। टीबी रुइया ने 70 करोड़ रुपये की देनदारी स्वीकार की, लेकिन हैरानी की बात यह है कि बाद में उन्हें बरी कर दिया गया। कुछ दिनों बाद यह समूह कैनम्यूचुअल के मुख्य दलालों की उपस्थिति में फिर से मिला, लेकिन भूपेन दलाल और अन्य लोग अपनी बात पर अड़े रहे और कैनफिना और कैनम्यूचुअल को 20 जून को प्रथम सूचना रिपोर्ट (FIR) दर्ज करने के लिए मजबूर होना पड़ा।
इसके बाद, अशोक कुमार और अनिल नारिचानिया को गिरफ्तार कर लिया गया।
कैनफिना, कैनम्यूचुअल, हर्षद और फेयरग्रोथ अज्ञानता और नियमन के अभाव के माहौल में काम कर रहे थे। एक बार आरबीआई की बैंक अध्यक्षों की बैठक में एन.डी. प्रभु ने यहाँ तक कह दिया था कि “आरबीई का मेरी सहायक कंपनी कैनफिना पर कोई नियंत्रण नहीं है।” म्यूचुअल फंडों को नियंत्रित करने की एसईबीआई की शक्ति बहुत बाद में आई और तब भी ब्रोकरों पर पर्याप्त निगरानी नहीं रखी जा

रही थी। इस अनुभव ने वित्तीय बाजारों को विनियमित करने के लिए व्यापक कानून की आवश्यकता को स्पष्ट कर दिया। ऐसे नियमन के अभाव ने अनुभवी बैंकरों और डीलरों को भी लापरवाह, अहंकारी और संकीर्ण सोच वाला बना दिया। खिलाड़ियों को स्वयं एक आंतरिक प्रणाली बनानी पड़ी, जो अनुचित गतिविधियों पर नज़र रखे। सिटीबैंक और अन्य विदेशी बैंकों ने, सामान्य बाजार प्रथाओं का पालन करते हुए, इस घोटाले का शिकार न होकर यह दिखाया कि कैसे।

14

द बुकेनियर बैंकर्स

सिटी की मूल रणनीति थी: जल्दी पैसा कमाने के लिए नियमों को तोड़ना। आरोप लगने पर इनकार करना। पकड़े जाने पर
माफी मांगना और फिर से कोशिश करना।

शुरुआत में, सभी ने इसे स्टॉक घोटाला कहा। स्टॉकब्रोकरों ने इसे बैंक घोटाला करार दिया। और हर्षद मेहता, जो अवैध रूप से बैंक फंड का इस्तेमाल शेयरों में निवेश करने के लिए कर रहा था, ने इसे अपना एक अनोखा नाम दिया: सिटीस्कैम। सितंबर 1992 के अंत में जेल से रिहा होने के बाद उसने आरोप लगाया, "सिटीबैंक अवैध गतिविधियों का अड्डा था।" बाद में पता चला कि इस अपराध में सिटीबैंक अकेला नहीं था। अप्रत्यक्ष रूप से भ्रष्टाचार करने में माहिर विदेशी बैंक थे। हालांकि, सिटीबैंक सबसे चालाक था। हर्षद का सिटीबैंक और उसके वफादार ब्रोकरों के समूह से लगातार टकराव चल रहा था। इसलिए, जिस पर वह उंगली उठा रहा है, वह थोड़ा पक्षपातपूर्ण हो सकता है। लेकिन हर्षद सबसे बड़े खिलाड़ियों में से एक था और सबसे ज्यादा जानकार भी। उसके पूर्वाग्रह को नजरअंदाज करें तो, वह पूरी तरह गलत नहीं हो सकता था। फिर भी, हर्षद के आरोपों और सिटीबैंक के खंडन में गहरा विरोधाभास है। हर्षद के कृत्य सिटीबैंक की प्रथाओं के बड़े और अधिक क्रूर संस्करण थे। चाहे हर्षद इस समानता को स्वीकार करे या न करे, वह सिटीबैंक का ठीक उल्टा था। अंतर परिष्कार, पैमाने और गति के स्तर में था।

सिटीबैंक हर्षद की तरह ही अद्वितीय था, सिवाय इसके कि यह स्पष्ट रूप से परिभाषित लक्ष्यों और एक निश्चित कॉर्पोरेट दर्शन वाला संस्थान था, जबकि हर्षद एक बेलगाम व्यक्ति थे। सिटीबैंक सबसे बड़ा, सबसे चतुर और सबसे अधिक लाभदायक बैंक था और इसलिए बाजारों पर उसका दबदबा था। घोटाले के बाद भी यह इस बात पर जोर देकर अलग दिखा कि यह बेदाग है, केंद्रीय बैंक, जेपीसी और आक्रोशित साथी बाजार खिलाड़ियों के प्रति घमंडी और तिरस्कारपूर्ण रवैया अपनाते हुए। लेकिन जैसे-जैसे बैंक और उसके संचालन के बारे में जानकारी सामने आती गई, यह वास्तव में एक कलंक के रूप में उभरा। जब घोटाला सामने आया, तो सारा ध्यान तुरंत सिटीबैंक पर केंद्रित हो गया। मुद्रा बाज़ारों में उसका इतना दबदबा था कि हर किसी का पहला सवाल यही था: "इस घोटाले में सिटीबैंक की क्या भूमिका है?" जल्द ही, यह सवाल तब हैरानी में बदल गया जब बैंक ने खुद को संत सिटी के रूप में पेश करना शुरू कर दिया। दूसरा सवाल था: "यह कैसे बच निकला?" इसका कोई जवाब नहीं था, सिवाय जून 1992 में बिज़नेस टुडे में छपे दो लेखों के, जिनमें सिटीबैंक की भूमिका को एक कार्टेल का हिस्सा बताया गया था, उसकी पोर्टफोलियो प्रबंधन योजनाओं में छिपे हुए नुकसानों और स्टैनचार्ट के पैसे के किसी तरह सिटीबैंक और बैंक ऑफ अमेरिका में पहुँचने की बात कही गई थी। लेकिन उस समय सिटीबैंक की गलतियों का कोई ठोस सबूत नहीं था।
घोटाले के सामने आने के तीन महीने से भी ज़्यादा समय बाद, अगस्त में आधिकारिक सूत्रों से सबूत सामने आए। आरबीआई द्वारा घोटाले की जांच के लिए नियुक्त जनकीरामन समिति की तीसरी रिपोर्ट, जिसमें नरम शब्दों का इस्तेमाल किया गया था, कई बातों पर अस्पष्ट थी। हालांकि, सिटीबैंक के बारे में उसकी राय स्पष्ट

थी। अंततः, जैसा कि लंबे समय से संदेह था, यह बैंक अपने ही मनमाने ढंग से धन का खेल खेलते हुए पकड़ा गया – आरबीआई के नियमों की मामूली अनदेखी से लेकर उनका उल्लंघन करने तक। समिति ने पाया कि सिटीबैंक ने सहायक सामान्य खाता बही (एसईएल) सुविधा का उपयोग करने की सुविधा उपलब्ध होने पर भी बैंक रसीदें जारी कीं, प्रतिभूति पत्रों पर बीआर जारी नहीं किए, केवल एक हस्ताक्षरकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित बीआर जारी किए और जारीकर्ता बैंकों के अधिकारियों के हस्ताक्षरों के सत्यापन के लिए उचित रिकॉर्ड नहीं रखे। इन सबके अलावा, अपने सिस्टम और प्रक्रियाओं पर गर्व करने वाले सिटीबैंक के अपने रिकॉर्ड भी साफ-सुथरे नहीं थे – अधिकांश प्रतिभूति सौदों के लिए अनुबंध नोट और वितरण आदेश गायब थे।

ये अन्य गंभीर, संभवतः आपराधिक, कार्रवाइयों के द्वार थे। उदाहरण के लिए, 18
सितंबर 1991 को, सिटीबैंक के पास कैनम्यूचुअल का एक एसजीएल फॉर्म था जो 27 मई 1991 को बाउंस हो गया था। सिटीबैंक को पूरी जानकारी थी कि कैनम्यूचुअल द्वारा जारी एसजीएल बाउंस हो गए हैं, फिर भी उसने उन्हें स्टैनचार्ट को बेच दिया। स्टैनचार्ट के पास अभी भी 44.58 करोड़ रुपये मूल्य का एक बाउंस हुआ कैनम्यूचुअल एसजीएल (SGL) था। उसने इस और दो अन्य लेन-देन के लिए न्यूयॉर्क में सिटीबैंक के खिलाफ आपराधिक मामला दायर किया। यह मामला अदालत के बाहर सुलझा लिया गया।
लेकिन सिटीबैंक के सभी संदिग्ध सौदे उसके पीएमएस (प्राइवेट मैनेजमेंट सिस्टम) के तहत हुए थे, जो शायद "हेड्स आई विन टेल्स यू लूज़" के सिद्धांत पर चलता था। यदि सिटीबैंक को नुकसान होता

था, तो पीएमएस ग्राहक को वहन करना पड़ता था; यदि लाभ होता था, तो सिटीबैंक यह तय करता था कि वह लाभ ग्राहक को दे, खुद रखे या ब्रोकर को दे। सिटीबैंक ने एयर इंडिया, यूटीआई, इंडियन रेलवे फाइनेंस कॉर्पोरेशन, विजया बैंक और आईडीबीआई जैसे सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और आदित्य बिरला की ग्रासिम इंडस्ट्रीज जैसी निजी क्षेत्र की कंपनियों से पीएमएस के तहत गारंटीकृत रिटर्न का वादा करके धन प्राप्त किया।
धन जुटाने में, सिटीबैंक ने आरबीआई के आरक्षित आवश्यकताओं संबंधी नियमों का उल्लंघन किया और इसका उपयोग करते समय ग्राहकों के खातों से भारी मात्रा में धन निकाला। स्टैनचार्ट, ग्रिंडलेज़, आंध्र बैंक और अन्य कई बैंकों की तरह, सिटीबैंक ने भी पीएमएस योजना का फायदा उठाकर एसएलआर और सीआरआर आवश्यकताओं से बचने का प्रयास किया, जो बैंकों द्वारा स्वीकार किए जाने वाले सभी जमाओं पर लागू होती हैं। इसकी तकनीक सरल थी। हालांकि ग्राहकों के खातों में पोर्टफोलियो राशि बैंक में जमा के रूप में दिखाई देती है (और इसलिए, आरक्षित आवश्यकताओं को आकर्षित करती है), सिटीबैंक ने पोर्टफोलियो राशि से किए गए लेन-देन को ग्राहकों की ओर से निष्पादित व्यक्तिगत रेडी फॉरवर्ड लेनदेन के रूप में दिखाया।
लेकिन आरक्षित आवश्यकता का उल्लंघन सिटीबैंक की सबसे छोटी समस्या थी, क्योंकि अन्य बैंक भी ऐसा कर रहे थे, इसलिए आरबीआई के लिए अकेले सिटीबैंक को दंडित करना असंभव हो गया। सिटीबैंक के सामने एक अनूठी दुविधा यह थी कि उसने नकदी का उपयोग किस आधार पर किया था। जवाब के आधार पर, उसके पास अमेरिकी कानूनों का उल्लंघन करने के लिए पकड़े जाने या ग्राहक खातों से अर्जित लाभ वापस करने का विकल्प था।

सबसे अहम सवाल यह था कि क्या सिटीबैंक ने अपने ग्राहकों को निश्चित और गारंटीशुदा रिटर्न का वादा किया था। आरबीआई के नियमों के अनुसार ऐसा करना मना था। सिटीबैंक ने चालाकी से "आश्वासन", "संकेतक" और "मानदंड रिटर्न" जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया था। अन्य बैंकरों और आरबीआई निरीक्षकों को इनमें कोई अंतर नहीं दिखा। एक विदेशी बैंकर ने कहा, "ऐसा नहीं है कि कोई स्टांप पेपर पर रिटर्न की गारंटी देता है। ये सब एक ही बात है।" अगर सिटीबैंक ने निश्चित रिटर्न का आश्वासन नहीं दिया था, तो सिटीबैंक द्वारा अर्जित सभी लाभ और हानि के लिए ग्राहक ही जिम्मेदार थे। लेकिन सिटीबैंक के प्रमुख जेरी राव बैंक द्वारा अपने मानक रिटर्न से अधिक भुगतान करने का कोई उदाहरण नहीं दे सके। अपने कुशल वित्त प्रबंधन और तेजी से बढ़ते शेयर बाजार के कारण, बैंक ने अपने वादे के 14%-16% निश्चित रिटर्न से अधिक रिटर्न अर्जित किया होता। इसके बजाय, राव ने जोर देकर कहा कि "हमारे किसी भी ग्राहक को मूलधन का नुकसान नहीं होगा।" यह भी झूठा था।

सिटीबैंक के ब्रोकर अजय कायन ने स्वयं यह बात स्वीकार की कि नवंबर 1991 में सिटीबैंक को हुए नुकसान का बोझ उनके पीएमएस ग्राहकों पर डाल दिया गया था। एक अन्य ब्रोकर ने नाम न छापने की शर्त पर यह स्वीकार किया कि बैंक निर्धारित रिटर्न से अधिक अर्जित सभी मुनाफे को अपने पास रख रहा था। उन्होंने दावा किया कि यह बात ग्राहकों को स्पष्ट रूप से पता थी और वे इसे समझते थे, यानी पोर्टफोलियो पर रिटर्न बैंक द्वारा सुनिश्चित किए गए रिटर्न से अधिक नहीं होगा।

वास्तव में, बैंक द्वारा निर्धारित रिटर्न की पेशकश के दो पुख्ता मामले थे। अक्टूबर 1992 में टेल्को की वार्षिक आम बैठक में दिए गए एक बयान में, अध्यक्ष रतन टाटा ने घोषणा की कि कंपनी ने यूटीआई के शेयरों पर रिटर्न से एक प्रतिशत अधिक "गारंटीकृत" रिटर्न के लिए पीएमएस के तहत सिटीबैंक में 85 करोड़ रुपये जमा किए थे। दूसरा सबूत और भी गंभीर था और यह सिटीबैंक के दिल्ली स्थित सहायक उपाध्यक्ष द्वारा 31 जनवरी 1992 को पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन को लिखे गए एक पत्र के रूप में था, जिसमें उन्होंने 150 करोड़ रुपये के निवेश पर 14.25% के निश्चित रिटर्न का आश्वासन दिया था। रंगे हाथों पकड़े जाने पर, सिटीबैंक ने तुरंत इस पत्र से अपना पल्ला झाड़ लिया और इसका दोष अपने ही कर्मचारी पर डाल दिया – जो विदेशी कंपनियों में एक आम चलन है।

यह मानते हुए कि सिटीबैंक केवल निश्चित रिटर्न ही दे रहा था, उसके व्यापारियों द्वारा उस रिटर्न से अधिक कमाए गए धन का क्या हुआ? वह लाभ या तो सिटीबैंक के अपने नुकसान में चला गया या संबद्ध ब्रोकरों को दे दिया गया। जैसा कि 1989 की आरबीआई निरीक्षण रिपोर्ट में कहा गया है:

बैंक के निवेश खाते पर निवेश विभाग द्वारा ग्राहक प्रतिभूति इकाई (विश्वसनीय ग्राहकों की ओर से) से प्रतिभूतियों की खरीद/बिक्री की दरें उन तिथियों पर प्रचलित बाजार दरों की तुलना में विश्वसनीय ग्राहकों के लिए (अधिक) अनुकूल नहीं थीं, जिससे यह संकेत मिलता है कि बैंक अपने विश्वसनीय ग्राहकों से लाभ कमा रहा था।

यह स्पष्ट रूप से सिटीबैंक को ग्राहक खातों से लाभ कमाने के लिए दोषी ठहराता है। इस तरह का लाभ कमाना एक आम बाजार प्रथा थी। एसबीआई कैपिटल मार्केट्स, सिंडिकेट बैंक, कैनफिना और ग्रिंडलेज़ ने भी ऐसा किया। तो सिटीबैंक "बाजार प्रथा" की आड़ क्यों नहीं ले रहा था? क्योंकि अमेरिकी कानूनों के तहत ग्राहक खातों से अनुचित लाभ कमाना एक गंभीर उल्लंघन था और इसलिए, किसी तृतीय विश्व देश के केंद्रीय बैंक के दिशानिर्देशों का उल्लंघन करने की तुलना में सिटीबैंक के लिए अधिक हानिकारक था।

जानकीरामन समिति ने ग्राहकों से अनुचित लाभ कमाने के एक विशिष्ट मामले को उजागर किया है, जिससे

ब्रोकरों को भारी मुनाफा हुआ। 8 अप्रैल 1992 को, सिटीबैंक ने अपने दो पसंदीदा ब्रोकरों, सी मैकर्टिच और स्टीवर्ट एंड कंपनी को 26.50 करोड़ रुपये के म्यूचुअल फंड यूनिट, जीआईसी राइज़ II, बेचे। दोनों ब्रोकरों ने अगले ही दिन इन यूनिटों को सिटीबैंक के ही एक अन्य सदस्य, कैनफिना को 40.50 करोड़ रुपये में बेच दिया, जिससे प्रत्येक ब्रोकर को एक ही दिन में 14 करोड़ रुपये का लाभ हुआ। 11 अप्रैल को, ब्रोकरों और कैनफिना के बीच जीआईसी राइज़ I का एक समान लेन-देन हुआ। इस बार लाभ और भी अधिक था – दोनों ब्रोकरों को 17.38 करोड़ रुपये का लाभ हुआ। अंत में, 20 अप्रैल को

सिटीबैंक ने सी मैकर्टिच को 26.50 करोड़ रुपये के जीआईसी राइज़ II बेचे, जिसे ब्रोकर ने उसी दिन कैनफिना को 50 करोड़ रुपये में

बेच दिया, जिससे उसे 23.50 करोड़ रुपये का लाभ हुआ। कुल मिलाकर, कलकत्ता के इन दो ब्रोकरों ने बारह दिनों में फैले महज तीन लेन-देन में 89 करोड़ रुपये से अधिक का चौंका देने वाला मुनाफा कमाया।

सिटीबैंक का 1991-92 में मुनाफा 138 करोड़ रुपये से थोड़ा अधिक था। जाहिर है, वह 89 करोड़ रुपये यूं ही नहीं दे रहा होगा। समिति के अनुसार, यह "ब्रोकर को मुआवजा" था। किस बात का मुआवजा? संभवतः बैंक के बही-खातों से बॉन्ड और इक्विटी घाटे को घटाने के लिए। यह ठीक होता अगर सिटीबैंक ने ये जीआईसी इकाइयां अपने ग्राहकों के पोर्टफोलियो से न बेची होतीं। एक तीखे आरोप में समिति ने कहा, "अगर सिटीबैंक को कोई नुकसान हुआ है, तो वह उन भरोसेमंद ग्राहकों की कीमत पर हुआ है, जिनके हितों की रक्षा करना बैंक का कर्तव्य था।"

सिटीबैंक के इन दो ब्रोकरों के साथ गठजोड़ को उजागर करने के अलावा, इस सौदे ने अमेरिकी कानूनों का उल्लंघन किया, जिसके तहत बैंकों को ग्राहकों के पोर्टफोलियो के पैसे को अपने स्वयं के संचालन और ब्रोकरों के राजस्व से अलग रखना आवश्यक है। सिटीबैंक द्वारा पसंदीदा ब्रोकरों को लाभ पहुँचाने के खुलासे से यह स्पष्ट हो गया कि सिटीबैंक द्वारा ग्राहकों के खातों से की जा रही हेराफेरी को अलग-थलग करके नहीं पकड़ा जा सकता था। इसके सौदों को दोनों ब्रोकरों के खातों के साथ मिलाकर देखना आवश्यक था।

समिति का कहना है कि सिटीबैंक प्रतिभूतियों के सबसे बड़े

व्यापारियों में से एक था - 1991-92 में 215,000 करोड़ रुपये से अधिक या बाजार का 17% हिस्सा। इसमें से अधिकांश रेडी फॉरवर्ड या बायबैक लेनदेन थे, जो आरबीआई के उस नियम का उल्लंघन था जिसमें बॉन्ड और यूनिट में रेडी फॉरवर्ड पर रोक थी। सिटीबैंक ने दावा किया कि चूंकि ये लेनदेन उसके ग्राहकों की ओर से किए गए थे, इसलिए कोई उल्लंघन नहीं हुआ। वास्तव में, सिटीबैंक जो कर रहा था वह आम बात थी। अन्य सभी बैंक भी बॉन्ड और यूनिट में रेडी फॉरवर्ड कर रहे थे। सिटीबैंक के लिए यह दावा करना कितना सुविधाजनक होता। लेकिन उसने अपने हठधर्मी रवैये और यह दावा करके सबको चौंका दिया कि उसने कोई गलती नहीं की है। किसी अन्य बैंक ने रेडी फॉरवर्ड पर इतना अजीबोगरीब और न्यायसंगत रुख नहीं अपनाया।

एक अज्ञात सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम (पीएसयू) ने अगस्त 1990 से 1991 के बीच दो दिन से लेकर 182 दिन तक की अवधि के लिए 12% से 28% की ब्याज दरों पर सिटीबैंक में पैसा जमा किया था। किसी भी समय बकाया राशि अधिकतम 50.68 करोड़ रुपये थी। हैरानी की बात यह है कि सिटीबैंक के पास केवल 50.42 करोड़ रुपये के लेन-देन के अनुबंध नोट थे। हालांकि, इसने अन्य 450.20 करोड़ रुपये के सौदे पीएसयू के पैसे से किए, जिनके लिए इसके पास कोई अनुबंध नोट, डिलीवरी ऑर्डर या अभिरक्षा पत्र नहीं थे, जबकि इसे अभिरक्षा सेवाएं प्रदान करनी आवश्यक थीं। इसके अलावा, पीएसयू के बहीखातों में दर्ज नौ जमा मदें सिटीबैंक के बहीखातों में बिल्कुल भी नहीं थीं। इसने इस आरोप को नजरअंदाज कर दिया कि यह पीएसयू के पैसे का इस्तेमाल बाजार में कर रहा था और मुनाफा खुद रख रहा था - ठीक वही जो हर्षद ने किया था।

स्पष्ट रूप से, जनकीरामन समिति के निष्कर्षों ने सिटीबैंक की बेदाग छवि को धूमिल कर दिया। फिर भी, आश्चर्यजनक अहंकार के साथ, इसने समिति के निष्कर्षों को खारिज करना जारी रखा। भारत के प्रमुख, जेरी राव, कदाचार के आरोपों पर चर्चा करते समय कभी व्यथा तो कभी न्यायसंगत आक्रोश व्यक्त करते थे। यह विचित्र था क्योंकि वे निश्चित रूप से जानते थे कि पीएमएस का उल्लंघन और दुरुपयोग कोई नई बात नहीं थी। 1989-90 में, आरबीआई की एक निरीक्षण रिपोर्ट में बताया गया कि सिटीबैंक अपने मुख्यालय द्वारा निर्धारित अंतर्राष्ट्रीय न्यासी मानक नियमावली का पालन नहीं कर रहा था, जिसमें बैंक और उसके ग्राहकों की संपत्तियों के बीच स्पष्ट पृथक्करण का आदेश दिया गया है। बैंक को गारंटीकृत रिटर्न की पेशकश करते हुए और एक वर्ष से कम अवधि के लिए धन स्वीकार करते हुए पकड़ा गया था।

सिटीबैंक ने इन आरोपों का जवाब दिया, लेकिन आरबीआई ने इसे असंतोषजनक पाया। 18 जनवरी 1991 को, आरबीआई ने अंततः बैंक को लिखा कि "यदि अनियमितताएं/प्रतिकूल विशेषताएं फिर से सामने आती हैं, तो हमें इस तरह के कारोबार को जारी रखने वाले बैंक की स्थिति की समीक्षा करने के लिए विवश होना पड़ सकता है।" इसके जवाब में, बैंक के एक उपाध्यक्ष ने 2 फरवरी को आरबीआई को लिखा कि "हम आरबीआई के दिशानिर्देशों का पालन करेंगे..." घटनाओं का उपरोक्त क्रम और आरबीआई का गुस्सा सिटीबैंक की भारतीय कार्यप्रणालियों की प्रकृति को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। इससे घोटाले के सबसे बड़े रहस्यों में से एक का जन्म हुआ: जब आरोप इतने गंभीर थे कि उसे अपने कुछ अधिकारियों को बर्खास्त न

करके कम से कम निलंबित कर देना चाहिए था, तब भी बैंक अपने रुख पर क्यों अड़ा रहा?

शायद, लाभ-केंद्रित दृष्टिकोण के कारण, सिटीबैंक कदाचार के सबूत होने के बावजूद शर्मिंदगी मोल नहीं ले सकता था। इसका मतलब होता अपनी मूल कॉर्पोरेट रणनीति को छोड़ देना। दलालों, वित्त अधिकारियों और पूर्व उप-गवर्नर अमिताभ घोष के अनुसार, सिटीबैंक आरबीआई के दिशानिर्देशों की रचनात्मक व्याख्याओं के माध्यम से उच्च जोखिम, उच्च लाभ वाली रणनीति का अगुआ रहा है। बैंक ने स्वयं उस गतिशीलता का समर्थन किया जिसका अर्थ था नियमों का उल्लंघन करना। “हमें दुनिया भर में नियामक संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है”, ए.एस. थियागराजन ने स्वीकार किया, जो दिसंबर 1992 की शुरुआत तक ट्रेजरी संचालन के प्रभारी क्षेत्र प्रबंधक (भारत, श्रीलंका, नेपाल, बांग्लादेश) थे। जब सिटिकॉर्प के अध्यक्ष जॉन रीड सितंबर 1992 में भारत में थे, तो उन्होंने थियागराजन से कहा, “यदि आपने कुछ गलत किया है, तो कृपया स्वीकार करें।”

लेकिन उनके लिए सच बताना बहुत जोखिम भरा था। सिटीबैंक के ट्रेजरी संचालन का स्तर, उसके पीएमएस सौदे और कुछ दलालों के साथ बैंक का गठजोड़ काफी हद तक थियागराजन द्वारा ही स्थापित किया गया था। उनके दो भाई बेंगलुरु स्थित ब्रोकिंग फर्म, मेगास्टॉक्स चलाते थे, जिसके सबसे बड़े सौदे उन्हीं सी. मैकर्टिच और स्टीवर्ट एंड कंपनी के साथ होते हैं - जो सिटीबैंक के आंतरिक दलाल हैं। हालांकि, मेगास्टॉक्स सिटीबैंक का दलाल नहीं था और बैंक के एक प्रवक्ता के अनुसार, थियागराजन ने स्वयं

को आंतरिक जांच के लिए प्रस्तुत किया था।

सिटीबैंक द्वारा कुछ आरोपों को स्वीकार करने की एक छोटी सी संभावना थी। थियागराजन और राव के बीच अच्छे संबंध नहीं थे। जब घोटाला सामने आया, तो बाहरी लोगों को लगा कि राव इस अवसर का लाभ उठाकर थियागराजन को उनकी गलती मानने पर मजबूर कर देंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, बल्कि राव ने सार्वजनिक रूप से बैंक और थियागराजन का जोरदार बचाव किया। अंततः आरबीआई ने थियागराजन को देश छोड़ने के लिए कहा। तब से उन्हें सिंगापुर और इंडोनेशिया में देखा गया है। कुछ बाजार सूत्रों के अनुसार, वह भारतीय शेयरों में सक्रिय रूप से निवेश करते हैं।
सिटीबैंक की कार्यप्रणाली और राव का उसका ज़ोरदार बचाव बैंक की आंतरिक संस्कृति का परिणाम था, जहाँ जीत को सर्वोच्च महत्व दिया जाता था। इसके अलावा, न्यूयॉर्क स्थित उसके मुख्यालय ने एक रणनीतिक निर्णय लिया होगा कि वह किसी अन्य नियामक समस्या को स्वीकार न करे, विशेष रूप से एक तृतीय-विश्व देश में। या सरल शब्दों में कहें तो, यह भी हो सकता है कि सिटीबैंक अपनी उस छवि में फँस गया हो, जिसमें वह नियमों से घिरे एक नीरस वित्तीय जगत में एक चतुर, आक्रामक रणनीतिकार के रूप में खुद को प्रस्तुत करता था। आख़िरकार, लगातार बढ़ते मुनाफ़े (1991-92 में 138.12 करोड़ रुपये, जबकि पिछले वर्ष यह 58.61 करोड़ रुपये था) के साथ, यह पूरे बैंकिंग जगत के लिए ईर्ष्या का विषय था।
सिटीबैंक से निपटने में यही मुख्य कठिनाई थी: वह जिस रूप में दिखना चाहता था और उसकी वास्तविकता के बीच एक बहुत बड़ा अंतर था। वह भारत के प्रति वफ़ादार दिखना भी चाहता था। जब 1992 के अंत में विदेशी बैंकों पर ज़बरदस्त हमले हुए, तो राव स्तब्ध और

परेशान नज़र आए। उन्होंने पत्रकारों को यह समझाने का प्रयास किया कि सिटीबैंक भारत के प्रति कितना प्रतिबद्ध है। “क्या इस देश में सफल होना अपराध है?” राव ने बार-बार पूछा। “शायद हम कुछ ज़्यादा ही आत्मसंतुष्ट हो गए थे क्योंकि हमारा हिसाब-किताब सही था और हमने मुनाफा कमाया था। मुझे लगता है कि यहीं हमसे गलती हुई”, उन्होंने घोटाले की जांच शुरू होने के बाद के महीनों में सिटीबैंक को मिली बदनामी के बारे में बताते हुए कहा। “हमने इस देश में इतना पैसा निवेश किया है। हमने चार साल से भारत से लाभांश नहीं लिया है”, राव ने कहा। “हमारा मुख्यालय विदेशों में प्रचार पर करोड़ों रुपये खर्च करता है। हमने भारत में अनिवासी भारतीय निवेश को बढ़ावा दिया है और विकसित किया है। हमने एक सॉफ्टवेयर निर्यात कंपनी शुरू की है। हम डिजिटल इक्विपमेंट कॉर्पोरेशन को भारत लाए हैं। निश्चित रूप से हमारी सफलता हमारे लिए बोझ नहीं बन सकती।”
यह सब प्रभावशाली लग रहा था और जेपीसी के सदस्य निश्चित रूप से प्रभावित हुए। लेकिन यह सब खोखली बातें थीं। राव ने कभी नहीं बताया कि लाभांश के अलावा अन्य रूपों में सिटीकॉर्प ने कितना पैसा भेजा; उन्होंने यह नहीं कहा कि एनआरआई के प्रति उनका गहरा लगाव आर्बिट्रेज के सरल गणित पर आधारित था: बैंक कम ब्याज दर पर ऋण लेकर अधिक ब्याज दर पर निवेश कर सकता था, जिससे उसे 5% या उससे अधिक का सीधा लाभ मिलता था, जो किसी भी लिहाज से बेहद लाभदायक था।
राव के साथ समस्या यह भी थी कि बैंक के कामकाज पर शायद ही कभी उनकी पकड़ मजबूत रही हो। अगस्त 1992 में उन्होंने कहा, "हमारे ग्राहकों को कोई नुकसान नहीं हुआ है।" एक प्रेस विज्ञप्ति में सिटीबैंक ने कहा, "सिटीबैंक इंडिया की नीति सार्वजनिक क्षेत्र

के बॉन्ड पोर्टफोलियो को बाजार मूल्य के अनुरूप रखने की है। इसलिए पोर्टफोलियो में कोई छिपा हुआ नुकसान नहीं है।" फिर नवंबर 1992 के अंत में, बैंक ने अपने कुछ सार्वजनिक क्षेत्र के ग्राहकों को पत्र भेजकर कहा कि पीएमएस में उनके लिए रखे गए बॉन्डों का मूल्य बाजार मूल्य के अनुरूप कम किया जा रहा है। इससे कुछ ग्राहकों को चौंकाने वाला "मूलधन का नुकसान" होगा और यह राव के इस दावे के विपरीत था कि "हमारे किसी भी पीएमएस ग्राहक को मूलधन का कोई नुकसान नहीं हुआ है।"
लेकिन इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि राव ने 1990 में भुगतान संतुलन संकट के चरम पर भारत की अंतरराष्ट्रीय साख को जिस तरह से कमज़ोर किया, उसे उन्होंने बड़ी चतुराई से नज़रअंदाज़ कर दिया। जब भारत अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि कार्ला हिल्स के निशाने पर था, तब कुशल रणनीतिकार राव ने भारत का पक्ष लेकर और अमेरिकी व्यापार प्रतिबंधों की धमकी के खिलाफ़ बोलकर सबको चौंका दिया। सिटीबैंक भारत के समर्थन में पूरे पृष्ठ के विज्ञापन प्रकाशित कर रहा था, जिसमें भारत में अपने 90 साल के इतिहास का बखान किया जा रहा था। लेकिन 1990 में उसका असली चेहरा तब सामने आया, जब भारत में एक गंभीर विदेशी मुद्रा संकट आया और देश को आत्मविश्वास बढ़ाने की ज़रूरत थी। सिटीबैंक ने लेटर ऑफ क्रेडिट में एक नुकसानदायक शर्त जोड़ दी, जिसका उद्देश्य एलसी को चुकाने की बाध्यता को बॉम्बे की एक विशेष शाखा तक सीमित करना था।
जब नवंबर 1990 में फाइनेंशियल एक्सप्रेस ने इस घिनौनी शर्त का खुलासा किया, तो सिटीबैंक ने पहले तो सार्वजनिक रूप से इस खबर का खंडन किया, फिर संवाददाता और अखबार को धमकाने की कोशिश की, और अंत में एक बेतुका स्पष्टीकरण दिया। सिटीबैंक ने आरबीआई को

बताया कि यह खंड केवल दायित्व का सीमांकन कर रहा था और इसे न्यूयॉर्क स्थित मुख्यालय के निर्देश पर जोड़ा गया था। आरबीआई ने त्वरित निरीक्षण किया और सिटीबैंक के दावे को झूठा पाया। आरबीआई को लगा कि यह खंड देश की विदेशी मुद्रा संबंधी प्रतिबद्धताओं को पूरा करने की क्षमता के बारे में नकारात्मक संकेत देता है।
17 दिसंबर 1990 को, आरबीआई ने अन्य बैंकों को निर्देश दिया कि वे अपने एलसी में ऐसे ही खंड न जोड़ें।
22 दिसंबर को, सिटीबैंक को बताया गया कि भले ही उसके मुख्यालय ने उसे ऐसा खंड जोड़ने का निर्देश दिया हो, उसे ऐसा करने के लिए आरबीआई की अनुमति लेनी होगी। इसके लिए जिम्मेदार सिटीबैंक अधिकारी आदित्य पुरी का तबादला कर दिया गया। वे अब एचडीएफसी बैंक के सीईओ हैं। बाद में, राव ने बस कंधे उचकाते हुए कहा, "यह मामला बुरी तरह से संभाला गया था।"
सिटीबैंक की "देशभक्ति" की भावना के अलावा, इस घटनाक्रम में जो बात महत्वपूर्ण थी, वह थी नियमों से निपटने के मामले में उसका आक्रामक रवैया। उसने कभी भी अस्पष्ट मुद्दों पर आरबीआई से परामर्श करना आवश्यक नहीं समझा। उदाहरण के लिए, यह आरबीआई के पीएमएस दिशानिर्देशों की अपनी कानूनी व्याख्या से संतुष्ट था। इसे उल्लंघन करने में कोई संकोच नहीं था। सिटी आरबीआई की निगरानी शैली से स्पष्ट रूप से परिचित था। उदाहरण के लिए, आरबीआई को एलसी क्लॉज़ के बारे में जानकारी नहीं थी और अगर मीडिया ने इसके बारे में न लिखा होता तो सिटी बच जाता। सिटी की मूल रणनीति: जल्दी पैसा कमाने के लिए नियमों को तोड़ना, आरोप लगने पर इनकार करना, पकड़े जाने पर माफी मांगना और फिर वही करना।

सिक्योरिटीज घोटाले के उजागर होने के बाद आरबीआई द्वारा बुलाई गई बीआर सुलह बैठक में भी इसने ऐसा ही रवैया दिखाया। जहां स्टैनचार्ट भारी मात्रा में प्रिंटआउट लेकर आया था और अन्य बैंक गड़बड़ी को सुलझाने के लिए तैयार थे, वहीं सिटी के कोषागार प्रमुख रमेश कुमार ने आरबीआई अधिकारियों से कहा: "हमें आपका पत्र बहुत देर से मिला। हम तैयार नहीं हैं।" इससे बैंकिंग संचालन और विकास विभाग के प्रमुख एन.डी. परमेश्वरन नाराज हो गए। उन्होंने फटकार लगाते हुए कहा, "यह व्यवहार करने का तरीका नहीं है। आपको तैयार होकर आना चाहिए था। प्रारूप कई दिन पहले ही निर्धारित किए गए थे।" जब स्टैनचार्ट के अधिकारियों ने कहा, "सिटीबैंक से हमारा बकाया है", तो सिटी के अधिकारियों ने कहा, "हम कुछ नहीं कह सकते। हमें नहीं पता। हमें जाँच करनी होगी।" अगर आरबीआई ने केंद्रीय बैंक की अपेक्षा के अनुरूप कार्य किया होता, तो सिटीबैंक को बहुत पहले ही आरबीआई के साथ गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ता। मई 1990 में, आरबीआई ने एक गहन निरीक्षण किया, जिसमें कई गंभीर उल्लंघन उजागर हुए, जो अमेरिका में भारी जुर्माने और बड़े पैमाने पर बर्खास्तगी का कारण बनते। सिटीबैंक अपने आरक्षित आवश्यकताओं (एसएलआर और सीआरआर) को कम कर रहा था, जिसे सभी केंद्रीय बैंक एक गंभीर उल्लंघन मानते हैं। वास्तव में, शर्मनाक बात यह थी कि पिछली निरीक्षण रिपोर्ट में इसी उल्लंघन की ओर इशारा किए जाने के बावजूद, सिटीबैंक ने बदलाव करने से इनकार कर दिया।
सिटीबैंक ने कृत्रिम दरों पर प्रतिभूतियों का सौदा किया और पर्याप्त भौतिक स्टॉक के बिना बीआर के बदले बीआर जारी किए और पीएमएस की दो महत्वपूर्ण शर्तों का उल्लंघन किया: इसने वस्तुतः रिटर्न की गारंटी दी और पीएमएस के पैसे का उपयोग एक वर्ष से कम

समय के लिए किया। सिटीबैंक ने अपने एक भरोसेमंद ग्राहक रिलायंस पेट्रोकेमिकल्स को बिना प्रतिभूतियों की डिलीवरी लिए 6.3 करोड़ रुपये का भुगतान किया और बाद में इस लेनदेन को रद्द कर दिया गया। आरबीआई ने कहा कि यह संभवतः कंपनी को वित्तीय संकट से निकालने के लिए किया गया था और पीएमएस के लिए एक साल की लॉक-इन अवधि के नियम का उल्लंघन था। सिटीबैंक द्वारा यूटीआई, आईडीबीआई और विजया बैंक से प्राप्त धन से किए गए कॉल मनी निवेश भी इसी श्रेणी में आते हैं।
सिटीबैंक ने बिल-डिस्काउंटिंग के माध्यम से अपने ग्राहकों को स्वीकृत सीमा से कहीं अधिक क्रेडिट सुविधाएं भी प्रदान कीं। इसने विदेशी निधियों की गलत गणना करके व्यक्तिगत/समूह उधारकर्ताओं (भारतीय व्यवसाय में उनके द्वारा लगाए गए विदेशी धन के आधार पर) को दिए गए क्रेडिट एक्सपोजर को सीमा से अधिक कर दिया। इसने आरबीआई के दिशानिर्देशों का उल्लंघन करते हुए प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स और रेमंड वूलन मिल्स की निवेश कंपनियों को शेयरों और डिबेंचर के बदले ऋण दिया ताकि उन्हें नियंत्रण हिस्सेदारी हासिल करने/बनाए रखने में मदद मिल सके। अंततः, सामाजिक बैंकिंग के तहत अपने दायित्व का चालाकी से उल्लंघन करते हुए, सिटीबैंक ने स्व-रोजगार व्यक्तियों को दिए गए अपात्र "ऑटोमोबाइल ऋणों" को शामिल कर कुल ऋणों का 15.4% का प्रभावशाली प्राथमिकता क्षेत्र ऋण दिखाने का प्रयास किया। यदि ऐसे ऋणों को हटा दिया जाए, तो यह आंकड़ा घटकर मात्र 3.6% रह जाएगा, जो अनिवार्य 10% से काफी कम है।
सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को विदेशी बैंकों द्वारा संचालित पीएमएस में पैसा लगाने से प्रतिबंधित किया गया था। सिटीबैंक ने हमेशा की तरह एक रास्ता निकाल लिया। उसने विजया

बैंक को सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों से धन जुटाने और उसे तीन अलग-अलग खातों के माध्यम से भेजने के लिए राजी किया। विजया बैंक ने अपने ग्राहकों को 11.25-13% की प्रतिफल दर का संकेत दिया, जबकि सिटीबैंक ने विजया बैंक को 13% की एकसमान प्रतिफल दर का आश्वासन दिया। दोनों बैंकों ने एक गुप्त समझौता किया जिसके तहत वे संकेतित प्रतिफल दर से अधिक अर्जित किसी भी लाभ को समान रूप से साझा करेंगे। चूंकि विजया बैंक के ग्राहकों के साथ लाभ को आगे बढ़ाने का कोई समझौता नहीं था, इसलिए यह स्पष्ट रूप से विजया बैंक और सिटीबैंक दोनों द्वारा ग्राहक खातों से धन निकालने के समान था।
उल्लंघनों की इतनी व्यापकता और गहराई के बावजूद, आरबीआई के उप-गवर्नर अमिताव घोष ने 1990 की निरीक्षण रिपोर्ट के निष्कर्षों पर चर्चा करने के लिए राव से औपचारिक रूप से कभी मुलाकात नहीं की, हालांकि दोनों के बीच कुछ पत्राचार हुआ था। सिटीबैंक के अधिकारियों ने तर्क दिया कि नियामक प्राधिकरण के साथ मतभेद "सामान्य" बात है और बैंक बातचीत में लगा हुआ है। यह बात तब तक ठीक थी जब तक कि यह बातचीत दो साल से चल रही थी। आरबीआई की निरीक्षण रिपोर्ट सिटीबैंक के न्यूयॉर्क मुख्यालय में स्थित अनुपालन विभाग को भेजी जाती थी, जिसने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। स्पष्ट रूप से, लाभ बढ़ाने के लिए नियमों की अवहेलना करना बैंक की आधिकारिक रणनीति का हिस्सा था।
सिटीबैंक के भारत स्थित डिविजन प्रमुख सीधे सिंगापुर में अपने प्रमुखों को रिपोर्ट करते थे। इस प्रकार, डिविजन प्रमुख एक-दूसरे के बराबर थे, जिनमें उपभोक्ता बैंक के प्रमुख राव सर्वोपरि थे। अंदरूनी सूत्रों के अनुसार, इन प्रमुखों में इस बात पर मतभेद था कि भारत के लिए बैंक की रणनीति क्या होनी

चाहिए। थियागराजन का मानना था कि उपभोक्ता बैंकिंग या कॉर्पोरेट ऋण के बजाय धन प्रबंधन और वित्तीय सेवाएं सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। राव ने उनसे घोर असहमति जताई और एक बैठक में उन पर चिल्लाते हुए कहा: "तुम बैंक को बर्बाद कर दोगे।" बाद में, राव के अपने क्षेत्र, उपभोक्ता बैंकिंग ने भी बैंक के लिए उतना ही शर्मिंदगी का कारण बना जितना कि राजकोषीय विभाग ने।
सिटीबैंक का मुद्रा बाज़ार में बड़ा कदम पूर्व नियोजित नहीं था। बैंक कॉरपोरेट ऋण देने में मजबूत था और भारत में खुद को एक खुदरा बैंक के रूप में स्थापित कर रहा था, जिसके तहत क्रेडिट कार्ड, स्वचालित टेलर मशीनें, उपभोक्ता वित्तपोषण योजनाएं शुरू की गई थीं और उच्च निवल संपत्ति वाले व्यक्तियों को ऋण प्रदान किया जा रहा था। राव द्वारा संचालित यह रणनीति एशिया/प्रशांत क्षेत्र में इसके फोकस के अनुरूप थी। लेकिन भारत में यह शायद अपने समय से कुछ साल आगे थी। इसने उपभोक्ता ऋण आधार बनाने में भारी निवेश किया, लेकिन अपनी इस जल्दबाजी में कुछ शर्मनाक गलतियां कर बैठी।
उदाहरण के लिए, जब इसके वाक्पटु सेल्समैन ने कड़े लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कार ऋण बेचने के लिए अत्यधिक दबाव डाला और अंधाधुंध प्रयास किए, तो बैंक को बड़े पैमाने पर डिफ़ॉल्ट के खतरे का सामना करना पड़ा। 1990 में, इसे पेशेवर ऋण वसूलीकर्ताओं को नियुक्त करना पड़ा। कुछ मामलों में, कारों को वापस लेने के लिए इसे गुंडों का भी इस्तेमाल करना पड़ा। 1992 की शुरुआत में यह रणनीति बुरी तरह विफल हो गई, जब सिटीबैंक द्वारा नियुक्त गुंडों ने इलेक्ट्रॉनिक्स आयोग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. पी.एस. देवधर को रोक लिया और उन्हें किसी और के रूप में समझकर

उनकी कार छीनने की कोशिश की। देवधर ने हंगामा खड़ा कर दिया, जिससे सिटीबैंक को भारी शर्मिंदगी उठानी पड़ी।
ट्रेजरी विभाग में ऐसी कोई चूक नहीं हुई। 1991 में, जब मुद्रा बाजार और शेयर बाजार उथल-पुथल से गुजर रहे थे, तब एक विदेशी बैंक के पास बेहतर कौशल के साथ भारी मुनाफा कमाने का सुनहरा अवसर था। सिटीबैंक ऐसा करने की राह पर था, तभी ब्याज दरों में अस्थिरता आ गई। दो बार ब्याज दरें बढ़ाई गईं
एक बार 5 अक्टूबर को और दूसरी बार 17 मार्च को, जिससे सिटीबैंक के अपने खातों और ग्राहकों के पोर्टफोलियो में मौजूद सरकारी प्रतिभूतियों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बांडों के बाजार मूल्य में 10-35% की गिरावट आई। नुकसान सैकड़ों करोड़ में हुआ होगा। यहीं पर ब्रोकरों का उपयोग करने की सिटीबैंक की रणनीति काम आई।
इसने अपने वफादार ब्रोकरों को बुलाया और उनसे बॉन्डों को ऊंची दरों पर खरीदकर नुकसान की भरपाई करने को कहा। इसके बाद ब्रोकरों को सिटीबैंक के ग्राहकों के नुकसान पर मुनाफे वाले सौदों के जरिए मुआवजा दिया गया। सितंबर की शुरुआत में, जब राव पूरी तरह आश्वस्त दिख रहे थे कि वे बेदाग हैं, तब भी उन्होंने एक शर्त जोड़ दी: “हमारी सबसे बड़ी कमजोरी ब्रोकर खाते हैं। ब्रोकरों का गठजोड़ ही हमारी कमजोरी है।” इससे एक अनसुलझे सवाल का जवाब भी मिल जाता है: आरबीआई की निरीक्षण रिपोर्टों और जानकीरामन समिति द्वारा चौंकाने वाले तथ्यों को उजागर करने के बावजूद, क्या सिटीबैंक के बारे में सब कुछ सामने आ गया? इसका जवाब सिटीबैंक के ब्रोकरों के खातों में छिपा था।
सिटी ने ब्रोकरों से काम करवाने की प्रथा शुरू की। इसने वफादार ब्रोकरों का एक समूह तैयार किया और उनसे भारतीय बैंकों को सौदे

बेचने को कहा। इसने उन्हें अधिक ब्रोकरेज देकर और रूटिंग, ब्रोकर पदों को सुरक्षित रखने और क्रेडिट देने जैसी अन्य सुविधाएं देकर मुआवजा दिया। अश्विन मेहता कहते हैं, “चुनिंदा ब्रोकरों को बढ़ावा देने की इसकी एक सोची-समझी रणनीति थी। वे तय करते थे कि मुनाफा कहां जाएगा।” जो बात मददगार साबित हुई, वह यह थी कि मनी मार्केट में कोई इलेक्ट्रॉनिक बोर्ड नहीं था, कोई न्यूनतम लाभ सीमा नहीं थी (इसलिए मुनाफे पर कोई अधिकतम सीमा नहीं थी)। ब्रोकर अवसरों की जानकारी लाते थे और भारी मुनाफा कमाने में मदद करते थे। यह सब ठीक था, सिवाय इसके कि "इस देश की सबसे पुरानी ट्रेजरी कंपनी होने के नाते," बैंकएम के एक पूर्व बॉन्ड ट्रेडर कहते हैं, "सिटीबैंक हर लाभदायक सौदे को हासिल करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता था। ब्रोकरों को पहले इसे सिटीबैंक के पास ले जाना होता था।" अगर वे ऐसा नहीं करते थे, तो उन्हें बहिष्कृत कर दिया जाता था।
एक ऐसे ही दलाल ने यह कहा: “थियागराजन, रमेश कुमार और अन्य होशियार लोग, जो खुद को मुद्रा बाजार का महापुरुष समझते थे, उनके लिए दलाल चापलूस बंदरों का झुंड थे, जो बॉम्बे के नरीमन पॉइंट स्थित सिटीबैंक के कोषागार कार्यालय, साखर भवन की आठवीं मंजिल की बड़ी-बड़ी कांच की दीवारों से उन्हें देखते रहते थे। कभी-कभार, सिटीबैंक के इन घमंडी अधिकारियों में से कोई एक बाहर निकलता और छटपटाते दलालों को उपदेश देता कि दलाल क्या होता है, उसकी सीमाएं क्या हैं और उसे अपने मालिक के प्रति वफादार कैसे रहना चाहिए।” वफादार दलालों में बॉम्बे के हितेन दलाल, वीबी देसाई और डीएस पुरभूदास और कलकत्ता के सी मैकर्टिच और स्टीवर्ट एंड कंपनी शामिल थे। इन्हीं दलालों के खातों में सिटीबैंक के संदिग्ध सौदे दर्ज थे।

एक पूर्व ब्रिटिश बैंक प्रमुख ने कहा, “दुनिया भर में सिटीबैंक की संस्कृति प्रतिस्पर्धा लाकर और सेवाओं में सुधार करके बाजार को हिला देने की रही है। लेकिन यह अति आक्रामक है। अगर इसे ठीक से नियंत्रित नहीं किया गया, तो यह कैंसर की तरह पूरे सिस्टम को खोखला कर देता है।” भारत में, सिटीबैंक ने भले ही सिस्टम को पूरी तरह से नष्ट न किया हो, लेकिन इसका व्यापक प्रभाव जरूर रहा। इसके आक्रामक तरीकों ने बैंकिंग क्षेत्र में कई बैंकों को अपना शिकार बनाया। इसकी एक रणनीति थी सरकारी सेवाओं में प्रभावशाली लोगों के करीबी रिश्तेदारों को नियुक्त करना, एक ऐसी चाल जिसे बाद में सभी विदेशी बैंकों ने अपनाया। बेशक, इस बात का कोई सबूत नहीं है कि इसने अपने सभी संपर्कों का इस्तेमाल किया है, लेकिन इसकी कोई व्यवस्थित जांच भी नहीं हुई है।
जब घोटाला सामने आया, तब यह एक लंबी और प्रभावशाली सूची थी। उपाध्यक्ष परेश सुखनकर, महाराष्ट्र के राजस्व विभाग के सचिव डीएम सुखनकर के बेटे हैं; सहायक प्रबंधक संदीप सेन, राष्ट्रीय जलविद्युत निगम के निदेशक एससी सेन के बेटे हैं; प्रबंधक श्रीराम चंदर, एसबीआई म्यूचुअल के महाप्रबंधक एन श्रीराम के बेटे हैं; एस श्रीधर, उपाध्यक्ष, इलाहाबाद बैंक और बैंक ऑफ इंडिया के पूर्व अध्यक्ष आर श्रीनिवासन के पुत्र हैं; रामचंद्र नायक, प्रबंधक, आरबीआई के पूर्व उप राज्यपाल पीआर नायक के पुत्र हैं; राहुल सिंह, सहायक उपाध्यक्ष, राष्ट्रीय रसायन एवं उर्वरक के पूर्व अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक दलीप सिंह के पुत्र हैं, इत्यादि।
बैंकएम, सिटीबैंक का करीबी सहयोगी था। यह सिटीबैंक के सभी कार्यों को करता था, लेकिन एक महत्वपूर्ण अंतर के साथ। बैंकएम

के भारत में प्रमुख विक्रम तलवार, जो अमेरिकी ग्रीन कार्ड धारक हैं और इस घोटाले को लेकर चिंतित नहीं थे, ने कहा, "बैंकएम के केवल दो पीएमएस ग्राहक थे।" घोटाले से उनकी एकमात्र समस्या यह थी कि घोटाला उजागर होने के बाद जोहान्सबर्ग की उनकी यात्रा रद्द हो गई। आरबीआई द्वारा 1 दिसंबर 1992 से शुरू होने वाले उनके नए अनुबंध के आवेदन को मंजूरी न देने के बाद तलवार को देश प्रमुख के पद से इस्तीफा देने के लिए मजबूर होना पड़ा।
तलवार ने दावा किया कि सैन फ्रांसिस्को स्थित बैंकएम के मुख्यालय ने भारतीय इकाई को पीएमएस से प्रतिबंधित कर दिया था, इसलिए सिटीबैंक के विपरीत, उसके पास छिपाने के लिए कुछ भी नहीं था।

हालांकि, बैंकएम को अपने बॉन्ड घाटे की भरपाई के लिए ब्रोकरों का इस्तेमाल करने से किसी ने नहीं रोका। उदाहरण के लिए, 31 अक्टूबर को, इसने आंध्र बैंक को 9% आईआरएफसी बॉन्ड 102.48 रुपये में बेचा और उसे 90 रुपये में वापस खरीद लिया, जिससे एक ही दिन में 12.48 करोड़ रुपये का मुनाफा हुआ। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि तलवार गर्व से दावा कर सकते थे कि बैंकएम ने अपने निवेश को प्रचलित बाजार मूल्य के अनुसार समायोजित किया था, और जरूरत पड़ने पर नुकसान भी उठाया था। सिटीबैंक की तरह, बैंकएम ने भी यह कहना जारी रखा कि उसने कुछ भी गलत नहीं किया है, जबकि जानकीरमन समिति ने इसके घोर उल्लंघनों के बारे में किसी को भी संदेह नहीं रहने दिया था। अन्य बातों के अलावा, बैंकएम ने पॉलीओलेफिन्स और 20 वीं सेंचुरी फाइनेंस को कार्यशील पूंजी स्वीकृत की, जिसका उपयोग इन कंपनियों द्वारा शेयर बाजार में निवेश करने के लिए किया जाना था।

बैंकएम ने बिना किसी प्राधिकरण के हर्षद को साफ-सुथरे ऋण भी स्वीकृत कर दिए। उसने दावा किया कि ये "लिपिकीय त्रुटियाँ" थीं। लेन-देन के एक अन्य मामले में, बैंकएम ने 100 करोड़ रुपये के बॉन्ड खरीदे जबकि बाजार मूल्य 80 करोड़ रुपये था। बैंकएम ने 20 करोड़ रुपये का नुकसान क्यों उठाया? क्योंकि उसे उसी ब्रोकर के साथ किए गए एक अन्य सौदे में इसकी भरपाई हो गई थी। लेकिन बैंकएम ने आरबीआई निरीक्षकों को बताया कि उसका नुकसान एक गलतफहमी का परिणाम था: उसे 17% के बजाय 13% बॉन्ड मिल गए थे! एक विश्व-प्रसिद्ध बैंक द्वारा झूठ बोलने के इस घिनौने प्रयास ने बैंकिंग जगत को स्तब्ध कर दिया, लेकिन सुस्त और संकोची आरबीआई को कुछ कार्रवाई करने के लिए प्रेरित किया।
आरबीई को इन दोनों अमेरिकी बैंकों के खिलाफ बहुत पहले ही कार्रवाई कर देनी चाहिए थी। घोष कहते हैं, "पीएमएस उल्लंघन लंबे समय से हो रहे थे।" “हमने मई 1990 में निरीक्षण किया था और सिटीबैंक को उसके संचालन के बारे में चेतावनी दी थी। मैंने जेरी राव और विक्रम तलवार से बात की थी और उनसे उचित व्यवहार करने को कहा था। हमें लगा कि पीएमएस (प्राइवेट मनी मैनेजमेंट) ब्याज दर निर्देश के सीधे विपरीत है। इस निरीक्षण के बाद मैंने पीएमएस के लिए विस्तृत दिशानिर्देश जारी किए, जिसमें लॉक-इन अवधि भी शामिल थी और यह भी कि प्रत्येक प्लेसमेंट को लॉक-इन अवधि के साथ एक अलग लेनदेन माना जाना चाहिए।” यह 1989 की बात है। बैंकों ने दिशानिर्देशों का उल्लंघन किया और आरबीआई ने कोई कार्रवाई नहीं की।
जैसे-जैसे सिटी और बैंकएम ने जानकीरामन समिति के निष्कर्षों के खिलाफ अपना रुख नहीं बदला, आरबीआई ने दोनों बैंकों को ढील दी। उन्होंने अपने जवाब दाखिल करने में दो महीने से अधिक का समय

लिया, हालांकि उन्होंने प्रेस विज्ञप्ति जारी कर यह दावा करने में कहीं अधिक तत्परता दिखाई कि उन्होंने कुछ भी गलत नहीं किया है। इस बीच, आरबीआई के नए उप-गवर्नर, डी.आर. मेहता, नियुक्त हुए, जिन्होंने घोष के पद छोड़ने के पूरे दस महीने बाद पदभार संभाला। मेहता विदेशी बैंकों के खिलाफ निर्णायक कार्रवाई करने के लिए उत्सुक थे। जब आरबीआई को इस बात के सबूत मिले कि थियागराजन घोटाले की जांच में दखल दे रहे थे और तथ्यों को छिपाने की कोशिश कर रहे थे, तो उसने सिटीबैंक से उन्हें हटाने का आदेश दिया।
दिसंबर 1992 की शुरुआत में, थियागराजन का तबादला देश से बाहर कर दिया गया। बैंक में पंद्रह साल बिताने के बाद, उन्हें एक ऐसे पद पर तैनात किया गया जहां अब उनका बाजार पर दबदबा नहीं था और न ही वे मुनाफा बढ़ाने वाले फैसले ले सकते थे। उन्हें न्यूयॉर्क स्थित बैंक के मुख्यालय में वैश्विक प्रतिभूति संचालन विभाग में तैनात किया गया। वहां से, उन्होंने चुपचाप बैंक छोड़ दिया और दक्षिण-पूर्व एशिया में फिर से सक्रिय हो गए। जेरी राव का तबादला लंदन में उपभोक्ता बैंकिंग प्रमुख के रूप में किया गया, वहां से कैलिफोर्निया में कुछ प्रौद्योगिकी विभागों में भेजा गया और फिर चुपचाप उन्हें पद से हटा दिया गया। वे भारत लौटकर एक सॉफ्टवेयर कंपनी MphasiS शुरू करने आए, उसका BFL सॉफ्टवेयर में विलय कर दिया और अब MphasiS BFL के प्रमुख हैं। अमेरिकी इसी तरह से तीसरी दुनिया के देशों में अपना काम करते थे: नियमों को दरकिनार करके भारी मुनाफा कमाना, पकड़े जाने पर जोर-शोर से विरोध करना और फिर चुपचाप प्रमुख कर्मचारियों का तबादला करके नए सिरे से शुरुआत करना। ठीक दस साल बाद एनरॉन ने भी यही तरीका अपनाया।

बैंकएम के ग्रीन कार्ड धारक मुख्य कार्यकारी अधिकारी तलवार को भी पद से हटा दिया गया। बैंक को बताया गया कि उसके
तलवार का कार्यकाल 30 नवंबर 1992 को समाप्त हो रहा था, लेकिन उसके नवीनीकरण के आवेदन को मंजूरी नहीं मिली। बैंकएम के अधिकारियों ने पूछा कि क्या तलवार सलाहकार के रूप में बने रह सकते हैं। आरबीआई ने इनकार कर दिया। वह तलवार को देश से बाहर भेजना चाहता था। अंततः आरबीआई को एक केंद्रीय बैंक की तरह, अपनी सभी शक्तियों का प्रयोग करते हुए कार्य करते देखा गया। फिर भी, यह स्पष्ट था कि आरबीआई विदेशी बैंकों को नियंत्रित नहीं कर रहा था, बल्कि वे ही आरबीआई को नियंत्रित कर रहे थे। आरबीआई की गड़बड़ियों की लंबी कहानी एक रोचक किस्सा है।

15

एक आंख वाला भगवान

“आरबी के दिशानिर्देश केवल दिशानिर्देश हैं। देश का कानून नहीं।”

बंबई के पुराने व्यापारिक जिले में वे आमने-सामने खड़े हैं: अट्ठाईस मंजिला इमारत जिसमें बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज स्थित है और जो भारत की पूंजीवादी व्यवस्था का केंद्र है, और उससे एक किलोमीटर दूर, भारतीय रिजर्व बैंक, देश का केंद्रीय बैंक और सर्वोच्च मौद्रिक प्राधिकरण। यह निकटता भ्रामक है। बीएसई एक ऐसा बाज़ार है, जो दलालों और बिचौलियों से भरा पड़ा है, जो सूचनाओं के अंबार से प्रेरित होकर जल्दी पैसा कमाने की होड़ में लगे रहते हैं। वहीं, आरबीआई एक अलग-थलग संस्था है, जो आत्म-महत्व प्राप्त अधिकारियों से भरी है, जिन्हें सूचनाओं से कोई मतलब नहीं है और जो बाज़ार की समझ से बिल्कुल अनजान हैं। आरबीआई और बीएसई के बीच की खाई भौतिक दूरी से हज़ार गुना ज़्यादा चौड़ी है।
1990 तक यह बात ज़्यादा मायने नहीं रखती थी। आरबीआई का बैंकों पर सीधा अधिकार क्षेत्र था, जो सरकारी प्रतिभूतियों, सार्वजनिक क्षेत्र के बांडों और इकाइयों के सबसे बड़े व्यापारी थे। बीएसई और उसके आसपास के बाज़ार के विपरीत, यह बाज़ार अदृश्य था। बीएसई प्रतिदिन कारोबार किए जाने वाले शेयरों की कीमतें प्रकाशित करता था। आरबीआई केवल केंद्र सरकार द्वारा जारी प्रतिभूतियों

के खरीद/बिक्री भाव प्रकाशित करता था, जबकि राज्य ऋणों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बांडों के लिए कोई भाव प्रकाशित नहीं होता था।
बाज़ार के नज़रिए से, इस खाई को हर्षद मेहता ने पाटा, जिन्होंने मुद्रा बाज़ारों से प्राप्त धन का उपयोग शेयर बाज़ारों में किया। नियामकों की ओर से, इस बड़ी खाई को पाटने का पहला कदम आरबीआई गवर्नर एस. वेंकिटारमनन ने उठाया, जब उन्होंने मार्च 1992 की शुरुआत में निवेश संस्थानों से पूछा कि क्या बीएसई में चल रही तेजी मुनाफा बुक करने का एक अच्छा कारण है।
केंद्रीय बैंक के मानकों के अनुसार गवर्नर का यह कदम क्रांतिकारी था। क्या वे आरबीआई के लिए एक नई और विस्तारित भूमिका गढ़ने की कोशिश कर रहे थे? उन्होंने तर्क दिया, "यदि सट्टेबाजी उत्पादक क्षेत्रों से पैसा खींच रही है, तो केंद्रीय बैंक निश्चित रूप से हस्तक्षेप कर सकता है और जांच कर सकता है।" यह तर्कसंगत था, लेकिन अपरंपरागत था। आरबीआई ने इससे पहले कभी भी ऐसे बाहरी कारकों पर ध्यान नहीं दिया था। यह माना जाता था कि शेयर बाजार स्वाभाविक रूप से सट्टेबाजी पर आधारित होते हैं और बैंकिंग प्रणाली से उनका कोई खास संबंध नहीं होता। दोनों के बीच केवल एक ही आधिकारिक रूप से मान्यता प्राप्त संबंध था: बैंक उच्च मार्जिन के अधीन शेयरों के बदले ऋण प्रदान कर सकते थे। हर्षद ने इसी लापरवाही और अज्ञानता का फायदा उठाया और शेयर बाजार संचालन के लिए बैंक निधियों का उपयोग किया। न तो आरबीआई और न ही बैंकों को इसकी जानकारी थी। इसका एक कारण बैंकों के भीतर दोषपूर्ण पर्यवेक्षण भी था। घोटाले के बाद कई सबूत सामने आए जिनसे पता चला कि आरबीआई की निरीक्षण शाखा - बैंकिंग संचालन और विकास विभाग - बैंकों और दलालों के खिलाफ वर्षों से सबूत

जुटा रही थी, लेकिन शीर्ष अधिकारियों ने इन निष्कर्षों की गंभीरता को समझने में पूरी तरह से विफल रहे।
यह घोटाला बाजार की कई तरह की प्रथाओं का परिणाम था। बैंक बिना प्रतिभूतियों के फर्जी बैंक रसीदों के माध्यम से बिक्री कर रहे थे। दलाल बैंकों को अपने वित्तपोषण के लिए मोर्चे के रूप में इस्तेमाल कर रहे थे, और सार्वजनिक क्षेत्र का पैसा बैंकिंग प्रणाली में डाला जा रहा था जिसे दलालों के माध्यम से शेयर बाजार में लगाया जा रहा था। इनमें से प्रत्येक प्रथा आरबीआई के नियमों का स्पष्ट उल्लंघन थी। लेकिन घोटाले के सामने आने के पांच महीने बाद जो चौंकाने वाला खुलासा हुआ, वह यह था कि इनमें से कोई भी प्रथा नई नहीं थी। हालांकि घोटाले का पैमाना और तीव्रता बाजार के जानकारों को भी स्तब्ध कर सकती है, लेकिन इनमें से कई प्रथाएं 1979 से चली आ रही थीं। 1991-92 में वित्तीय बाजारों में आई उथल-पुथल ने इन प्रथाओं को बढ़ावा दिया और बाजार के जानकारों को लापरवाह बना दिया।
इन सबके बावजूद, आरबीआई ने एक आंख वाले भगवान की तरह व्यवहार किया; उसकी दूसरी आंख अक्सर बंद रहती थी और कभी-कभार खुलने पर वह सिर्फ पलक झपकाती थी।
बैंक-ब्रोकर गठजोड़, कृत्रिम दरों पर किए गए सौदे, बीआर का दुरुपयोग, लेनदेन में हेरफेर, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के धन का उपयोग – वास्तव में, 1992 के घोटाले के मूल में निहित सभी कारक – के बारे में ठोस और विस्तृत जानकारी
कम से कम 1986 और उससे पहले की थी। 20 अक्टूबर 1986 को, डीबीओडी के एक उत्कृष्ट अधिकारी, ऑगस्टीन कुरियास ने मुख्य अधिकारी, के.के. मुखर्जी को लिखे एक पत्र में, दो बैंकों के नाम बताए जिन्होंने पर्याप्त शेष राशि के बिना बीआर जारी किए थे। ये

बैंक थे: इलाहाबाद बैंक और बैंक ऑफ कराड। उन्होंने गैर-मौजूद प्रतिभूतियां खरीदीं और उन्हें अपने वैधानिक तरलता अनुपात दायित्व के अंतर्गत शामिल किया। सिंडिकेट बैंक और आंध्र बैंक विक्रेता थे।
दुनिया भर के केंद्रीय बैंक एसएलआर जैसे आरक्षित आवश्यकताओं का उल्लंघन करने वाले बैंकों पर जुर्माना लगाते हैं। सिंडिकेट बैंक को 1987 में अपने एसएलआर कवर में कमी के लिए 23 करोड़ रुपये का भुगतान करने के लिए मजबूर किया गया था। लेकिन फिर, आरबीआई स्वयं अप्रत्यक्ष रूप से इस धोखाधड़ी को बढ़ावा देने के लिए जिम्मेदार था।
आर.बी. ने यह अनिवार्य कर दिया था कि 29 मार्च 1985 से पहले धारित प्रतिभूतियों का मूल्यांकन बैंकों की इच्छानुसार लागत मूल्य, बाजार मूल्य या बही मूल्य पर किया जा सकता है। 1991 में, बीआर अधिनियम में संशोधन किया गया और एसएलआर की गणना प्रतिभूतियों की लागत या अंकित मूल्य, जो भी कम हो, के आधार पर की जाने लगी। यह एक बड़ा प्रोत्साहन था। बीआर का उपयोग करके, बैंक 80 रुपये पर अंकित बॉन्ड को कृत्रिम रूप से उच्च दरों, जैसे 95 रुपये पर खरीद सकते थे, जो उच्च लागत मूल्य बन जाता था और उसे बड़ा एसएलआर कवर प्रदान करता था। कुरियास ने पाया कि बैंक यूनिटों या अन्य उच्च-उपज वाली प्रतिभूतियों में रेडी फॉरवर्ड लेनदेन के माध्यम से 10% की निरर्थक कृत्रिम कॉल मनी सीमा को भी दरकिनार कर रहे थे।
लेकिन 1986 में कुरियास और दो निरीक्षकों, सुशील कुमार और एसएस कन्नारकर ने जिस सबसे चौंकाने वाली प्रथा का पर्दाफाश किया, जो 1992 के घोटाले की जड़ थी, वह थी आंध्र बैंक का जीतू श्रॉफ के

स्वामित्व वाली वीबी देसाई एंड कंपनी के साथ गठजोड़। कुरियास ने लिखा:
ब्रोकरों के सौदों को बैंक के सौदों की तरह निपटाया जा रहा था, बैंक अपने स्वयं के बीआर जारी कर रहा था, आरबीआई के चेक जारी/प्राप्त कर रहा था, जिससे बाजार में यह धारणा बन रही थी कि बैंक अपने नाम से ही सौदे कर रहा है... बैंक ब्रोकरों को नाम का लाभ दे रहा था और उन्हें अनुचित लाभ पहुंचा रहा था... वह ब्रोकरों को कुछ ऐसी सुविधाएं प्रदान कर रहा था जो किसी अन्य ग्राहक को उपलब्ध नहीं कराई जातीं... बैंक ने ब्रोकरों के खाते में ऋण की पर्याप्त राशि न होने पर भी बीआर जारी किए थे। श्रोफ किसी सौदे में आंध्र बैंक को खरीदार/विक्रेता के रूप में इंगित करता था और बैंक से अपनी ओर से भुगतान/संग्रह करवाता था। यदि उन्होंने यह ऑपरेशन स्वतंत्र रूप से किया होता, तो चेक क्लियरिंग सिस्टम से होकर गुजरते, जिससे कुछ दिनों की देरी हो जाती। उनके पास करोड़ों रुपये का फ्लोट या ओवरड्राफ्ट होना आवश्यक होता, जो दोनों ही महंगे थे।
वीबीडी अकेले नहीं थे। आंध्र बैंक ने भूपेन चंपकलाल देवीदास और एडी नरोत्तम के लिए भी ऐसे सौदे किए थे। ये ब्रोकर बैंक से ओवरड्राफ्ट सुविधा का लाभ उठाते थे, जिसके बदले वे प्रतिभूतियां और शेयर जमा करते थे। जमा राशि अक्सर ऋण से कहीं अधिक होती थी, जिसका अर्थ है कि आंध्र बैंक वास्तव में ब्रोकरों को उनकी संपत्तियों के लिए सुरक्षित अभिरक्षा सुविधा प्रदान कर रहा था। इसके लिए और नाम-आधारित ऋण के लिए, आंध्र बैंक 0.005% का कमीशन वसूलता था, जो परिचालन लागत को पूरा करने के लिए बहुत कम था। कुरियास ने खुलासा किया कि स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक और कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज की तरह, आंध्र बैंक के

पास "बीआर की सेवानिवृत्ति पर नज़र रखने के लिए कोई रजिस्टर नहीं था, बीआर जारी करने के लिए अधिकृत अन्य बैंकों के अधिकारियों के नमूना हस्ताक्षर प्राप्त करने और उन्हें सत्यापित करने की कोई प्रणाली नहीं थी"।
ये तौर-तरीके बेहद अनियमित थे और इनमें हेराफेरी की अपार गुंजाइश थी – ज़ाहिर है, यह एक घोटाला था। दरअसल, आंध्र बैंक ने वीबीडी के मौखिक निर्देशों पर कुछ बड़े लेन-देन किए थे, जिनमें से कुछ को "लापरवाही" के कारण रजिस्टरों में दर्ज नहीं किया गया था। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात, जो बैंक ऑफ कराड और मेट्रोपॉलिटन को-ऑपरेटिव बैंक द्वारा स्टैनचार्ट को फर्जी बीआर जारी करने का अग्रदूत थी, कुरियास द्वारा खोजी गई एक ऐसी ही प्रथा थी। आंध्र बैंक वीबीडी के खाते में पर्याप्त सुरक्षा राशि के बिना एसजीएल या बीआर जारी कर रहा था। आरबीआई निरीक्षकों ने कहा, "यह बैंक की ओर से एक बहुत गंभीर अनियमितता है। एक मामले में बैंक ने अपने रिकॉर्ड की सटीकता के बजाय फर्म के रिकॉर्ड की सटीकता पर भरोसा किया।" बैंक का बचाव यह था कि चूंकि सभी संबंधित पक्षों ने बिना किसी शिकायत के अपनी-अपनी भूमिकाएं निभाई थीं, इसलिए लेन-देन को सही माना गया। यह सब तब तक ठीक लग रहा था जब तक कि 1992 में अचानक सब कुछ रुक नहीं गया। आंध्र बैंक "फिर से श्रॉफ पर भरोसा करते हुए बिक्री कर रहा था कि वह मांगे जाने पर विशेष सुरक्षा प्रदान करेगा।" आरबीआई निरीक्षकों ने कहा, “संभावना है कि खरीददार बैंक (बैंक ऑफ कराड या इलाहाबाद बैंक) एसएलआर उद्देश्य से खरीदी गई प्रतिभूतियों की गणना कर रहा होगा। इसका अर्थ है कि बैंक ने ब्रोकर को फर्जी प्रतिभूतियां जारी करने में धोखाधड़ी करने में मदद की है। यदि खरीददार बैंक मूल दोषपूर्ण बीआर के बदले बीआर जारी करके

प्रतिभूतियों को बेचता है, तो इससे लेन-देन की एक श्रृंखला बन सकती है।”
कुरियास की एक और खोज यह थी कि बैंक बैलेंस शीट को बेहतर दिखाने और कृत्रिम रूप से लाभ बढ़ाने के लिए दलालों का इस्तेमाल कर रहे थे।
उदाहरण के लिए, सिंडिकेट बैंक ने 31 दिसंबर 1985 को आंध्र बैंक को 15 करोड़ रुपये के बॉन्ड 97.75 रुपये प्रति शेयर पर बेचे और उसी दिन उन्हें 91.30 रुपये प्रति शेयर पर वापस खरीद लिया, जिससे बैलेंस शीट की तारीख तक उसे 96.75 लाख रुपये का लाभ हुआ। यह सौदा 6 जनवरी को रद्द कर दिया गया और बैंक को घाटा हुआ। आंध्र बैंक (फोर्ट शाखा) के बहीखातों में दिखाया गया कि उसने वीबीडी की ओर से काम किया था। हालांकि, इससे दलाल पर कोई असर नहीं पड़ा क्योंकि उसके बहीखाते हिंदू संवत वर्ष के अंत में बंद हुए थे। सिंडिकेट बैंक का 1984 में लाभ 5.07 करोड़ रुपये और 1985 में 5.98 करोड़ रुपये था। 97 लाख रुपये के बिना, बैंक के लाभ में गिरावट दिखाई देती।

सिंडिकेट बैंक HUDCO, ऑयल इंडस्ट्री डेवलपमेंट बोर्ड, रूरल इलेक्ट्रिसिटी कॉर्पोरेशन और आर्मी ग्रुप इंश्योरेंस फंड जैसे PSUs से 11.5% पर यील्ड देने के लिए पैसे लेता था। जब वह खरीदता या बेचता था, तो इन PSUs के नाम पर BRs जारी करता था। खरीदी गई सिक्योरिटीज़ बैंक के नाम पर ही रहती थीं और उनसे होने वाली इनकम, भले ही ज़्यादा हो, क्लाइंट्स को नहीं दी जाती थी। यह सिस्टम पोर्टफोलियो मैनेजमेंट स्कीम के बड़े पैमाने पर गलत इस्तेमाल की शुरुआत थी। असल में, कुरियास ने समझदारी से यह नतीजा निकाला: “पूरा ऑपरेशन इन्वेस्टमेंट पोर्टफोलियो

मैनेजमेंट की आड़ में डिपॉजिट लेने जैसा है।” आंध्रा बैंक की तरह, सिंडिकेट बैंक के भी अपने काम को सही साबित करने के लिए खराब रिकॉर्ड थे। “ऐसा लगता है कि रिकॉर्ड बनाए रखा गया था... ताकि इसे बनाने वालों के अलावा किसी को भी कन्फ्यूज़ किया जा सके।”
इन कामों के लिए RBI के अपने निर्देश थे। कुरियास ने साफ-साफ कहा कि इनमें से कुछ गड़बड़ियां सीधे तौर पर बैंकों की उस बहुत ज़्यादा रेगुलेटेड माहौल में अपनी प्रॉफिटेबिलिटी बढ़ाने की चाहत से पैदा हुईं जिसमें वे खुद को पाते थे।” लेकिन साथ ही, उन्होंने यह कहकर नज़रिया सही किया, “अच्छे इरादे मौजूदा कानूनों/रेगुलेशन के किसी भी उल्लंघन को सही नहीं ठहरा सकते। हम भविष्य में रेगुलेशन बनाते या उनमें बदलाव करते समय इन ट्रेंड्स को ध्यान में रख सकते हैं... आंध्रा बैंक द्वारा दिखाया गया फेवर या सिंडिकेट द्वारा प्रॉफिट बढ़ाना निश्चित रूप से फ्रॉड करने वाले तरीके हैं। सेंट्रल ऑफिस सही एक्शन लेने पर विचार कर सकता है।”

RBI के एक इंस्पेक्टर के इतनी ज़ोरदार आवाज़ उठाने के बावजूद, सेंट्रल बैंक के बड़े अधिकारियों ने कोई कार्रवाई नहीं की। आम तौर पर तो ब्रोकर्स और ट्रेजरी अधिकारियों को सस्पेंड करना, बैंकों पर कड़ी पेनल्टी लगाना, यह पता लगाना कि ये तरीके कितने आम हैं और कड़ी गाइडलाइंस जारी करना होता। RBI ने गोलमोल निर्देश जारी करने के अलावा कुछ नहीं किया, जिन्हें पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया गया।

18 फरवरी 1987 को, PMS के गलत इस्तेमाल का पता तब चला जब द इंडियन एक्सप्रेस ने “RBI की इंटरेस्ट पॉलिसी का मज़ाक” नाम से एक खबर छापी। इसमें बताया गया कि कैसे बैंक PMS का पैसा डिपॉजिट के तौर पर ले रहे थे, लेकिन चालाकी से इसे SLR और कैश रिज़र्व रेश्यो की ज़रूरतों से बाहर रख रहे थे। ऐसे डिपॉजिट से PSUs को गारंटीड फिक्स्ड रिटर्न मिलता था, जो RBI द्वारा तय इंटरेस्ट रेट से ज़्यादा था। यह एक पुरानी टेक्निक थी और अलग-अलग मकसदों के लिए इस्तेमाल होती थी। लेकिन इसने RBI के अंदर एक लंबी बहस छेड़ दी।

31 दिसंबर 1984 को, केनरा बैंक को हुडको के साथ इसी तरह की प्रैक्टिस में शामिल पाया गया, जिसे उसने BRs के बदले सिक्योरिटीज़ बेचीं और फिर वापस खरीद लीं। RBI की एक रिपोर्ट 1987 की शुरुआत में लिखा था, “दूसरे शब्दों में, बैंक इन इंस्टीट्यूशन से पोर्टफोलियो मैनेजमेंट की आड़ में, फंड देने वाले के तय इंटरेस्ट रेट पर फंड उधार ले रहा है, इस तरह डिपॉजिट पर इंटरेस्ट रेट पर RBI के निर्देशों को दरकिनार कर रहा है। हमारे बैंगलोर रीजनल ऑफिस को हाल ही में सलाह दी गई है कि वह बैंक को ऐसे तरीकों को तुरंत रोकने का निर्देश दे।” न सिर्फ केनरा बैंक ने इसे नहीं रोका बल्कि दूसरे बैंकों ने भी जल्द ही इसे फॉलो किया। अगर RBI अपनी पॉलिसी को लेकर साफ होता, तो ऐसा नहीं होता।

उदाहरण के लिए, केके मुखर्जी, जो घाना में डेप्युटेशन पर थे, ने 21 फरवरी 1987 को एक नोट लिखा, जिसमें उन्होंने ज्यादा लिबरल नजरिया अपनाया। “बायबैक अरेंजमेंट के तहत सरकारी सिक्योरिटीज

में डीलिंग पर पूरी तरह बैन लगाना न तो सही है और न ही सही, क्योंकि इससे गिल्ट मार्केट में ग्रोथ और डेवलपमेंट में रुकावट आएगी।” मुखर्जी ऐसे ट्रांज़ैक्शन को पूरी तरह से सही मानते थे, जब तक कि डील मार्केट रेट पर हों और कोई बिक्री तब तक न हो जब तक कि वह असल में इन्वेस्टमेंट पोर्टफोलियो में या तो असल रूप में या SGL बैलेंस में न हो। एग्जीक्यूटिव डायरेक्टर, यूके सरमा का थोड़ा अलग नज़रिया था, जैसा कि उनके 27 फरवरी 1987 के नोट में दिखता है:
पहले से तय कीमत पर बायबैक अरेंजमेंट शॉर्ट-टर्म फंड पर फ्री इंटरेस्ट रेट ऑपरेट करने का एक शानदार तरीका है। यह अरेंजमेंट CRR/SLR और डिपॉजिट पर इंटरेस्ट रेट पर RBI के निर्देशों को बायपास करने का एक संदिग्ध तरीका है। अगर RBI के निर्देशों का धूर्त और अप्रत्यक्ष रूप से उल्लंघन रोकना है, जैसा कि होना चाहिए, तो हमें ऐसे बैंकों को ऐसे अरेंजमेंट छोड़ने की सलाह देनी होगी। या फिर, शॉर्ट-टर्म डिपॉजिट पर इंटरेस्ट रेट फ्री करने पर फिर से सोचना पड़ सकता है ताकि सभी बैंक निर्देशों के उल्लंघन की रुकावट के बिना, बराबर शर्तों पर मुकाबला कर सकें।

इसके बाद 24 मार्च 1987 को डिप्टी गवर्नर (सुपरविज़न) के बीच एक मीटिंग हुई। अमिताव घोष, एग्जीक्यूटिव डायरेक्टर बगई, मुखर्जी, एडवाइजर-इन-चार्ज SS तारापोर और जॉइंट चीफ ऑफिसर SJ ठाकर। घोष ने कहा कि इंटरेस्ट रेट डायरेक्टिव का उल्लंघन करने वाले बायबैक डील्स पर रोक लगानी होगी, और कहा कि इस बारे में उन्होंने और एक दूसरे डिप्टी गवर्नर, सी रंगराजन ने गवर्नर RN मल्होत्रा के साथ खास तौर पर चर्चा की थी। बगई और मुखर्जी दोनों ने प्रैक्टिकल अप्रोच की वकालत की, जिसमें मुखर्जी ने कहा कि

चूंकि एक्स्ट्रा रिसोर्स जुटाने और उन्हें फायदेमंद रेट्स पर लगाने का स्कोप बहुत लिमिटेड था, इसलिए बायबैक डील्स बैंकों का प्रॉफिट बढ़ाने के तरीकों में से एक थीं। मीटिंग एक कंसेंस के साथ खत्म हुई।
यह पक्का किया गया कि बायबैक डील्स को जारी रहने दिया जाना चाहिए, लगभग उन्हीं शर्तों के तहत जो मुखर्जी ने अपने 21 फरवरी के नोट में बताई थीं। इसके बाद, अप्रैल 1987 में, RBI ने एक सर्कुलर जारी किया जिसमें सिर्फ़ इतना कहा गया था कि “हालांकि सही पोर्टफोलियो मैनेजमेंट किया जा सकता है, लेकिन पोर्टफोलियो मैनेजमेंट की आड़ में ऐसे ऑपरेशन जो असल में इंटरेस्ट रेट और रिज़र्व ज़रूरतों पर दिए गए निर्देशों का उल्लंघन करते हैं, उन पर इन निर्देशों के उल्लंघन के नतीजे भुगतने होंगे।” इस आम चेतावनी को नज़रअंदाज़ कर दिया गया। बैंकों ने PMS जारी रखा। ऐसा न करना बहुत लुभावना था। PMS ने दोहरा फ़ायदा दिया: पैसा (गैर-कानूनी रूप से) कम-यील्ड, कानूनी रिज़र्व ज़रूरतों से मुक्त था जबकि इनकम स्टॉक मार्केट (शेयर ट्रेडिंग या फाइनेंसिंग मार्जिन) से आती थी। यह इनकम किसी भी समय ज़्यादा थी, क्योंकि यह आमतौर पर अंदर की जानकारी से होती थी। बैंक एक साल से कम समय के लिए आसानी से पैसा ले रहे थे और एक साल के बैंक डिपॉज़िट पर नॉर्मल इंटरेस्ट रेट से ज़्यादा फिक्स्ड रिटर्न की गारंटी दे रहे थे। यह RBI की पूरी जानकारी में किया गया था। 1987-90 के दौरान, RBI ने बार-बार चेतावनी दी। मार्केट प्लेयर्स ने अनदेखी करते हुए अनसुना कर दिया।

11 अप्रैल 1988 को, मुखर्जी ने बैंकों को बायबैक डील्स रोकने की चेतावनी दी। 20 दिसंबर 1988 को, एक लेटर में, घोष ने बैंकों

को चेतावनी दी कि RBI को ऐसे मामले मिले हैं जहाँ बैंक अपने पोर्टफोलियो मैनेजमेंट स्ट्रक्चर के ज़रिए ज़्यादा रिटर्न का भरोसा दे रहे हैं और बैंकों को PMS गाइडलाइन्स का सख्ती से पालन करने का आदेश दिया। 2 मई 1989 को, DBOD ने लिखा कि “हमारे बैंकों को बार-बार सावधान करने के बावजूद... हमारे ध्यान में ऐसे मामले आए हैं कि कुछ मामलों में दिया गया फंड 30 दिनों के छोटे समय के लिए था और इन्वेस्टमेंट ट्रांज़ैक्शन असली के बजाय दिखावटी थे...”
इस लेटर में भविष्य के PMS डील्स के लिए चार ज़रूरी नियम बताए गए थे: कोई गारंटीड रिटर्न नहीं, फंड कम से कम एक साल के लिए स्वीकार किए जाने चाहिए, ट्रांज़ैक्शन मार्केट रेट्स पर होने चाहिए, और सही अकाउंटिंग और डॉक्यूमेंटेशन होना चाहिए। क्योंकि इन्वेस्टमेंट बैंकों को ये नियम असली नहीं लगे, इसलिए PMS बिना किसी रोक-टोक के जारी रहा और असल में, 1991-92 की उथल-पुथल के कारण फंड की ज़रूरत बहुत ज़्यादा बढ़ जाने पर इसे और बढ़ा दिया गया। बैंकों ने एक कमी देखी और अपने PMS को और बढ़ा दिया। कमी यह थी कि PMS डिपॉजिट को खास डील के लिए इस्तेमाल होने वाले शॉर्ट-टर्म कैश के तौर पर माना जाता था, जिसका रिस्क पूरी तरह से क्लाइंट उठाते थे। PMS का यह नया मतलब न तो RBI के सामने रखा गया और न ही RBI ने इसे मंज़ूरी दी। इसे सिर्फ़ कुछ विदेशी बैंकों से मिली कानूनी राय का सपोर्ट मिला। यह एक और उदाहरण है कि सिस्टम पर RBI की पकड़ कितनी खराब थी। सर्कुलर के बावजूद, बैंकों ने कभी भी इतने सेंसिटिव मुद्दे पर RBI से सलाह लेने की ज़रूरत महसूस नहीं की, और न ही RBI को पता था कि मार्केट क्या कर रहा है।

साफ़ है, RBI के कमिटेड अधिकारियों द्वारा बैंकों और ब्रोकरों द्वारा कमियों का फ़ायदा उठाने के तरीके पर किया गया पूरा डॉक्यूमेंटेशन बेकार गया। उनकी कोशिशों को एक के बाद एक आने वाले एग्जीक्यूटिव डायरेक्टर, डिप्टी गवर्नर और गवर्नर ने कमज़ोर कर दिया, जिनका काम मार्केट के तरीकों के बड़े असर को समझना था। उन्होंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि या तो उनके पास ऑटोनॉमी नहीं थी, या, अपने आइवरी टावर से, वे उन ब्रोकर्स के संपर्क में नहीं थे जो असल में मार्केट को चला रहे थे।
इस स्कैम के पीछे सबसे बड़ी वजहों में से एक थी RBI की ब्रोकर्स को एंटिटी के तौर पर बहुत ज़्यादा नापसंद करना। 1991 की एक इंस्पेक्शन रिपोर्ट में तो यह भी कहा गया था कि “सिक्योरिटीज़ मार्केट में ब्रोकर्स को खत्म करने से, जैसा कि कॉल मनी में किया गया था, उन बिचौलियों को हटाने में मदद मिल सकती है जो गलत कामों में शामिल हैं। ब्रोकर्स की भूमिका RBI या DFHI निभा सकते हैं।” 1992 में भी, बहुत कम लोगों ने यह समझने की ज़हमत उठाई थी कि हर्षद मेहता का दिमाग कैसे काम करता था। वह एक ब्रोकर था जो बैंकों से मुकाबला कर रहा था। उसके सभी काम – कानूनी और गैर-कानूनी – असल में बैंकों के कामों के अलग-अलग रूप थे। इनमें बिना सिक्योरिटीज़ के ट्रेडिंग करना, ट्रेडिंग पोजीशन लेना, कंपनियों से शॉर्ट-टर्म फंड खरीदना और अपने अकाउंट्स के ज़रिए कॉल मनी भेजना शामिल था। हर्षद को यह सब कानूनी लगता था। “मैं बैंक नहीं था। इसलिए मैं RBI के नियमों से गाइड नहीं था। यही मेरा फ़ायदा था”, उसने बाद में कहा। असल में, RBI मार्केट को इतना नहीं जानता था कि हर्षद RBI का एक जाना- माना ब्रोकर भी नहीं था! उसने 1992 में कहा, “मैंने तीन साल पहले RBI से मंज़ूर ब्रोकर के तौर पर एनरोलमेंट के लिए अप्लाई किया

था।” हालांकि उसे यह नहीं मिला, लेकिन इससे बैंकों को उसके कॉन्ट्रैक्ट लेने से नहीं रोका गया। बाद में RBI के नियम पूरी तरह से ज़रूरी नहीं रहे। बैंकों ने कहा कि SBI जो भी ब्रोकर स्वीकार करेगा, वह उन्हें मंज़ूर होगा।

सिंडिकेट बैंक एचयूडीसीओ, तेल उद्योग विकास बोर्ड, ग्रामीण विद्युत निगम और आर्मी ग्रुप इंश्योरेंस फंड जैसी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों से 11.5% की दर से ब्याज दर देने के लिए धन प्राप्त करता था। जब वह खरीद-बिक्री करता था, तो इन सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के नाम पर बीआर (बॉर्डर बैलेंस शीट) जारी करता था। खरीदी गई प्रतिभूतियां बैंक के नाम पर ही रहती थीं और उन पर अर्जित आय, चाहे वह अधिक ही क्यों न हो, ग्राहकों को नहीं दी जाती थी। यह प्रणाली पोर्टफोलियो प्रबंधन योजना के व्यापक दुरुपयोग की अग्रदूत थी। वास्तव में, कुरियास ने दूरदर्शिता से निष्कर्ष निकाला: "यह पूरी प्रक्रिया निवेश पोर्टफोलियो प्रबंधन की आड़ में जमा स्वीकार करने का रूप धारण कर लेती है।" आंध्र बैंक की तरह, सिंडिकेट बैंक के पास भी अपने कार्यों को प्रमाणित करने के लिए अपर्याप्त रिकॉर्ड थे। "ऐसा लगता है कि रिकॉर्ड इस तरह से बनाए गए थे... ताकि इसे बनाने वालों के अलावा किसी और को भ्रमित किया जा सके।"

इन प्रथाओं को बढ़ावा देने वाला मूलधन आरबीआई के स्वयं के निर्देश थे। कुरियास ने सराहनीय स्पष्टता के साथ कहा कि, "इनमें से कुछ अनियमितताएं सीधे तौर पर बैंकों की उस अति-विनियमित वातावरण में अपनी लाभप्रदता में सुधार करने की उत्सुकता से उत्पन्न हुईं, जिसमें वे खुद को पाते थे।" लेकिन साथ ही, वे सही

परिप्रेक्ष्य स्थापित करते हुए कहते हैं, “अच्छी मंशा मौजूदा कानूनों/नियमों के किसी भी उल्लंघन को उचित नहीं ठहरा सकती। भविष्य में नियम बनाते या उनमें संशोधन करते समय हमें इन प्रवृत्तियों को ध्यान में रखना चाहिए... आंध्र बैंक द्वारा दिखाए गए पक्षपात या सिंडिकेट द्वारा मुनाफे को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करना निश्चित रूप से धोखाधड़ी है। केंद्रीय कार्यालय उचित कार्रवाई शुरू करने पर विचार कर सकता है।”

आरबीआई के एक निरीक्षक द्वारा इतनी ज़ोरदार तरीके से इस मामले को उजागर करने के बावजूद, केंद्रीय बैंक के शीर्ष अधिकारियों ने कोई कार्रवाई नहीं की। सामान्य प्रक्रिया यह होती कि दलालों और वित्त अधिकारियों को निलंबित किया जाता, बैंकों पर भारी जुर्माना लगाया जाता, इन प्रथाओं की व्यापकता का पता लगाया जाता और कड़े दिशानिर्देश जारी किए जाते। आरबीआई ने अस्पष्ट निर्देश जारी करने के अलावा कुछ नहीं किया, जिन्हें पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया गया।

18 फरवरी 1987 को, पीएमएस के दुरुपयोग का खुलासा तब हुआ जब द इंडियन एक्सप्रेस ने "आरबीआई की ब्याज नीति का मज़ाक" शीर्षक से एक समाचार प्रकाशित किया। इसमें बताया गया कि बैंक पीएमएस के पैसे को जमा के रूप में स्वीकार कर रहे थे, लेकिन चालाकी से इसे एसएलआर और नकद आरक्षित अनुपात की आवश्यकताओं से बाहर रख रहे थे। इस तरह की जमा राशि से सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को गारंटीकृत निश्चित रिटर्न मिलता था, जो आरबीआई द्वारा निर्धारित ब्याज दरों से अधिक था। यह एक पुरानी तकनीक थी और इसका उपयोग विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता था। लेकिन

इसने आरबीआई के भीतर एक लंबी बहस छेड़ दी।

31 दिसंबर 1984 को, कैनरा बैंक को एचयूडीको के साथ इसी तरह की प्रथा में लिप्त पाया गया, जिसके तहत उसने बीआर के बदले प्रतिभूतियां बेचीं और फिर वापस खरीदीं। आरबीआई की एक प्रारंभिक रिपोर्ट में इस पर विचार किया गया। 1987 के एक बयान में कहा गया है, “दूसरे शब्दों में, बैंक पोर्टफोलियो प्रबंधन की आड़ में इन संस्थानों से उधार ले रहा है, और ब्याज दर उधार देने वाले द्वारा निर्धारित की जा रही है, जिससे जमा पर ब्याज दर संबंधी आरबीआई के निर्देशों का उल्लंघन हो रहा है। हमारे बेंगलुरु क्षेत्रीय कार्यालय को हाल ही में बैंक को इस तरह की प्रथाओं को तुरंत बंद करने का निर्देश देने को कहा गया है।” कैनरा बैंक ने न केवल इसे बंद नहीं किया, बल्कि अन्य बैंकों ने भी जल्द ही उसका अनुसरण किया। यदि आरबीआई अपनी नीति को लेकर अधिक स्पष्ट होता, तो ऐसा नहीं होता।

उदाहरण के लिए, घाना में प्रतिनियुक्ति पर गए के.के. मुखर्जी ने 21 फरवरी 1987 को एक नोट लिखा, जिसमें उन्होंने अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाया। “बायबैक व्यवस्था के तहत सरकारी प्रतिभूतियों में लेन-देन पर पूर्ण प्रतिबंध लगाना न तो वांछनीय है और न ही उचित, क्योंकि इससे गिल्ट बाजार के विकास में बाधा उत्पन्न होगी।” मुखर्जी का मानना था कि जब तक सौदे बाजार दरों पर किए जाते हैं और कोई बिक्री तब तक प्रभावी नहीं होती जब तक कि वह वास्तव में निवेश पोर्टफोलियो में वास्तविक रूप में या एसजीएल बैलेंस के रूप में दर्ज न हो, तब तक ऐसे लेन-देन पूरी तरह से वैध हैं। कार्यकारी निदेशक, यूके सरमा का

दृष्टिकोण थोड़ा भिन्न था, जैसा कि

उनके 27 फरवरी 1987 के नोट में परिलक्षित होता है:

पूर्व निर्धारित मूल्य पर बायबैक व्यवस्था अल्पकालिक निधियों पर ब्याज मुक्त करने का एक चालाक तरीका है। यह व्यवस्था सीआरआर/एसएलआर और जमा पर ब्याज दरों पर आरबीआई के निर्देशों को दरकिनार करने का एक संदिग्ध तरीका है। यदि आरबीआई के निर्देशों की चालाकी और अप्रत्यक्ष अवहेलना को रोकना है, जैसा कि होना चाहिए, तो हमें ऐसे बैंकों को ऐसी व्यवस्थाओं को छोड़ने की सलाह देनी होगी। वैकल्पिक रूप से, अल्पकालिक जमा पर ब्याज दरों को मुक्त करने पर पुनर्विचार करना पड़ सकता है ताकि सभी बैंक निर्देश उल्लंघन के डर के बिना समान शर्तों पर प्रतिस्पर्धा कर सकें।

इसके बाद 24 मार्च 1987 को उप राज्यपाल (पर्यवेक्षण) और एक अन्य व्यक्ति के बीच एक बैठक हुई। अमिताव घोष, कार्यकारी निदेशक बगाई, मुखर्जी, सलाहकार-प्रभारी एस.एस. तारापोर और संयुक्त मुख्य अधिकारी एस.जे. ठाकर बैठक में उपस्थित थे। घोष ने कहा कि ब्याज दर निर्देशों का उल्लंघन करने वाले बायबैक सौदों पर अंकुश लगाना आवश्यक है, और उन्होंने बताया कि इस विषय पर उन्होंने और एक अन्य उप-गवर्नर सी. रंगराजन ने गवर्नर आर.एन. मल्होत्रा के साथ विशेष रूप से चर्चा की थी। बगाई और मुखर्जी दोनों ने व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की वकालत की, जबकि मुखर्जी ने कहा कि अतिरिक्त संसाधन जुटाने और उन्हें लाभकारी दरों पर निवेश करने की गुंजाइश बहुत सीमित होने के कारण, बायबैक

सौदे बैंकों की लाभप्रदता में सुधार के लिए एक उपाय हैं। बैठक इस आम सहमति के साथ समाप्त हुई कि बायबैक सौदों को जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए, लगभग उन्हीं शर्तों के अधीन जो मुखर्जी ने अपने 21 फरवरी के नोट में बताई थीं।

इसके बाद, अप्रैल 1987 में, आरबीआई ने एक परिपत्र जारी किया जिसमें केवल इतना कहा गया था कि "वैध पोर्टफोलियो प्रबंधन किया जा सकता है, लेकिन पोर्टफोलियो प्रबंधन की आड़ में किए जाने वाले वे कार्य जो वास्तव में ब्याज दरों और आरक्षित आवश्यकताओं पर निर्देशों का उल्लंघन करते हैं, इन निर्देशों के उल्लंघन के परिणाम भुगतने पड़ेंगे।" इस सामान्य चेतावनी को अनसुना कर दिया गया। बैंकों ने पोर्टफोलियो मैनेजमेंट (PMS) जारी रखा।

ऐसा न करना बहुत लुभावना था। PMS से दोहरा लाभ मिलता था: पैसा (अवैध रूप से) कम प्रतिफल वाले वैधानिक आरक्षित आवश्यकताओं से मुक्त था, जबकि आय शेयर बाजारों (शेयर ट्रेडिंग या वित्तपोषण मार्जिन) से आती थी। यह आय किसी भी समय उच्च होती थी, क्योंकि यह आमतौर पर अंदरूनी जानकारी द्वारा समर्थित होती थी। बैंक एक वर्ष से कम अवधि के लिए निःस्वार्थ भाव से पैसा स्वीकार कर रहे थे और एक वर्ष की बैंक जमा पर सामान्य ब्याज दर से अधिक निश्चित रिटर्न की गारंटी दे रहे थे। यह सब RBI की पूरी जानकारी में किया गया था। 1987-90 की पूरी अवधि के दौरान, RBI ने बार-बार चेतावनी जारी की। बाजार के खिलाड़ियों ने इसे पूरी तरह से अनसुना कर दिया।

11 अप्रैल 1988 को, मुखर्जी ने बैंकों को बायबैक सौदे रोकने की

चेतावनी दी। 20 दिसंबर 1988 को, एक पत्र में, घोष ने बैंकों को चेतावनी दी कि RBI को ऐसे मामले मिले हैं जिनमें बैंक अपने पोर्टफोलियो मैनेजमेंट ढांचे के माध्यम से उच्च रिटर्न का आश्वासन दे रहे हैं और बैंकों को PMS दिशानिर्देशों का सख्ती से पालन करने का आदेश दिया।

2 मई को 1989 में, डीबीओडी ने लिखा कि "बार-बार बैंकों को चेतावनी देने के बावजूद... हमारे संज्ञान में ऐसे मामले आए हैं जिनमें कुछ मामलों में जमा की गई धनराशि केवल 30 दिनों की छोटी अवधि के लिए थी और निवेश लेनदेन वास्तविक के बजाय काल्पनिक थे..."

इस पत्र में भविष्य के पीएमएस सौदों के लिए चार महत्वपूर्ण नियम बताए गए थे: कोई गारंटीकृत प्रतिफल नहीं, धनराशि कम से कम एक वर्ष के लिए स्वीकार की जानी चाहिए, लेनदेन बाजार दरों पर होने चाहिए, और उचित लेखांकन और दस्तावेज़ीकरण होना चाहिए। चूंकि निवेश बैंकों को ये नियम अव्यावहारिक लगे, इसलिए पीएमएस बिना किसी रोक-टोक के जारी रहा और वास्तव में, 1991-92 की उथल-पुथल के कारण धनराशि की आवश्यकता में भारी वृद्धि होने से इसमें और तेजी आई। बैंकों ने एक खामी का फायदा उठाया और अपने पीएमएस को बढ़ा दिया। खामी यह थी कि पीएमएस जमा को विशिष्ट सौदों के लिए उपयोग की जाने वाली अल्पकालिक नकदी के रूप में माना जाता था, जिसका पूरा जोखिम ग्राहकों द्वारा वहन किया जाता था। पीएमएस की यह नई व्याख्या न तो आरबीआई के समक्ष प्रस्तुत की गई और न ही आरबीआई द्वारा अनुमोदित की गई। इसे केवल कुछ विदेशी बैंकों द्वारा प्राप्त कानूनी राय का समर्थन प्राप्त था। यह इस

बात का एक और उदाहरण है कि प्रणाली पर आरबीआई की पकड़ कितनी कमजोर थी। परिपत्रों के बावजूद, बैंकों ने कभी भी इतने संवेदनशील मुद्दे पर आरबीआई से परामर्श करना आवश्यक नहीं समझा, और न ही आरबीआई बाजार की गतिविधियों से अवगत था।

स्पष्ट रूप से, आरबीआई के समर्पित अधिकारियों द्वारा बैंकों और दलालों द्वारा खामियों का फायदा उठाने के तरीकों का व्यापक दस्तावेजीकरण व्यर्थ गया। उनके प्रयासों को क्रमिक कार्यकारी निदेशकों, उप राज्यपालों और राज्यपाल ने निष्फल कर दिया, जिनका काम बाजार प्रथाओं के व्यापक प्रभावों को समझना था। वे ऐसा नहीं कर पाए, क्योंकि या तो उनके पास स्वायत्तता नहीं थी, या वे अपने उच्च पदों पर रहते हुए उन दलालों से कटे हुए थे जो वास्तव में बाजारों को संचालित कर रहे थे।

घोटाले के पीछे सबसे बड़े कारकों में से एक आरबीआई का दलालों के प्रति घोर तिरस्कार था। 1991 की एक निरीक्षण रिपोर्ट में तो यह भी सुझाव दिया गया था कि "प्रतिभूति बाजार में दलालों का उन्मूलन, जैसा कि कॉल मनी में किया गया था, उन बिचौलियों को हटाने में मदद कर सकता है जो अनुचित प्रथाओं में लिप्त हैं। दलालों की भूमिका आरबीआई या डीएफएचआई द्वारा निभाई जा सकती है।" 1992 में भी, हर्षद मेहता के सोचने के तरीके को समझने की किसी ने परवाह नहीं की थी। वह एक ब्रोकर थे जो बैंकों से प्रतिस्पर्धा कर रहे थे। उनके सभी कार्य - वैध और अवैध - वास्तव में बैंकों द्वारा किए जा रहे कार्यों के ही अलग-अलग रूप थे। इनमें बिना प्रतिभूतियों के व्यापार करना, ट्रेडिंग पोजीशन लेना, कंपनियों से अल्पकालिक निधि प्राप्त करना और अपने खातों

के माध्यम से कॉल मनी भेजना शामिल था। हर्षद को लगता था कि यह सब वैध है। “मैं बैंक नहीं था। इसलिए मैं आरबीआई के नियमों से निर्देशित नहीं होता था।” बाद में उन्होंने कहा, "यही मेरा फायदा था।" दरअसल, आरबीआई बाजार की इतनी अनदेखी करता था कि हर्षद आरबीआई का मान्यता प्राप्त ब्रोकर भी नहीं था! उन्होंने 1992 में कहा, "मैंने तीन साल पहले आरबीआई द्वारा अनुमोदित ब्रोकर के रूप में पंजीकरण के लिए आवेदन किया था।" हालांकि उन्हें पंजीकरण नहीं मिला, लेकिन इससे बैंकों द्वारा उनके अनुबंध स्वीकार करने में कोई रुकावट नहीं आई। बाद में आरबीआई के नियम पूरी तरह से अप्रासंगिक हो गए। बैंकों ने कहा कि एसबीआई द्वारा स्वीकृत कोई भी ब्रोकर उनके लिए स्वीकार्य होगा।

बैंक और ब्रोकर जानते थे कि आरबीआई के शीर्ष अधिकारी या तो अनभिज्ञ थे या प्रभावित हो सकते थे। उस समय आरबीआई पर आर.एन. मल्होत्रा का दबदबा था, जो गवर्नर के रूप में बाजार संकेतों को सुनने के बजाय प्राथमिकता क्षेत्र के ऋणों जैसे मुद्दों पर अधिक ध्यान देते थे, उप-गवर्नर के रूप में सुस्त स्वभाव वाले घोष और विद्वान, वाक्पटु सी. रंगराजन, जो बाद में गवर्नर बने। घोष को बैंकिंग पर्यवेक्षण सहित आरबीआई के एक बड़े हिस्से पर पूरी तरह से खुली छूट प्राप्त थी। वे जनवरी 1992 में सेवानिवृत्त हुए। अगर कोई इन कुप्रथाओं के बारे में जानता था और इस घोटाले को रोक सकता था, तो वह घोष ही थे।

जब 1992 में घोष की सेंसिटिव और पावरफुल पोजीशन सुर्खियों में आई, तो वह पहले डिफेंसिव हो गए और बाद में स्कैम के लिए विदेशी

बैंकों को दोषी ठहराया। उन्होंने कहा, “RBI थोड़ा नरम था क्योंकि हम एक एक्टिव बॉन्ड मार्केट बनाना चाहते थे। मैं मानता हूं कि चेक और बैलेंस लिबरलाइजेशन के हिसाब से ठीक नहीं थे, लेकिन RBI ने तब माना कि जब यह एक नया मार्केट है तो उन्हें कुछ समय के लिए फ्री रहने दें और फिर रेगुलेट करें। चूंकि कोई फ्रॉड या क्रिमिनल कॉन्सपिरेसी नहीं थी, इसलिए हमने बैंकों को कुछ छूट दी।”
घोष सच नहीं बोल रहे थे। सबसे पहले, कुरियास की रिपोर्ट में खास तौर पर बताया गया था कि आंध्रा बैंक ने “ब्रोकर (VBD) को ऐसी सिक्योरिटीज बनाने में फ्रॉड करने में मदद की थी जो मौजूद नहीं थीं।” दूसरा, बैंक अपने क्लाइंट्स की कीमत पर पैसा बनाने के लिए PMS का इस्तेमाल कर रहे थे, जबकि उन्हें सिर्फ फीस मिलनी थी। तीसरा, PMS डिपॉजिट्स ने रिज़र्व रिक्वायरमेंट्स को बायपास किया – जो दुनिया में कहीं भी एक गंभीर अपराध है। चौथी बात, RBI यह देखने में बुरी तरह फेल रहा कि बैंक-ब्रोकर का गठजोड़, ऑफ-मार्केट रेट पर डील और जो सिक्योरिटीज़ हैं ही नहीं, उनके खिलाफ डील अलग-अलग मामले नहीं थे, बल्कि एक स्कैम थे।
असल में, घोष ने खुद माना कि RBI को बहुत पहले ही दो US बैंकों, बैंक ऑफ अमेरिका और सिटीबैंक के खिलाफ कार्रवाई करनी चाहिए थी। “हमने मई 1990 में सिटीबैंक का इंस्पेक्शन किया था और उन्हें चेतावनी दी थी। मैंने जेरी राव (सिटीबैंक के) और विक्रम तलवार (बैंकएम के) से बात की थी और उनसे ठीक से पेश आने को कहा था। विदेशी बैंक RBI के निर्देशों का बहुत सम्मान नहीं करते, क्योंकि दिल्ली में उनका बहुत असर है और वे इंटरनेशनल लेवल पर ताकतवर हैं। मुझे लगता है कि समस्या बैंकिंग सिस्टम पर डबल कंट्रोल है। इसे रोकना होगा।” घोष ने सुझाव दिया, “कुछ विदेशी

बैंकों के खिलाफ सख्त कार्रवाई की जानी चाहिए, कम से कम एक या दो बैंकों के लाइसेंस वापस ले लेने चाहिए… लेकिन ऐसी कार्रवाई करने से पहले उनके हेड ऑफिस और उनके सेंट्रल बैंकों को स्थिति के बारे में डिटेल में बताया जाना चाहिए। ये बैंक RBI की बनाई कमेटी के नतीजों को भी खुलेआम नहीं मान रहे हैं। अगर किसी भारतीय बैंक ने उनके देशों में ऐसा करने की हिम्मत की होती, तो उन्हें अपना सामान समेटकर जाने के लिए कहा जाता।” यह सब दिखावा बहुत प्रभावशाली लगता है, लेकिन घोष सिर्फ दिखावा कर रहे थे। 1991 के आखिर में जब वह रिटायरमेंट के करीब थे, तो वह खुद किसी विदेशी बैंक में एडवाइजर के तौर पर शामिल होना चाहते थे। उन्होंने वेंकटरमनन से कहा: “अगर आप मंजूरी दे दें तो मैं ANZ के लोकल एडवाइजरी बोर्ड में शामिल होना चाहता हूं।” गवर्नर ने उन्हें यह आइडिया छोड़ने का सुझाव दिया क्योंकि डिप्टी गवर्नर का रिटायरमेंट के तुरंत बाद उसी बैंक में शामिल होना ठीक नहीं लगा जिसे वह सुपरवाइज कर रहे थे।

घोष ने पूछा, “पीडी ओझा BankAm में हैं और PK कौल ANZ में हैं। तो मेरे शामिल होने में क्या गलत है?” गवर्नर ने ग्रिंडलेज़ के चीफ़ बॉब एडगर को बुलाया और पूछा: “क्या आप अपने एडवाइज़री बोर्ड में किसी पद के लिए घोष का नाम सुझा रहे हैं?” एडगर हैरान रह गए। “मैं इस पर बिल्कुल भी विचार नहीं कर रहा हूँ।” घोष ने हार मानने से मना कर दिया। वह गवर्नर के पास वापस आए और कहा, “विक्रम मुझे एडवाइज़री बोर्ड का मेंबर बनाने के लिए मान गए हैं।” गवर्नर ने तलवार से पूछा: “क्या आपने घोष का नाम सुझाया है?” विक्रम ने कहा कि उन्होंने सुझाया है। गवर्नर ने कहा, “लेकिन मैं सहमत नहीं होऊँगा।” घोष ने वेंकटरमनन पर गलत काम

करने का आरोप लगाया। गवर्नर ने कहा, “मैंने आपको एक पद दिया है जिससे आपको नेपियन सी रोड में RBI का घर, एक कार और अच्छी सैलरी मिलेगी। आप एक विदेशी बैंक में क्यों शामिल होना चाहते हैं?” फिर घोष फाइनेंस मिनिस्टर मनमोहन सिंह और डिपार्टमेंट ऑफ़ इकोनॉमिक अफेयर्स के सेक्रेटरी मोंटेक सिंह अहलूवालिया के पास गए और गवर्नर की शिकायत की। लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। रिटायर होने के तीन महीने बाद, घोष ने दावा किया कि रिटायरमेंट के बाद कूलिंग ऑफ़ पीरियड खत्म हो गया है। “अब मैं कहीं भी शामिल हो सकता हूँ।” गवर्नर ने कहा कि उन्हें कम से कम दो साल इंतज़ार करना चाहिए। इसके तुरंत बाद, स्कैम सामने आ गया।
घोष और मल्होत्रा के अंडर, बैंकों ने RBI की गाइडलाइंस को तोड़ने की आदत बना ली थी। कॉल मनी पर 10% की लिमिट का कभी पालन नहीं किया गया, बायबैक डील, जो मना थीं, मार्केट का दिल बन गईं; ब्रोकर्स को कॉल मनी में डील करने से बैन कर दिया गया था लेकिन वे हर जगह थे; विदेशी बैंकों को PSU मनी के साथ डील करने से मना किया गया था लेकिन उन्होंने एक फ्रंट बनाया और फिर भी PSU के साथ डील की।
आखिर में, जैसा कि पहले बताया गया है, PMS की सभी ज़रूरी शर्तों का सभी ने उल्लंघन किया। RBI ने कुछ नियम बनाए और रेगुलर इंस्पेक्शन किए, लेकिन आखिर में वह बदमाशों पर नरम रहा और मार्केट के तरीकों को लेजिटिमेसी दी, जैसे इन्वेस्टमेंट पर डेप्रिसिएशन न देना; घाटे को पार्क करने के लिए PMS का इस्तेमाल करना; बढ़ी हुई कीमतों पर स्विचिंग डील करना; और साल के आखिर में ब्रोकर्स को सिक्योरिटीज़ की ऊँची कीमतों पर बिक्री करके बाद में वापस खरीदना। विदेशी बैंकों ने तुरंत इसका इशारा समझ लिया। जैसा कि सिटीबैंक के एक एग्जीक्यूटिव ने हमें

1990 में बताया था, “RBI की गाइडलाइंस बस गाइडलाइंस हैं। देश का कानून नहीं।” जब दिसंबर 1990 में वेंकटरमनन गवर्नर बने, तो माहौल बदल गया। इसलिए नहीं कि वे जोशीले नियम लागू करने वाले थे, बल्कि इसलिए कि दशकों में पहली बार कोई RBI गवर्नर मार्केट इंटेलिजेंस का इस्तेमाल कर रहा था। यह एक सिविल सर्वेंट के तौर पर उनके बहुत लंबे और रंगीन करियर की वजह से था। वेंकटरमनन, एक गरीब स्कूल टीचर के बेटे थे, और लेफ्टिस्ट एक्टिविस्ट थे। उनके कॉलेज के दिनों में। इसलिए, सिविल सर्विस एग्जाम में टॉप करने के बावजूद, उन्हें पोस्टिंग नहीं दी गई। उन्होंने तमिलनाडु के उस समय के मुख्यमंत्री से अपील की, जिन्होंने बदले में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को फोन किया। नेहरू ने आदेश दिया कि वेंकटरमणन को तुरंत कैडर में शामिल किया जाए। तब से, उनका करियर अलग-अलग तरह का रहा है, जो बिजनेसमैन और नेताओं के साथ उनके करीबी कॉन्टैक्ट की वजह से बना है। वह खास तौर पर ए.सी. मुथैया, रिलायंस इंडस्ट्रीज के अंबानी, हिंदुजा और राजीव गांधी के करीब रहे हैं, और अक्सर ऐसे फैसले लेते थे जो उनके फायदे में लगते थे। उनकी खास आदत रही है कि वे जमीन से जुड़े रहें और तेजी से और पक्के तौर पर काम करें।

मार्केट सोर्स से मिली जानकारी के बाद, उन्होंने 20 मार्च 1991 को झूठे BRs के इस्तेमाल की जांच शुरू की। जल्दी से जांच के आधार पर, DBOD ने 25 मार्च को एक रिपोर्ट तैयार की। इसमें कुछ नहीं दिखा। बाद में इसने दो हिस्सों में एक डिटेल्ड रिपोर्ट तैयार की। पहली 31 मई 1991 को पूरी हुई, और यह बारह बैंकों के इंस्पेक्शन पर आधारित थी। यह रिपोर्ट DBOD अधिकारियों ने वापस ले ली और 16 जून 1991 को एक और रिपोर्ट के साथ जमा कर दी।

पहली रिपोर्ट में सिर्फ़ UCO बैंक में गंभीर गड़बड़ियों का पता चला। पूरी तरह से अनजान रिपोर्ट में कहा गया: “यह नहीं कहा जा सकता कि बैंक ब्रोकरों को बिज़नेस देने के लिए ट्रांज़ैक्शन कर रहे थे और ये ट्रांज़ैक्शन वैसे ज़रूरी नहीं थे।” दूसरी रिपोर्ट में गंभीर गड़बड़ियों का ज़िक्र था लेकिन किसी बैंक का नाम नहीं लिया गया। इसके चलते RBI ने 26 जुलाई 1991 को ट्रेजरी ऑपरेशन्स पर पहला सर्कुलर जारी किया। हालाँकि, सर्कुलर जारी होने के ठीक बाद गड़बड़ियाँ बहुत बढ़ गईं, हालाँकि भारतीय और विदेशी बैंकों ने दिसंबर 1991 के आखिर तक रेगुलर कम्प्लायंस रिपोर्ट भेजीं। एक महीने बाद, घोष रिटायर हो गए। यह एक मुश्किल समय था। हर्षद स्टॉक मार्केट में छाए हुए थे और मनी मार्केट के खिलाड़ी कूपन हाइक की वजह से घाटे में थे। 1986 में, RBI का आँखें मूंदकर बैठे रहना अभी भी ठीक था। 1991 के बदलाव के उतार-चढ़ाव में फंसा यह बैंक बहुत छोटा लग रहा था और उसे बैंक-ब्रोकर के गठजोड़, पब्लिक डेट ऑफिस में कमियों और PMS के पैसे के गलत इस्तेमाल का कोई अंदाज़ा नहीं था। जो इंटर-बैंक मार्केट के तौर पर शुरू हुआ था, वह बहुत पहले ही अपना वह रूप खो चुका था। मार्केट में फाइनेंशियल इंस्टीट्यूशन, म्यूचुअल फंड, PSU, प्राइवेट कंपनियां, इन्वेस्टमेंट कंपनियां और बेशक, ब्रोकर भी शामिल थे। कई प्लेयर और मुश्किल डील RBI की खुद लगाई गई सीमाओं से और भी मुश्किल हो गईं: DBOD के चीफ एनडी परमेश्वरन ने कहा, “हमारी पहुंच सिर्फ बैंकों तक है। हम ब्रोकर की बुक्स की जांच नहीं कर सकते।” लेकिन किसी देश के सेंट्रल बैंक के पास ब्रोकर को उनकी डील की असली सच्चाई बताने के लिए मजबूर करने की ताकत ज़रूर होती है। DBOD इस पर सोचेगा भी नहीं।

नतीजा: हालांकि RBI इंस्पेक्टर 1989 तक सही थे, लेकिन 1990-92 की उथल-पुथल ने उन्हें मुश्किल में डाल दिया। यह सच में चौंकाने वाली बात थी कि हर्षद मेहता किसी छोटे को-ऑपरेटिव बैंक का फायदा उठाते हुए नहीं, बल्कि ब्लू-चिप SBI (जिसके 97% शेयर RBI के पास थे) और RBI की एक और सब्सिडियरी नेशनल हाउसिंग बैंक का फायदा उठाते हुए पकड़ा गया था। वह सेंट्रल बैंक के पैसे से खेल रहा था!

सुपरविज़न में इस पूरी तरह से गड़बड़ी की वजह से स्कैम हुआ और RBI की रेप्युटेशन खराब हुई। लेकिन यह स्कैम चीज़ों को बदलने का एक मौका भी था। 21 दिसंबर 1992 को रिटायर हुए वेंकटरमणन ने माना, "मुझे पता है कि RBI के इंस्पेक्टर उतने ही अच्छे होने चाहिए जितने अच्छे वे लोग होते हैं जिनका वे इंस्पेक्शन कर रहे होते हैं।" RBI की प्रमोशनल पॉलिसी ने यह पक्का किया है कि 90% ऑफिसर निचले रैंक से ऊपर आए हैं। उन्होंने कहा, "RBI को प्रोएक्टिव रहने और बहुत तेज़ी से जवाब देने की ज़रूरत है।"

दो स्कैम और नेशनलाइज़्ड बैंकों के पोर्टफोलियो में भारी बैड लोन के बावजूद चीज़ें मुश्किल से बदलीं। सुपरविज़न पर ज़्यादा फोकस करने के लिए कुछ रीऑर्गेनाइज़ेशन हुआ है, लेकिन यह सिर्फ़ दिखावा है।

16

जासूसी

यह काफी बुरा था कि एक बहुत बड़ा स्कैम हुआ। यह भी हैरानी की बात है कि स्कैम की जांच कितनी लापरवाही से की गई।

स्कैम की कहानी सामने आने के कुछ हफ़्ते बाद, CBI ने RBI इंस्पेक्टरों के साथ जांच शुरू कर दी। इन दोनों एजेंसियों के मौके पर पहुंचने से पहले ही, इनकम टैक्स डिपार्टमेंट हर्षद मेहता की जांच कर रहा था। तीन महीने बाद, अगस्त में, एक और जांच करने वाली बॉडी आई: JPC। आखिरकार, इन सभी एजेंसियों पर प्रधानमंत्री कार्यालय की पैनी नज़र थी। यह जासूसों की एक शानदार लाइन-अप लग रही थी और आप उम्मीद कर रहे थे कि बहुत सारे खुलासे होंगे, ज़्यादा क्लैरिटी और पूरी जानकारी होगी। दुख की बात है कि यह बहुत सारे रसोइयों का मामला बन गया और किसी को भी रेसिपी नहीं पता थी।

जब 1992 में घोष की संवेदनशील और प्रभावशाली स्थिति सवालों के घेरे में आई, तो उन्होंने पहले तो बचाव किया और बाद में घोटाले के लिए विदेशी बैंकों को दोषी ठहराया। उन्होंने कहा, “आरबीई

थोड़ा नरम था क्योंकि हम एक सक्रिय बॉन्ड बाजार विकसित करना चाहते थे। मैं मानता हूं कि उदारीकरण के अनुरूप नियंत्रण और संतुलन नहीं थे, लेकिन आरबीआई का मानना था कि जब यह एक नया बाजार है, तो कुछ समय के लिए उन्हें स्वतंत्र छोड़ दिया जाए और फिर नियम बनाए जाएं। चूंकि कोई धोखाधड़ी या आपराधिक साजिश नहीं थी, इसलिए हमने बैंकों को कुछ छूट दी।”

घोष सच नहीं बोल रहे थे। पहली बात तो यह है कि कुरियास की रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि आंध्र बैंक ने “ब्रोकर (वीबीडी) को गैर-मौजूद प्रतिभूतियों को उत्पन्न करने में धोखाधड़ी करने में मदद की थी।” दूसरी बात, बैंक अपने ग्राहकों की कीमत पर पैसा कमाने के लिए पीएमएस का इस्तेमाल कर रहे थे, जबकि उन्हें केवल शुल्क मिलना चाहिए था। तीसरी बात, पीएमएस जमा आरक्षित आवश्यकताओं को दरकिनार कर रहे थे – जो दुनिया में कहीं भी एक गंभीर अपराध है। चौथी बात यह है कि आरबीआई यह समझने में बुरी तरह विफल रहा कि बैंक-ब्रोकर गठजोड़, बाजार दर से अधिक दरों पर सौदे और अस्तित्वहीन प्रतिभूतियों के बदले सौदे कोई छिटपुट मामले नहीं थे, बल्कि एक घोटाला थे।

दरअसल, घोष ने स्वयं स्वीकार किया कि आरबीआई को दो अमेरिकी बैंकों, बैंक ऑफ अमेरिका और सिटीबैंक के खिलाफ बहुत पहले ही कार्रवाई करनी चाहिए थी। “हमने मई 1990 में सिटीबैंक का निरीक्षण किया था और उन्हें चेतावनी दी थी। मैंने सिटीबैंक के जेरी राव और बैंक ऑफ अमेरिका के विक्रम तलवार से बात की थी और उनसे उचित व्यवहार करने को कहा था। विदेशी बैंक आरबीआई के निर्देशों का सम्मान नहीं करते, क्योंकि दिल्ली में उनका काफी

प्रभाव है और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वे शक्तिशाली हैं। मुझे लगता है कि समस्या बैंकिंग प्रणाली पर दोहरे नियंत्रण की है। इसे रोकना होगा।”

घोष ने सुझाव दिया कि “कुछ विदेशी बैंकों के खिलाफ सख्त कार्रवाई की जानी चाहिए, कम से कम एक या दो बैंकों के लाइसेंस रद्द कर दिए जाने चाहिए… लेकिन ऐसी कार्रवाई करने से पहले उनके मुख्यालयों और उनके केंद्रीय बैंकों को स्थिति के बारे में विस्तार से बताया जाना चाहिए। ये बैंक आरबीआई द्वारा नियुक्त समिति के निष्कर्षों की भी खुलेआम अवहेलना कर रहे हैं। अगर किसी भारतीय बैंक ने अपने देशों में ऐसा करने की हिम्मत की होती, तो उन्हें अपना बोरिया-बिस्तर समेटकर देश छोड़ने को कहा जाता।” यह सब बातें सुनने में तो बहुत प्रभावशाली लगती हैं, लेकिन घोष सिर्फ लोगों को प्रभावित करने के लिए ऐसा कर रहे थे। 1991 के अंत में जब वे सेवानिवृत्ति के करीब थे, तब वे खुद किसी विदेशी बैंक में सलाहकार के रूप में शामिल होने के इच्छुक थे। उन्होंने वेंकिटारमनन से कहा: “अगर आप अनुमति दें तो मैं एएनजेड के स्थानीय सलाहकार बोर्ड में शामिल होना चाहता हूं।” गवर्नर ने उन्हें यह विचार छोड़ने की सलाह दी क्योंकि डिप्टी गवर्नर के लिए सेवानिवृत्ति के तुरंत बाद उसी बैंक में शामिल होना उचित नहीं लग रहा था, जिसकी वे देखरेख कर रहे थे।

घोष ने पूछा, “पीडी ओझा बैंकएम में हैं और पीके कौल एएनजेड में हैं। तो मेरे शामिल होने में क्या गलत है?”

गवर्नर ने ग्रिंडलेज़ के प्रमुख बॉब एडगर को बुलाया और पूछा,

“क्या आप अपने सलाहकार बोर्ड में घोष के नाम का प्रस्ताव रख रहे हैं?”

एडगर हैरान रह गए। उन्होंने कहा, “मैं इस पर बिल्कुल भी विचार नहीं कर रहा हूँ।”

घोष ने हार नहीं मानी। वे गवर्नर के पास वापस गए और बोले, “विक्रम मुझे सलाहकार बोर्ड का सदस्य बनाने के लिए सहमत हो गए हैं।”

गवर्नर ने तलवार से पूछा, “क्या आपने घोष का नाम प्रस्तावित किया है?” विक्रम ने कहा कि उन्होंने किया है।

“लेकिन मैं सहमत नहीं हूँ,” गवर्नर ने कहा।

घोष ने वेंकिटारमनन पर अन्याय का आरोप लगाया। गवर्नर ने कहा, “मैंने आपको ऐसा पद दिया है जिसमें आपको नेपियन सी रोड स्थित आरबीआई का घर, कार और अच्छा वेतन मिलेगा। आप किसी विदेशी बैंक में क्यों शामिल होना चाहते हैं?”

इसके बाद घोष वित्त मंत्री मनमोहन सिंह और आर्थिक मामलों के विभाग के सचिव मोंटेक सिंह अहलूवालिया के पास गए और गवर्नर के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई। लेकिन इसका कोई नतीजा नहीं निकला। अपनी सेवानिवृत्ति के तीन महीने बाद, घोष ने दावा किया कि सेवानिवृत्ति के बाद की कूलिंग ऑफ अवधि समाप्त हो गई है। “अब मैं कहीं भी शामिल हो सकता हूँ।” गवर्नर ने कहा कि उन्हें कम से

कम दो साल इंतजार करना चाहिए। इसके तुरंत बाद घोटाला सामने आया।

घोष और मल्होत्रा के नेतृत्व में, बैंकों ने आरबीआई के दिशानिर्देशों का उल्लंघन करना अपनी आदत बना लिया था। कॉल मनी पर 10% की सीमा का कभी पालन नहीं किया गया; प्रतिबंधित बायबैक सौदे बाजार का मुख्य आधार बन गए; ब्रोकरों को कॉल मनी में लेन-देन करने से प्रतिबंधित किया गया था, लेकिन वे हर जगह मौजूद थे; विदेशी बैंकों को सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) के धन से लेन-देन करने से प्रतिबंधित किया गया था, लेकिन उन्होंने एक मुखौटा बनाकर पीएसयू के साथ लेन-देन किया।

अंततः, जैसा कि पहले विस्तार से बताया गया है, पीएमएस की सभी महत्वपूर्ण शर्तों का सभी ने उल्लंघन किया। आरबीआई ने कुछ नियम बनाए और नियमित रूप से निरीक्षण किए, लेकिन अंततः उसने भ्रष्टाचारियों के प्रति नरम रुख अपनाया और बाजार की उन प्रथाओं को वैधता प्रदान की, जैसे निवेश पर मूल्यह्रास न देना; नुकसान को छिपाने के लिए पीएमएस का उपयोग करना; बढ़ी हुई कीमतों पर स्विचिंग सौदे करना; और बाद में वापस खरीदने के लिए वर्ष के अंत में प्रतिभूतियों को ब्रोकरों को उच्च कीमतों पर बेचना। विदेशी बैंकों ने तुरंत इसका फायदा उठाया। जैसा कि 1990 में सिटीबैंक के एक कार्यकारी ने हमें बताया था, "आरबीआई के दिशानिर्देश केवल दिशानिर्देश हैं। देश का कानून नहीं।"

दिसंबर 1990 में जब वेंकिटारमनन राज्यपाल बने, तो परिदृश्य बदल गया। ऐसा इसलिए नहीं हुआ कि वे नियमों का कड़ाई से पालन करते थे,

बल्कि इसलिए कि दशकों में पहली बार आरबीआई के राज्यपाल बाजार की जानकारी का उपयोग कर रहे थे। इसका श्रेय उनके लंबे और प्रभावशाली सिविल सेवक करियर को जाता है। एक गरीब स्कूल शिक्षक के पुत्र वेंकिटारमनन अपने कॉलेज के दिनों में वामपंथी कार्यकर्ता थे। इसलिए, सिविल सेवा परीक्षा में शीर्ष स्थान प्राप्त करने के बावजूद, उन्हें नियुक्ति नहीं मिली। उन्होंने तमिलनाडु के तत्कालीन मुख्यमंत्री से अपील की, जिन्होंने प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को फोन किया। नेहरू ने वेंकिटारमनन को तुरंत भारतीय सेवा में शामिल करने का आदेश दिया। तब से, व्यापारियों और राजनेताओं के साथ उनके घनिष्ठ संपर्कों ने उनके करियर को विविध रूप दिया है। वे एसी मुथैया, रिलायंस इंडस्ट्रीज के अंबानी, हिंदुजा परिवार और राजीव गांधी के विशेष रूप से करीबी रहे हैं, और अक्सर ऐसे निर्णय लेते थे जो उनके पक्ष में प्रतीत होते थे। उनकी मुख्य प्रवृत्ति जमीनी हकीकत से अवगत रहना और तेजी से और निर्णायक रूप से कार्य करना रही है।

बाजार के एक सूत्र से मिली सूचना के आधार पर, उन्होंने 20 मार्च 1991 को फर्जी बीआर (बैंक स्टेटमेंट) के इस्तेमाल की जांच शुरू की।

तेजी से जांच करने पर, डीबीओडी ने 25 मार्च को एक रिपोर्ट तैयार की। इसमें कुछ भी नहीं पाया गया। बाद में

उन्होंने दो भागों में एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की। पहला भाग 31 मई 1991 को पूरा हुआ और यह बारह बैंकों के निरीक्षण पर

आधारित था। डीबीओडी के अधिकारियों ने इस रिपोर्ट को वापस ले लिया और

एक अन्य रिपोर्ट के साथ 16 जून 1991 को प्रस्तुत कर दिया। पहली रिपोर्ट में केवल यूको बैंक में गंभीर अनियमितताएं पाई गईं। घोर अज्ञानता के साथ रिपोर्ट में कहा गया: "यह नहीं कहा जा सकता कि बैंक दलालों को कारोबार मुहैया कराने के लिए लेनदेन करवा रहे थे और ये लेनदेन अन्यथा उचित नहीं थे।"

दूसरी रिपोर्ट में गंभीर कदाचारों का उल्लेख किया गया, लेकिन किसी बैंक का नाम नहीं लिया गया। इसके चलते 26 जुलाई 1991 को आरबीआई द्वारा ट्रेजरी संचालन पर पहला परिपत्र जारी किया गया।

हालाँकि, परिपत्र जारी होने के ठीक बाद अनियमितताएँ अत्यधिक बढ़ गईं, हालाँकि भारतीय और विदेशी बैंकों ने दिसंबर 1991 के अंत तक नियमित अनुपालन रिपोर्ट भेजीं। एक महीने बाद, घोष सेवानिवृत्त हो गए। यह एक नाजुक दौर था। हर्षद शेयर बाजारों में बेतहाशा सक्रिय थे और कूपन बढ़ोतरी के कारण मुद्रा बाजार के खिलाड़ी बुरी तरह प्रभावित थे।

1986 में, आरबीआई के लिए इस मामले में अनभिज्ञ बने रहना अभी भी उचित था। 1991 के संक्रमण काल के उथल-पुथल भरे माहौल में फंसा आरबीआई कमजोर दिख रहा था और उसे बैंक-ब्रोकर गठजोड़, सार्वजनिक ऋण कार्यालय की खामियों और पीएमएस धन के दुरुपयोग की व्यापकता का कोई अंदाजा नहीं था। जो बाजार अंतर-बैंक बाजार के रूप में शुरू हुआ था, वह अपना स्वरूप खो चुका था। इस बाजार में वित्तीय

संस्थान, म्यूचुअल फंड, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम, निजी कंपनियाँ, निवेश कंपनियाँ और, निश्चित रूप से, ब्रोकर शामिल थे। कई खिलाड़ियों और जटिल सौदों के कारण आरबीआई की स्व-लगाई गई सीमाओं ने स्थिति को और भी जटिल बना दिया: "हमारी पहुंच केवल बैंकों तक है। हम दलालों के खातों की जांच नहीं कर सकते," डीबीओडी के प्रमुख एन.डी. परमेश्वरन ने कहा। लेकिन किसी देश के केंद्रीय बैंक के पास दलालों पर दबाव डालकर उनके सौदों की वास्तविक प्रकृति का खुलासा करवाने की शक्ति अवश्य होती है। डीबीओडी ने इस पर विचार तक नहीं किया।

परिणामस्वरूप: हालांकि 1989 तक आरबीआई के निरीक्षक सटीक थे, 1990-92 की उथल-पुथल ने उन्हें लाचार कर दिया। यह वाकई चौंकाने वाला था कि हर्षद मेहता किसी छोटे सहकारी बैंक का शोषण करते हुए नहीं पकड़ा गया, बल्कि प्रतिष्ठित एसबीआई (जिसके 97% शेयर आरबीआई के पास थे) और आरबीआई की एक अन्य सहायक कंपनी नेशनल हाउसिंग बैंक का शोषण करते हुए पकड़ा गया। वह केंद्रीय बैंक के पैसे से खेल रहा था!

पर्यवेक्षण की इस पूर्ण विफलता के कारण घोटाला हुआ और आरबीआई की प्रतिष्ठा धूमिल हुई। लेकिन यह घोटाला चीजों को बदलने का एक अवसर भी था। “मुझे पता है कि आरबीआई निरीक्षकों को उतना ही कुशल होना पड़ता है जितना कि वे लोग जिनकी वे जांच कर रहे हैं”, 21 दिसंबर 1992 को सेवानिवृत्त हुए वेंकिटारमनन ने स्वीकार किया। आरबीआई की पदोन्नति नीति ने यह सुनिश्चित किया है कि 90% अधिकारी निचले पदों से ही पदोन्नति पाते हुए उच्च पदों पर पहुंचे हैं। उन्होंने कहा, “आरबीआई को सक्रिय होना चाहिए और

बहुत तेजी से प्रतिक्रिया देनी चाहिए।”

राष्ट्रीयकृत बैंकों के पोर्टफोलियो में दो घोटालों और भारी मात्रा में खराब ऋणों के बावजूद स्थिति में शायद ही कोई बदलाव आया हो। पर्यवेक्षण पर अधिक ध्यान केंद्रित करने के लिए कुछ पुनर्गठन किया गया है, लेकिन यह केवल दिखावटी रहा है।

चुड़ैल-शिकार

एक विशाल घोटाला होना ही काफी बुरा था। इससे भी ज्यादा अविश्वसनीय यह है कि

घोटाले की जांच कितनी लापरवाही से की गई है।

घोटाले की कहानी सामने आने के कुछ हफ्तों बाद, सीबीआई जांच में आरबीआई निरीक्षकों के साथ शामिल हो गई।

इन दोनों एजेंसियों के आने से पहले ही आयकर विभाग हर्षद मेहता की जांच कर रहा था। तीन महीने बाद, अगस्त में, एक और जांच निकाय आया: जेपीसी। अंततः, इन सभी एजेंसियों की निगरानी प्रधानमंत्री कार्यालय की पैनी निगाहों के तहत की जा रही थी। जासूसों की यह टीम प्रभावशाली प्रतीत होती थी और उम्मीद की जा सकती थी कि इससे कई खुलासे होंगे, अधिक स्पष्टता आएगी और जांच व्यापक और व्यापक होगी। दुर्भाग्य से, मामला "बहुत सारे रसोइये हों और किसी को भी नुस्खा पता न हो" वाली कहावत पर आकर अटक गया।

इसका एक कारण यह भी था कि प्रत्येक जांच एजेंसी का अपना अलग उद्देश्य था। सीबीआई अपराध साबित करने में रुचि रखती थी। आयकर विभाग आय छिपाने के मामलों की जांच कर रहा था। आरबीआई बैंकों के नजरिए से घटनाक्रम को समझने का प्रयास कर रहा था और जेपीसी कुछ गहन जानकारी जुटाने की कोशिश कर रही थी। इन उद्देश्यों को मिलाकर घोटाले का संपूर्ण परिदृश्य तैयार किया जा सकता था। दुर्भाग्य से, जांच एजेंसियां इतनी संकीर्ण सोच वाली थीं कि वे एक-दूसरे के साथ सहयोग नहीं करना चाहती थीं।
आरबीआई ने एक जांच समिति नियुक्त की जिसके सदस्य थे:
सीपी रामास्वामी (आयकर अधिकारी), वाईएच मालेगम (लेखा फर्म एसबी बिलिमोरिया में भागीदार), ईएन रेनिसन (सेवानिवृत्त सीबीआई अधिकारी),
वीजी हेगड़े (कानूनी सलाहकार) और विमला विश्वनाथन सदस्य-सचिव के रूप में। समिति की अध्यक्षता उप राज्यपाल,
आर जनकिरामन ने की। यह एक विविध समूह था। यह ज्ञात नहीं है कि समिति के प्रत्येक सदस्य ने क्या विशिष्ट भूमिका निभाई, लेकिन रामास्वामी और रेनिसन की उपस्थिति के बावजूद जनकिरामन समिति की रिपोर्ट में कर संबंधी या आपराधिकता संबंधी कोई खास जानकारी नहीं है।
इससे भी बुरी बात यह है कि इनमें से किसी भी एजेंसी को विशेष रूप से घोटाले की व्यावसायिक दृष्टि से जांच करने का जिम्मा नहीं सौंपा गया था: यह पता लगाना कि पैसा कहां गया और व्यावसायिक रूप से कितनी वसूली योग्य थी। उदाहरण के लिए, सीबीआई को इस बात की परवाह नहीं थी कि हर्षद बैंकों को अपना बकाया चुका सकता है या नहीं या स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक का पैसा कहां गायब हुआ। न ही यह जेपीसी के कार्यक्षेत्र का हिस्सा था। आरबीआई ने मान लिया

कि वसूली बैंकों की जिम्मेदारी है। बदले में, जांच की प्रक्रिया ने बैंकों को पंगु बना दिया।
बाजार के खिलाड़ियों पर इन विभिन्न एजेंसियों का जबरदस्त दबाव पड़ा। सामान्य परिस्थितियों में, आरोपी का सबसे अच्छा बचाव बाजार पर उंगली उठाना होता: आरबीआई को पता था कि क्या हो रहा है लेकिन वह इसे रोकने में विफल रहा। लेकिन घोटाले के सामने आने के बाद अत्यधिक भ्रम की स्थिति में, इन तर्कों के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। दलालों को धमकाकर झुकाया गया, बैंक अधिकारियों को बदनाम किया गया, भारत में हर किसी के जीवन को नियंत्रित करने वाले राजनेता बिना किसी सजा के बच निकले, अपराध को नियमों के उल्लंघन के साथ मिला दिया गया, जबकि घोटाले के कई प्रमुख खिलाड़ी पकड़ से बच निकले। सीबीआई जांच इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।
मई 1992 में, सरकार द्वारा घोटाले की जांच सीबीआई को सौंपने के फैसले की घोषणा के कुछ दिनों बाद, आरबीआई गवर्नर,
एस वेंकिटारमनन ने सीबीआई निदेशक विजय करण को फोन किया: "मुझे उम्मीद है कि आप मुझे एक अच्छा अधिकारी दे रहे हैं।" करण ने कहा, "मैं आपको सबसे अच्छा अधिकारी दूंगा। वह माधवन हैं।"
सीबीआई के संयुक्त निदेशक के. माधवन को एक ईमानदार अधिकारी के रूप में देखा जाता था, जिन्हें कुछ सबसे विवादास्पद मामलों, विशेष रूप से बोफोर्स घोटाले पर काम करने का अवसर या जिम्मेदारी मिली थी, जिसने दो दशकों से अधिक समय तक पूरे देश को झकझोर कर रखा था। जैसे ही यह घोषणा हुई कि माधवन घोटाले के मामलों को संभालेंगे, सरकार की विश्वसनीयता बढ़ गई। अब सच्चाई सामने आ जाएगी। या कम से कम सभी यही सोच रहे थे। वेंकिटारमनन ने

तो यहां तक सुझाव दिया कि माधवन को जानकीरमन समिति का सदस्य बनाया जाए।
हालांकि, माधवन को इस मामले में शामिल करने से हर कोई सहमत नहीं था। कैबिनेट सचिव नरेश चंद्र ने तो दो बहुत ही वाजिब कारणों से इस विचार का विरोध किया। धारणा यह थी कि माधवन (खासकर प्रेस से) बहुत बोलते हैं और उन्हें नाटकीयता पसंद है। इसके अलावा, ऐसी अफवाहें थीं कि प्रधानमंत्री स्वयं माधवन द्वारा बोफोर्स मामले को संभालने के तरीके से खुश नहीं थे। अंत में, नरेश चंद्र की आपत्तियां शायद आंशिक रूप से सही साबित हुईं। अपराध साबित करने के प्रयास में, सीबीआई ने कम से कम शुरुआत में, सबूतों की जगह आरोपों का सहारा लिया, पूछताछ की जगह अपमान और उत्पीड़न का, और जांच की जगह साजिश के सिद्धांतों का। जांच का पहला महीना और पहली एफआईआर ही इसका प्रमाण है।
सीबीआई के भ्रष्टाचार के मामले रिश्वतखोरी, घूसखोरी, गुप्त खाते, सत्ता का दुरुपयोग और जालसाजी से संबंधित होते हैं। इसके विपरीत, यह घोटाला अत्यंत जटिल था। सीबीआई ने कभी यह समझने की आवश्यकता महसूस नहीं की कि यह धोखाधड़ी का कोई साधारण मामला नहीं था, जहां किसी घटना और उससे लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों के बीच सीधा संबंध आसानी से स्थापित किया जा सके। सीबीआई को व्यक्तिगत लालच और व्यावसायिक सुविधा के ताने-बाने से बुने गए जटिल लेन-देन के एक उलझे हुए जाल से निपटना था। इसके भीतर, हर्षद मेहता का मामला सबसे सरल था। हर्षद ने प्रतिभूतियां देने के वादे पर पैसे लिए थे, लेकिन उन्हें अपने निजी इस्तेमाल के लिए मोड़ दिया। माधवन, शायद नाटक के प्रति अपने प्रेम से प्रेरित होकर, धोखाधड़ी के इस सरल मामले की जांच में हद से ज्यादा आगे बढ़ गए।

सीबीआई ने साजिश के सिद्धांत से प्रेरित होकर एसबीआई पर जमकर प्रहार किया। इससे काफी हंगामा और विवाद तो हुआ, लेकिन जानकार बैंकरों और दलालों के बीच सीबीआई हंसी का पात्र बन गई। हालांकि वे हंसने की हिम्मत नहीं कर रहे थे; वे इतने डरे हुए थे कि सीबीआई अगला कदम उन्हीं पर रखेगी। सीबीआई ने अपनी एफआईआर में आरोप लगाया कि उप प्रबंध निदेशक सी.एल. खेमानी और एसबीआई के दो अन्य अधिकारियों ने लेनदेन का समय और कीमत इस तरह तय की जिससे एसबीआई को धोखा हुआ और "एचएसएम (हर्षद मेहता) समूह को गलत तरीके से लाभ और एसबीआई को गलत तरीके से नुकसान हुआ।" इसके समर्थन में सीबीआई ने केवल एक ही सबूत पेश किया: 1991-92 के दौरान, एसबीआई के 41,252 करोड़ रुपये के लेनदेन हुए, जिनमें से 17,573 करोड़ रुपये एचएसएम समूह के साथ थे। सीबीआई के अनुसार, बाकी लेनदेन पंद्रह दलालों के माध्यम से हुए, जिससे प्रति दलाल औसतन 1579 करोड़ रुपये प्राप्त हुए, जबकि हर्षद के मामले में यह आंकड़ा 17,573 करोड़ रुपये था।
यहां दो आरोप हैं। पहला आरोप यह था कि खेमानी ने धोखाधड़ी से कीमतें तय करके हर्षद को लाभ पहुंचाया और दूसरा आरोप यह था कि हर्षद को विशेष लाभ पहुंचाया गया, जैसा कि उनके साथ हुए 17,573 करोड़ रुपये के भारी सौदों से स्पष्ट होता है, जबकि प्रति ब्रोकर औसत सौदा मात्र 1579 रुपये का था। पहले दूसरे आरोप पर विचार करें। यह औसत निकालने की निर्विवाद गणितीय कुशलता को दर्शाता है, लेकिन इसके अलावा और कुछ नहीं। वास्तव में, प्रति ब्रोकर औसत सौदे का आंकड़ा, अन्य सभी औसतों की तरह, जितना दिखाता है उससे कहीं अधिक छुपाता है। अप्रैल 1991 और मार्च 1992 के बीच, हर्षद के साथ 17,000 करोड़ रुपये के सौदों के अलावा, एसबीआई ने दिल्ली स्थित नरेश अग्रवाल के साथ 10,000

करोड़ रुपये और मुंबई के डीएस पुरभूदास के साथ 5136 करोड़ रुपये के लेनदेन किए थे, जिन पर हर्षद के कट्टर दुश्मन हेमेंद्र कोठारी का नियंत्रण था। अन्य बारह ब्रोकरों के साथ एसबीआई के सौदे केवल कुछ सौ करोड़ रुपये के थे, जिससे औसत निकालने का यह अभ्यास निरर्थक हो जाता है। सीबीआई ने अग्रवाल और कोठारी दोनों से "अवैध लाभ" के बारे में पूछताछ करने की जहमत नहीं उठाई। दूसरा आरोप अधिक जटिल था क्योंकि इसमें "मूल्य निर्धारण" शामिल था। दरअसल, मुद्रा बाजार में इतनी अधिक
कीमतें थीं कि यह 19 वीं सदी के भारतीय बाजार की तरह व्यवस्थित प्रतीत होता था। हालांकि, एसबीआई के पास मूल्य निर्धारण के आरोप का जवाब था। एसबीआई में निवेश संबंधी निर्णय एक समिति द्वारा लिए जाते थे जिसमें खेमानी और प्रबंध निदेशक पी.वी. सुब्बा राव शामिल थे। सीबीआई के पास इस बात का कोई पुख्ता विवरण नहीं था कि निवेश समिति द्वारा स्वीकृत किसी भी सौदे का समय और मूल्य निर्धारण एसबीआई के लिए नुकसान और हर्षद के लिए लाभ कैसे साबित हुआ।
दरअसल, 17,000 करोड़ रुपये के लेन-देन के मूल में एक
600 करोड़ रुपये का डबल रेडी फॉरवर्ड सौदा था जिसमें खरीद-बिक्री के चार चरण शामिल थे, जिससे यह 2400 करोड़ रुपये का हो गया। इसे कई पखवाड़ों में रोलओवर किया गया था। यदि इसे पाँच बार रोलओवर किया जाए, तो यह मात्र 600 करोड़ रुपये के लेनदेन से 12,000 करोड़ रुपये का वॉल्यूम बन जाता है। इसके अलावा, डबल रेडी फॉरवर्ड डील में दोनों पक्ष प्रतिभूतियों का आदान-प्रदान करते हैं। डबल रेडी फॉरवर्ड में एसबीआई को कोई नुकसान नहीं होता। वॉल्यूम का धोखाधड़ी से कोई संबंध नहीं था। नुकसान की वास्तविक संभावना सीधे लेनदेन में थी, जो एसबीआई मुख्य रूप से

डीएस पुरभूदास और नरेश अग्रवाल जैसे दलालों के माध्यम से करता था।
यदि हर्षद अपने वादे पूरे करने में विफल रहता या पैसा वापस करने में असमर्थ होता, तो एसबीआई को निश्चित रूप से धोखाधड़ी का सामना करना पड़ता। लेकिन इसके लिए किसे दोषी ठहराया जाना चाहिए? खेमानी केंद्रीय कार्यालय के उस विभाग के प्रमुख थे जहाँ निवेश समिति बैंक के फंड को कैसे इस्तेमाल किया जाए, इस पर निर्णय लेती थी। वास्तविक लेनदेन शाखाओं के माध्यम से किए गए थे, जो संचालन के तौर पर आर सीतारामन के अधीन थीं, न कि खेमानी के। तो, यदि शाखा ने हर्षद को बचाने के लिए कागजात में हेराफेरी की, तो क्या इससे केंद्रीय कार्यालय के अधिकारी स्वतः ही साजिश रचने वाले अपराधी बन जाते हैं?
एसबीआई की प्रणालियाँ भी इसके लिए दोषी थीं। केंद्रीय कार्यालय और शाखाओं के बीच कार्यों का विभाजन तब तक निरर्थक था जब तक कि दोनों में से किसी के लिए भी कोई जिम्मेदार न हो। निवेश संचालन प्रमुख होने के नाते, खेमानी को स्टॉक के आवधिक सत्यापन सहित उचित प्रणालियाँ स्थापित करनी चाहिए थीं और अंतिम उत्तरदायित्व उन्हीं पर होना चाहिए था। लेकिन यह एक प्रबंधकीय मुद्दा था, आपराधिक नहीं। मई और जून 1992 की गहमागहमी में, जब सीबीआई को एक खोजी कुत्ते की तरह खुला छोड़ दिया गया था, खेमानी ही निशाना साधने के लिए सही व्यक्ति प्रतीत हुए। एसबीआई का एक उप प्रबंध निदेशक सलाखों के पीछे? इसने माधवन के काम की खासियत वाली वांछित हलचल पैदा कर दी।
पूछताछ के दौरान, सीबीआई ने खेमानी से पूछा: “आप निवेश विभाग के प्रभारी थे। यह कैसे संभव है कि आपको यह पता न हो कि आपके अधीनस्थों का हर्षद के साथ यह सौदा चल रहा था?”

खेमानी ने उत्तर दिया कि यह जानना उनका काम नहीं था। उनका काम बैंक के लिए सर्वोत्तम सौदा करना था। वास्तविक लेन-देन सीतारामन द्वारा किए जाने थे। “अगर कोई मुझसे कहता है कि उसे कुछ प्रतिभूतियों की डिलीवरी मिल गई है जबकि उसे नहीं मिली है, तो मैं क्या कर सकता हूँ?”
सीबीआई अधिकारी ने फिर यह चौंकाने वाला सवाल पूछा: “अगर आप नियंत्रण रखना चाहते थे तो शाखा में जाकर यह काम कर सकते थे। आपने ऐसा क्यों नहीं किया?” खीमानी गुस्से में हार मान गए। हिरासत के पहले कुछ दिनों में, शांत स्वभाव और मृदुभाषी खीमानी को पूछताछ के दौरान लात मारी गई और गालियां दी गईं, साथ ही उन्हें कठोर फर्श पर सोने के लिए मजबूर किया गया, जिससे उनके पेट में तेज दर्द हुआ।
अन्य एसबीआई अधिकारियों को भी इसी तरह परेशान किया गया। प्रबंध निदेशक सुब्बा राव घोटाले से सिर्फ चार महीने पहले ही निवेश समिति में शामिल हुए थे। सीबीआई ने उनके घर की तलाशी ली। उनकी अस्सी वर्षीय सास इस घटना से स्तब्ध रह गईं। सीबीआई ने सुब्बा राव को आगे की जांच के लिए एसबीआई कार्यालय जाने का आदेश दिया। वह बुजुर्ग महिला, जो हर्षद और खीमानी जैसे वरिष्ठ एसबीआई अधिकारियों की गिरफ्तारी टेलीविजन पर देख रही थीं, उन्हें लगा कि सुब्बा राव को भी जेल हो जाएगी। वह उन्हें विदा करने के लिए दरवाजे तक गईं। सुब्बा राव के कार्यालय पहुंचने के कुछ ही मिनट बाद उन्हें फोन आया कि उनकी सास का निधन हो गया है।
सीतारामन को दक्षिण से वापस लाने के लिए जिम्मेदार वित्त अधिकारी आर.एल. कामत को एक अलग ही मुश्किल का सामना करना पड़ा। कामत की बेटी, जो स्वयं भी बैंक कर्मचारी थी, की सगाई हो चुकी थी। परिवार ने गहनों के कई सेट बनवाए थे, जो एसबीआई के एक लॉकर

में रखे थे। सीबीआई ने उसे सील कर दिया। इस दलील और विरोध के बावजूद कि सोने का कुछ हिस्सा बेटी के अपने पैसों से था, सीबीआई ने झुकने से इनकार कर दिया।
सभी छापेमारी के मामले इतने भयावह नहीं थे – कुछ तो बेहद हास्यास्पद थे। ऐसा ही एक मामला वीबी देसाई एंड कंपनी के जीतू श्रॉफ पर हुई छापेमारी का था। हम सीबीआई के पंचनामा को इस छापेमारी और बरामद की पूरी जानकारी देने देंगे।
नीचे आरडी सामंत और सीआर कुनेतकर द्वारा 17 जून को तैयार किए गए पंचनामा के अंश दिए गए हैं। ये दोनों ही एसबीआई की मुख्य शाखा, बॉम्बे में मुख्य क्लर्क और प्रमुख अधिकारी थे।

“हम उपरोक्त पंच एसबीआई की मुख्य शाखा के तिजोरी कार्यालय में मौजूद थे, जब श्री पी.के. मानकर, सीबीआई एसीबी बॉम्बे के निजी जासूस, जितेंद्र (जीतुभाई) श्रॉफ के साथ लगभग 11:40 बजे वहाँ पहुँचे। वे लॉकर संख्या 2967 तोड़ने आए थे... गोदरेज एंड बॉयस मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड के एक व्यक्ति को बुलाया गया और वह आज दोपहर 12:05 बजे हमारे सामने पेश हुआ। हम सभी तिजोरी कक्ष के अंदर गए और गोदरेज के कर्मचारियों ने औजारों और ड्रिलिंग की मदद से लॉकर संख्या 2907 खोला।” और फिर आता है घटनाक्रम। “लॉकर के अंदर केवल एक रुपये का सिक्का मिला... वह एक रुपये का सिक्का श्री जितेंद्र श्रॉफ को दे दिया गया।”

इसी तरह की छापेमारी 13 जून को बैंक ऑफ इंडिया में श्रॉफ की तिजोरी पर की गई। वहाँ भी उतना ही खजाना मिला। “भगवान की एक पुरानी कागज की तस्वीर मिली।” श्रॉफ एक रुपये के सिक्कों को लेकर विशेष रूप से अंधविश्वासी प्रतीत होते थे। यूनियन बैंक ऑफ

इंडिया के तिजोरी से दस ग्राम की चांदी की मूर्ति और एक सिक्का बरामद हुआ। सिंडिकेट बैंक के लॉकर पर छापेमारी में 101 रुपये का कीमती नोट मिला।
दिल्ली में सीबीआई ने पता लगाया कि हर्षद ने वी कृष्णमूर्ति को 32 लाख रुपये की "रिश्वत" के अलावा 40,000 रुपये भी दिए थे।
यह बात हर्षद के दिल्ली स्थित खातों में दर्ज थी। सीबीआई ने इसे रिश्वत का एक और उदाहरण बताकर गर्व से पेश किया। दुर्भाग्य से, सीबीआई के लिए, इस बड़ी रकम के अलावा, यह नया सबूत गलत व्यक्ति से संबंधित था। यह पैसा दिल्ली में ग्रोमोर के एक कर्मचारी के पास गया था, जिसका नाम भी वी कृष्णमूर्ति ही था!
सीबीआई की इस गड़बड़ी का उदारवादी स्पष्टीकरण यह है कि उसके पास संसाधनों की कमी थी, उसे तुरंत परिणाम देने थे और उसके हाथ बंधे हुए थे। लेकिन आरबीआई का क्या, जो बैंकिंग क्षेत्र का नियामक है और इसलिए उससे विशेषज्ञ ज्ञान की अपेक्षा की जाती है? यदि आरबीआई घोटाले से पहले दस वर्षों तक सोता रहा, तो घोटाले के बाद वह अंधेरे में भटकता रहा। इसने जल्दबाजी में कार्रवाई की, बैंकों के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया, बाजारों की कम समझ दिखाई और सच्चाई तक पहुंचने के लिए अपरंपरागत तरीकों का इस्तेमाल करने से इनकार कर दिया। जनकीरामन समिति की शुरुआती रिपोर्टों में भी यही रवैया झलकता था।
घोटाले की कहानी सामने आने के तुरंत बाद, आरबीआई ने सभी बैंकों की एक बैठक बुलाई ताकि उनके बकाया बीआर का मिलान किया जा सके। इस बैठक में स्टैनचार्ट, बैंक ऑफ कराड और मेट्रोपॉलिटन को- ऑपरेटिव बैंक में हुई धोखाधड़ी का खुलासा हुआ और आरबीआई के लिए घोटाला पूरी तरह स्पष्ट हो गया। आरबीआई के पास हर्षद द्वारा

किए गए लेन-देन का एक बड़ा जत्था था। उसके पास कुछ ऐसे लोग भी थे जिनके पास फर्जी बीआर रह गए थे, जिन्हें पीड़ित के रूप में पहचाना गया और बीआर जारी करने वाले ही धोखेबाज थे।
आरबीआई निरीक्षकों ने संदिग्ध सौदों की जांच के लिए एक-एक बैंक का दौरा किया। छह भागों वाली जनकीरामन रिपोर्ट का पहला भाग सतही जानकारी ही दे पाया। इसमें एसबीआई और हर्षद के संबंधों और प्रत्येक बैंक द्वारा किए गए कुछ संदिग्ध लेन-देनों का उल्लेख किया गया था। दूसरी और तीसरी रिपोर्ट भी लेन-देनों का अंबार थीं, जिन्हें मनी मार्केट ब्रोकर भी बार-बार पढ़ने के बाद ही समझ पाए।
जनाकीरामन समिति के सबसे संदिग्ध योगदानों में से एक था व्यापार मात्रा की गणना करने का उसका अनोखा तरीका। प्रत्येक रेडी फॉरवर्ड लेनदेन (खरीद/बिक्री) को दो बार और डबल रेडी फॉरवर्ड को चार बार गिना गया। पहली रिपोर्ट, जिसमें हर्षद और एसबीआई के बीच सांठगांठ को उजागर किया गया था, ने दोनों के बीच 17,000 करोड़ रुपये के लेनदेन (खरीद और बिक्री) का उल्लेख किया। 215 करोड़ रुपये की खरीदी गई प्रतिभूतियों और बेची गई एक निश्चित राशि को छोड़कर, हर्षद के साथ सभी लेनदेन रेडी फॉरवर्ड और डबल रेडी फॉरवर्ड आधार पर किए गए थे। समिति की गणना ने हर्षद द्वारा एसबीआई के साथ अपने सौदों को रोलओवर करके जमा की गई भारी मात्रा को जोड़ने की अनुमति दी। इस मात्रा ने एसबीआई के साथ हर्षद की सांठगांठ के बारे में संदेह को और बढ़ा दिया। लेकिन समिति ने कभी यह पता लगाने की जहमत नहीं उठाई कि इन लेनदेन में एसबीआई को लाभ हुआ या हानि।
रेडी फॉरवर्ड सौदे केवल निर्दिष्ट कीमतों पर वापस खरीदने और बेचने के लिए की गई बिक्री/खरीद हैं। एक प्रतिभूति ब्रोकर ने

कहा, "यदि लेनदेन वास्तविक हैं, तो एसबीआई को कोई नुकसान नहीं होगा।" डबल रेडी फॉरवर्ड में, दोनों पक्ष पहले प्रतिभूतियों का आदान-प्रदान करते हैं और बाद में लेन-देन को उलट कर अपनी मूल प्रतिभूतियां वापस प्राप्त कर लेते हैं। यहां भी, कीमतें और समय सीमाएं पहले से तय होती थीं और नुकसान का जोखिम लगभग न के बराबर था। एसबीआई के एक अधिकारी ने कहा, "हर्षद मेहता के साथ हुए उन भारी मात्रा में लेन-देनों में ही एसबीआई ने मुनाफा कमाया।" रेडी फॉरवर्ड सौदों में सामान्य स्प्रेड 1%-1.5% के बीच होता था। औसत दर को मानते हुए, एसबीआई ने हर्षद के साथ अपने 17,000 करोड़ रुपये के सौदे में 200 करोड़ रुपये कमाए थे।
समिति ने आंकड़ों के प्रति भी काफी उत्साह दिखाया। रिपोर्टें तालिकाओं और आंकड़ों से भरी हुई थीं, जिनमें से कुछ में हुई घोर त्रुटियों को देखकर लोग चौंक गए। तीसरी रिपोर्ट में 30 जून 1992 तक विभिन्न संस्थानों के पोर्टफोलियो खातों में बकाया राशि का विवरण दिया गया था।
उस समय तक, कई पीएमएस जमा राशि चुकाई जा चुकी थी। इसलिए आरबीआई ने बताया कि बैंक की सहायक कंपनियों पर लगभग 458 करोड़ रुपये बकाया थे। महज दो महीने पहले जब पीएमएस (प्राइवेट मनी मैनेजमेंट) फल-फूल रहा था, तब कैनफिना के पोर्टफोलियो में हजारों करोड़ रुपये थे। विदेशी बैंकों का सामूहिक पोर्टफोलियो 1386 करोड़ रुपये दिखाया गया, जबकि वास्तव में कुछ महीने पहले अकेले सिटीबैंक का ही इतना बड़ा पोर्टफोलियो रहा होगा। रिपोर्ट में शीर्ष तीन बैंकों के चालू पोर्टफोलियो खातों (सिटीबैंक का हिस्सा: 50% से अधिक) की रैंकिंग बैंकों द्वारा स्वयं प्रस्तुत जानकारी के आधार पर की गई थी, जिसमें यह उल्लेख नहीं किया गया था कि कई बैंकों ने, जिनके पास बड़े पीएमएस

पोर्टफोलियो थे, अपनी सूचियां प्रस्तुत नहीं की थीं, जिससे रैंकिंग भ्रामक हो गई। सबसे ज्यादा नाराजगी ब्रोकरों के वॉल्यूम में हुई त्रुटि से हुई।
समिति ने 1991-92 में 5000 करोड़ रुपये से अधिक के लेनदेन करने वाले ब्रोकरों की एक सूची सावधानीपूर्वक तैयार की। इस सूची में डी.एस. पूर्भूदास का नाम गायब था। इससे मुद्रा बाजार से परिचित लोग स्तब्ध रह गए। कोठारी की फर्म एक पुरानी और सुस्थापित ब्रोकर फर्म थी जिसका कारोबार काफी बड़ा था। इसके अलावा, बॉम्बे में अजय कायन की सहयोगी के रूप में, इसने हजारों करोड़ रुपये के सौदे पूरे किए थे। दरअसल, अकेले एसबीआई के साथ ही लेनदेन 5000 करोड़ रुपये से अधिक का था। तो फिर यह फर्म 5000 करोड़ रुपये के क्लब में क्यों शामिल नहीं हुई?
आरबीई अधिकारियों ने बताया कि कंपनी के अनुबंधों पर उसका नाम अलग-अलग वर्तनी (एक जगह डीएस पुरभूदास, दूसरी जगह डीएस प्रभादास आदि) से दर्ज किया गया था और कंप्यूटर द्वारा संकलन प्रक्रिया में यह खंडित हो गया। यह एक असंवेदनशील स्पष्टीकरण था, जिससे स्पष्ट होता है कि आरबीआई अधिकारी बाजार से पूरी तरह कटे हुए थे। अगर उन्हें बाजार के खिलाड़ियों की थोड़ी भी जानकारी होती, तो यह गलती उन्हें तुरंत नजर आ जाती। जब कोठारी का नाम 5000 करोड़ रुपये से अधिक की सूची में नहीं आया, तो अन्य सभी ब्रोकर इसे पक्षपातपूर्ण चूक मानते हुए बेहद नाराज हो गए। उनमें से एक ने व्यंग्यपूर्वक कहा: "एक उथल-पुथल भरे वर्ष में अगर डीएसपी 5000 करोड़ रुपये का लेन-देन भी नहीं कर पाए हैं, तो उन्हें अपना ब्रोकिंग व्यवसाय बंद कर देना चाहिए।" रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि 1991-92 में सिटीबैंक के 215,000 करोड़ रुपये के लेनदेन में मुख्य ब्रोकर हितेन दलाल, सी मैकर्टिच और स्टीवर्ट एंड

कंपनी थे। हैरानी की बात यह है कि स्टीवर्ट एंड कंपनी का नाम 5000 करोड़ रुपये के लेन-देन की सूची में नहीं था।
ये गड़बड़ियां इसलिए हुईं क्योंकि समिति ने ब्रोकरों से लेन-देन की मात्रा, सौदों और सांठगांठ के बारे में बात नहीं की। उसने केवल संस्थानों से ही बात की। यह आरबीआई के ब्रोकरों को एक आवश्यक बुराई के रूप में देखने के सामान्य दृष्टिकोण के अनुरूप था। डीबीओडी के प्रमुख,
एनडी परमेश्वरन, ब्रोकरों के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई पर विचार करने में भी बेहद संकोच कर रहे थे। उन्होंने कहा, "हम उन्हें विनियमित नहीं करते," इस प्रकार उन्होंने प्रासंगिक जानकारी और बाजार खुफिया जानकारी के सबसे महत्वपूर्ण स्रोत से संबंध तोड़ लिया।
इस घोटाले ने डीबीओडी को पहली बार मुद्रा बाजार में दशकों पुरानी उन प्रथाओं का पता लगाने के लिए मजबूर किया, जिनकी निगरानी करने का दायित्व उसका था। कुछ समय के लिए, आरबीआई के शीर्ष अधिकारियों ने सीबीआई के साथ मिलकर काम किया। व्यापक संदेह था कि आरबीआई गवर्नर एस. वेंकिटारमनन ने सीबीआई को सीएल खेमानी की घोटाले में संलिप्तता और स्टैनचार्ट के धन के गायब होने में भूपेन दलाल की भूमिका की जानकारी दी थी। गवर्नर ने इससे इनकार किया। साथ ही, आरबीआई ने एसबीआई और अन्य बैंकों के हितों की रक्षा के लिए कोई प्रयास नहीं किया। वास्तव में, जनकीरामन समिति द्वारा एसबीआई के साथ हर्षद के ट्रेडिंग वॉल्यूम की गलत व्याख्या सीबीआई की पहली एफआईआर में तुरंत दर्ज हो गई।
अन्य मोर्चों पर आरबीआई की कार्रवाई भी भ्रामक थी। मई 1992 में, गवर्नर ने अपनी एकमात्र प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाकर टाइम्स ऑफ

इंडिया में प्रकाशित उस रिपोर्ट का खंडन किया जिसमें घोटाले का आकार लगभग 5000 करोड़ रुपये बताया गया था, जबकि उनके खंडन का कोई ठोस आधार नहीं था। उन्होंने किसी भी बैंक के परिसमापन की संभावना से भी इनकार किया। कुछ ही हफ्तों के भीतर, बैंक ऑफ कराड और मेट्रोपॉलिटन बैंक, जिन्होंने स्टैनचार्ट को फर्जी बीआर जारी किए थे, का परिसमापन कर दिया गया। बैंकरों का मानना था कि यह कार्रवाई समय से पहले की गई थी। इससे आरबीआई की निर्णायक कार्रवाई की क्षमता दिखाने के अलावा कोई खास उद्देश्य पूरा नहीं हुआ।
वेंकिटारमन के नेतृत्व में, आरबीआई ने वास्तव में आक्रामक और निर्णायक कदम उठाए। इसने इन दो छोटे बैंकों को ध्वस्त कर दिया, एसबीआई और यूको बैंक के अध्यक्षों को छुट्टी पर जाने के लिए मजबूर किया, एक जांच समिति का गठन किया, चार विदेशी बैंकों के लिए विशेष लेखा परीक्षकों की नियुक्ति की और एसबीआई और एएनजेड ग्रिंडलेज़ को नेशनल हाउसिंग बैंक को लगभग 1200 करोड़ रुपये चुकाने के लिए बाध्य किया। क्या आरबीआई जनता को खुश करने के लिए ऐसा कर रहा था या खुद पर से दोष हटाने की कोशिश कर रहा था? क्या उसके कार्यों से खोई हुई रकम की वसूली में मदद मिली या बाजार का विश्वास बढ़ा?
आरबीबी द्वारा एसबीआई और ग्रिंडलेज़ पर दबाव डालकर एनएचबी को हर्षद के खाते में जमा की गई रकम वापस दिलवाना पेचीदा था। जैसा कि जानकीरमन समिति की दूसरी रिपोर्ट से साबित हुआ, एनएचबी कोई निर्दोष दर्शक नहीं था। उसके पास अपने लेन-देन के लिए कोई डील टिकट नहीं थे, सौदों की कोई पुष्टि नहीं थी, बीआर का कोई रिकॉर्ड नहीं था। जानकीरमन समिति ने कहा: "एनएचबी द्वारा फंड प्रबंधन के संबंध में शीर्ष प्रबंधन द्वारा जिम्मेदारी का पूर्णतः त्याग

किया गया है।" आरबीआई से कभी यह नहीं पूछा गया कि हर्षद की संपत्ति पर दावा करने वाले विभिन्न पक्षों में से एनएचबी को ही अपनी संपत्ति सुरक्षित रखने की अनुमति क्यों दी गई।
विदेशी बैंकों से निपटने के मामले में आरबीआई की आक्रामकता गायब हो गई, क्योंकि इन बैंकों ने पीएमएस दिशानिर्देशों का खुलेआम उल्लंघन किया था और सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को धोखा दिया था। सिटीबैंक, बैंक ऑफ अमेरिका और अन्य बैंकों की अविश्वसनीय हठधर्मिता ने ही आरबीआई को सख्त रुख अपनाने और घोटाले में शामिल सभी विदेशी बैंकों के वित्त प्रमुख को बर्खास्त करने का आदेश देने के लिए मजबूर किया।
यदि घोटाले पर आरबीआई की प्रतिक्रियाएँ कहीं-कहीं दृढ़ निश्चयपूर्ण तो कहीं संकोचपूर्ण थीं, वहीं प्रशासन के विभिन्न विभागों में समन्वय की पूर्ण कमी दिखाई दी। वित्त मंत्रालय, जिसे आरबीआई के साथ नोडल समन्वयक होना चाहिए था, न केवल घोटाले से अनभिज्ञ था, बल्कि तब से इसकी गंभीरता को कम करके आंकता रहा है। अप्रैल 1992 में जब संसद में घोटाले पर बहस हुई, तो वित्त मंत्रालय का कोई भी शीर्ष अधिकारी उपस्थित नहीं था। वित्त मंत्री मनमोहन सिंह की पहली प्रतिक्रिया यह थी कि मामले को आरबीआई पर छोड़ दिया जाना चाहिए। वे संसद में कोई स्पष्ट बयान देने से भी कतरा रहे थे। विपक्ष और उनकी अपनी पार्टी के कुछ सदस्यों ने इस कमजोरी का फायदा उठाया और उनके खिलाफ मोर्चा खोल दिया।
इसके बाद उनके मंत्रालय के बैंकिंग विभाग ने एक अध्यादेश तैयार किया, जिसके तहत घोटाले से संबंधित मामलों की सुनवाई के लिए एक विशेष न्यायालय की स्थापना की गई और न्यायालय द्वारा अधिसूचित आरोपियों की संपत्तियों को अधिग्रहित करने के लिए एक संरक्षक

नियुक्त किया गया। यह महत्वपूर्ण अध्यादेश निवेश विभाग, बाजार के हितधारकों, स्टॉक एक्सचेंजों, एसईबीआई या संस्थागत निवेशकों से परामर्श किए बिना तैयार और जारी किया गया था। आर्थिक मामलों के विभाग के सचिव, मोंटेक सिंह अहलूवालिया, बैंकिंग और निवेश दोनों विभागों के प्रभारी थे। उनसे अपेक्षा की जाती थी कि अध्यादेश जारी करने से पहले वे सभी निहितार्थों पर विचार करें। चूंकि वे नई दिल्ली में लगातार आते-जाते रहते थे, इसलिए निवेश विभाग (जिसके अंतर्गत स्टॉक एक्सचेंज आते हैं) को बैंकिंग विभाग की गतिविधियों की जानकारी नहीं थी। अध्यादेश जारी होने के बाद, "दागी शेयर" (अधिनियम के तहत अधिसूचित व्यक्तियों के शेयर और संपत्तियां) एक बड़ा मुद्दा बन गए। जून 1992 के तीसरे सप्ताह में यूटीआई का मामला सामने आया। इसने हर्षद मेहता की मुहर वाले और एसएचसीआईएल के पास पड़े 3 करोड़ रुपये के शेयरों के लिए बाजार में हलचल मचा दी। यूटीआई ने एसएचसीआईएल को पत्र लिखकर दागी शेयरों को स्वीकार न करने को कहा, जिससे हर्षद और अन्य अधिसूचित दलालों से वैध रूप से शेयर खरीदने वालों में दहशत फैल गई।

चूंकि कई घोटालेबाजों ने 23 अप्रैल के बाद अपने शेयर बाजार में बेच दिए थे, इसलिए हजारों निर्दोष निवेशक दागी शेयरों के जाल में फंस गए, जबकि उन्होंने अच्छी खासी रकम चुकाई थी और स्टॉक एक्सचेंज निपटान तंत्र के माध्यम से शेयरों की डिलीवरी प्राप्त की थी। इन शेयरों को क्लियर कराने के लिए निवेशकों को अदालतों द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के तहत प्रमाणन प्राप्त करने की लंबी प्रक्रिया पूरी करनी पड़ी। कुछ निवेशकों ने

प्रमाणन प्रक्रिया पूरी करने के लिए हलफनामों के पीछे भागते हुए अगले छह से सात साल या उससे भी अधिक समय बिताया।
इसी बीच, आयकर विभाग ने भी संपत्ति कुर्क करने की होड़ मचाकर मामले को और पेचीदा बना दिया। उसके अधिकारियों ने यह रुख अपनाया कि भले ही अदालत अधिसूचित व्यक्तियों के लेन-देन को वैध मान ले, विभाग का अपना कुर्की आदेश बरकरार रहेगा। उसने हर्षद और उसकी पत्नी पर 10,000 करोड़ रुपये का कर आदेश जारी किया। इन सबने बैंकों, पीड़ितों और इसलिए संपत्तियों के वास्तविक दावेदारों को स्तब्ध कर दिया। इस बीच, प्रवर्तन निदेशालय विदेशों में भेजे गए धन को वापस लाने के लिए छानबीन कर रहा था। कानून के अनुसार, उनके दावे बैंकों के दावों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण थे।

वित्त मंत्रालय का रवैया उदासीन बना रहा। 16 मई 1992 को मनमोहन सिंह ने सभी बैंक अध्यक्षों से मुलाकात की। इस घोटाले ने जनता के विश्वास को ठेस पहुँचाई थी, इसलिए यह उनकी प्राथमिकता सूची में सबसे ऊपर होना चाहिए था। इसके बजाय, मंत्री और बैंक अध्यक्षों ने यह जताने की कोशिश की कि यह घोटाला धोखाधड़ी का एक अलग मामला था और सब कुछ पहले जैसा ही चल रहा था। सिंह ने कहा कि यह घोटाला "बैंकिंग प्रणाली की सामूहिक विफलता है और हमें इसकी जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए।" यह औपचारिक टिप्पणी करने के बाद, वे तुरंत कम्प्यूटरीकरण और ग्राहक सेवा जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों की ओर मुड़ गए। बाद में, ब्रिटेन में वित्त मंत्री ने घोषणा की कि घोटाले को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया था। उनका असली मतलब क्या था, यह कभी स्पष्ट नहीं हुआ। लेकिन इसने बाज़ार में घटी शर्मनाक घटनाओं और जनकिरामन समिति की अनदेखी को स्पष्ट रूप

से उजागर किया, जिसने व्यापक नियम-उल्लंघनों और गंभीर ऋण संकट के समय दलालों के पास अवैध रूप से हजारों करोड़ रुपये के लेन-देन का ब्यौरा दिया था।
सबसे उपयोगी जानकारी जेपीसी की सुनवाई से मिली – लेकिन जेपीसी सदस्यों के प्रयासों के कारण नहीं। अधिकांश सदस्य बाज़ारों या वित्तीय प्रणाली को समझने में पूरी तरह से उदासीन थे। उन्होंने शायद ही कभी कोई गहन प्रश्न पूछे, और न ही वे कई उत्तरों के परिणामों को समझ पाए। जिन लोगों ने कुछ रुचि और ज्ञान दिखाया – मुख्य रूप से विपक्ष के सदस्य – वे भी पक्षपाती और पूर्वाग्रही थे, और अपने निजी पूर्वाग्रहों को साध रहे थे। लेकिन जेपीसी के खुलासे महत्वपूर्ण थे क्योंकि इसने सरकारी अधिकारियों और बैंकों में इतना भय पैदा कर दिया कि वे झूठ बोलने की हिम्मत नहीं कर पाए। दलालों ने हेराफेरी जारी रखी, लेकिन पहले की तुलना में बहुत कम।
फिर भी, सामने आई ढेर सारी जानकारियों में से कुछ भी वास्तव में सनसनीखेज या कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं थी। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि इतने बड़े और जटिल मुद्दे से निपटने के लिए सामूहिक या व्यक्तिगत स्तर पर कोई रणनीति ही नहीं थी। जेपीसी ने शुरुआत में भारी मात्रा में सामान्य जानकारी और डेटा जुटाने का आह्वान किया, जिसे किसी ने नहीं पढ़ा। बाद में, कुछ सदस्य कुछ विशिष्ट बैंकों, लेन-देन या दलालों के बारे में काफी जानकार प्रतीत हुए, लेकिन अन्य के बारे में वे पूरी तरह चुप और उदासीन रहे। इन सबने यह सुनिश्चित किया कि सत्य की व्यवस्थित खोज न हो सके।
यदि जेपीसी सदस्यों ने पहले सही दलालों और बैंक के कोषागार अधिकारियों से बात करके अपना होमवर्क किया होता, तो वे अपने फोकस को सीमित कर सकते थे। वास्तव में, जेपीसी असली समस्या के

बहुत करीब पहुंच गई, उसे थोड़ा सा खोला और वहीं छोड़ दिया। यही पीएमएस था। जेपीसी के कुछ ही सदस्यों को यह एहसास हुआ कि यह बैंक-दलाल गठजोड़, राजनीतिक संलिप्तता और विदेशी बैंकों द्वारा अर्जित भारी अवैध लाभ की पेचीदगियों को सुलझाने की कुंजी थी। जेपीसी को सितंबर 1992 में सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकारियों से संदिग्ध लेन-देन के बारे में पता चला। एक ऐसे ही सत्र में यह खुलासा हुआ कि पेट्रोलियम मंत्री बी. शंकरानंद ने कैनफिना को पीएमएस (परमाणु विकास निधि) का पैसा दिलवाने के लिए तेल उद्योग विकास बोर्ड पर अपना प्रभाव डाला था। जेपीसी ने इसे महज़ अनियमितताओं का एक और मामला मानकर इसकी अहमियत को नज़रअंदाज़ कर दिया। इस तरह, संदिग्ध पीएमएस सौदों के सरगना सिटीबैंक ने खुद को बेदाग साबित करते हुए जेपीसी सदस्यों की अज्ञानता का फायदा उठाया, उन्हें जमकर फटकार लगाई और विजयी भाव से बाहर निकल गया।
उनकी अज्ञानता के कारण कुछ हास्यास्पद स्थितियाँ पैदा हुईं, जब अलग-अलग राजनीतिक विचारधाराओं वाले तीस सदस्यों ने, जिनमें से केवल पाँच को ही वित्तीय मामलों की थोड़ी बहुत समझ थी, उनसे पूछताछ शुरू की। उनमें से एक ने हर्षद से पूछा, "क्या आप किसी मंत्री को जानते हैं?" जवाब था "नहीं"। फिर भी अगला सवाल, जो सीधे एक छोटे से कागज़ के टुकड़े से पढ़ा गया, था: "अगर हाँ, तो आप उनसे कब और कहाँ मिले थे?"
ग्रिंडलेज़ के अधिकारियों से की गई पूछताछ और भी मज़ेदार थी। जेपीसी के एक सदस्य ने बैंक द्वारा प्रस्तुत कागज़ों का एक बंडल उठाया और एकाग्रता से भौंहें चढ़ाते हुए कहा: "मुझे इसमें कई प्रविष्टियाँ नज़र आ रही हैं जिनमें 'उपहार' लिखा है।" उसने पन्ने पर लिखे सभी दस्तावेज़ और उनके सामने दर्ज रकमें पढ़

डालीं। फिर उसने बैंक अधिकारियों को घूरकर देखा। ग्रिंडलेज़ के अधिकारी घबरा गए, उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि सदस्य ने क्या पकड़ा है। फिर उन्होंने कागज़ देखा और राहत की सांस ली। सदस्य जिस बात की ओर इशारा कर रहा था, वह बैंक द्वारा दिए गए उपहार नहीं थे, बल्कि ग्रिंडलेज़ की इंस्टेंटेनियस फंड्स ट्रांसफर सर्विसेज (GIFTS) के लिए इस्तेमाल होने वाला एक आंतरिक संक्षिप्त नाम था।
एक ब्रोकर से अलग-अलग सदस्यों ने एक ही तरह के सवाल पूछे। उसे लगा कि कहीं यह कोई गहन और चालाकी भरी पूछताछ तो नहीं है। जल्द ही उसे एहसास हुआ कि कई सदस्यों को एक ही तरह के सवाल पूछे गए थे। इसलिए ब्रोकर चाहे जो भी स्पष्टीकरण दे, वही सवाल बार-बार सामने आते रहे।
शायद, जांच की दिशा प्रशासन में बैठे किसी अदृश्य व्यक्ति के इशारे पर चल रही थी। हर्षद की लगातार हिरासत से बेहतर इसका कोई उदाहरण नहीं मिलता, जिसे सर्कस के जानवर की तरह सताकर एक अदालत से दूसरी अदालत, मुंबई से दिल्ली और फिर वापस घसीटा गया। 100 दिनों से अधिक समय तक हर्षद से लगातार पूछताछ की गई, पहले सीबीआई द्वारा और फिर प्रवर्तन निदेशालय द्वारा। इससे वह एक विचाराधीन कैदी के रूप में लगातार जनता की नजरों में बना रहा, जिससे यह साबित होता रहा कि सरकार कार्रवाई कर रही है। ऐसा प्रतीत होता था कि जांच एजेंसियां, जो आमतौर पर एक-दूसरे से जानकारी छिपाती थीं, हर्षद को सलाखों के पीछे रखने के लिए शीर्ष अधिकारियों के आदेश पर मिलीभगत से काम कर रही थीं। वास्तव में, सीबीआई ने एक के बाद एक गिरफ्तारी की रणनीति अपनाई थी ताकि जनता का ध्यान पूरी तरह से इस मामले पर केंद्रित रहे।

हर्षद, उसके भाई अश्विन और एसबीआई के अधिकारियों को 5 जून 1992 को गिरफ्तार किया गया। 22 जून को,
सीतारामन और हर्षद को छोड़कर बाकी सभी को रिहा कर दिया गया। इस प्रकार 23 जून तक, सीबीआई द्वारा जांचे जा रहे घोटाले की धार कम हो चुकी होगी।
लेकिन अचूक समय के साथ, तेजतर्रार जासूस माधवन ने 20 जून को घोटाले के स्टैनचार्ट से संबंधित एक और एफआईआर दर्ज कराई। समय संदिग्ध था। स्टैनचार्ट की एफआईआर 5 जून की शाम तक तैयार हो गई थी,
जब बैंक की भूपेन दलाल के साथ ताज महल होटल में आखिरी बैठक हुई थी। फिर भी,
एफआईआर दो हफ्ते बाद दर्ज की गई। 23 तारीख को, सीबीआई ने भूपेन दलाल, हितेन दलाल, अभय नरोत्तम, जेपी गांधी और अन्य को गिरफ्तार कर लिया ताकि यह आभास हो सके कि सीबीआई इस मामले में सक्रिय है, खासकर तब जब संसद का सत्र चल रहा था।

17 जुलाई को, सीबीआई ने न्यायमूर्ति सैम वारियावा को आश्वासन दिया कि वह अपनी जांच पूरी कर लेगी
और हर्षद को आगे हिरासत में नहीं रखेगी, जिसे 30 जुलाई को, उसके जन्मदिन पर, रिहा होना था।
लेकिन अचानक सीबीआई ने 11 जून की एफआईआर निकाली। यह यूको बैंक बिल डिस्काउंटिंग का मामला था।
जिसकी मदद से हर्षद मेहता ने 50 करोड़ रुपये का इस्तेमाल किया था। इस समय तक माधवन प्रभारी थे। 20 जुलाई को माधवन ने इस्तीफा दे दिया, जिससे यह अटकलें लगने लगीं कि सरकार ने उन्हें काम धीमा करने के लिए कहा था।

इस धारणा का खंडन करने के लिए, कार्यवाहक प्रमुख सीबीआई के नेतृत्व में,
एस.के. दत्ता ने एक और एफआईआर दर्ज की जिसमें पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन (पीएफसी) शामिल थी। यह इतिहास को कुरेदने जैसा था। हर्षद ने 1990-91 में पीएफसी से शेयर बाजार में हेराफेरी करने के लिए पैसा लिया था और बाद में उसे लौटा दिया था। इस सौदे ने आरबीआई और मंत्रालय के दिशानिर्देशों का उल्लंघन किया,
लेकिन किसी को भी कोई नुकसान नहीं हुआ और कोई बकाया राशि नहीं बची। 30 जुलाई को, जिस दिन हर्षद को रिहा किया जाना था, सीबीआई अपने वादे से मुकर गई और एक नया रिमांड आवेदन दायर किया, जिसमें तर्क दिया गया कि 16 अन्य बैंकों की जांच चल रही है और इस संबंध में हर्षद की आवश्यकता होगी। इस समय तक, सीबीआई 11 एफआईआर दर्ज करने में कामयाब हो चुकी थी, लेकिन केवल हर्षद ही जेल में थे। उन्हें
13 अगस्त तक फिर से हिरासत में रखा गया।
हर्षद के परिवार को लगा कि सीबीआई के पास 'बिग बुल' के खिलाफ अब कोई मामला नहीं बचा है। लेकिन तब तक राज्य की एक अन्य शाखा
इस मामले में सक्रिय हो गई थी। 30 जुलाई को प्रवर्तन निदेशालय ने अदालत को बताया कि उसका इरादा हर्षद को जमानत पर रिहा होते ही गिरफ्तार करने का है।
इसलिए 13 अगस्त, 1992 को जब न्यायमूर्ति वारियावा ने हर्षद को रिहा किया, तो प्रवर्तन निदेशालय ने विदेशी मुद्रा उल्लंघन के आरोप में उन्हें गिरफ्तार कर लिया। यह हथकंडा सितंबर के चौथे सप्ताह तक जारी रहा, जब हर्षद को अंततः रिहा कर दिया गया। हर्षद के सहयोगी कृष्णमूर्ति को भी इसी तरह की मुकदमे से पहले की सजा का सामना करना पड़ा। जुलाई 1992 के मध्य में, हर्षद और

फेयरग्रोथ के साथ उनके संबंध उजागर होने के बावजूद, कृष्णमूर्ति अपने पद पर बने रहने के लिए अड़े रहे। उन्होंने दावा किया कि उनकी राजनीतिक ताकत का मुख्य स्रोत, योजना आयोग के उपाध्यक्ष प्रणब मुखर्जी ने उन्हें "प्रतिभूति घोटाले में किसी भी तरह की संलिप्तता से बरी कर दिया है"। “अगस्त 1990 में, जब मैं किसी सरकारी पद पर नहीं था, मैंने फेयरग्रोथ फाइनेंशियल सर्विसेज (FFSL) में 2 लाख रुपये का निवेश किया था। मैंने यह निवेश इस्पात प्राधिकरण के अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक के रूप में प्राप्त सेवानिवृत्ति लाभों से किया था। मैं FFSL के शुरुआती निदेशकों में से एक था। मेरे शेयर 0 श्रृंखला से शुरू होते हैं। मेरा FFSL से जुड़ाव असामान्य नहीं था क्योंकि मुझे प्रबंधन विशेषज्ञ माना जाता था।” कृष्णमूर्ति एस्कॉर्ट्स फाइनेंशियल के बोर्ड में भी थे और योजना आयोग के सदस्य बनने के बाद उन्होंने एस्कॉर्ट्स फाइनेंशियल और फेयरग्रोथ दोनों से इस्तीफा दे दिया था।
कृष्णमूर्ति पर दूसरा आरोप यह था कि उन्होंने हर्षद से 32 लाख रुपये से अधिक का चेक लिया था। इसे रिश्वत के रूप में देखा गया क्योंकि हर्षद ने उनसे कोई गिरवी नहीं ली थी। लेकिन चेक द्वारा रिश्वत? ऐसे सवालों को सिरे से खारिज कर दिया गया। सीबीआई ने कृष्णमूर्ति पर बेहद क्रूरता से कार्रवाई की। उन्हें और उनके बेटे को तिहाड़ जेल ले जाया गया, जिससे भारत के सर्वश्रेष्ठ प्रबंधकों में से एक की प्रतिष्ठा धूमिल हो गई।
यह संभव नहीं था कि एक ईमानदार सरकार एक बेईमान अधिकारी को पकड़ने की कोशिश कर रही हो। अगर कृष्णमूर्ति भ्रष्ट थे, तो इस देश में सैकड़ों भ्रष्ट राजनेता, बैंकर और सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंधक थे। कृष्णमूर्ति ही क्यों? इसके कम से कम चार

सिद्धांत थे। पहला, माधवन ने अभी-अभी इस्तीफा दिया था और सरकार पर जांच को दबाने का संदेह था। सरकार को माधवन के हाथ बांधने के आरोप का जवाब देने के लिए किसी बड़े खुलासे की जरूरत थी। कृष्णमूर्ति माधवन के पुराने दुश्मन थे। इसलिए, उन पर हमला करके सरकार माधवन के समर्थकों को चुप करा सकती थी। दूसरा, नरसिम्हा राव राजीव गांधी के करीबी लोगों को व्यवस्थित रूप से कमजोर कर रहे थे। कृष्णमूर्ति उनमें से एक थे। तीसरा, कृष्णमूर्ति 1991 के चुनावों से पहले कांग्रेस की आर्थिक नीतियों को तैयार करने में प्रणब मुखर्जी के साथ शामिल थे। जाहिर है, उनके नरसिम्हा राव से मतभेद थे। चौथा सिद्धांत यह था कि एक वरिष्ठ नौकरशाह, जो बाद में एक राज्य का राज्यपाल बना, व्यक्तिगत दुश्मनी का बदला ले रहा था।
जब मुखर्जी योजना आयोग के उपाध्यक्ष बने, तो कृष्णमूर्ति को अवसंरचना विभाग का प्रभारी सदस्य बना दिया गया, जबकि वे वास्तव में एक उद्योग विशेषज्ञ थे। वे आयोग की बैठकों से नियमित रूप से अनुपस्थित रहते थे।
20 जुलाई की सुबह, प्रधानमंत्री कार्यालय से किसी ने फोन किया: “अपना इस्तीफा दे दीजिए, वरना हम आपके पीछे सीबीआई लगा देंगे।” अगली सुबह वे योजना आयोग आए, अपना इस्तीफा पत्र टाइप करवाया और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान के वार्षिक समारोह के लिए रवाना हो गए। मुखर्जी पटना में थे और उसी शाम बाद में लौटने वाले थे। कृष्णमूर्ति ने शीर्ष अधिकारियों के आदेशानुसार इस्तीफा दे दिया था। फिर भी सीबीआई को उनके पीछे लगा दिया गया। हालांकि, उसी सीबीआई ने स्पष्ट संदिग्धों, विशेषकर सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों में काम करने वाले उन लोगों को पकड़ने में कोई

दिलचस्पी नहीं दिखाई, जो वित्त दलालों और विदेशी बैंकों को पैसा दे रहे थे।
विभिन्न अन्य एजेंसियों द्वारा चलाए गए मुकदमे ने एक ही पैटर्न का पालन किया: मुकदमा शुरू होने से पहले ही फैसले सुना दिए गए। यह लगभग एक बदले की भावना से की गई कार्रवाई थी। सीबीआई ने शारीरिक रूप से कार्रवाई की; और जेपीसी के कुछ सदस्यों ने अपने निजी द्वेष सूचियों में शामिल लोगों के खिलाफ कार्रवाई की मांग करके अपने निजी हिसाब-किताब निपटाने के लिए अपने पद का दुरुपयोग किया। यह तब हद से ज्यादा बढ़ गया जब आरबीआई गवर्नर को ही निशाना बनाया गया। फर्जी बीआर की जांच शुरू करने, हर्षद को रोकने और फेयरग्रोथ का पर्दाफाश करने में अहम भूमिका निभाने के बाद, जेपीसी के सामने पेश होने से कुछ महीने पहले ही राज्यपाल को इस पूरे मामले का खलनायक बना दिया गया। वित्त मंत्री पर उन्हें बर्खास्त करने का दबाव था। हालांकि, मंत्री ने उनका डटकर समर्थन किया।
आठ महीने तक चली इस बदले की कार्रवाई ने सबको हैरान और बेबस कर दिया। इसका खामियाजा सच्चाई और न्याय को भुगतना पड़ा। जांच बहुआयामी होने के बावजूद, घोटाले में अहम भूमिका निभाने वाले कई लोग बच निकले।

17

कौन जीता, कौन हारा, कौन बच निकला?

दुनिया भर में खातों में हेराफेरी करने पर आपराधिक मुकदमा चलाया जाता है।
सिटीबैंक के साथ कुछ नहीं हुआ। न ही कई अन्य बैंकों के साथ।

घोटाले में शामिल दर्जनों लोगों के खिलाफ चली बदले की कार्रवाई के बाद,
कुछ लोगों ने अपनी इज्जत, पैसा और बाजार में अपनी स्थिति खो दी जैसे वी कृष्णमूर्ति, हर्षद मेहता और भूपेन दलाल। कई कनिष्ठ अधिकारियों का जीवन बर्बाद हो गया। अन्य बच निकलने में कामयाब रहे। यह संख्या काफी बड़ी है और इसमें विदेशी बैंक, सरकारी अधिकारी, मंत्री और नौकरशाह शामिल हैं। घोटाले के उजागर होने के महीनों बाद तक, उंगलियां दलालों की ओर ही उठती रहीं। जनकीरामन समिति की तीसरी रिपोर्ट में ही संस्थानों, विशेष रूप से दो अमेरिकी बैंकों (बैंकएम और सिटी) की भूमिका पर प्रकाश डाला गया।
यद्यपि कई व्यवसायी, अधिकारी और मंत्री किसी न किसी रूप में घोटाले में गहराई से शामिल थे, लेकिन जांच में वाणिज्य मंत्री पी चिदंबरम (जो अनजाने में बलि का बकरा बन गए) और राजनीतिक रूप से उपेक्षित नौकरशाह वी कृष्णमूर्ति के अलावा कोई बड़ा नाम नहीं पकड़ा गया। जो लोग बच निकले उनकी सूची में उद्योगपति टीबी रुइया और एसएन चतुर्वेदी और जीतू श्रॉफ जैसे दलाल शामिल हैं। अधिकारी और मंत्री गुमनाम रहे। वे ही असल में बड़े विजेता थे।

इसके अलावा, घोटाले के मूल में शामिल सभी लोग - पोर्टफोलियो प्रबंधन योजनाएं - निर्णायक जांच के अभाव में बच निकले। इनमें सबसे बड़ा नाम सिटीबैंक का था।
इस घोटाले का एक हिस्सा वह था जिसने इसे हवा दी, यानी आपूर्ति पक्ष – वह अतिरिक्त धन जो सिटीबैंक, स्टैनचार्ट, कैनफिना और अन्य कंपनियों ने बड़ी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को पोर्टफोलियो प्रबंधन योजनाओं की पेशकश करके उनसे हासिल किया। सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों द्वारा हजारों करोड़ रुपये के लेन-देन में रिश्वतखोरी शामिल थी और इस मामले में इन कंपनियों के मंत्री, अध्यक्ष और वित्त निदेशक भी शामिल थे। यहीं पर राजनेताओं की भूमिका भी सामने आई और उन्होंने अपने पसंदीदा दलालों और बैंकों को पैसा पहुंचाया। हालांकि, इस घोटाले में कुछ हद तक शामिल राजनेता केवल बी शंकरानंद (जिनके अधीन तेल उद्योग विकास बोर्ड ने पीएमएस में अतिरिक्त धन जमा किया था) और वित्त राज्य मंत्री रामेश्वर ठाकुर थे। कई अन्य मंत्री, सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के अधिकारी और तथाकथित "नैतिक रूप से जागरूक" विदेशी बैंक बिना किसी सजा के बच निकले। अगर सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के अधिकारियों से गहन पूछताछ की जाती और उनके द्वारा जुटाए गए सबूतों की पूरी जांच की जाती तो वे बेनकाब हो जाते। लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ।
दरअसल, जेपीसी सदस्यों द्वारा की गई साधारण पूछताछ से ही बैंकों और राष्ट्रीय जलविद्युत निगम, एयर इंडिया, भारतीय रेलवे वित्त निगम, राष्ट्रीय तापीय विद्युत निगम और विद्युत वित्त निगम के अधिकारियों के बीच मिलीभगत के पर्याप्त प्रथम दृष्टया सबूत मिल गए थे। लेकिन पीएमएस घोटाले की तह तक जाने में किसी ने दिलचस्पी नहीं दिखाई, जो इस घोटाले का मुख्य स्रोत था। क्या यह

महज़ सुस्ती थी या शीर्ष सरकारी अधिकारियों और राजनेताओं के कई रिश्तेदारों की वजह से, जिन्हें विदेशी बैंकों द्वारा रणनीतिक रूप से नियुक्त किया गया था?
सिटीबैंक
1993 में, सिटीबैंक के वित्त विभाग के चार प्रमुख अधिकारियों को, जिनका पहले तबादला कर दिया गया था, 'इस्तीफा देना पड़ा'। इनमें सिटीबैंक के वित्त विभाग के कर्ता-धर्ता ए.एस. थियागराजन भी शामिल थे, जिन्हें बैंक ने नवंबर 1992 में 'पदोन्नति' देकर न्यूयॉर्क कार्यालय में तैनात किया था। इस्तीफे क्यों? सिटीबैंक, जिसने तब तक किसी भी प्रकार की गलती स्वीकार करने से इनकार कर दिया था, ने थियागराजन के इस्तीफे के कारण पर टिप्पणी करने से इनकार कर दिया। हालांकि, निजी तौर पर, सिटीबैंक के वरिष्ठ अधिकारी उनके और उनकी टीम के खिलाफ और अधिक "सबूत" तलाश रहे थे। बैंक ने अपनी रणनीति बदल दी थी और अब सारा दोष व्यक्तियों पर मढ़ने की कोशिश कर रहा था। उसने अपनी कुख्यात पीएमएस योजनाओं को बंद करने का भी फैसला किया था और कई ग्राहकों से भारी नुकसान पर अपना पैसा वापस लेने को कहा था। लेकिन हर्षद द्वारा सिटीबैंक को "अवैध गतिविधियों का अड्डा" कहे जाने पर बैंक द्वारा धमकी दी गई थी, लेकिन बैंक द्वारा उन पर मुकदमा करने का कोई संकेत नहीं था।
सिटीबैंक को आरबीआई, फेडरल रिजर्व बोर्ड और अमेरिकी प्रतिभूति और विनिमय आयोग द्वारा आसानी से फटकार लगाई जा सकती थी। इसने अपने ग्राहकों को लेन-देन का एक सेट और आरबीआई और जेपीसी को दूसरा सेट दिखाया, जिससे स्पष्ट रूप से साबित होता है कि इसने अपने खातों में हेराफेरी की थी, शायद दोनों सेटों में। आश्चर्यजनक रूप से, एक विदेशी बैंक होने के बावजूद, इसके 'फर्जी'

ग्राहकों और 'फर्जी' प्रतिपक्षों के साथ-साथ इन दो काल्पनिक पक्षों के बीच भी सौदे थे। इसके ऐसे सौदे भी थे जिनमें कोई प्रतिपक्ष नहीं थे! स्टैनचार्ट के साथ कुछ बड़े सौदे सिटीबैंक के खातों में मौजूद हैं, लेकिन स्टैनचार्ट के खातों में नहीं।

जानकीरामन कमेटी की रिपोर्ट कहती है कि सिटी ने कई रेडी फॉरवर्ड डील कीं, जिन्हें ट्रेडर्स द्वारा चलाए जा रहे पर्सनल कंप्यूटर में रिकॉर्ड किया गया था और मेन फ्रेम कंप्यूटर सिस्टम में एंटर नहीं किया गया था... बैक-अप और ऑपरेशन्स डिपार्टमेंट को इन कॉन्ट्रैक्ट्स के बारे में पता नहीं था और न ही उनका ऑडिट किया गया था। कमेटी के अनुसार, "1990-91 के दौरान और 29 जून 1992 तक PC पर बुक किए गए कुल 14,758 करोड़ रुपये के फॉरवर्ड कमिटमेंट्स को मेन फ्रेम कंप्यूटर सिस्टम में नहीं लाया गया था। इन अनसेटल्ड कॉन्ट्रैक्ट्स और इन-हाउस ट्रांजैक्शन्स के बारे में कुछ खास जानकारी फिड्यूशरी क्लाइंट्स को नहीं दी जाती है, जिससे ट्रांसपेरेंसी कम होती है।" उस मामले में न केवल सिटीबैंक के क्लाइंट्स बल्कि JPC, जिस पर सिटीबैंक ने ढेर सारी जानकारी डाली थी, को भी गुमराह किया गया था। बुक्स में हेराफेरी करने के लिए, दुनिया में कहीं भी कानून क्रिमिनल केस का नियम बनाते हैं। सिटीबैंक को कुछ नहीं हुआ। इस बीच, US फेडरल रिजर्व बोर्ड के अधिकारियों की एक टीम सिटी की बुक्स चेक करने पहुंची। हैरानी की बात है कि वे RBI अधिकारियों के अलावा किसी से बात किए बिना चले गए। इनसाइडर ट्रेडिंग और कस्टमर अकाउंट से पैसे ऐंठने के साफ़ शक के बावजूद, US का SEC भी सिटी की जांच करने या उसके भारतीय काउंटरपार्ट, SEBI के अधिकारियों से बात करने में दिलचस्पी नहीं दिखा रहा

है। फरवरी में, सिटीबैंक ने इन्वेस्टिगेटर्स की एक और टीम भेजी। किसी को नहीं पता कि उन्हें क्या मिला।
सालों से, लोग पूछते रहे हैं कि स्कैम का पैसा कहां गया? यह कहीं नहीं गया। यह यहीं, PMS में था, जिसका इस्तेमाल कुछ खास प्लेयर्स के भारी नुकसान की फंडिंग में किया गया। हालांकि, हमारे मीडिया में इस बारे में लिखने के बावजूद, जानकीरमन कमेटी ने जल्दबाजी में काम किया, JPC इसे समझ नहीं पाई और विदेशी बैंकों की जांच के लिए नियुक्त स्पेशल ऑडिटर्स सैकड़ों संदिग्ध PMS डील्स में शामिल कमर्शियल चालाकी को नहीं समझ पाए। यह महसूस करते हुए कि ज़्यादातर इन्वेस्टिगेटर्स इसे नहीं समझ पा रहे थे, सिटीबैंक एक चापलूसी करने वाले और जल्दबाज़ PR एजेंट रोजर परेरा की मदद से यह दावा करता रहा कि उसने कुछ भी गलत नहीं किया। लेकिन, 1993 के आखिर तक इस बात को आसानी से चैलेंज किया जा सकता था, जब तीन बड़े सिक्योरिटीज़ ब्रोकर्स की मदद से हमने सिटीबैंक के PMS ट्रांज़ैक्शन को एनालाइज़ किया और कई दिलचस्प बातें पता चलीं। इन ट्रांज़ैक्शन से RBI को दूसरे बैंकों और फाइनेंशियल इंस्टीट्यूशन्स के करप्ट कामों, इनकम टैक्स अथॉरिटीज़ को पॉसिबल टैक्स वायलेशन और US रेगुलेटरी एजेंसियों को फिड्यूशरी रिस्पॉन्सिबिलिटी के वायलेशन के बारे में अलर्ट किया जा सकता था। इसके अलावा, सबूतों से साफ पता चला कि सिटीबैंक फाइनेंशियल अकोमोडेशन का एक सोफिस्टिकेटेड रिंग चला रहा था।
हम पहले से ही जानते हैं कि कई पब्लिक सेक्टर यूनिट्स और कई बड़ी जानी-मानी प्राइवेट सेक्टर कंपनियों ने स्मार्ट विदेशी बैंकों और ब्रोकर्स के ज़रिए PMS में पैसा लगाया। पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन ने सिटीबैंक को 14.25% सालाना के मामूली

रिटर्न पर 150 करोड़ रुपये दिए। सबसे ज़्यादा बदलाव वाले पोर्टफोलियो में, PFC को सेंचुरी टेक्सटाइल्स, ग्रासिम, इंडियन रेयॉन, इंडो-गल्फ फर्टिलाइजर्स, मैंगलोर रिफाइनरी वगैरह जैसी लगभग सभी आदित्य बिड़ला-बीके बिड़ला कंपनियों के साथ ज़ोरदार लेन-देन करने के लिए मजबूर किया गया था। लेकिन स्कैम सामने आने के एक महीने बाद, 25 मई 1992 को किए गए दो संदिग्ध लेन-देन खास हैं।
उस दिन, सिटीबैंक ने PFC के अकाउंट से वासवदत्ता बिड़ला से 1.7 करोड़ रुपये के फेस वैल्यू वाले 9% IRFC बॉन्ड और
नीरजा बिड़ला से 2.82 करोड़ रुपये के उतने ही बॉन्ड खरीदे। यह दो बातों के बिना मामूली बात होती। ये डील 100 रुपये में हुईं, जबकि उस तारीख से ठीक पहले और बाद में, सिटीबैंक ने अपने PMS क्लाइंट PFC के लिए 89-97 रुपये की रेंज में लाखों 9% IRFC और 9% HUDCO और 9% NPC बॉन्ड का लेन-देन किया था। दूसरी बात: नीरजा बिड़ला स्वर्गीय आदित्य बिड़ला की बहू हैं और वासश्वदत्ता बिड़ला उनकी बेटी हैं। अगर मार्केट रेट 90 रुपये भी मान लें, जिसके आस-पास सिटीबैंक ने 9% IRFC बॉन्ड में डील की थी, तो भी सिटीबैंक ने PFC से दोनों बिड़ला को 45 लाख रुपये ज़्यादा दिए। क्या यह बैंक का बिड़ला को पर्सनल फ़ायदा पहुँचाने का तरीका था? जिन ट्रेजरी अधिकारियों ने ये संदिग्ध डील की थीं, वे स्कैम की जाँच के दौरान आसानी से चले गए थे। PFC का नाम सिटी की अपने पसंदीदा ब्रोकर्स
C मैकर्टिच और स्टीवर्ट एंड कंपनी के साथ हुई डील्स में भी आया था। तीसरी जानकीरमन कमेटी की रिपोर्ट के मुताबिक, इन दोनों ब्रोकर्स ने GIC राइज़ I और II में पाँच डील्स में 89 करोड़ रुपये का भारी मुनाफ़ा कमाया। उनमें से तीन सिटीबैंक के

क्लाइंट PFC के साथ थीं। हैरानी की बात है कि PFC ने सिटीबैंक से अपने खर्चे पर हुए इन तोहफ़ों के बारे में कभी पूछताछ नहीं की। CBI ने भी नहीं की। PFC, बेशक, वही क्लाइंट था जिसे सिटीबैंक ने गारंटीड रिटर्न का वादा किया था, लेकिन बाद में (अपने जूनियर एम्प्लॉई राज मित्तल के एक लेटर में) उससे अलग हो गया।
GIC म्यूचुअल फंड के Rs 25 करोड़ के अकाउंट दिसंबर 1991 में शुरू हुए थे, जब स्टॉक की कीमतें पहले से ही बढ़ रही थीं। सबसे बड़ी बात यह है कि सिटीबैंक को GIC म्यूचुअल से इक्विटी खरीदने का मैंडेट मिला था। GIC म्यूचुअल खुद बॉन्ड और इक्विटी में पैसा इन्वेस्ट करने में एक्सपर्ट माना जाता था – कम से कम इसीलिए इसे बनाया गया था और पब्लिक से पैसे जुटाने की इजाज़त दी गई थी। यह सिटीबैंक को पैसा क्यों दे रहा था? GIC म्यूचुअल के उस समय के चीफ एग्जीक्यूटिव एसके मित्रा ने कहा, “क्योंकि उस समय मनी मार्केट नीचे था।” “UTI औरबीएसई के भी सिटीबैंक में खाते थे। इस एक्सप्लेनेशन में प्रॉब्लम यह है कि पोर्टफोलियो स्कीम कम से कम एक साल तक चलनी थीं। साफ है, मनी मार्केट में टेम्पररी मंदी GIC म्यूचुअल के लिए पूरे साल के लिए 25 करोड़ रुपये इन्वेस्ट करने का तर्क नहीं हो सकती थी।
सिटीबैंक ने फरवरी और अप्रैल के बीच GIC का पैसा ज़्यादातर चेट्टीनाड सीमेंट, इंडियन रेयॉन और रिलायंस जैसी इक्विटी में इन्वेस्ट किया – जो इक्विटी बूम का आखिरी स्टेज था। मित्रा ने दावा किया कि GIC को कुल मिलाकर 20% का रिटर्न मिला। मित्रा, सी मैकर्टिच और सिटी का नेक्सस कई सिचुएशन में दोहराया जाएगा। GIC म्यूचुअल ने मिलकर सिटीकार्ड्स बेच दिए। एक बहुत ही अजीब और पहले कभी नहीं हुए कदम में, जॉर्ज सोरोस और पूर्णेंदु चटर्जी

ने मिलकर सरकारी GIC एसेट मैनेजमेंट का एक हिस्सा खरीद लिया, जबकि किसी दूसरे नेशनलाइज्ड म्यूचुअल फंड के पास इतनी फॉरेन होल्डिंग नहीं है। इंडियन मार्केट में चटर्जी का मेन लिंक सी मैकर्टिच के अजय कायन हैं, जो सिटी के हाउस ब्रोकर हैं। मित्रा अब आदित्य बिड़ला ग्रुप में फाइनेंस फंक्शन को हेड करते हैं। यह एक अच्छा छोटा सा ग्रुप था। सिटीबैंक के पास करीब 80 पोर्टफोलियो अकाउंट थे, जिनमें से कुछ ही में बदलाव किया गया और उनका गलत इस्तेमाल किया गया। इतने सालों में, सिटीबैंक के पास टॉप क्लाइंट्स की एक लिस्ट थी – जैसे, प्राइवेट सेक्टर में बिरला और पब्लिक सेक्टर की कंपनियाँ – जिनके पैसे सिटी मैनेज कर रही थी। अगर PFC या GIC जैसा कोई इश्यूअर होता जिसके इंस्ट्रूमेंट्स आसानी से नहीं बिकते, तो सिटीबैंक उन इंस्ट्रूमेंट्स को अपने क्लाइंट्स के पोर्टफोलियो में डाल देता था। बदले में, सिटीबैंक चाहता था कि पैसा मैनेज करने के लिए उसके पास वापस आए। 13, 14 और 17 दिसंबर 1992 को सिटीबैंक ने GIC Rise II को अपने पोर्टफोलियो क्लाइंट्स ग्रासिम (50 करोड़ रुपये), बिंदल एग्रो (25 करोड़ रुपये) और इंडियन टेलीफोन इंडस्ट्रीज (25 करोड़ रुपये) के पास रख दिया। लगभग एक हफ्ते बाद, GIC म्यूचुअल के पोर्टफोलियो क्लाइंट बनने पर 25 करोड़ रुपये सिटीबैंक के पास वापस आ गए। फिर सिटी ने GIC Rise II यूनिट्स को उठाया और छोटे-छोटे हिस्सों में दूसरे बैंकों, ब्रोकर्स और फाइनेंशियल इंस्टीट्यूशन्स को बेच दिया। PFC को पैसे की ज़रूरत थी। 1992 की शुरुआत में, सिटीबैंक ने अपने 17% बॉन्ड उठाए और अपने क्लाइंट्स को देने का वादा किया। जब इश्यू सब्सक्राइब हुआ, तो PFC ने पूरे 150 करोड़ रुपये सिटीबैंक के पोर्टफोलियो अकाउंट में 14.25% के गारंटीड रिटर्न पर वापस डाल

दिए। 1991 में, जब यूनिट्स की बड़े पैमाने पर रीपरचेज़ हुई, तो UTI के पास कैश की कमी हो गई। सिटीबैंक ने रीपरचेज़ को फंड किया। बेलआउट के बदले में, सिटीबैंक ने UTI से अपने पोर्टफोलियो में पैसे डलवाए। हर्षद मेहता के पास भी ऐसी ही एक राउंड-रॉबिन स्कीम चल रही थी। उन्होंने बोइनान्ज़ा स्कीम से जुटाए गए 49 करोड़ रुपये में 20 करोड़ रुपये इन्वेस्ट किए, इस समझ के साथ कि BoI म्यूचुअल बिग बुल के शेयर खरीदेगा।
इस तरह के सर्कुलर रिश्तों का मतलब प्राइमरी शेयरहोल्डर्स के लिए नुकसान रहा है – PFC के मामले में सरकार, GIC म्यूचुअल के मामले में यूनिट होल्डर्स और प्राइवेट सेक्टर कंपनियों के मामले में शेयरहोल्डर्स। ग्रासिम के शेयरहोल्डर्स नीरजा और वासवदत्ता बिड़ला से कम लकी रहे हैं। ग्रासिम के पास ₹1000 से ज़्यादा के इन्वेस्टमेंट थे। साल की शुरुआत में 395 करोड़ और 31 मार्च 1992 को 330 करोड़ रुपये से ज़्यादा – पूरे साल में 360 करोड़ रुपये से ज़्यादा का एवरेज इन्वेस्टमेंट। इस पर ग्रासिम ने 33.33 करोड़ रुपये कमाए – जो सिर्फ़ 9% से थोड़ा ज़्यादा का रिटर्न है। यह बहुत कम था, खासकर तब जब ग्रासिम खुद 1991-92 में जारी किए गए 155 करोड़ रुपये के डिबेंचर पर 18% का इंटरेस्ट दे रहा था।
शायद, आगे चलकर सिटीबैंक ने बढ़ते PMS वॉल्यूम और रिश्तों के उतार-चढ़ाव पर कंट्रोल खो दिया। उसे अपने और अपने ब्रोकर्स के नुकसान को भी छिपाने की ज़रूरत थी। इसलिए, उसने अपने लगभग सभी क्लाइंट्स के पोर्टफोलियो में 13% कोल इंडिया और DVC बॉन्ड्स डाल दिए। ये बॉन्ड्स लगभग 75 रुपये पर कोट कर रहे थे और वैसे भी इलिक्विड थे। एसके बिड़ला की CIMMCO को ऐसे बॉन्ड्स लेने के लिए कहा जा रहा था, जिसका मतलब था प्रिंसिपल में 30% का नुकसान।

बिल्डर्स रहेजा परिवार सिटीबैंक पर फिड्यूशरी ड्यूटी के उल्लंघन का केस करने का भी प्लान बना रहा था। 2 अप्रैल 1992 को, सिटीबैंक ने चार पब्लिक सेक्टर कंपनियों के शेयर वराहगिरी इन्वेस्टमेंट्स (जिसके मालिक रहेजा परिवार थे) को बेच दिए, जबकि ये शेयर कोट भी नहीं हुए थे। महीनों की बहस के बाद, सिटीबैंक ने फैसला किया कि पोर्टफोलियो क्लाइंट्स को पूरा पेमेंट करना बेहतर है, बजाय इसके कि और ज़्यादा मनमुटाव पैदा किया जाए। इसने इसके लिए $150 मिलियन जुटाए, और इनडायरेक्टली यह माना कि इसने क्लाइंट्स के पैसे पर लापरवाही से ट्रेड किया था। तब तक शायद यह पक्का हो गया था कि SEC इसकी जांच नहीं करेगा।

जनाकीरामन समिति की रिपोर्ट के अनुसार, सिटीबैंक ने कई रेडी फॉरवर्ड डील कीं, जिन्हें व्यापारियों द्वारा संचालित पर्सनल कंप्यूटरों में दर्ज किया गया था और मेनफ्रेम कंप्यूटर सिस्टम में दर्ज नहीं किया गया था... बैकअप और संचालन विभाग इन अनुबंधों से अनभिज्ञ रहे और न ही इनकी ऑडिट की गई। समिति के अनुसार, "1990-91 के दौरान और 29 जून 1992 तक पीसी पर दर्ज की गई कुल 14,758 करोड़ रुपये की फॉरवर्ड प्रतिबद्धताओं को मेनफ्रेम कंप्यूटर सिस्टम में नहीं लाया गया। इन अनसुलझे अनुबंधों और आंतरिक लेनदेन से संबंधित कुछ विशेष जानकारियां विश्वसनीय ग्राहकों को नहीं दी गईं, जिससे पारदर्शिता प्रभावित हुई।" समिति ने यह भी कहा कि इस मामले में न केवल सिटीबैंक के ग्राहक बल्कि जेपीसी (जॉइंट पब्लिक अकाउंट्स) भी गुमराह हुए, जिस पर सिटीबैंक ने बड़ी मात्रा में जानकारी डाली थी। खातों में हेराफेरी के लिए दुनिया भर में कानून आपराधिक अभियोजन का प्रावधान करते हैं। सिटीबैंक के खिलाफ कुछ नहीं हुआ।

इस बीच, अमेरिकी फेडरल रिजर्व बोर्ड के अधिकारियों की एक टीम सिटीबैंक के खातों की जांच करने पहुंची। हैरानी की बात यह है कि वे आरबीआई अधिकारियों के अलावा किसी से बात किए बिना ही चले गए। इनसाइडर ट्रेडिंग और ग्राहकों के खातों में हेराफेरी के स्पष्ट संदेह के बावजूद, अमेरिकी एसईसी भी सिटीबैंक की जांच करने या अपने भारतीय समकक्ष, सेबी के अधिकारियों से बात करने में उदासीन प्रतीत होता है। फरवरी में, सिटीबैंक ने जांचकर्ताओं की एक और टीम भेजी। किसी को नहीं पता कि उन्हें क्या मिला।

सालों से लोग पूछते आ रहे हैं कि घोटाले का पैसा कहां गया? वह कहीं नहीं गया। वह यहीं, पीएमएस में था, कुछ प्रमुख खिलाड़ियों के भारी नुकसान की भरपाई में इस्तेमाल हो गया। हालांकि, मीडिया में इस बारे में लिखने के बावजूद, जनकीरामन समिति ने जल्दबाजी में काम किया, जेपीसी इसे समझ नहीं पाई और विदेशी बैंकों की जांच के लिए नियुक्त विशेष लेखा परीक्षकों ने सैकड़ों संदिग्ध पीएमएस सौदों में छिपी व्यावसायिक चालाकी को नजरअंदाज कर दिया। यह भांपते हुए कि अधिकांश जांचकर्ता इसे समझने में विफल रहे हैं, सिटीबैंक ने अपने चालाक और धूर्त पीआर एजेंट रोजर परेरा की मदद से यह दावा करना जारी रखा कि उसने कुछ भी गलत नहीं किया।

हालांकि, 1993 के अंत तक इस दावे को आसानी से चुनौती दी जा सकती थी, जब हमने तीन प्रमुख प्रतिभूति दलालों की मदद से सिटीबैंक के पीएमएस लेनदेन का विश्लेषण किया और कई दिलचस्प सुराग प्राप्त

किए। इन लेनदेन से आरबीआई को अन्य बैंकों और वित्तीय संस्थानों द्वारा अपनाई जा रही भ्रष्ट प्रथाओं, आयकर अधिकारियों को संभावित कर उल्लंघनों और अमेरिकी नियामक एजेंसियों को न्यासी दायित्व के उल्लंघन के बारे में सचेत किया जा सकता था। इसके अलावा, साक्ष्य स्पष्ट रूप से सिटीबैंक द्वारा चलाए जा रहे वित्तीय सहायता के एक परिष्कृत नेटवर्क की ओर इशारा करते थे।

हम पहले से ही जानते हैं कि कई सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां और कई बड़ी प्रसिद्ध निजी क्षेत्र की कंपनियां चतुर विदेशी बैंकों और दलालों के माध्यम से पीएमएस में पैसा लगाती हैं। पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन ने सिटीबैंक को 14.25% प्रति वर्ष के मामूली रिटर्न पर 150 करोड़ रुपये सौंपे। सबसे अधिक फेरबदल वाले पोर्टफोलियो में से एक, पीएफसी को आदित्य बिरला-बीके बिरला की लगभग सभी कंपनियों जैसे सेंचुरी टेक्सटाइल्स, ग्रासिम, इंडियन रेयॉन, इंडो-गल्फ फर्टिलाइजर्स, मैंगलोर रिफाइनरी आदि के साथ सक्रिय रूप से लेन-देन करने के लिए बाध्य किया गया था। लेकिन घोटाले के सामने आने के एक महीने बाद, 25 मई 1992 को किए गए दो संदिग्ध लेन-देन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उस दिन, सिटीबैंक ने पीएफसी के खाते से वासवदत्ता बिरला से 1.7 करोड़ रुपये के अंकित मूल्य के 9% आईआरएफसी बॉन्ड और

नीरजा बिरला से 2.82 करोड़ रुपये के समान बॉन्ड खरीदे। यह दो तथ्यों के कारण ही महत्वपूर्ण हो पाया, अन्यथा यह नगण्य प्रतीत होता। ये सौदे 100 रुपये प्रति बॉन्ड पर किए गए थे, जबकि इससे ठीक पहले और बाद में, सिटीबैंक ने अपने पीएमएस ग्राहक पीएफसी के

लिए लाखों 9% आईआरएफसी, 9% एचयूडीसीओ और 9% एनपीसी बॉन्ड 89-97 रुपये प्रति बॉन्ड की रेंज में खरीदे थे। दूसरा तथ्य: नीरजा बिरला दिवंगत आदित्य बिरला की बहू हैं और वासवदत्ता बिरला उनकी बेटी हैं। बाजार दर को 90 रुपये मानकर भी, जिस पर सिटीबैंक ने 9% आईआरएफसी बॉन्ड में सौदे किए थे, सिटीबैंक ने पीएफसी से दोनों बिरलाओं को 45 लाख रुपये अतिरिक्त दिलवाए। क्या यह बैंक द्वारा बिरलाओं को व्यक्तिगत लाभ पहुंचाने का तरीका था? इन संदिग्ध सौदों को अंजाम देने वाले वित्त अधिकारी घोटाले की जांच के दौरान गायब हो गए थे।

पीएफसी सिटीबैंक के पसंदीदा ब्रोकरों के साथ किए गए सौदों में भी शामिल था।

सी मैकर्टिच और स्टीवर्ट एंड कंपनी। तीसरी जनकीरामन समिति की रिपोर्ट के अनुसार, इन दोनों ब्रोकरों ने जीआईसी राइज I और II में पांच सौदों में 89 करोड़ रुपये का भारी मुनाफा कमाया। इनमें से तीन सौदे सिटीबैंक के ग्राहक पीएफसी के साथ थे। हैरानी की बात यह है कि पीएफसी ने अपने खर्च पर मिले इन उपहारों के बारे में सिटीबैंक से कभी सवाल नहीं किया। सीबीआई ने भी नहीं किया। पीएफसी वही ग्राहक था जिसे सिटीबैंक ने गारंटीशुदा रिटर्न का वादा किया था, लेकिन बाद में (अपने एक कनिष्ठ कर्मचारी राज मित्तल के पत्र में) उससे पल्ला झाड़ लिया।

जीआईसी म्यूचुअल फंड के 25 करोड़ रुपये के खाते दिसंबर 1991 में शुरू हुए, जब शेयर की कीमतें पहले से ही बढ़ रही थीं। हैरानी की बात यह है कि सिटीबैंक को जीआईसी म्यूचुअल से शेयर खरीदने का

आदेश मिला था। जीआईसी म्यूचुअल खुद बॉन्ड और इक्विटी में निवेश करने में माहिर माना जाता था – कम से कम इसी वजह से इसकी स्थापना की गई थी और इसे जनता से पैसा जुटाने की अनुमति दी गई थी। फिर यह पैसा सिटीबैंक को क्यों दे रहा था? जीआईसी म्यूचुअल के तत्कालीन मुख्य कार्यकारी अधिकारी एस.के. मित्रा ने कहा, "क्योंकि उस समय बाजार में मंदी थी। यूटीआई और बीएसई जैसी अन्य कंपनियों के भी सिटीबैंक में खाते थे।" इस स्पष्टीकरण में समस्या यह है कि पोर्टफोलियो योजनाओं को कम से कम एक वर्ष के लिए चलाया जाना चाहिए था। स्पष्ट रूप से, बाजार में अस्थायी मंदी जीआईसी म्यूचुअल के लिए पूरे वर्ष के लिए 25 करोड़ रुपये निवेश करने का बहाना नहीं हो सकती।

सिटीबैंक ने जीआईसी के पैसे का अधिकांश हिस्सा फरवरी से अप्रैल के बीच चेत्तिनाड सीमेंट, इंडियन रेयॉन और रिलायंस जैसी कंपनियों के शेयरों में निवेश किया - यह शेयर बाजार में तेजी का आखिरी दौर था। मित्रा ने दावा किया कि जीआईसी को कुल मिलाकर 20% का रिटर्न मिला। मित्रा, सी मैकर्टिच और सिटी के बीच का यह गठजोड़ कई मौकों पर दोहराया गया। जीआईसी म्यूचुअल ने संयुक्त रूप से सिटिकार्ड्स बेचे। एक बेहद असामान्य और अभूतपूर्व कदम में, जॉर्ज सोरोस और पूर्णेंदु चटर्जी की जोड़ी ने सरकारी स्वामित्व वाली जीआईसी एसेट मैनेजमेंट का एक बड़ा हिस्सा हासिल कर लिया, जबकि किसी अन्य राष्ट्रीयकृत म्यूचुअल फंड के पास इतनी विदेशी हिस्सेदारी नहीं है। भारतीय बाजार में चटर्जी का मुख्य संपर्क सी मैकर्टिच के अजय कायन से है, जो सिटी के हाउस ब्रोकर हैं। मित्रा अब आदित्य बिरला समूह में वित्त विभाग के प्रमुख हैं। यह एक छोटा सा गुट था।

सिटीबैंक के लगभग 80 पोर्टफोलियो खातों में से केवल कुछ ही खातों में हेराफेरी और दुरुपयोग किया गया था। पिछले कुछ वर्षों में, सिटीबैंक के पास शीर्ष ग्राहकों की एक लंबी सूची थी – उदाहरण के लिए, निजी क्षेत्र में बिड़ला परिवार और सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियां – जिनका पैसा सिटीबैंक प्रबंधित करता था। यदि पीएफसी या जीआईसी जैसी कोई जारीकर्ता कंपनी होती जिसके इंस्ट्रूमेंट्स आसानी से नहीं बिकते, तो सिटीबैंक उन इंस्ट्रूमेंट्स को अपने ग्राहकों के पोर्टफोलियो में डाल देता था। इसके बदले में,

सिटीबैंक चाहता था कि पैसा वापस उसके पास प्रबंधन के लिए आ जाए। 13, 14 और 17 दिसंबर 1992 को सिटीबैंक ने जीआईसी राइज II को अपने पोर्टफोलियो ग्राहकों ग्रासिम (50 करोड़ रुपये), बिंदल एग्रो (25 करोड़ रुपये) और इंडियन टेलीफोन इंडस्ट्रीज (25 करोड़ रुपये) के पास रखा। लगभग एक सप्ताह बाद, जीआईसी म्यूचुअल के पोर्टफोलियो ग्राहक बनने पर 25 करोड़ रुपये सिटीबैंक के पास वापस आ गए। इसके बाद सिटीबैंक ने जीआईसी राइज II की यूनिट्स खरीदीं और उन्हें छोटे-छोटे हिस्सों में अन्य बैंकों, ब्रोकरों और वित्तीय संस्थानों को बेच दिया।

1992 की शुरुआत में पीएफसी को पैसों की ज़रूरत थी। सिटीबैंक ने उसके 17% बॉन्ड खरीद लिए और उन्हें अपने ग्राहकों के बीच रखने का वादा किया। जब बॉन्ड बिक गए, तो पीएफसी ने पूरे 150 करोड़ रुपये सिटीबैंक के पोर्टफोलियो खाते में 14.25% के गारंटीड रिटर्न पर वापस डाल दिए। 1991 में, यूटीआई को नकदी की कमी का

सामना करना पड़ा जब उसके यूनिट्स की बड़े पैमाने पर पुनर्खरीद हुई। सिटीबैंक ने पुनर्खरीद के लिए धन दिया। इस मदद के बदले में, सिटीबैंक ने यूटीआई से अपने पोर्टफोलियो में पैसा लगाने को कहा। हर्षद मेहता की भी इसी तरह की एक योजना चल रही थी। उन्होंने बोइनंजा योजना के माध्यम से जुटाए गए 49 करोड़ रुपये में से 20 करोड़ रुपये इस समझ के साथ निवेश किए कि बीओआई म्यूचुअल, यूटीआई के शेयर खरीदेगा।

इस तरह के चक्रीय और अनैतिक संबंधों के कारण प्राथमिक शेयरधारकों को नुकसान हुआ है - पीएफसी के मामले में सरकार को, जीआईसी म्यूचुअल के मामले में यूनिट धारकों को और निजी क्षेत्र की कंपनियों के मामले में शेयरधारकों को। ग्रासिम के शेयरधारक नीरजा और वासवदत्ता बिरला की तुलना में कम भाग्यशाली रहे हैं। ग्रासिम के पास

वर्ष की शुरुआत में 395 करोड़ रुपये से अधिक का निवेश था और 31 मार्च 1992 तक यह राशि 330 करोड़ रुपये से अधिक हो गई थी – पूरे वर्ष के दौरान औसत निवेश 360 करोड़ रुपये से अधिक रहा। इस पर ग्रासिम ने 33.33 करोड़ रुपये का लाभ कमाया – यानी मात्र 9% से थोड़ा अधिक का रिटर्न। यह बेहद कम था, खासकर तब जब ग्रासिम स्वयं 1991-92 में जारी किए गए 155 करोड़ रुपये के डिबेंचर पर 18% ब्याज दे रहा था।

संभवतः, सिटीबैंक कहीं न कहीं बढ़ते हुए पीएमएस वॉल्यूम और जटिल संबंधों पर अपना नियंत्रण खो बैठा। उसे अपने और अपने ब्रोकरों के नुकसान को भी छिपाना था। इसलिए, उसने अपने लगभग सभी

ग्राहकों के पोर्टफोलियो में भारी मात्रा में 13% कोल इंडिया और डीवीसी बॉन्ड डाल दिए। ये बॉन्ड लगभग 75 रुपये पर ट्रेड कर रहे थे और वैसे भी इनकी लिक्विडिटी कम थी। एस.के. बिरला की CIMMCO को ऐसे बॉन्ड लेने के लिए कहा जा रहा था, जिसका मतलब मूलधन में 30% का नुकसान था। बिल्डर्स रहेजा परिवार तो न्यासी बैंक पर विश्वासघात का मुकदमा करने की योजना भी बना रहा था।

2 अप्रैल 1992 को, सिटबैंक ने चार सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के शेयर वराहगिरी इन्वेस्टमेंट्स (रहेज परिवार के स्वामित्व वाली कंपनी) को बेच दिए, जबकि इन शेयरों का मूल्य अभी तय नहीं हुआ था। महीनों तक बयानबाजी करने के बाद, सिटबैंक ने फैसला किया कि ग्राहकों के साथ और अधिक मनमुटाव पैदा करने के बजाय पोर्टफोलियो ग्राहकों को पूरा भुगतान करना बेहतर होगा। इसके लिए उसे 150 मिलियन डॉलर मिले, जिससे उसने अप्रत्यक्ष रूप से यह स्वीकार किया कि उसने ग्राहकों के पैसे का लापरवाही से इस्तेमाल किया था। तब तक उसे शायद यकीन हो गया था कि एसईसी इसकी जांच नहीं करेगा।

सिटबैंक के खातों में सबसे बड़ा दाग सैकड़ों "फर्जी ग्राहक" लेनदेन थे। सिटबैंक ने कहा कि यह एक काल्पनिक लेखांकन प्रक्रिया थी, जिसे एक से अधिक ग्राहक खातों से की गई एकमुश्त बिक्री से मेल खाने के लिए बनाया गया था। पहले तो इसने फर्जी ग्राहक खातों में बिक्री दर्ज की और फिर ग्राहकों के खातों से प्राप्त मिलान राशि के साथ उसका समायोजन किया। यदि ऐसा है, तो फर्जी ग्राहक खाता हमेशा संतुलित रहना चाहिए। वास्तव में, जेपीसी को प्रस्तुत किए गए रिकॉर्ड के अनुसार, मई 1992 के अंत

में फर्जी खाते में 10,000 करोड़ रुपये से अधिक की अतिरिक्त बिक्री दर्ज थी।

सिटीबैंक के साथ ट्रेड करने वाले ब्रोकर्स ने हमें कई वजहें बताईं। पहली, शायद सिटी और उसके PMS क्लाइंट्स के कुछ बॉन्ड लॉस यहीं रखे गए थे। इसीलिए अकाउंट में ओवरसोल्ड पोजीशन दिखी। दूसरी, शायद असली नामों की जगह “डमी कस्टमर” डाल दिया गया था। तीसरी वजह ज़्यादा आम है। हो सकता है कि सिटीबैंक ने बड़े ट्रांज़ैक्शन का हिसाब खो दिया हो और डमी कस्टमर की ओवरसोल्ड पोजीशन को खत्म करने के लिए कस्टमर अकाउंट से सेल्स ट्रांसफर करने में गलती कर दी हो। वैसे भी, JPC और RBI ने कभी नहीं पूछा कि एक जाना-माना विदेशी बैंक, जो अपने पास बेहतरीन सिस्टम होने का दावा करता है, उसके डमी कस्टमर अकाउंट में हज़ारों करोड़ के ट्रांज़ैक्शन क्यों होंगे।
बेशक, सिटीबैंक अकेला ऐसा नहीं था जिसके अकाउंट पर शक था। भारत पेट्रोलियम ने फरवरी और मार्च 1992 के बीच स्टैनचार्ट में छह लॉट में 100 करोड़ रुपये से ज़्यादा इन्वेस्ट किए थे। दूसरी तेल कंपनियों ने भी सिटीबैंक, ANZ और स्टैनचार्ट में पैसा जमा किया था। कैनफिना को न्यूक्लियर पावर कॉर्पोरेशन (Rs 294 करोड़), हाउसिंग एंड अर्बन डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन (Rs 240 करोड़) और PFC (Rs 226 करोड़), और दूसरे PSUs से पोर्टफोलियो फंड मिले थे। बदकिस्मती से, जांच करने वाले अधिकारियों ने इन अकाउंट्स की जांच करने में ज़्यादा दिलचस्पी नहीं दिखाई। सिटीबैंक के ऑपरेशन्स में एक मज़बूत टैक्स एंगल भी था जिसकी जांच हो सकती थी। बैंक ने हर क्लाइंट के लिए अलग-अलग प्रॉफिट और

लॉस का हिसाब नहीं लगाया था। न ही उसके पास लॉन्ग-टर्म और शॉर्ट-टर्म कैपिटल गेन के अलग-अलग रिकॉर्ड थे, जैसा कि अलग-अलग क्लाइंट्स पर लागू होता है। उसने अपने पोर्टफोलियो का पूरा पैसा जमा कर लिया था और इसलिए, क्लाइंट्स को बांटने से पहले, उसे हुए प्रॉफिट पर टैक्स काटना था। सिटीबैंक ने ऐसा नहीं किया और टैक्स अधिकारियों द्वारा उसे फटकार लगाई जा सकती थी। अलग-अलग पब्लिक सेक्टर फाइनेंशियल इंस्टीट्यूशन्स का बर्ताव भी उतना ही शर्मनाक था। चाहे उन्हें इंडस्ट्रियल वेंचर्स (IDBI) को पैसा उधार देना था, छोटे इन्वेस्टर्स का पैसा इन्वेस्ट करना था (UTI) या कैपिटल मार्केट से अच्छा पैसा कमाना था (GIC म्यूचुअल फंड), ये सभी बड़े इंस्टीट्यूशन्स अपना पैसा सौंपने के लिए सिटीबैंक के सामने लाइन में लग गए। IDBI ने JPC के सामने माना कि उसने PMS में करीब 450 करोड़ रुपये इन्वेस्ट किए थे। उसने 18 सितंबर 1991 और 16 अप्रैल 1992 के बीच सिटी में दस अकाउंट खोले, जब कैपिटल की बहुत कमी थी और खासकर तब जब उसका अपना ट्रेडिंग डेस्क था। RBI ने नहीं पूछा कि क्यों। न ही JPC ने। इसलिए, जबकि विदेशी बैंकों की इमेज खराब दिख रही थी, दो लुटेरे अमेरिकी बैंक मामूली चोटों के साथ बच गए। सिटीबैंक दो वजहों से बच गया। एक, उसके PSU क्लाइंट्स अपनी फिड्यूशरी ड्यूटी निभाने में लापरवाही के लिए उसके खिलाफ केस फाइल करने में इंटरेस्टेड नहीं थे। दूसरा, ब्रोकर्स और बैंकों के बुक्स की एक साथ कोई जांच नहीं हुई। असल में, बैंकर्स इस बात से हैरान हैं कि सिटीबैंक ने कई डील्स को डायरेक्ट दिखाया, जबकि पूरा मार्केट जानता था कि वह हमेशा ब्रोकर्स के ज़रिए डील करता है। सिटीबैंक के PMS मनी का गलत इस्तेमाल करने के सबसे हैरान करने वाले मामलों में से एक वह था जिसमें उसने एक अनजान PSU क्लाइंट

के अकाउंट से 237.74 करोड़ रुपये तक ओवरड्रॉ कर लिए थे। सिटीबैंक ने कहा कि ऐसे ओवरड्रॉ के खिलाफ उसके पास एक साथ खरीदने/बेचने के कमिटमेंट थे। जब बेचने के ऑर्डर पूरे हो गए, तो कैनफिना (सिटीबैंक से जुड़ी किसी भी चीज़ पर, हितेन दलाल, कैनफिना और दो कलकत्ता ब्रोकर्स के नाम सामने आते हैं) अपने खरीदने के कमिटमेंट पूरे करने में फेल रही। सिटीबैंक को अपना सेल्स कमिटमेंट पूरा करना पड़ा, जिससे ओवरड्राफ्ट हो गया। सिटी शायद एक कहानी बनाकर बच निकली। जानकीरमन कमेटी की रिपोर्ट में एक ऐसा सबूत देखिए जिसका कोई कनेक्शन नहीं है। इसमें वही कैनफिना और वही 235 करोड़ रुपये शामिल हैं 11। ओवरड्राफ्ट अकाउंट के मामले में बताई गई सिटीबैंक की खरीद/बिक्री डील असल में जून-अगस्त में होनी थी। अगर ऐसा है, तो क्लाइंट का अकाउंट मई/जून में ओवरड्राफ्ट क्यों होना चाहिए? सिक्योरिटी ब्रोकर्स को शक है कि सिटीबैंक के पास मई/जून के बकाया BRs हो सकते हैं जिन्हें कैनफिना द्वारा अगस्त में की गई खरीद के बदले लिक्विडेट किया जाना था। जब कैनफिना पीछे हट गई, तो सिटीबैंक के पास 235 करोड़ रुपये का “ओवरड्राफ्ट” रह गया। अगर यह सच है, तो इससे यह भी पता चलता है कि BR रिकंसिलिएशन के बाद मई में सिटीबैंक यह दावा क्यों कर सका कि उसके पास कोई बकाया BRs नहीं है और उसकी बुक्स क्लीन हैं।
1993 में, जब मामला गरमाने लगा, तो सिटी ने चुपचाप अपने क्लाइंट्स के साथ सेटलमेंट करना शुरू कर दिया, खासकर जब कुछ जाने-माने क्लाइंट्स ने उसे लीगल नोटिस भेजे। उसने 31 मार्च 1993 को खत्म हुए साल के लिए 105.95 करोड़ रुपये राइट ऑफ कर दिए। आखिरकार बैंक ने लगभग $150 मिलियन राइट ऑफ कर दिए। सिटी जैसे विदेशी बैंकों ने भारतीय कमियों का फ़ायदा उठाकर,

गाइडलाइंस तोड़कर और ताकतवर लोकल एडवाइज़री बोर्ड के ज़रिए दिल्ली में फ़ैसले लेने की प्रक्रिया को प्रभावित करके बहुत ज़्यादा मुनाफ़ा कमाया, लेकिन वे लगभग बच निकले। मनी मार्केट में, उन्होंने 80% ट्रांज़ैक्शन एडवांस्ड सिस्टम और बहुत ज़्यादा संपर्क वाले कर्मचारियों का इस्तेमाल करके किए ताकि अनजान, धीमे भारतीय बैंकों और PSUs की कमज़ोरियों का फ़ायदा उठाया जा सके। दुख की बात है कि अकेला भारतीय बैंक जो इन चारों को कंट्रोल में रख सकता था, SBI, उसे भी भारी नुकसान हुआ और हर्षद के साथ अपने धोखाधड़ी वाले सौदों की वजह से वह भी मुश्किल में पड़ गया। जब RBI ने 1992 के आखिर में उन पर कार्रवाई की, तो टॉप चार बैंक (स्टैनचार्ट, सिटी, ANZ और BankAm) ने नए साल की शुरुआत नए चीफ एग्जीक्यूटिव के साथ की। हालांकि, विदेशी बैंकों के हेड के आसानी से जाने से ज़रूरी सबूत खत्म हो गए। CBI ने स्टैंचार्ट और सिटीबैंक के टॉप अधिकारियों को गवाह के तौर पर मुश्किल से ही बुलाया। हैरानी की बात है कि विदेशी बैंकों को जो भी थोड़ी-बहुत बुराई झेलनी पड़ी, उसका जवाब एक सपोर्टिव, थोड़ी- बहुत जानकारी रखने वाली विदेशी प्रेस ने दिया, जिसने विदेशियों के प्रति भारत के रवैये को दोषी ठहराया।
स्टैंचार्ट
स्कैम के सामने आने के कुछ महीनों बाद, हर मार्केट प्लेयर ने ज़ोर दिया कि स्टैंचार्ट के नुकसान और दावों को बहुत बढ़ा- चढ़ाकर बताया गया था। JPC और जानकीरमन कमेटी ने बैंक पर आरोप लगाया, लेकिन उसने फिर भी खुद को घायल पार्टी के तौर पर पेश किया। छह साल बाद, जस्टिस वरियावा दूसरी कमेटियों के एंटी- ब्रोकर बायस से ऊपर उठे और चौंकाने वाला सच सामने लाए: स्टैंचार्ट अपने तीन-चौथाई नुकसान साबित नहीं कर सकता!

स्टैंचार्ट की विदेशी इंश्योरेंस कंपनियों ने भी उसके दावों को नहीं माना। री-इंश्योरेंस कंपनियों के दबाव में, लंदन की एक टीम ने जानकारी निकालने और गवाहों की पहचान करने के लिए भारत के कई दौरे किए। केस का ट्रायल अक्टूबर 1998 में होना था, लेकिन सितंबर में पार्टियों ने अल्टरनेट डिस्प्यूट रिड्रेसल मैकेनिज्म के तहत सेटलमेंट का ऑप्शन चुना। डील की एक शर्त पूरी सीक्रेसी थी; लेकिन यकीनन रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया को डिटेल्स मांगने का हक था।

आखिरकार, 24 दिसंबर 1998 को स्टैंचर्ट का काम तमाम हो गया, जब एक कड़े फैसले में, जस्टिस एसएन वरियावा ने उसके झूठ, बढ़ा- चढ़ाकर कही बातों और झूठे दावों का पर्दाफाश किया। जज ने वही दोहराया जो JPC रिपोर्ट और RBI ने पहले ही डॉक्यूमेंट कर दिया था। कि स्टैंचर्ट का ट्रेजरी स्टॉक ब्रोकर हितेन दलाल चलाता था। छह साल तक बैंक ने दावा किया कि हितेन दलाल ने उसे 1233 करोड़ रुपये का धोखा दिया, जब तक कि जस्टिस वरियावा ने उसके लगभग 800 करोड़ रुपये के दावों को खारिज नहीं कर दिया क्योंकि वह नुकसान साबित नहीं कर सका।

जैसा कि जस्टिस वरियावा ने लिखा, “सच की आदत होती है कि वह चुपके से बाहर आ जाता है”, और एमपी राव के लगातार क्रॉस-एग्जामिनेशन ने उसे बाहर आने पर मजबूर कर दिया। जैसा कि जज ने पहचाना, यह बैंक के लिए एक कैच-22 था। या तो बैंक के टॉप मैनेजमेंट ने ज़्यादा प्रॉफ़िट के लालच में जानबूझकर RBI के नियमों को तोड़ा और हितेन दलाल के साथ अरेंजमेंट करके समझदारी भरे बैंकिंग तरीकों को छोड़ दिया, या फिर, स्टैंचर्ट "सबसे खराब तरीके से

चलाया जाने वाला और सबसे लापरवाह" बैंक था, और यह "ऐसे बैंक को बंद करने का आधार" होगा।

असल में, जज ने विदेशी बैंकों के बीच स्टैंडर्ड टेक्निक अपनाने की बैंक की कोशिश को रोक दिया, यानी, जब भी नियम तोड़ते हुए पकड़े जाएं, तो आसानी से मामले को एम्प्लॉई-फ़्रॉड में बदल दें। कुछ जूनियर अधिकारियों को नौकरी से निकाल दिया जाता है, कुछ पेनल्टी भरी जाती है और सब कुछ पहले जैसा हो जाता है। जस्टिस वरियावा ने यह नतीजा निकाला कि यह मानना नामुमकिन है कि डीलरों ने खुद ही लिमिट तोड़ी हों और टॉप मैनेजमेंट की मंज़ूरी के बिना कुछ भी किया हो। स्टैंचर्ट ने जस्टिस वरियावा के फ़ैसले के ख़िलाफ़ अपील की और यह केस टैक्सपेयर्स के खर्चे पर कई और सालों तक चल सकता है। पीछे मुड़कर देखें तो सबसे चौंकाने वाली बात यह थी कि स्टैंचर्ट के लंदन के माउंट बैंकिंग कॉर्पोरेशन के खिलाफ झूठे आरोपों से जो नाइंसाफी हुई, उसे भारतीय मूल के मालिक चलाते थे। बैंक ऑफ़ इंग्लैंड ने इसे तब बंद कर दिया जब स्टैंचर्ट ने आरोप लगाया कि उस बैंक में भारत से बहुत सारा पैसा निकाला गया था। आखिरकार, क्योंकि कोई गलत काम और देश से फंड ट्रांसफर साबित नहीं हुआ, स्टैंचर्ट ने सबके सामने माफी मांगी और माउंट बैंक ने स्टैंचर्ट के खिलाफ मानहानि का केस किया। स्टैंचर्ट के आरोपों पर, RBI ने जल्दबाजी में बैंक ऑफ़ कराड और मेट्रोपॉलिटन को- ऑपरेटिव बैंक को भी बंद कर दिया था। इस बीच, भूपेन दलाल को पकड़ने के लिए बहुत कम सबूत मिले हैं, जिसने अपने तरीके से और बारीकी से काम करते हुए अब स्कैम से जुड़े डॉक्यूमेंट्स की एक पूरी लाइब्रेरी बना ली है।

भारत पेट्रोलियम ने फरवरी और मार्च 1992 के बीच स्टैनचार्ट में छह किस्तों में 100 करोड़ रुपये से अधिक का निवेश किया था। अन्य तेल कंपनियों ने भी सिटीबैंक, एएनजेड और स्टैनचार्ट में पैसा जमा किया था। कैनफिना को न्यूक्लियर पावर कॉर्पोरेशन (294 करोड़ रुपये), हाउसिंग एंड अर्बन डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन (240 करोड़ रुपये), पीएफसी (226 करोड़ रुपये) और अन्य सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से पोर्टफोलियो फंड प्राप्त हुए थे।

दुर्भाग्यवश, जांच अधिकारियों ने इन खातों की जांच में कोई खास तत्परता नहीं दिखाई।

सिटीबैंक के संचालन में कर संबंधी एक महत्वपूर्ण पहलू भी था जिसकी जांच की जा सकती थी। बैंक ने प्रत्येक ग्राहक के लिए लाभ और हानि की गणना अलग-अलग नहीं की थी। न ही उसके पास व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए लागू होने वाले दीर्घकालिक और अल्पकालिक पूंजीगत लाभ के अलग-अलग रिकॉर्ड थे। उसने अपने पास मौजूद संपूर्ण पोर्टफोलियो राशि को एकत्रित कर लिया था और इसलिए ग्राहकों को वितरित करने से पहले अर्जित लाभ पर कर कटौती करने के लिए उत्तरदायी था। सिटीबैंक ने ऐसा नहीं किया और कर अधिकारियों द्वारा उसे फटकार लगाई जा सकती थी।

विभिन्न सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय संस्थानों का व्यवहार भी उतना ही निंदनीय था। चाहे उन्हें औद्योगिक उद्यमों को ऋण देना हो (IDBI), छोटे निवेशकों के पैसे का निवेश करना हो (UTI) या पूंजी बाजारों से अच्छा मुनाफा कमाना हो (GIC म्यूचुअल फंड), ये सभी प्रतिष्ठित संस्थान अपना पैसा सौंपने के लिए सिटीबैंक की

ओर कतार में खड़े थे। IDBI ने JPC के सामने स्वीकार किया कि उसने PMS में लगभग 450 करोड़ रुपये का निवेश किया था।

उसने 18 सितंबर 1991 से 16 अप्रैल 1992 के बीच सिटीबैंक में दस खाते खोले, ऐसे समय में जब पूंजी की भारी कमी थी और खासकर तब जब उसका अपना ट्रेडिंग डेस्क था। RBI ने इस बारे में कोई सवाल नहीं किया। न ही JPC ने।

इसलिए, जहां विदेशी बैंकों की छवि धूमिल हुई, वहीं दो साहसी अमेरिकी बैंक मामूली चोटों के साथ बच निकले। सिटीबैंक दो कारणों से बच गया। पहला, उसके सार्वजनिक क्षेत्र के ग्राहक अपने न्यासी कर्तव्य के निर्वाह में लापरवाही के लिए उसके खिलाफ मुकदमे दायर करने में रुचि नहीं रखते थे। दूसरा, दलालों और बैंकों के खातों की एक साथ कोई जांच नहीं हुई। दरअसल, बैंकर इस बात से हैरान हैं कि सिटीबैंक ने बड़ी संख्या में सौदों को प्रत्यक्ष सौदे के रूप में दिखाया, जबकि पूरा बाजार जानता था कि वह हमेशा दलालों के माध्यम से ही लेन-देन करता था।

सिटीबैंक द्वारा पीएमएस (प्राइवेट मनी सपोर्ट) फंड के दुरुपयोग के सबसे चौंकाने वाले मामलों में से एक वह मामला था जिसमें उसने एक अज्ञात सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम (पीएसयू) ग्राहक के खाते से 237.74 करोड़ रुपये की अतिरिक्त निकासी कर ली थी। सिटीबैंक ने कहा कि इस अतिरिक्त निकासी के बदले उसके पास एक साथ खरीद/बिक्री के ऑर्डर थे। हालांकि बिक्री के ऑर्डर पूरे हो गए, लेकिन कैनफिना (सिटीबैंक से जुड़ी किसी भी बात पर हितेन दलाल, कैनफिना और कोलकाता के दो दलालों के नाम सामने आते हैं) अपनी

खरीद प्रतिबद्धताओं को पूरा करने में विफल रही। सिटीबैंक को अपनी बिक्री प्रतिबद्धता को पूरा करना पड़ा, जिसके कारण खाते में अतिरिक्त राशि जमा हो गई। सिटीबैंक ने शायद मनगढ़ंत कहानी बनाकर खुद को बचा लिया। जनकिरमन समिति की रिपोर्ट में एक ऐसे साक्ष्य पर गौर करें जो देखने में असंबंधित लगता है।

इसमें भी वही कैनफिना और वही 235 करोड़ रुपये की राशि शामिल है।

ओवरड्रॉन खाते के मामले में उल्लिखित सिटीबैंक की खरीद/बिक्री डील वास्तव में जून-अगस्त में देय थी। अगर ऐसा है, तो मई/जून में ग्राहक का खाता ओवरड्रॉन क्यों होना चाहिए? सिक्योरिटी ब्रोकरों को संदेह है कि सिटीबैंक ने कैनफिना द्वारा अगस्त में की गई खरीद के बदले मई/जून के बकाया बीआर (बॉर्डर बैलेंस) को निपटाने के लिए रोक रखा होगा। जब कैनफिना ने सौदा रद्द कर दिया, तो सिटीबैंक के पास 235 करोड़ रुपये का "ओवरड्रॉन" रह गया। यदि यह सच है, तो इससे यह भी स्पष्ट होता है कि बीआर के मिलान के बाद मई में सिटीबैंक यह दावा कैसे कर सका कि उसके पास कोई बकाया बीआर नहीं है और उसके खाते साफ-सुथरे हैं।

1993 में, जब हालात बिगड़ने लगे, तो सिटी ने चुपचाप अपने ग्राहकों के साथ समझौता करना शुरू कर दिया, खासकर तब जब

कुछ जाने-माने ग्राहकों ने उसे कानूनी नोटिस भेजे। उसने 31 मार्च 1993 को समाप्त हुए वर्ष के लिए 105.95 करोड़ रुपये का बट्टे खाते में डाल दिया। अंततः बैंक ने लगभग 150 मिलियन डॉलर का बट्टे खाते में डाल दिया।

सिटी जैसे विदेशी बैंकों ने भारतीय नियमों की खामियों का फायदा उठाकर, दिशानिर्देशों का उल्लंघन करके और शक्तिशाली स्थानीय सलाहकार बोर्डों के माध्यम से दिल्ली में निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रभावित करके बेहिसाब मुनाफा कमाया, लेकिन लगभग अछूते रहे। मुद्रा बाजारों में, उन्होंने परिष्कृत प्रणालियों और उच्च संपर्क वाले कर्मचारियों का उपयोग करके 80% लेनदेन किए, ताकि अज्ञानी और सुस्त भारतीय बैंकों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की कमजोरियों का फायदा उठाया जा सके। दुख की बात है कि एकमात्र भारतीय बैंक जो इन चारों पर लगाम लगा सकता था, एसबीआई, हर्षद के साथ अपने धोखाधड़ी वाले सौदों के कारण भारी नुकसान झेल चुका था और बदनाम हो गया था। 1992 के अंत में जब आरबीआई ने उन पर कार्रवाई की, तो शीर्ष चार बैंकों (स्टैनचार्ट, सिटी, एएनजेड और बैंकएम) ने नए मुख्य कार्यकारी अधिकारियों के साथ नए साल की शुरुआत की। हालांकि, विदेशी बैंकों के प्रमुखों के आसानी से पद छोड़ने से महत्वपूर्ण सुराग मिट गए। सीबीआई ने स्टैनचार्ट और सिटीबैंक के शीर्ष अधिकारियों को गवाह के रूप में शायद ही बुलाया। आश्चर्यजनक रूप से, विदेशी बैंकों को जो थोड़ी-बहुत आलोचना झेलनी पड़ी,

उसका मुकाबला एक सहायक, अर्ध-जानकारी रखने वाले विदेशी प्रेस ने किया, जिसने विदेशियों के प्रति भारतीय रवैये को दोषी ठहराया।

स्टैनचार्ट

घोटाले के सामने आने के कुछ महीनों बाद, बाजार के हर खिलाड़ी ने इस बात पर जोर दिया कि स्टैनचार्ट के नुकसान और दावे बहुत बढ़ा- चढ़ाकर पेश किए गए थे। जेपीसी और जानकीरामन समिति दोनों ने बैंक को दोषी ठहराया, लेकिन फिर भी बैंक ने खुद को पीड़ित पक्ष के रूप में पेश किया। छह साल बाद, न्यायमूर्ति वारियावा ने अन्य समितियों के दलाल-विरोधी पूर्वाग्रह से ऊपर उठकर चौंकाने वाला सच उजागर किया: स्टैनचार्ट अपने तीन-चौथाई नुकसान को साबित नहीं कर सका!

स्टैनचार्ट के विदेशी बीमाकर्ताओं ने भी उसके दावों को स्वीकार नहीं किया। पुनर्बीमाकर्ताओं के दबाव में, लंदन से एक टीम ने जानकारी जुटाने और गवाहों की पहचान करने के लिए कई बार भारत का दौरा किया। मामले की सुनवाई अक्टूबर 1998 में होनी थी, लेकिन सितंबर में पक्षों ने वैकल्पिक विवाद निवारण तंत्र के तहत समझौता करने का विकल्प चुना। समझौते की एक शर्त पूर्ण गोपनीयता है; लेकिन निश्चित रूप से भारतीय रिजर्व बैंक को विवरण मांगने का अधिकार था।

अंततः, 24 दिसंबर 1998 को स्टैनचार्ट का पर्दाफाश हो गया, जब न्यायमूर्ति एस.एन. वारियावा ने एक कड़े फैसले में उसके झूठ, अतिशयोक्ति और झूठे दावों का पर्दाफाश किया। न्यायाधीश ने जेपीसी रिपोर्ट और आरबीआई द्वारा पहले से ही दर्ज की गई बात को दोहराया। कि स्टैनचार्ट का खजाना स्टॉक ब्रोकर हितेन दलाल द्वारा चलाया जा रहा था। छह वर्षों तक बैंक ने दावा किया कि हितेन दलाल ने उसे 1233 करोड़ रुपये का धोखा दिया था, लेकिन न्यायमूर्ति वारियावा ने उसके लगभग 800 करोड़ रुपये के दावों

को खारिज कर दिया क्योंकि वह नुकसान साबित नहीं कर सका।

न्यायमूर्ति वारियावा ने लिखा, "सत्य धीरे-धीरे सामने आ जाता है", और एमपी राव की लगातार जिरह ने इसे सामने ला दिया। जैसा कि न्यायाधीश ने स्पष्ट किया, यह बैंक के लिए एक जटिल दुविधा थी। या तो बैंक के शीर्ष प्रबंधन ने अधिक मुनाफे के लालच में जानबूझकर आरबीआई के नियमों का उल्लंघन किया और हितेन दलाल के साथ समझौता करके विवेकपूर्ण बैंकिंग प्रथाओं को दरकिनार कर दिया, या फिर स्टैनचार्ट "सबसे खराब ढंग से संचालित और सबसे लापरवाह" बैंक था, और यह "ऐसे बैंक को बंद करने का आधार" हो सकता था।

दरअसल, न्यायाधीश ने बैंक द्वारा विदेशी बैंकों की प्रचलित तकनीक का पालन करने के प्रयास को विफल कर दिया, यानी नियमों के उल्लंघन के पकड़े जाने पर मामले को कर्मचारी-धोखाधड़ी में बदल देना। कुछ कनिष्ठ अधिकारियों को बर्खास्त कर दिया जाता है, कुछ जुर्माना अदा किया जाता है और सब कुछ पहले जैसा चलता रहता है। न्यायमूर्ति वारियावा ने निष्कर्ष निकाला कि यह मानना असंभव है कि डीलरों ने स्वयं ही नियमों का उल्लंघन किया हो और शीर्ष प्रबंधन के आशीर्वाद के बिना कुछ किया हो। स्टैनचार्ट ने न्यायमूर्ति वारियावा के फैसले के खिलाफ अपील की और यह मामला करदाताओं के खर्च पर कई और वर्षों तक चल सकता है।

पीछे मुड़कर देखें तो, सबसे चौंकाने वाली बात यह थी कि भारतीय मूल के मालिकों द्वारा संचालित लंदन के माउंट बैंकिंग कॉर्पोरेशन के खिलाफ स्टैनचार्ट द्वारा लगाए गए झूठे आरोपों

से कितना अन्याय हुआ। जब स्टैनचार्ट ने आरोप लगाया कि भारत से भारी मात्रा में धन उस बैंक में स्थानांतरित किया गया था, तब बैंक ऑफ इंग्लैंड ने उस बैंक को बंद कर दिया। अंततः, चूंकि किसी भी प्रकार की गड़बड़ी और देश से धन हस्तांतरण साबित नहीं हुआ, स्टैनचार्ट ने सार्वजनिक माफी मांगी और माउंट बैंक ने स्टैनचार्ट के खिलाफ मानहानि का मुकदमा दायर किया। स्टैनचार्ट के आरोपों पर, आरबीआई ने भी जल्दबाजी में बैंक ऑफ कराड और मेट्रोपॉलिटन को-ऑपरेटिव बैंक को बंद कर दिया था। इस बीच, भूपेन दलाल को दोषी ठहराने के लिए बहुत कम सबूत मिले हैं, जिन्होंने अपने सुनियोजित और सावधानीपूर्वक तरीके से घोटाले से संबंधित दस्तावेजों का एक पूरा संग्रह तैयार कर लिया है।

दरअसल, स्टैनचार्ट और एएनजेड सहित अन्य बैंकों को रूसी बैंकों से आने वाले गैर-परिवर्तनीय रुपये के चेक भारतीय खातों में जमा करने और उन्हें विदेश भेजने के आरोप में पकड़ा गया था। जांच एजेंसियों को संदेह है कि धन का एक हिस्सा आतंकवादी गतिविधियों के वित्तपोषण के लिए इस्तेमाल किया गया है। यह एक और घोटाला था जिसने आरबीआई को चौंका दिया था। विश्व हिंदू परिषद के एक वरिष्ठ पदाधिकारी के रिश्तेदार से जुड़े मामले की जांच आगे बढ़ने के बाद वह मामला कहीं नहीं पहुंचा।

नेशनल हाउसिंग बैंक और एएनजेड ग्रिंडलेज़ बैंक के बीच चल रहे कानूनी विवाद में, सुप्रीम कोर्ट ने एएनजेड ग्रिंडलेज़ बैंक को अंतिम निपटारे तक विवादित राशि 912 करोड़ रुपये ब्याज सहित 18% वार्षिक दर से जमा करने का आदेश दिया। एएनजेड ग्रिंडलेज़ (जिसे बाद में स्टैनचार्ट ने अधिग्रहित कर स्टैंडर्ड चार्टर्ड

ग्रिंडलेज़ बना दिया) को कुल 1522 करोड़ रुपये जमा करने थे। सुप्रीम कोर्ट के फैसले ने मूल रूप से एएनजेड की उस याचिका को खारिज कर दिया जिसमें उसने एनएचबी को दिए गए उस वचन से मुक्ति की मांग की थी कि वह विवादित राशि पर 18% ब्याज का भुगतान करेगा।

ANZ ने पहले एक अंडरटेकिंग दी थी कि अगर जस्टिस एसएन वरियावा NHB के पक्ष में फैसला देते हैं, तो वह रकम पर 18% ब्याज देगा। दोनों पार्टियों के बीच झगड़ा मार्च 1992 में सिक्योरिटीज की खरीद के लिए NHB द्वारा ANZ को किए गए 506 करोड़ रुपये के पेमेंट को लेकर शुरू हुआ था। हालांकि, यह रकम स्टॉक-ब्रोकर हर्षद मेहता के अकाउंट में चली गई, जो सिक्योरिटीज स्कैम का मुख्य व्यक्ति था। हालांकि चेक NHB ने ANZ के पक्ष में काटा था, लेकिन ANZ ने तर्क दिया था कि अगर ब्रोकर के पास चेक हैं तो ऐसे चेक उसके अकाउंट में जमा करना नॉर्मल मार्केट प्रैक्टिस है और उसने रकम का बेनिफिशियरी होने का दावा किया। हालांकि, NHB ने इस दलील को खारिज कर दिया। ANZ ने बाद में नवंबर 1992 में रकम वापस कर दी, इस शर्त पर कि इस मुद्दे पर आर्बिट्रेशन की कार्रवाई की जाए।
अप्रैल 1997 में पास हुआ आर्बिट्रेशन अवॉर्ड NHB के खिलाफ गया। हाउसिंग बैंक को आर्बिट्रेटर के तीन मेंबर पैनल ने बताया कि उसे यह रकम ANZ को 18% इंटरेस्ट के साथ लौटानी होगी, जो कुल 912 करोड़ रुपये थी। इसके बाद, जब NHB ने स्पेशल कोर्ट में अपील की, तो ANZ इस बात पर राज़ी हो गया था कि अगर कोर्ट उसके पक्ष में फैसला देता है तो वह वही 18% इंटरेस्ट रेट देगा।

अप्रैल 1998 में, जब स्पेशल कोर्ट ने आर्बिट्रेशन अवॉर्ड को रद्द कर दिया, तो पेंडुलम NHB के पक्ष में झुक गया। ANZ ने बाद में सुप्रीम कोर्ट में अपील की और बैंक को इंटरेस्ट की रकम जमा करने के अंडरटेकिंग से छूट देने के लिए एक और एप्लीकेशन दी।

कूपन-हाइक स्कैम
और कौन बच निकला? दो सब-स्कैम के खिलाड़ी: सरकारी सिक्योरिटीज़ के दो कूपन-रेट हाइक से जुड़ी इनसाइडर-ट्रेडिंग और पब्लिक सेक्टर के शेयरों का डिस-इन्वेस्टमेंट। कूपन-रेट हाइक की कहानी दिलचस्प थी लेकिन इस पर उतना ध्यान नहीं गया जितना मिलना चाहिए था। यह बदलाव की उन ताकतों से जुड़ा था जिन्होंने 1991-92 में फाइनेंशियल मार्केट को उलट-पुलट कर दिया था। यह जुआ खेलने के लिए एक बहुत अच्छा साल था क्योंकि सरकार ने खुद बार-बार इस बात पर ज़ोर देकर बेटिंग के मौके बनाए कि बैंकिंग सिस्टम को मार्केट-ड्रिवन इंटरेस्ट-रेट स्ट्रक्चर में बदलना होगा। इसका मतलब था कि सरकारी सिक्योरिटीज़ पर आर्टिफिशियली कम कूपन रेट्स बढ़ाए जाने थे। ये भरोसेमंद सिग्नल थे। मनमोहन सिंह और नरसिम्हा राव दोनों ही पर्सनली सब्सिडी वाले इंटरेस्ट रेट्स के सिस्टम से एकदम अलग होने के लिए कमिटेड लग रहे थे। इसके अलावा, इंटरनेशनल मॉनेटरी फंड, जिसके लिए भारत लाइन में था, ने ज़्यादा फ्री इंटरेस्ट रेट्स पर ज़ोर दिया, जिसका मतलब था ज़्यादा रेट्स।
अगर आपने सही अंदाज़ा लगाया कि इंटरेस्ट रेट बढ़ने वाला है, या इससे भी अच्छा, आपको पता था कि यह कब होगा, तो आप बढ़ोतरी से पहले सिक्योरिटीज़ बेचने का कॉन्ट्रैक्ट बना सकते थे। जब इंटरेस्ट रेट असल में बढ़ता, तो सिक्योरिटीज़ की कीमत गिर जाती और आप

उन्हें कम कीमत पर वापस खरीदकर डिलीवरी पूरी कर सकते थे। 1991-92 में छह महीने के अंदर कूपन रेट में ऐसी दो बढ़ोतरी हुई थीं। हैरानी की बात है कि बैंकों और ब्रोकर्स के एक ग्रुप ने कूपन-रेट बढ़ोतरी से पहले ही सैकड़ों करोड़ के सरकारी लोन डंप कर दिए। क्या उन्हें ठीक-ठीक पता था कि यह कब होने वाला है?

पहली बार, उन्होंने 20 सितंबर 1991 को SBI को 550 करोड़ रुपये के बॉन्ड 5 अक्टूबर को डिलीवरी के लिए बेचे, जो कूपन-रेट बढ़ोतरी लागू होने के दो दिन बाद था। SBI ने क्यों खरीदा? डिप्टी जनरल मैनेजर, आरएल करनाल के साइन किए हुए एक लंबे नोट में, SBI ने अपनी बेगुनाही साबित की। कहानी अप्रैल 1991 में शुरू होती है जब SBI के खजाने तेल इंपोर्ट के पैसे से भरे हुए थे, खासकर इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन से जमा पैसे से।

20 सितंबर को, जब SBI की 550 करोड़ रुपये की डील हुईं, तो उसके पास IOC के 4307 करोड़ रुपये थे। चूंकि यह एक सीधा डिपॉजिट था, इसलिए इसने SBI के लिए अपने आप एक स्टैच्युटरी लिक्विडिटी रेश्यो लायबिलिटी बना दी, जिसे वह 180-दिन के ट्रेजरी बिल खरीदकर पूरा करना चाहता था। 7 अगस्त 1991 को, SBI ने RBI को लिखा कि उसे रेडी फॉरवर्ड बेसिस पर 11.5% सेंट्रल लोन के 1000 करोड़ रुपये दिए जाएं। SBI को एक महीने से ज़्यादा समय बाद जवाब मिला। 27 सितंबर को, SBI के कामिकेज़ डील करने के काफी बाद, RBI ने 1000 करोड़ रुपये के रेडी फॉरवर्ड के लिए उसकी रिक्वेस्ट ठुकरा दी।
इस बीच, SBI खुश नहीं था। उसने 182-दिन के ट्रेजरी बिल के लिए बोलियां जमा करना जारी रखा। लेकिन 18 सितंबर को RBI ने सभी

बैंकों और फाइनेंशियल इंस्टीट्यूशन की बोलियों को रिजेक्ट कर दिया। इसके साथ ही, SBI की 500 करोड़ रुपये की बोलियां खारिज हो गईं। इससे बैंक को अपनी SLR ज़रूरतों को पूरा करने के लिए दूसरी सिक्योरिटीज़ की तलाश करनी पड़ी। दो दिन बाद, 20 सितंबर को, SBI ने 5 अक्टूबर 13 को डिलीवरी के लिए 100.83 रुपये पर 550 करोड़ रुपये की फेस वैल्यू वाली 11.5% 2010 सिक्योरिटीज़ खरीदीं। 3 अक्टूबर तक, जब कूपन हाइक आया, तो मार्केट वैल्यू गिरकर 97 रुपये हो गई थी। सिर्फ़ दो हफ़्तों में SBI को लगभग 22 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ। बॉन्ड बेचने वाले ब्रोकर नरेश अग्रवाला और हेमेंद्र कोठारी थे। SBI का यह एक्सप्लेनेशन कि उसके पास 20 सितंबर को डील करने के अलावा कोई ऑप्शन नहीं था, को चैलेंज नहीं किया जा सकता क्योंकि उसने RBI के साथ रेडी फॉरवर्ड करने की कोशिश की थी और बाद में ट्रेजरी बिल खरीदने की कोशिश की थी और दोनों ही मामलों में फेल रहा था। लेकिन
इस कहानी में दो बड़ी कमियां हैं। पहली, 20 सितंबर को जब SBI ने घाटे वाले सौदे किए, तो पूरे मार्केट को कूपन रेट बढ़ने का पता चल गया!

18 सितंबर, बुधवार को, कूपन-रेट बढ़ने की खबर सभी बैंक चेयरमैन के सेक्रेटेरिएट तक पहुंच गई। लोन देने की चाहत रखने वाली सभी राज्य सरकारें हरकत में आ गईं। तमिलनाडु सरकार ने अपने राज्य के सभी बैंकों को लिखकर उनसे नए 12% रेट पर अपने लोन लेने की रिक्वेस्ट की थी। अगले दिन, यानी 19 सितंबर को, यह खबर उड़ीसा और केरल जैसे राज्यों में फैल गई। SBI, यह जानते हुए भी कि अगले दो हफ्ते से लागू होने वाली बढ़ोतरी की घोषणा पहले ही हो चुकी थी, पुराने कम रेट पर ट्रेड करता रहा।

SBI के लॉजिक में दूसरी दिक्कत उसकी टाइमिंग थी। उसका दावा है कि उसे SLR के खतरे की वजह से 550 करोड़ रुपये की सिक्योरिटीज़ खरीदने के लिए मजबूर होना पड़ा। हालांकि, यह खतरा सितंबर में नहीं गिर सकता था। SBI की SLR की ज़रूरत सिर्फ़ 21 सितंबर से शुरू होने वाले पखवाड़े के लिए ज़रूरी थी। यह 5 अक्टूबर को खत्म होने वाले पखवाड़े तक कभी भी पूरा किया जा सकता था। असल में, SBI के ट्रांज़ैक्शन की वैल्यू डेट्स 5 अक्टूबर की थीं, जिससे यह पक्का साबित होता है कि किसी और वजह से SBI ने SLR लायबिलिटी को पूरा करने के बहाने 20 सितंबर को डील करने की जल्दबाजी की। SBI की दूसरी कूपन हाइक की कहानी पहली वाली का ही एक्सटेंशन है। अक्टूबर 1991 से फरवरी 1992 के बीच, IOC डिपॉज़िट बढ़ता रहा, और फरवरी 1992 के आखिर तक 5272 करोड़ रुपये तक पहुँच गया। इससे और SBI के डिपॉज़िट में नॉर्मल ग्रोथ से पूरे करने के लिए नए SLR टारगेट बने। जनवरी और फरवरी में, 950 करोड़ रुपये के ट्रेजरी बिल मैच्योर हो गए थे, जिससे उस अकाउंट में 800 करोड़ रुपये का बैलेंस और फरवरी के पहले हफ्ते में 500 करोड़ रुपये की लॉन्ग-टर्म रेडी फॉरवर्ड (LTRF) पोज़िशन बची थी। फरवरी के तीसरे हफ़्ते तक कूपन में बढ़ोतरी की अफवाहों के चलते LTRF की पोज़िशन घटकर 350 करोड़ रुपये रह गई। बाकी SLR कवर के लिए, SBI को सिक्योरिटीज़ सीधे खरीदनी पड़ीं।
इसने 6 मार्च को नरेश अग्रवाला के ज़रिए 375 करोड़ रुपये की सिक्योरिटीज़ खरीदीं, जिनकी वैल्यू डेट 21 मार्च थी। फिर इसने 9 मार्च और 12 मार्च को बैंक ऑफ़ अमेरिका से 200 करोड़ रुपये के और बॉन्ड खरीदे। ये सभी ट्रांज़ैक्शन 21 मार्च की वैल्यू डेट के लिए थे। इस बीच, 17 मार्च को सरकार ने कूपन रेट 12% से बढ़ाकर 12.5% कर दिया। SBI को फिर से नुकसान हुआ। हालाँकि, ये

शक वाले ट्रांज़ैक्शन नहीं थे। ये 15 मार्च और 16 मार्च को किए गए थे, जिनकी वैल्यू डेट 18 मार्च थी। इन डील्स की जाँच नहीं की गई, न ही ब्रोकर्स और काउंटरपार्टी बैंकों से पूछताछ की गई। इस बात का शक पैदा करने के लिए काफ़ी हालात के सबूत हैं कि कुछ बैंकों और ब्रोकर्स को 17 मार्च को कूपन-रेट में बढ़ोतरी के बारे में पता था।

17 मार्च को रेट में बढ़ोतरी को लेकर RBI और फाइनेंस मिनिस्ट्री के बीच बड़ा झगड़ा हुआ था। RBI इसे टाल रहा था लेकिन मिनिस्ट्री इसे आगे बढ़ाने पर अड़ी हुई थी। आखिरकार, गवर्नर ने फाइनेंस मिनिस्टर से कहा कि वे अपना फैसला खुद लें। कई दशकों में पहली बार, कूपन-रेट बढ़ाने की घोषणा मिनिस्ट्री ने की, RBI ने नहीं। एक विदेशी बैंक के चीफ, जिन्हें बाद में देश छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा, उन्हें RBI और मिनिस्ट्री के बीच इस झगड़े के बारे में पता था। उन्होंने शायद मिनिस्ट्री को यह भी "सलाह" दी होगी कि चूंकि मार्केट जनवरी से ही बढ़ोतरी की उम्मीद कर रहा था, इसलिए बढ़ोतरी जल्दी के बजाय बाद में होनी चाहिए, ताकि "सट्टेबाजों को सबक सिखाया जा सके।" क्या इस भले बैंक चीफ को ठीक-ठीक पता था कि रेट कब बढ़ाया जाएगा?

बहुत से लोग बच निकले
घोटाले के दायरे में कई इंडस्ट्रियलिस्ट थे, जिनमें से कई ने हर्षद का इस्तेमाल अपने खुद के स्क्रिप्स में हेरफेर करने के लिए किया, एक मिलीभगत जिसके बारे में JPC ने औपचारिक रूप से चर्चा की थी। क्या इस बार भी ऐसा ही होगा? 1991 के आखिर से, जब न्यू-इश्यू प्राइसिंग फ्री होनी थी, ये कंपनियां पहले अपने

सेकेंडरी मार्केट प्राइस में हेरफेर करने के बाद नए शेयर जारी करने की उम्मीद कर रही थीं। हर्षद की पसंदीदा कंपनियों में से एक गुजरात अंबुजा का शेयर 600 रुपये तक पहुंच गया और कंपनी ने 400 रुपये के वॉरंट के साथ 200 रुपये प्रति शेयर पर IPO की घोषणा की। स्कैम सामने आने के बाद भी GACL के प्रमोटर्स हर्षद को बहुत मानते रहे।

एएनजेड ने पहले यह वचन दिया था कि यदि न्यायमूर्ति एस.एन. वारियावा एनएचबी के पक्ष में फैसला सुनाते हैं, तो एएनजेड उस राशि पर 18% ब्याज का भुगतान करेगा। दोनों पक्षों के बीच विवाद मार्च 1992 में एनएचबी द्वारा एएनजेड को प्रतिभूतियों की खरीद के लिए किए गए 506 करोड़ रुपये के भुगतान को लेकर शुरू हुआ था। हालांकि, यह राशि शेयर दलाल हर्षद मेहता के खाते में स्थानांतरित हो गई, जो प्रतिभूति घोटाले में प्रमुख व्यक्ति था। हालांकि चेक एनएचबी द्वारा एएनजेड के पक्ष में जारी किया गया था, लेकिन एएनजेड ने तर्क दिया था कि यदि कोई दलाल चेक रखता है और राशि का लाभार्थी होने का दावा करता है, तो ऐसे चेक को उसके खाते में जमा करना सामान्य बाजार प्रथा है। हालांकि, एनएचबी ने इस तर्क का खंडन किया। एएनजेड ने बाद में नवंबर 1992 में इस शर्त पर राशि वापस कर दी कि इस मामले पर मध्यस्थता कार्यवाही आयोजित की जाएगी।

अप्रैल 1997 में पारित मध्यस्थता निर्णय एनएचबी के विरुद्ध

गया। तीन सदस्यीय मध्यस्थों के पैनल ने हाउसिंग बैंक को बताया कि उसे एएनजेड को 18% ब्याज सहित कुल 912 करोड़ रुपये की राशि वापस करनी होगी। बाद में, एनएचबी द्वारा विशेष न्यायालय में अपील करने पर, एएनजेड ने न्यायालय द्वारा एनएचबी के पक्ष में फैसला सुनाए जाने पर उसी 18% ब्याज दर का भुगतान करने पर सहमति जताई। अप्रैल 1998 में, एनएचबी के पक्ष में फैसला आया जब विशेष न्यायालय ने मध्यस्थता पुरस्कार को रद्द कर दिया। एएनजेड ने बाद में सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर की और ब्याज राशि जमा करने के वचन से बैंक को मुक्त करने के लिए एक और आवेदन दिया।

कूपन दर वृद्धि घोटाला

और कौन बच निकला? दो उप-घोटालों में शामिल लोग: सरकारी प्रतिभूतियों की दो कूपन दर वृद्धि और सार्वजनिक क्षेत्र के शेयरों के विनिवेश से संबंधित इनसाइडर ट्रेडिंग। कूपन दर वृद्धि की कहानी दिलचस्प थी लेकिन इसे जितनी तवज्जो मिलनी चाहिए थी, उतनी नहीं मिली। यह उन बदलावों से जुड़ा था जिन्होंने 1991-92 में वित्तीय बाजारों को पूरी तरह से उलट-पुलट कर दिया था। यह जुआ खेलने के लिए एक बेहतरीन साल था क्योंकि सरकार ने खुद बार-बार इस बात पर जोर देकर सट्टेबाजी के अवसर पैदा किए कि बैंकिंग प्रणाली को बाजार-आधारित ब्याज दर संरचना की ओर बढ़ना चाहिए। इसका मतलब था कि सरकारी प्रतिभूतियों पर कृत्रिम रूप से कम कूपन दरों में वृद्धि की जानी थी। ये विश्वसनीय संकेत थे। मनमोहन सिंह और नरसिम्हा राव दोनों ही रियायती ब्याज दरों की व्यवस्था से पूरी तरह से दूर हटने के लिए व्यक्तिगत रूप से प्रतिबद्ध दिखाई दिए। इसके अलावा, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष,

जिसमें भारत सदस्यता लेने के लिए उत्सुक था, ने मुक्त ब्याज दरों पर जोर दिया, जिसका अर्थ था उच्च दरें।

यदि आपने सही अनुमान लगाया होता कि ब्याज दर बढ़ने वाली है, या इससे भी बेहतर, यह जानते होते कि यह कब होगी, तो आप वृद्धि से पहले प्रतिभूतियों को बेचने का अनुबंध तैयार कर सकते थे। जब ब्याज दर वास्तव में बढ़ जाती, तो प्रतिभूतियों की कीमत गिर जाती और आप उन्हें कम कीमत पर वापस खरीदकर डिलीवरी पूरी कर सकते थे। 1991-92 में छह महीनों के अंतराल में कूपन दर में दो बार ऐसी वृद्धि हुई थी। आश्चर्यजनक संयोग से, बैंकों और ब्रोकरों के एक समूह ने कूपन दरों में दो बार वृद्धि होने से ठीक पहले सैकड़ों करोड़ रुपये के सरकारी ऋण बेच दिए। क्या उन्हें ठीक-ठीक पता था कि यह वृद्धि कब होने वाली है?

पहली बार, उन्होंने 20 सितंबर 1991 को एसबीआई को 550 करोड़ रुपये के बॉन्ड बेचे, जिनकी डिलीवरी 5 अक्टूबर को होनी थी, जो कूपन दरों में वृद्धि लागू होने के दो दिन बाद थी। एसबीआई ने बॉन्ड क्यों खरीदे? उप महाप्रबंधक आर.एल. करनाल द्वारा हस्ताक्षरित एक लंबे नोट में, एसबीआई ने अपनी निर्दोषता को ठोस रूप से साबित किया। कहानी अप्रैल 1991 में शुरू होती है, जब एसबीआई के खजाने तेल आयात के पैसे, विशेष रूप से इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन (आईओसी) से प्राप्त जमा राशि से भरे हुए थे।

20 सितंबर को, जब एसबीआई ने 550 करोड़ रुपये के सौदे किए, तब उसके पास आईओसी के 4307 करोड़ रुपये थे। चूंकि यह एक सीधी जमा राशि थी, इसलिए इससे स्वतः ही एसबीआई के लिए एक वैधानिक तरलता

अनुपात देयता उत्पन्न हो गई।

जिसे वह 180-दिवसीय ट्रेजरी बिल खरीदकर पूरा करना चाहता था। 7 अगस्त 1991 को, एसबीआई ने आरबीआई को पत्र लिखकर 11.5% ब्याज दर पर 1000 करोड़ रुपये का रेडी फॉरवर्ड आधार पर केंद्रीय ऋण देने का अनुरोध किया। एसबीआई को जवाब मिला

एक महीने से अधिक समय बाद। 27 सितंबर को, एसबीआई द्वारा किए गए जोखिम भरे सौदों के काफी बाद, आरबीआई ने 1000 करोड़ रुपये के रेडी फॉरवर्ड के लिए उसके अनुरोध को अस्वीकार कर दिया।

इस बीच, एसबीआई चुप नहीं बैठा था। उसने 182 दिनों के ट्रेजरी बिलों के लिए बोलियां जमा करना जारी रखा। लेकिन 18

सितंबर को, आरबीआई ने सभी बैंकों और वित्तीय संस्थानों द्वारा दी गई बोलियों को अस्वीकार कर दिया। इसके साथ ही, एसबीआई की 500 करोड़ रुपये की बोलियां भी खारिज हो गईं। इससे बैंक को अपनी एसएलआर आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अन्य प्रतिभूतियों की तलाश में जुटना पड़ा। दो दिन बाद

20 सितंबर को, एसबीआई ने 550 करोड़ रुपये के अंकित मूल्य वाले 11.5% 2010 के बॉन्ड 100.83 रुपये प्रति शेयर पर खरीदे।

इन बॉन्डों की डिलीवरी 5 अक्टूबर 2013 को होनी थी। 3 अक्टूबर को, जब कूपन में बढ़ोतरी हुई, तब तक बॉन्डों का बाजार मूल्य गिरकर 97 रुपये हो गया था। सिर्फ दो हफ्तों में एसबीआई को लगभग

22 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ। बॉन्ड बेचने वाले ब्रोकर नरेश अग्रवाल और हेमेंद्र कोठारी थे।

एसबीआई का यह स्पष्टीकरण कि 20 सितंबर को सौदा करने के अलावा उसके पास कोई विकल्प नहीं था, निर्विवाद है क्योंकि उसने आरबीआई के साथ रेडी फॉरवर्ड करने की कोशिश की थी और बाद में ट्रेजरी बिल खरीदने की कोशिश की थी, लेकिन दोनों में असफल रहा। लेकिन

इस कहानी में दो गंभीर खामियां हैं। पहली, 20 सितंबर को जब एसबीआई ने घाटे वाले सौदे किए, तब पूरे बाजार को कूपन में बढ़ोतरी की जानकारी थी!

18 सितंबर, बुधवार को, कूपन दर में वृद्धि की खबर सभी बैंक अध्यक्षों के सचिवालय तक पहुँच गई। ऋण जारी करने की इच्छुक सभी राज्य सरकारें सक्रिय हो गईं। तमिलनाडु सरकार ने अपने राज्य के सभी बैंकों को पत्र लिखकर उनसे 12% की नई दर पर ऋण देने का अनुरोध किया। अगले दिन,

अर्थात 19 सितंबर को, यह खबर ओडिशा और केरल जैसे राज्यों में भी फैल गई। एसबीआई, यह जानते हुए भी कि अगले पखवाड़े से प्रभावी होने वाली वृद्धि की घोषणा पहले ही हो चुकी है, पुरानी कम दर पर ही कारोबार करता रहा।

एसबीआई के तर्क में दूसरी समस्या इसके समय को लेकर थी। उसका दावा है कि एसएलआर की तलवार उसके सिर पर लटक रही थी, जिसके कारण

उसे 550 करोड़ रुपये की प्रतिभूतियाँ खरीदने के लिए मजबूर होना पड़ा। हालाँकि, यह तलवार

सितंबर में नहीं गिर सकती थी। एसबीआई की एसएलआर की आवश्यकता केवल 21 सितंबर से शुरू होने वाले पखवाड़े के लिए थी।

यह आवश्यकता 5 अक्टूबर को समाप्त होने वाले पखवाड़े तक कभी भी पूरी की जा सकती थी। दरअसल, एसबीआई के लेन-देन की वैल्यू डेट 5 अक्टूबर थी, जिससे यह बात निर्णायक रूप से साबित होती है कि एसबीआई ने किसी अन्य कारण से

एसएलआर देनदारी पूरी करने के बहाने 20 सितंबर को जल्दबाजी में सौदे किए।

एसबीआई द्वारा दूसरी कूपन बढ़ोतरी की कहानी पहली बढ़ोतरी का ही विस्तार है। अक्टूबर 1991 से फरवरी 1992 के बीच, आईओसी जमा लगातार बढ़ता रहा और फरवरी 1992 के अंत तक 5272 करोड़ रुपये तक पहुंच गया। इससे और एसबीआई की जमा राशि में सामान्य वृद्धि से नए एसएलआर लक्ष्य निर्धारित हुए जिन्हें पूरा करना था। जनवरी और फरवरी में, 950 करोड़ रुपये के ट्रेजरी बिल परिपक्व हो गए, जिससे उस खाते में 800 करोड़ रुपये का शेष बचा और फरवरी के पहले सप्ताह में 500 करोड़ रुपये की दीर्घकालिक तैयार अग्रिम (एलटीआरएफ) स्थिति भी थी। कूपन बढ़ोतरी की अफवाहों के चलते फरवरी के तीसरे सप्ताह तक एलटीआरएफ स्थिति घटकर 350 करोड़ रुपये रह गई। शेष एसएलआर कवर के लिए, एसबीआई को सीधे प्रतिभूतियां खरीदनी पड़ीं।

एस.बी. ने 6 मार्च को नरेश अग्रवाल के माध्यम से 375 करोड़ रुपये की प्रतिभूतियां खरीदीं, जिनकी वैल्यू डेट 21 मार्च थी।

इसके बाद इसने 9 और 12 मार्च को बैंक ऑफ अमेरिका से 200 करोड़ रुपये के बॉन्ड खरीदे।

इन सभी लेन-देनों की वैल्यू डेट 21 मार्च थी। इसी बीच, 17 मार्च को सरकार ने कूपन दर 12% से बढ़ाकर 12.5% कर दी। एस.बी.आई. को फिर से नुकसान हुआ। हालांकि, ये लेन-देन संदिग्ध नहीं थे। संदिग्ध लेन-देन 15 और 16 मार्च को किए गए थे, जिनकी वैल्यू डेट 18 मार्च थी। इन सौदों की न तो जांच की गई और न ही ब्रोकरों और काउंटरपार्टी बैंकों से पूछताछ की गई।

पर्याप्त परिस्थितिजन्य साक्ष्य हैं जिनसे यह संदेह होता है कि कुछ बैंकों और ब्रोकरों को 17 मार्च को कूपन दर में हुई वृद्धि की जानकारी थी।

17 मार्च को दर वृद्धि को लेकर आरबीआई और वित्त मंत्रालय के बीच बड़ा विवाद हुआ था। आरबीआई इसे टाल रहा था, लेकिन मंत्रालय इसे जल्द से जल्द लागू करने पर तुला हुआ था। आखिरकार, गवर्नर ने वित्त मंत्री को अपना फैसला खुद लेने को कहा। कई दशकों में पहली बार, कूपन दर में वृद्धि की घोषणा आरबीआई की ओर से नहीं, बल्कि मंत्रालय की ओर से हुई। एक विदेशी बैंक के प्रमुख, जिन्हें बाद में देश छोड़ने के लिए मजबूर किया गया, आरबीआई और मंत्रालय के बीच इस विवाद से अवगत थे। संभवतः उन्होंने मंत्रालय को यह

"सलाह" भी दी थी कि चूंकि बाजार जनवरी से ही वृद्धि की उम्मीद कर रहा था, इसलिए वृद्धि जल्द करने के बजाय बाद में की जानी चाहिए, ताकि "सट्टेबाजों को सबक सिखाया जा सके"। क्या इस उदारवादी बैंक प्रमुख को ठीक-ठीक पता था कि दर में वृद्धि कब होगी?

कई लोग बच निकले

घोटाले के दायरे में उद्योगपति भी शामिल थे, जिनमें से कई ने हर्षद का इस्तेमाल करके अपने शेयरों की कीमतों में हेरफेर किया, जिसकी जेपीसी ने सतही तौर पर चर्चा की। क्या इस बार भी ऐसा ही होगा? 1991 के अंत से, जब नए शेयरों के मूल्य निर्धारण को मुक्त किया जाना था, ये कंपनियां पहले अपने द्वितीयक बाजार मूल्यों में हेरफेर करने के बाद नए शेयर जारी करने की प्रतीक्षा कर रही थीं। हर्षद की पसंदीदा कंपनियों में से एक, गुजरात अंबुजा के शेयर की कीमत बढ़कर 600 रुपये तक पहुंच गई और कंपनी ने 200 रुपये प्रति शेयर के आईपीओ की घोषणा की, जिसमें 400 रुपये के वारंट जारी किए गए। घोटाले के सामने आने के काफी समय बाद भी जीएसीएल के प्रमोटर हर्षद को बहुत सम्मान देते रहे।

उद्योगपतियों ने बैंक ऋणों और एक ही बिल को बार-बार भुनाकर जुटाए गए धन का इस्तेमाल अपने शेयरों में सट्टा लगाने के लिए किया। अक्टूबर 1992 में, जब आरबीआई ने बिल डिस्काउंटिंग पर लगभग प्रतिबंध लगा दिया था, तब शीर्ष उद्योगपतियों ने वित्त मंत्रालय और प्रधानमंत्री कार्यालय के माध्यम से इस प्रथा को फिर से शुरू करने के लिए जबरदस्त दबाव बनाया। गवर्नर अपने रुख पर अडिग रहे।

इस पूरे घोटाले में सबसे बड़े विजेताओं में से एक टीबी रुइया थे। स्टैनचार्ट से 125 करोड़ रुपये और कैनम्यूचुअल से 70 करोड़ रुपये लेने की बात कबूल करने के बाद वे अपने आप में एक अलग ही श्रेणी के व्यक्ति बन गए थे। किसी चमत्कार की तरह, यह फैशनेबल व्यवसायी कभी दबाव में नहीं आया और शान-शौकत से रहता रहा, उसके पास कारों का एक बेड़ा था, जिसमें एक रोल्स रॉयस भी शामिल थी। घोटाला उजागर होने के कुछ महीनों बाद, उसने खुद को बॉम्बे अस्पताल में भर्ती कराया और बड़ी आसानी से सीबीआई की गिरफ्तारी से बच गया। बाद में, सीबीआई ने उसके केबिन के सामने एक गार्ड तैनात कर दिया, जिसका इस्तेमाल रुइया अपने छोटे-मोटे काम करवाने के लिए करता था। एक सूत्र ने बताया, "रुइया एक रात अस्पताल से निकलकर एयर इंडिया की फ्लाइट से दिल्ली तक जाने में भी कामयाब रहा और बाद में विदेश यात्रा भी की।" नवंबर में, रुइया की संलिप्तता का खुलासा होने के पूरे छह महीने बाद, सीबीआई ने उसे गिरफ्तार करने के लिए कार्रवाई की। यह सरासर नाटक था। जब मामूली संदिग्धों को पीटा और गाली दी गई, वहीं रुइया ने चोरी कबूल कर ली थी, जिसके बाद उसे बॉम्बे के व्हाइट हाउस स्थित सीबीआई कार्यालय में समुद्र के किनारे एक केबिन दे दिया गया। बाद में उसके खिलाफ सभी आरोप हटा दिए गए।
इस घोटाले से जुड़े लोगों में वकील, लेखाकार आदि भी शामिल थे, जिनमें सबसे दिलचस्प नाम बंसी मेहता का है, जो भारतीय चार्टर्ड अकाउंटेंट्स संस्थान के पूर्व अध्यक्ष थे। लेखा जगत में अत्यधिक सम्मानित मेहता का इस घोटाले में गहराई से शामिल कई संस्थानों से सीधा संबंध था। वे कैनबैंक म्यूचुअल फंड के ट्रस्टी, कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज के निदेशक और फेयरग्रोथ फाइनेंशियल तथा भूपेन दलाल की कंपनी सिफको के ऑडिटर थे। वे

बिड़ला की कई कंपनियों से भी जुड़े थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी फर्म ने फेयरग्रोथ के वित्तीय विवरणों को सही और निष्पक्ष बताकर उन पर हस्ताक्षर किए थे, लेकिन फेयरग्रोथ में हुई धोखाधड़ी सार्वजनिक होने पर बाद में इसे वापस ले लिया। उनकी भूमिका की कभी जांच नहीं हुई।
दिलचस्प बात यह है कि आईडीबीआई के अध्यक्ष स्वर्गीय एसएस नाडकर्णी चाहते थे कि बॉन्ड ट्रेडिंग के लिए एक तंत्र सुझाने हेतु आरबीआई द्वारा गठित विशेषज्ञ पैनल में मेहता को ही शामिल किया जाए। अमिताव घोष चाहते थे कि फर्जी बैंक रसीदों के दुरुपयोग की जांच शुरू होने के बाद आरबीआई गवर्नर बंसी मेहता को यूको बैंक का ऑडिट करने के लिए नियुक्त करें। मेहता वाकई एक असाधारण व्यक्ति थे।
जिन दलालों को चमत्कारिक रूप से राहत मिली, उनमें वीबी देसाई एंड कंपनी भी शामिल थी, जिसका नाम आरबीआई की सभी निरीक्षण रिपोर्टों में आंध्र बैंक, सिंडिकेट बैंक और विजया बैंक के साथ किए गए संदिग्ध सौदों के लिए दर्ज था। घोटाले की कहानी सामने आने से ठीक पहले, श्रॉफ ने हर्षद को ऑलबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज के जरिए 10,000 रुपये में एसीसी के शेयर खरीदवाकर संकट से उबारा था। मनी मार्केट के जानकारों के अनुसार, वीबीडी उन सौदों के लिए एक मुखौटा के रूप में काम कर रही थी, जिनका असल मकसद सिटीबैंक या उसके करीबी दलालों को फायदा पहुंचाना था। हैरानी की बात यह है कि वीबीडी हमेशा किसी भी तरह की गहन जांच से बचती रही – चाहे अतीत में हो या प्रतिभूति घोटाले में अपनी संलिप्तता के बावजूद।
बड़े खिलाड़ियों के बच निकलने का नतीजा यह है कि छोटे खिलाड़ी पकड़े जा रहे हैं। दरअसल, घोटाले के बाद की स्थिति में एक आम बात

यह है कि कनिष्ठ अधिकारियों को बर्खास्त किया जा रहा है, हालांकि लगभग सभी मामलों में उन्होंने उन संस्थानों के फायदे के लिए काम किया है जिनके लिए वे कार्यरत थे। एनएचबी में सक्रिय अध्यक्ष, कार्यकारी निदेशक, सलाहकार और सरकारी निदेशकों की मौजूदगी के बावजूद, सी रवि कुमार और एस सुरेश बाबू को अकेले एनएचबी में हुए इस गड़बड़ी के लिए दोषी ठहराया गया। बेशक, बाद में ये दोनों अधिकारी भी बच निकले, जबकि जेपीसी ने साबित कर दिया था कि उन्हें रिश्वत दी गई थी। ए.एन. बावडेकर, जिन्हें मई 1992 में हशद मेहता और अन्य आरोपियों के साथ पेश किया गया था, कम से कम एसबीआई के कोषागार विभाग द्वारा जारी किए गए कुछ चेकों पर प्रतिहस्ताक्षर करने के दोषी हैं। एसबीआई उन्हें उनके पद का विवरण तक नहीं दे सका। नौ साल बाद उनका जीवन और करियर पूरी तरह से बर्बाद हो चुका है और मुकदमे की कोई प्रगति नजर नहीं आ रही है। उनके सहयोगी के कैलाशम के साथ भी यही हाल है।
सिटीबैंक ने चतुराई से खुद को बचा लिया। लेकिन जब पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन ने एक पत्र पेश किया जिसमें सिटीबैंक के इस दावे का खंडन किया गया कि उसने कभी रिटर्न की गारंटी नहीं दी थी, तो सिटीबैंक ने इसका दोष दिल्ली के एक कनिष्ठ अधिकारी पर डाल दिया
- जो विदेशी कंपनियों की एक आम रणनीति है। स्टैनचार्ट की पहली प्रतिक्रिया घोटाले में उनकी भूमिका की परवाह किए बिना अपने कनिष्ठ कर्मचारियों को अंधाधुंध बर्खास्त करना और पदावनत करना थी। बैंक को अपने आंतरिक नियंत्रणों को सुधारने में काफी लंबा समय लगा। बॉम्बे की विशेष अदालत में नौ साल तक चले मुकदमे में कभी भी शीर्ष अधिकारियों को गवाह के रूप में पेश होने की आवश्यकता नहीं पड़ी। एयर इंडिया ने अपने पीएमएस सौदों के लिए

केवल दो मध्य-स्तरीय अधिकारियों को निलंबित किया है। यह सूची और भी लंबी है।
घोटाले में, बैंक एक-दूसरे को वित्तपोषित करने और एक-दूसरे के नुकसान की भरपाई करने के लिए दलालों के साथ मिलीभगत कर रहे थे। फिर भी, जांच मुख्य रूप से दलालों पर केंद्रित रही और एसबीआई जैसे कुछ ही बैंक अधिकारियों पर कार्रवाई हुई। कई शीर्ष बैंकर अपने संस्थानों को सीधे घोटाले में घसीटने के बावजूद पूछताछ और गिरफ्तारी से बच गए। आंध्र बैंक के अध्यक्ष के.आर. नायक को सेवानिवृत्त होने की अनुमति दी गई, जबकि आंध्र बैंक फाइनेंशियल का फेयरग्रोथ में भारी निवेश था। इलाहाबाद बैंक और उसकी सहायक कंपनी, ऑलबैंक फाइनेंस ने कोलकाता स्थित दलाल सी. मैकर्टिच के साथ कई संदिग्ध सौदे किए। इलाहाबाद बैंक के अध्यक्ष, आर.एल. वधवा, घोटाले के सामने आने से एक महीने पहले सेवानिवृत्त हुए और उनसे कभी पूछताछ नहीं की गई।
इससे भी अधिक पेचीदा मामला पंजाब नेशनल बैंक के पूर्व अध्यक्ष जेएस वर्षनेया का है, जो हर्षद की ग्रोमोर एसेट मैनेजमेंट में निदेशक और नेशनल हाउसिंग बैंक के सलाहकार भी थे। वर्षनेया को गुमनामी में सेवानिवृत्त होने दिया गया। सिंडिकेट बैंक के अध्यक्ष आरएस पाई, जिसने खुले तौर पर फेयरग्रोथ और रिलायंस इंडस्ट्रीज का पक्ष लिया था, को केवल छुट्टी पर जाने के लिए कहा गया। जेपीसी को यह पता लगाना चाहिए था कि सीबीआई को इन सभी बैंक अध्यक्षों से कुछ कड़े सवाल पूछने से किसने या किस बात ने रोका। अन्य अध्यक्ष अपने बैंकों को संदिग्ध सौदों में शामिल करने के बावजूद अपने पदों पर बने रहे। उदाहरण के लिए, वित्तीय क्षेत्र के दिग्गज औद्योगिक विकास बैंक (आईडीबीआई) का सिटीबैंक के साथ गहरा संबंध था। इसके प्रमुख एसएस नाडकर्णी, जो बाद में एसईबीआई

के प्रमुख बने, पर संदेह की नजर से नहीं देखा गया। आईडीबीआई के सिटीबैंक में दस अलग-अलग पोर्टफोलियो खाते थे। कुछ इकाइयों का मालिक बने रहने के बावजूद, आईडीबीआई ने उन्हें भौतिक रूप से सिटीबैंक को सौंप दिया, जिसने बाद में उनमें व्यापार किया। जनाकीरामन रिपोर्ट के अनुसार, इसका मतलब यह था कि "ग्राहक के अपने निवेश पोर्टफोलियो में मौजूद इकाइयाँ अब उसके पीएमएस खाते के निवेश के रूप में उसके पास थीं"। यह दो प्रतिष्ठित संस्थानों के बीच अवैध मिलीभगत का स्पष्ट मामला है। किसी पर भी कार्रवाई नहीं हुई।
अधिकांश ब्रोकरों ने अच्छा खासा मुनाफा कमाया है। अजय कायन ने अपने बड़े सट्टा निवेशों में निवेश करते हुए अच्छा मुनाफा कमाना जारी रखा है। उन्हें 2001 के घोटाले में मंदी का नेतृत्व करने वाला व्यक्ति बताया गया था, लेकिन अभी तक उनके खिलाफ कोई ठोस सबूत नहीं है। पेशेवर ब्रोकरों ने भी अपनी दक्षता के अनुसार अच्छा प्रदर्शन किया है। बैंकएम के कोषागार प्रमुख आलोक अग्रवाल अब रिलायंस में हैं। केआर भरत और प्रशांत पुरकर ने सिटीबैंक छोड़कर आईटीसी क्लासिक में काम किया और वहाँ से पेरेग्रीन में चले गए, जो दिवालिया हो गया।
भरत क्रेडिट सुइस फर्स्ट बोस्टन में शामिल हो गए, जो 2001 के घोटाले के ठीक बीच में था। वाक्पटु एस रमेश कुमार सिटीबैंक से रिलायंस कैपिटल में शामिल हुए, फिर टाइम्स गारंटी में चले गए और गुमनाम हो गए। भूपेन दलाल कई मामलों में बरी हो गए, लेकिन तीन पीढ़ियों के प्रयासों के बाद कुछ ही महीनों में तबाह हुए अपने कारोबार को फिर से खड़ा करने में कभी कामयाब नहीं हो पाए। जेरी राव ने सॉफ्टवेयर सीईओ (एमफेसिस बीएफएल) के रूप में खुद को

पुनर्जीवित किया और बैंकएम के पूर्व प्रमुख विक्रम तलवार ने भी ऐसा ही किया।
जिनका देहांत हो गया
घोटाले की जांच शुरू होने से पहले ही, दो प्रमुख खिलाड़ी, एमजे फेरवानी और बी रत्नाकर, देहांत में चले गए। फेरवानी के निधन के साथ, यह रहस्य बना हुआ है कि एनएचबी में वास्तव में क्या हुआ था और यूटीआई के प्रमुख रहते हुए मेहता परिवार को ब्लैकलिस्ट करने वाले व्यक्ति ने हर्षद की मदद करने के लिए इतना प्रयास क्यों किया। अगर फेरवानी जीवित होते तो एएनजेड और एनएचबी के बीच इतना महंगा विवाद शायद न होता। यही बात बी रत्नाकर पर भी लागू होती है, जिनकी मृत्यु घोटाले के सामने आने से दो महीने पहले हुई थी, जिसके चलते नेदुंगड़ी बैंक एक बीएसई ब्रोकर के हाथों में चला गया। यह बैंक विवादों में घिरा हुआ है और आरबीआई तटस्थ भाव से इस पर नजर रख रहा है। रत्नाकर के शिष्य के धर्मपाल की मृत्यु अप्रैल 1999 में हुई, जो फेयरग्रोथ घोटाले से बुरी तरह व्याकुल थे। भूपेन दलाल के सक्षम सहयोगी जेपी गांधी, जो दलाल-स्टैनचार्ट समूह से जुड़े लेन-देन में मुख्य भूमिका निभा रहे थे, का भी निधन हो गया। घोटाले की जांच को एक और बड़ा झटका सीबीआई के उप महानिरीक्षक एसजी घड़े की सड़क दुर्घटना में हुई मृत्यु से लगा। उनके जाने से घोटाले की जांच से जुड़ा एक महत्वपूर्ण पहलू भी समाप्त हो गया।
जिन अन्य लोगों का निधन हुआ उनमें एसबीआई के तीन अधिकारी भी शामिल थे। उनमें से एक मिलनसार सी.एल. खेमानी थे, जो हृदय रोगी थे और एसबीआई मामले में आरोपी थे, लेकिन सीबीआई उनके खिलाफ कुछ भी साबित नहीं कर सकी। जब हम उनसे 1992 के मध्य में मिले, तो एसबीआई के लिए अपार धन कमाने वाले खेमानी, जो पूरी तरह टूट चुके

थे, ने कहा: "अगर सीबीआई ने मुझे दोबारा गिरफ्तार किया, तो मैं आत्महत्या कर लूंगा।" घोटाले के समय एसबीआई के चेयरमैन रहे एम.एन. गोइपोरिया को वित्त मंत्रालय द्वारा पद छोड़ने के लिए मजबूर किए जाने के बाद, सेवानिवृत्ति के बाद शांतिपूर्वक उनका निधन हो गया। खेमानी के निर्देश पर सीतारामन को पकड़ने के लिए पलानी गए आर.एल. कामत को उनके प्रयासों के लिए भाग्य ने क्रूरता से दंडित किया। उनकी बेटी की शादी के लिए तिजोरी में रखे सोने के गहने फ्रीज कर दिए गए थे और अभी तक जारी नहीं किए गए थे। उनका निधन कुछ साल पहले हुआ था।
हर्षद मेहता का क्या हुआ, जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से इतना कहर बरपाया? वह सिटीबैंक या मेरिल लिंच जैसा बैंक बनना चाहते थे, लेकिन उन्होंने सब कुछ खो दिया - छवि, पैसा और बाजार में उनका दबदबा। लेकिन हर्षद ने अपना नाटकीय अंदाज, बड़े-बड़े खुलासे करने की क्षमता और अपने बेहिसाब तेजी के रवैये को नहीं खोया। सितंबर 1992 में, जिस दिन उन्हें 110 दिनों की कैद से रिहा किया गया, उस दिन उनका स्वागत किसी युद्ध नायक की तरह किया गया। माधुली की अधूरी तीसरी मंजिल के बाहर छह बंदूकधारी पुलिसकर्मी बैठे थे। घर के अंदर मेहता परिवार में जश्न का माहौल था। रिश्तेदार, दोस्त, कर्मचारी और साथी दलाल लगातार आ-जा रहे थे, जबकि हर्षद अपना सारा समय एटीएन, आई विटनेस और न्यूस्ट्रैक के वीडियो कैमरों के सामने पोज देने और अनगिनत पत्रिकाओं और अखबारों से बात करने में बिता रहा था। 110 दिनों की कठिन परीक्षा के बाद भी उसका अटूट आशावाद और आगे आने वाली चुनौतियों को लेकर उसका आत्मविश्वास अद्भुत था।

लेकिन वह तुरंत लोगों की नज़रों से ओझल हो गया और अपनी ही सपनों की दुनिया में जीता रहा। उसने कहा, “पूरा खेल सोच का है।” एक माहिर जादूगर की तरह सोच और असलियत के बीच तालमेल बिठाते हुए, हर्षद अपने मन में साफ़ था कि उसने असल में कुछ भी गलत नहीं किया है क्योंकि दूसरे ज़्यादा जाने-माने इंस्टीट्यूशन ने भी उतने ही क्रिमिनल काम किए हैं। वह कहता है, “हर कोई स्कैम में था। आखिर में फ़र्क इस बात से पड़ा कि किसके पास हिसाब-किताब में हेरफेर करने और असर का इस्तेमाल करने का समय था और किसके पास नहीं।”
वह ज़्यादा अंदर से सोचने वाला भी लगा। उसकी कमियां क्या थीं? “मैं प्रैक्टिकल से ज़्यादा कल्पनाशील था। मुझे डिसिप्लिन वाले माहौल में काम करने का मौका नहीं मिला। तीन साल तक मैं न्यू इंडिया एश्योरेंस में क्लर्क था। मेरे पास प्रोफेशनल तरीके से चीज़ें बनाने की क्वालिफिकेशन नहीं थी। मैं ऐसे चल रहा था जैसे कल है ही नहीं।” खैर, कल के बारे में उसकी सोच उलटी थी और असलियत की उसकी समझ टूट गई थी। जब वह भविष्य के बारे में बात करता था तो उसकी आँखें चमक उठती थीं। वह 5000 करोड़ रुपये का प्रॉफिट कमाना चाहता था। तो, उसने उसके लिए क्या किया? उन्होंने 1998 में वापसी का प्लान बनाया, वही पुराना काम, वही पुराने तरीके से करके एक शानदार री-एंट्री। यही स्कैम 2001 का ब्रिज था।

18

हर्षद की वापसी

अपने खास नाटकीय अंदाज़ में, जो उनकी पहचान थी, हर्षद ने एक हलफनामे में यह कहकर पूरे देश को चौंका दिया कि उन्होंने और उनके भाई अश्विन ने प्रधानमंत्री को एक करोड़ रुपये दिए थे।

1992 के घोटाले के सबसे हाई-प्रोफाइल सदस्य हर्षद इन सभी सालों में क्या कर रहे थे? बेचैन और दिलेर, उन्होंने कई तरह के दांव-पेच अपनाए: जैसे कि एक प्रधानमंत्री पर रिश्वत लेने और शेयर की कीमतों में हेरफेर करने का आरोप लगाना।

यह 16 जून 1993 की दोपहर थी। मुंबई के ताज महल होटल के कमरा नंबर 262 के बंद दरवाज़ों के पीछे कुछ लोग इकट्ठा होकर इतिहास रचने की तैयारी कर रहे थे। दोपहर करीब 3.30 बजे, जो फोन पूरी दोपहर व्यस्त रहा था, वह एक बार फिर बजा। यह आखिरी कोशिश थी, लेकिन बहुत देर हो चुकी थी। शाम 4 बजे, हर्षद मेहता, उनके भाई अश्विन और उनके जाने-माने वकील राम जेठमलानी, महेश जेठमलानी और कुछ अन्य लोग ताज के बॉल रूम की ओर चल पड़े। हर्षद, जो अब तक के सबसे बड़े वित्तीय घोटाले का प्रतीक बन चुके थे, इस घोटाले से जुड़े एक बड़े अनसुलझे सवाल का जवाब देकर देश को एक बार फिर चौंकाने वाले थे।
अप्रैल 1992 से, जटिल लेन-देन, ब्रोकरों की अकूत संपत्ति, बैंकों द्वारा नियमों के उल्लंघन और नाटकीय गिरफ्तारियों के बारे में कई खुलासे हुए थे। लेकिन सबसे दिलचस्प सवाल का जवाब अभी भी नहीं मिला था: क्या इसमें राजनेता भी शामिल थे? जब नवंबर 1992 में हर्षद JPC (संयुक्त संसदीय समिति) के सामने पेश हुए, तो हर कोई यही जानना चाहता था। लेकिन हर्षद के होंठ सिले हुए थे। उन्होंने कहा, "मुझे किसी भी राजनेता से कभी कोई मदद नहीं मिली, न ही मैंने किसी राजनेता को कोई पैसा दिया।" उन्होंने नौकरशाहों के बारे में भी इसी तरह का बयान दिया।

16 जून 1993 को, अपनी गिरफ्तारी के ठीक एक साल बाद, हर्षद ने चुप्पी तोड़ी। और वह भी अपने खास नाटकीय अंदाज़ में, जो उनकी पहचान थी। हर्षद ने एक हलफनामे में यह कहकर पूरे देश को चौंका दिया कि उन्होंने और उनके भाई अश्विन ने खुद PV नरसिम्हा राव को एक करोड़ रुपये दिए थे। यह तत्कालीन प्रधानमंत्री के नंड्याल उपचुनाव के लिए दिया गया एक चंदा था – यह लेन-देन तत्कालीन

कांग्रेस सांसद, स्वर्गीय सतपाल मित्तल और उनके बेटे सुनील मित्तल के ज़रिए हुआ था, जो अब भारती BT के प्रमुख हैं। हर्षद ने कई पुख्ता सबूत दिए। उसने बताया कि 4 नवंबर 1991 को वह अपने भाई और सुनील मित्तल के साथ PM के रेस कोर्स रोड वाले घर गया था। आम बातचीत और हर्षद के शेयर बाज़ार पर अपनी बात रखने के बाद, उन्होंने PM को 67 लाख रुपये से भरा एक सूटकेस सौंपा। आरोप है कि PM ने निर्देश दिया कि यह पैसा उनके 'ऑफिसर ऑन स्पेशल ड्यूटी' (OSD) आर.के. खांडेकर के पास रखा जाए।
मेहता भाइयों ने बड़े ही नाटकीय अंदाज़ में बताया कि कैसे वे 67 लाख रुपये से भरा सूटकेस मुंबई से दिल्ली तक ढोकर लाए; कैसे वे पैसों से भरे उस सूटकेस की चाबी PM के सेक्रेटरी खांडेकर के पास रखना भूल गए; कैसे PM उनके इस आइडिया से बहुत प्रभावित हुए कि सरकारी कर्ज़ के बदले पब्लिक सेक्टर की इक्विटी दी जाए; और कैसे PM ने उस बैग को छूकर उन्हें आशीर्वाद दिया... अगले दिन, मेहता भाइयों ने 33 लाख रुपये से भरा एक और सूटकेस भेजा।
PMO ने इन आरोपों को सिरे से नकार दिया और ब्रोकर्स के दावों को झूठा साबित करने की कोशिश की। PM के बेहद सुरक्षित घर में हर्षद के आने का कोई रिकॉर्ड मौजूद नहीं था। देश के कुछ बड़े अखबारों ने यह सवाल उठाया कि क्या 67 लाख रुपये जैसा बड़ा अमाउंट किसी आम सूटकेस में समा सकता है? हर्षद ने एक दूसरी प्रेस कॉन्फ्रेंस करके यह साबित किया कि हाँ, वाकई में, उतने ही साइज़ के सूटकेस में इतनी बड़ी रकम पैक की जा सकती है। उसने सुनील मित्तल के साथ हुई अपनी बातचीत की एक टेप भी बांटी, जिसमें वह मदद की गुहार लगा रहा था और उसने चालाकी से मित्तल से PMO में हुई उनकी मुलाक़ात के बारे में भी बात करवा ली थी।

PM को दिए गए उसके इस 'तथाकथित योगदान' से उसे क्या मिला? जनवरी 1992 में, जब हर्षद और उसके कुछ सब-ब्रोकर्स BSE की तरफ से की जाने वाली अनुशासनात्मक कार्रवाई का सामना कर रहे थे, तो उसने PMO में बने अपने नए दोस्तों से संपर्क किया। उसका दावा है कि खांडेकर की तरफ से वित्त राज्य मंत्री दलबीर सिंह को निर्देश दिए गए, और वहाँ से ये निर्देश पॉल जोसेफ़ तक पहुँचे, जो उस समय 'ज्वाइंट डायरेक्टर' (स्टॉक एक्सचेंज) और BSE के गवर्निंग बोर्ड के सदस्य थे। बोर्ड की मीटिंग में जोसेफ़ ने अपनी भूमिका निभाई और ब्रोकर के खिलाफ की जा रही कड़ी अनुशासनात्मक कार्रवाई का ज़ोरदार विरोध किया, जिसके चलते हर्षद को हल्की-फुल्की सज़ा देकर छोड़ दिया गया। इस घटना से उसकी यह साख और भी मज़बूत हो गई कि उसकी पहुँच बहुत ऊपर तक है। जैसा कि उम्मीद थी, जोसेफ़ ने इस मीटिंग के संबंध में किसी भी तरह का निर्देश मिलने की बात से साफ इनकार कर दिया।
लेकिन आखिर हर्षद ने अचानक PM पर भ्रष्टाचार का आरोप क्यों लगाया? उन्होंने हमें निजी तौर पर बताया कि उन्हें COFEPOSA जैसे खतरनाक कानून के तहत फंसाने की कोशिशें हो रही थीं। हर्षद को अपनी जान का डर था, क्योंकि उसे बहुत ज़्यादा बातें पता थीं। इसके अलावा, एक बार COFEPOSA के तहत रिमांड पर लिए जाने के बाद, उसे अगले दस या उससे भी ज़्यादा सालों तक जेल में ही एक विचाराधीन कैदी के तौर पर सड़ना पड़ सकता था।
लेकिन एक सवाल ऐसा था जिसका कोई जवाब नहीं था: हर्षद और प्रधानमंत्री के बीच कोई समझौता क्यों नहीं हुआ? अगर हर्षद मेहता एक धोखेबाज़ और ठग था, तो राव भी कोई दूध के धुले नहीं थे। आम तौर पर यह माना जाता था कि वे एक घटिया किस्म की जालसाज़ी में शामिल थे, जिसका मकसद VP सिंह और उनके बेटे अजय सिंह पर विदेश

में अवैध खाते रखने का आरोप लगाकर उनकी छवि खराब करना था। वे भारतीय राजनीति की उस 'संरक्षण-अनुग्रह-रिश्वत' और 'सौदेबाज़ी' वाली संस्कृति में पूरी तरह डूबे हुए थे, जो दो अहम उसूलों पर चलती है। पहला, हर किसी की कोई न कोई कीमत होती है; और दूसरा, कोई भी किसी के खिलाफ मुँह नहीं खोलता। इतने बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार होने के बावजूद, छोटे-मोटे नेता भी कभी पकड़े नहीं जाते; फिर संसद सदस्यों (MPs) की तो बात ही छोड़ दीजिए।

प्रधानमंत्रियों का किसी स्टॉकब्रोकर द्वारा पकड़े जाना या उन पर सार्वजनिक रूप से आरोप लगाया जाना तो नामुमकिन है, क्योंकि हमेशा कोई न कोई 'डील' (समझौता) हो जाती है। अगर कोई डील नहीं होती, तो ब्लैकमेल करने की किसी भी कोशिश को चुप कराने के लिए सरकार और उसकी अलग-अलग एजेंसियों की पूरी ताकत मौजूद होती है। तो फिर सरकार हर्षद को चुप कराने में नाकाम क्यों रही? प्रधानमंत्री और उसके बीच कोई डील क्यों नहीं हुई? आगे जो बताया गया है, वह मेहता परिवार के अनुसार घटनाओं का क्रम और उनकी व्याख्या है।

उनके मुताबिक, जब हर्षद जेल में था (4 जून से 22 सितंबर के बीच), तो उन्हें अपनी सारी समस्याओं को सुलझाने के लिए पैसे देने के कई इशारे मिले। पैसों की मांग 50 करोड़ रुपये से लेकर 200 करोड़ रुपये तक थी, जिसमें से कुछ पैसा विदेश में दिया जाना था। ये संदेश लाने वाले लोग अलग-अलग तरह के थे—एक धार्मिक गुरु से लेकर छोटे-मोटे राजनीतिक कार्यकर्ता तक। ज़ाहिर है, हर्षद पैसे देने के विचार के खिलाफ था। इसके अलावा, मेहता परिवार द्वारा नियंत्रित 29 संस्थाओं की संपत्ति पहले ही फ्रीज़ (जब्त) और

अटैच की जा चुकी थी; उनके पास इतना पैसा नकद में उपलब्ध नहीं था। इस मांग के साथ धमकियां भी दी गई थीं। उनमें से एक धमकी यह थी: हर्षद को अनिश्चित काल तक जेल में ही रखा जाएगा। सच तो यह है कि 111 दिनों से भी ज़्यादा समय तक CBI, प्रवर्तन निदेशालय और आयकर विभाग ने मिलकर हर्षद को जेल में रखने के लिए काम किया, जबकि हिरासत में एक महीना बिताने के बाद दूसरों को रिहा कर दिया गया था। हिरासत के आखिरी दौर में, अश्विन ने हर्षद से उन सभी पैसों के लेन-देन (payoffs) के बारे में लिखवाया जो उन्होंने किए थे। इस पूरे घटनाक्रम के दौरान, क्या CBI, राव के सहयोगियों, बड़े अधिकारियों और कुछ राजनेताओं को यह पता था कि प्रधानमंत्री भी इसमें
"शामिल" थे? हर्षद को 4 जून को गिरफ्तार किया गया था। 12 जून को ही, दिल्ली में मेहता परिवार के आदमी मोहन खंडेलवाल से CBI अधिकारियों ने पूछताछ की थी। बाद में CBI प्रमुख एस.के. दत्ता ने भी उनसे पूछताछ की। खंडेलवाल ने सब कुछ बता दिया। ज़ाहिर है, दत्ता को दिया गया उनका बयान रिकॉर्ड नहीं किया गया। शायद सरकार खंडेलवाल को 'सरकारी गवाह' (State witness) बनाना चाहती थी, ताकि हर्षद को बलि का बकरा बनाया जा सके और राजनेताओं को बरी किया जा सके। मुंबई में CBI की जांच का नेतृत्व कर रहे के. माधवन ने, ज़ाहिर है, इस रणनीति के तीसरे हिस्से को मानने से इनकार कर दिया और इस्तीफा दे दिया। इसी योजना के तहत हितेन दलाल, भूपेन दलाल और कई अन्य लोगों को गिरफ़्तार करके जेल भेज दिया गया। जब हर्षद जेल में थे, तो मेहता परिवार का दावा है कि उन्होंने सुनील मित्तल से संपर्क किया था। मित्तल ने कथित तौर पर उन्हें बताया कि वह अचानक ही अछूत बन गए हैं और प्रधानमंत्री के सचिव से मिल भी नहीं पा रहे हैं। बाद में, मित्तल भी मेहता परिवार के

लिए पहुँच से बाहर हो गए। इस पूरे दौरान, प्रधानमंत्री के सहयोगी और CBI स्थिति पर नज़र रखे हुए थे; शायद उन्हें पूरा यकीन था कि हर्षद इस बारे में मुँह नहीं खोलेंगे। एक समय पर, हर्षद का दावा है कि उन्हें कथित तौर पर यह समझाने के लिए कहा गया था कि एक करोड़ रुपए का वह भुगतान, सुनील मित्तल के पिता—दिवंगत सतपाल मित्तल—को किया गया था।

लेकिन वो तुरंत ही लोगों की नजरों से ओझल हो गए और अपनी ही सपनों की दुनिया में जीते रहे। उन्होंने कहा, “सारा खेल नजरिए का है।” एक कुशल जादूगर की तरह नजरिए और हकीकत को आपस में उलझाते हुए हर्षद को पूरा यकीन था कि उन्होंने कुछ भी गलत नहीं किया है, क्योंकि दूसरे प्रतिष्ठित संस्थानों ने भी उतने ही आपराधिक कृत्य किए हैं। उन्होंने कहा, “हर कोई इस घोटाले में शामिल था। आखिर में फर्क सिर्फ इस बात से पड़ा कि किसके पास हिसाब-किताब में हेराफेरी करने और प्रभाव का इस्तेमाल करने का समय था और किसके पास नहीं।”

वो पहले से ज्यादा आत्मविश्लेषी भी नजर आए। उनकी कमियां क्या थीं? “मैं व्यावहारिक से ज्यादा कल्पनाशील हूं। मुझे अनुशासित माहौल में काम करने का मौका नहीं मिला। तीन साल तक मैं न्यू इंडिया एश्योरेंस में क्लर्क रहा। मेरे पास पेशेवर तौर पर कुछ बनाने की योग्यता नहीं थी। मैं ऐसे जी रहा था जैसे कल होगा ही नहीं।” खैर, कल के बारे में उनकी सोच उलटी थी और हकीकत से उनका नजरिया चकनाचूर था। भविष्य की बात करते समय उनकी आंखें चमक उठीं। वो 5000 करोड़ रुपये का मुनाफा कमाना चाहते थे। तो उन्होंने इसके लिए क्या किया? 1998 में उसने वापसी की योजना

बनाई, पुराने तरीके से वही काम करके धमाकेदार पुनरागमन किया। यही घोटाला 2001 की शुरुआत थी।

हर्षद की वापसी

अपने विशिष्ट नाटकीय अंदाज में, हर्षद ने देश को चौंकाते हुए कहा,

एक हलफनामे में उसने और उसके भाई अश्विन ने प्रधानमंत्री को एक करोड़ रुपये दिए थे।

1992 के घोटाले के सबसे चर्चित सदस्य हर्षद इतने सालों से क्या कर रहे थे? बेचैन और साहसी, वह कई तरह की चालें चल रहे थे: जैसे एक प्रधानमंत्री पर रिश्वत लेने और शेयर बाजार में हेराफेरी करने का आरोप लगाना।

यह 16 जून 1993 की दोपहर थी। मुंबई के ताज महल होटल के कमरा नंबर 262 के बंद दरवाजों के पीछे कुछ लोग इतिहास रचने की तैयारी कर रहे थे। दोपहर करीब 3:30 बजे, दोपहर भर व्यस्त रहने वाला फोन एक बार फिर बजा। यह आखिरी कोशिश थी, लेकिन बहुत देर हो चुकी थी। शाम 4 बजे... हर्षद मेहता, उनके भाई अश्विन और उनके नामी वकील राम जेठमलानी, महेश जेठमलानी और कुछ अन्य लोग ताज होटल के बॉल रूम में पहुंचे। हर्षद, जो अब तक के सबसे बड़े वित्तीय घोटाले का प्रतीक थे, घोटाले से जुड़े एक बड़े अनसुलझे सवाल का जवाब देकर देश को एक बार फिर चौंकाने वाले थे।

अप्रैल 1992 से, जटिल लेन-देन, दलालों की अपार संपत्ति, बैंकों द्वारा किए गए उल्लंघनों के कई खुलासे हुए और कई नाटकीय गिरफ्तारियां भी हुईं। लेकिन सबसे सनसनीखेज सवाल अनुत्तरित रहा: क्या इसमें राजनेता शामिल थे? जब हर्षद नवंबर 1992 में जेपीसी के सामने पेश हुए, तो हर कोई यही जानना चाहता था। लेकिन हर्षद ने चुप्पी साध रखी थी। उन्होंने कहा, "मैंने कभी किसी राजनेता से कोई एहसान नहीं लिया और न ही किसी राजनेता को रिश्वत दी है।" उन्होंने नौकरशाहों के बारे में भी ऐसा ही बयान दिया।

16 जून 1993 को, अपनी गिरफ्तारी के ठीक एक साल बाद, हर्षद ने अपनी बात रखी। और अपने खास नाटकीय अंदाज में। हर्षद ने हलफनामे में यह कहकर पूरे देश को चौंका दिया कि उन्होंने और उनके भाई अश्विन ने व्यक्तिगत रूप से पी.वी. नरसिम्हा राव को एक करोड़ रुपये दिए थे। यह दान तत्कालीन प्रधानमंत्री के नंदीयाल उपचुनाव के लिए था – यह लेन-देन तत्कालीन कांग्रेस सांसद, स्वर्गीय सतपाल मित्तल और उनके बेटे सुनील मित्तल (जो अब भारती बीटी के प्रमुख हैं) की मध्यस्थता से हुआ था। हर्षद ने कई पुख्ता सबूत पेश किए। उन्होंने बताया कि

वह 4 नवंबर 1991 को अपने भाई और सुनील मित्तल के साथ प्रधानमंत्री के रेस कोर्स रोड स्थित आवास पर गए थे। औपचारिक शिष्टाचार और हर्षद द्वारा शेयर बाजार पर चर्चा के बाद, उन्होंने प्रधानमंत्री को 67 लाख रुपये से भरा एक सूटकेस सौंपा, जिन्होंने कथित तौर पर निर्देश दिया कि यह पैसा उनके विशेष अधिकारी आर.के. खांडेकर के पास रखा जाए।

मेहता परिवार ने नाटकीय अंदाज़ में बताया कि कैसे उन्होंने 67 लाख रुपये एक सूटकेस में भरकर बॉम्बे से दिल्ली लाए, कैसे वे भरे हुए सूटकेस की चाबी प्रधानमंत्री के सचिव खांडेकर के पास छोड़ना भूल गए, कैसे प्रधानमंत्री उनके सरकारी कर्ज को सार्वजनिक क्षेत्र की इक्विटी से बदलने के विचार से प्रभावित हुए, कैसे उन्होंने बैग को छुआ और उन्हें आशीर्वाद दिया... अगले दिन, मेहता परिवार ने 33 लाख रुपये से भरा एक और सूटकेस भेजा।

प्रधानमंत्री कार्यालय ने इस आरोप का सिरे से खंडन किया और दलालों के आरोपों को निराधार साबित करने की कोशिश की। हर्षद के प्रधानमंत्री के बेहद सुरक्षित आवास में प्रवेश का कोई रिकॉर्ड नहीं था। देश के कुछ सबसे बड़े अखबारों ने सवाल उठाया कि क्या 67 लाख रुपये एक सॉफ्ट लगेज सूटकेस में समा सकते हैं। हर्षद ने यह दिखाने के लिए दूसरी प्रेस कॉन्फ्रेंस की कि कैसे इतनी बड़ी रकम वाकई उसी आकार के सूटकेस में पैक की जा सकती है। उन्होंने सुनील मित्तल के साथ हुई बातचीत की एक टेप भी वितरित की, जिसमें उन्होंने मदद की गुहार लगाई थी और मित्तल को प्रधानमंत्री कार्यालय में अपनी मुलाकात के बारे में बोलने के लिए मजबूर किया था।

प्रधानमंत्री को दिए गए उनके इस तथाकथित योगदान से उन्हें क्या मिला? जनवरी 1992 में, जब हर्षद और उनके कुछ सब-ब्रोकरों पर बीएसई द्वारा अनुशासनात्मक कार्रवाई की जा रही थी, तब उन्होंने प्रधानमंत्री कार्यालय में अपने नए बने मित्रों से संपर्क किया। उनका दावा है कि खांडेकर से वित्त राज्य मंत्री दलबीर सिंह को और फिर पॉल जोसेफ को निर्देश मिले, जो उस समय संयुक्त

निदेशक (स्टॉक एक्सचेंज) और बीएसई गवर्निंग बोर्ड के सदस्य थे। बोर्ड की बैठक में, जोसेफ ने ब्रोकर के खिलाफ कड़ी अनुशासनात्मक कार्रवाई का कड़ा विरोध किया और हर्षद को नरमी से छोड़ दिया गया। इस घटना ने शक्तिशाली संपर्कों के रूप में उनकी प्रतिष्ठा को और मजबूत किया। हालांकि, जैसा कि अपेक्षित था, जोसेफ ने बैठक के संबंध में कोई भी निर्देश प्राप्त करने से इनकार कर दिया।

लेकिन हर्षद ने अचानक प्रधानमंत्री पर भ्रष्टाचार का आरोप क्यों लगाया? उन्होंने निजी तौर पर हमें बताया कि उन्हें कुख्यात सीओएफईपीओएसए के तहत फंसाने के प्रयास किए जा रहे थे। हर्षद को अपनी जान का खतरा था क्योंकि उन्हें बहुत कुछ पता था। साथ ही, सीओएफईपीओएसए के तहत हिरासत में लिए जाने पर, उन्हें अगले एक दशक या उससे अधिक समय तक विचाराधीन कैदी के रूप में जेल में रखा जा सकता था।

लेकिन एक सवाल ऐसा था जिसका कोई जवाब नहीं था: हर्षद और प्रधानमंत्री के बीच कोई समझौता क्यों नहीं हुआ? अगर हर्षद मेहता एक धूर्त और धोखेबाज थे, तो राव भी कोई फ़रिश्ता नहीं थे। व्यापक रूप से यह माना जाता था कि वे एक घटिया जालसाजी में शामिल थे, जिसका मकसद वीपी सिंह और उनके बेटे अजय सिंह को अवैध विदेशी खाते रखने के आरोप में बदनाम करना था।

वे भारतीय राजनीति की संरक्षण-पक्षपात-रिश्वत और सौदेबाजी की संस्कृति में डूबे हुए थे, जिसमें दो महत्वपूर्ण नियम निहित हैं। पहला, हर किसी की कोई न कोई कीमत होती है और दूसरा, कोई भी

मुखबिर नहीं बनता। व्यापक भ्रष्टाचार के बावजूद, छोटे-मोटे राजनेता भी नहीं पकड़े जाते, सांसदों की तो बात ही छोड़िए। प्रधानमंत्रियों का पकड़ा जाना या किसी स्टॉकब्रोकर द्वारा सार्वजनिक रूप से उन पर आरोप लगाया जाना तो नामुमकिन है, क्योंकि हमेशा कोई न कोई समझौता हो जाता है। अगर कोई समझौता नहीं होता, तो ब्लैकमेल के प्रयास को दबाने के लिए राज्य और उसकी विभिन्न शाखाओं की क्रूर शक्ति मौजूद होती है। तो राज्य हर्षद को दबाने में क्यों विफल रहा? प्रधानमंत्री और उनके बीच कोई समझौता क्यों नहीं हुआ? आगे मेहता परिवार के अनुसार घटनाओं का क्रम और व्याख्या दी गई है।

उनके अनुसार, जब हर्षद जेल में थे (4 जून से 22 सितंबर के बीच), उन्हें अपनी सभी समस्याओं को निपटाने के लिए कई तरह के संदेश मिले। मांगें 50 करोड़ रुपये से लेकर 200 करोड़ रुपये तक की थीं, जिसमें से कुछ पैसा विदेश में भेजा जाना था। संदेशवाहक एक धार्मिक नेता से लेकर छोटे-मोटे राजनीतिक पदाधिकारी तक थे। हर्षद जाहिर तौर पर पैसे देने के विचार के खिलाफ थे। इसके अलावा, मेहता परिवार द्वारा नियंत्रित 29 संस्थाओं की संपत्तियां पहले ही फ्रीज और जब्त कर ली गई थीं; उनके पास इतनी रकम नहीं थी। मांग के साथ धमकियां भी दी गईं। उनमें से एक यह थी कि हर्षद को अनिश्चित काल तक जेल में रखा जाएगा। वास्तव में, 111 दिनों से अधिक समय तक, सीबीआई, प्रवर्तन और आयकर विभागों ने हर्षद को जेल में रखने के लिए मिलकर काम किया, जबकि अन्य लोगों को एक महीने की हिरासत के बाद रिहा कर दिया गया। अपनी हिरासत के अंतिम चरण के दौरान, अश्विन ने हर्षद से किए गए विभिन्न भुगतानों का लिखित विवरण प्राप्त किया।

क्या इस सब के दौरान सीबीआई, राव के सहयोगी, शीर्ष नौकरशाह और कुछ राजनेताओं को पता था कि प्रधानमंत्री

“इसमें शामिल” थे? हर्षद को 4 जून को गिरफ्तार किया गया था। 12 जून को ही, दिल्ली में मेहता परिवार के खास आदमी मोहन खंडेलवाल से सीबीआई अधिकारियों ने पूछताछ की। बाद में सीबीआई प्रमुख एस.के. दत्ता ने उनसे पूछताछ की। खंडेलवाल ने सब कुछ बता दिया। जाहिर तौर पर, दत्ता को दिए गए उनके बयान को रिकॉर्ड नहीं किया गया था। सरकार शायद खंडेलवाल को सरकारी गवाह बनाकर हर्षद को बलि का बकरा बनाना चाहती थी और राजनेताओं को बरी करना चाहती थी। बॉम्बे में सीबीआई जांच का नेतृत्व कर रहे के. माधवन ने इस रणनीति के तीसरे हिस्से का समर्थन करने से इनकार कर दिया और इस्तीफा दे दिया। इसी योजना के तहत हितेन दलाल, भूपेन दलाल और कई अन्य लोगों को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया।

जब हर्षद जेल में था, तब मेहता परिवार का दावा है कि उन्होंने सुनील मित्तल से संपर्क किया था। मित्तल ने उन्हें बताया कि हर्षद अचानक समाज से बहिष्कृत हो गया है और प्रधानमंत्री के सचिव से भी आगे नहीं बढ़ पा रहा है। बाद में, मित्तल खुद मेहता परिवार के लिए पहुंच से बाहर हो गए। इस पूरे समय प्रधानमंत्री के सहयोगी और सीबीआई स्थिति पर नजर रखे हुए थे, शायद उन्हें यकीन था कि हर्षद कुछ नहीं बोलेगा। हर्षद का दावा है कि एक समय उन्हें कथित तौर पर एक करोड़ रुपये के भुगतान के बारे में स्पष्टीकरण देने को कहा गया था, यह कहते हुए कि यह भुगतान सुनील मित्तल के पिता स्वर्गीय सतपाल मित्तल को किया गया था।

यह बहुत सुविधाजनक था क्योंकि मृत व्यक्ति बोलते नहीं हैं। फिर, 11 नवंबर 1992 को, सतपाल मित्तल के सचिव मनमोहन शर्मा ने कथित तौर पर दिल्ली के हॉलिडे इन होटल में हर्षद से संपर्क किया। हर्षद को अगले दिन जेपीसी के सामने पेश होना था। शर्मा, अपनी और सुनील मित्तल की सुरक्षा को लेकर चिंतित थे, इसलिए उन्होंने हर्षद से चुप रहने का अनुरोध किया। हर्षद ने उन्हें बताया कि वह और उनका परिवार संभावित प्रतिक्रिया से डरे हुए हैं और उन्होंने अपनी चुप्पी का आश्वासन दिया।

लगभग इसी समय, PM के करीबी क्राइसिस मैनेजमेंट टीम ने शायद यह तय किया कि हर्षद पर दबाव बढ़ाना और उसे घेरे में रखना बेहतर है, बजाय इसके कि वह चुप रहे। इसी समय मेहता परिवार को शक हुआ कि उन्हें नारकोटिक्स के धंधे में फंसाने का प्लान बनाया जा रहा है। मेहता परिवार जानता था कि ड्रग ट्रैफिकिंग के आरोप उन्हें पूरी तरह बर्बाद कर देंगे। अश्विन मेहता ने शांति से कहा, "हमने सारे सबूत इकट्ठा करने और उन्हें व्यवस्थित करने का फैसला किया।" मेहता परिवार हर्षद की जान को लेकर भी डरा हुआ था। उन्होंने उसकी गवाही वीडियो टेप पर रिकॉर्ड की और जेठमलानी परिवार के स्टार वकीलों के पास भागे। घबराहट की लड़ाई बढ़ती जा रही थी। लेकिन उससे पहले, मनमोहन शर्मा को मौके पर आना था। उन्होंने जनवरी 1993 के आखिर में अश्विन मेहता के साथ करीब एक घंटा बिताया और उनसे पॉलिटिकल गेम से दूर रहने की रिक्वेस्ट की। मेहता का दावा है कि उन्होंने उनसे कहा था कि वे बस वही सबूत इकट्ठा कर रहे हैं जो उनके पास पहले से हैं।

9 फरवरी को, CBI ने हर्षद को पूछताछ के लिए बुलाया और उससे 4 नवंबर 1991 को ANZ ग्रिंडलेज़ बैंक, संसद मार्ग ब्रांच से निकाले गए 45 लाख रुपये के कैश के बारे में पूछा। मेहता के मुताबिक, CBI ने PM के साथ उनकी 4 नवंबर की मीटिंग के बारे में पूछने से परहेज किया। हर्षद ने जवाब दिया कि उसे पैसे निकालने का कारण याद नहीं है। फिर इनकम टैक्स डिपार्टमेंट ने हर्षद से कसम खाकर 45 लाख रुपये के सवाल पर सफाई देने को कहा। मेहता को लगा कि CBI और IT उन्हें फंसाने के लिए मिलकर काम कर रहे हैं: CBI की पूछताछ सबूत के तौर पर नहीं मानी जा सकती, लेकिन इनकम टैक्स डिपार्टमेंट को कसम खाकर दिया गया बयान CBI सहित कोई भी इस्तेमाल कर सकता है। अगर हर्षद ने IT अधिकारियों को कसम खाकर वही दोहराया होता जो उसने CBI को बताया था (कि उसे याद नहीं है कि उसने पैसे का क्या किया) तो पैसे का फायदा उठाने वाला, इस मामले में, कथित तौर पर, PM, बरी हो जाता। CBI-IT की जोड़ी को नाकाम करने के लिए (जिसने पहले SBI ऑफिसर आर. सीतारमन को फंसाया था, जो हर्षद के साथ मिले हुए थे) हर्षद के वकील महेश जेठमलानी ने CBI चीफ एसके दत्ता को एक लेटर लिखा, जिसमें बताया गया कि कैश निकालना पॉलिटिकली सेंसिटिव था और हर्षद इसका खुलासा तभी कर सकता था जब उसे पॉलिटिकल दबाव से छूट मिली हो। दत्ता, जो रिटायरमेंट की उम्र पार कर चुके थे, एक्सटेंशन पर अपनी नौकरी कर रहे थे। दत्ता के अंडर, CBI ने के. माधवन को बदनाम करने की कोशिश की, हर्षद के स्विस बैंक अकाउंट्स के बारे में झूठ बोला (इसके बारे में बाद में), उन्हें नारकोटिक्स में फंसाने की कोशिश की और कुछ साफ सबूतों का पीछा करने से मना कर दिया। जब जेठमलानी का लेटर उनके पास पहुंचा, तो वे चुप रहे और JPC को इन्फॉर्म नहीं

किया गया। जब IT अधिकारियों ने 18-22 फरवरी, 1993 के बीच हर्षद से पूछताछ की, तो उन्होंने कैश निकालने से जुड़े सवालों का जवाब देने से साफ मना कर दिया। पूछताछ के टेप के मुताबिक, हर्षद जवाब देने से पहले अपने वकील से सलाह लेना चाहता था, उसने और समय मांगा और IT की गेंद CBI के पाले में डाल दी: “मैं CBI से अपनी इम्यूनिटी की रिक्वेस्ट पर जवाब मिलने के बाद ही सवाल का जवाब दे सकता हूँ।” जब हर्षद के कैंप ने IT को रोकने में कामयाबी हासिल कर ली, तो CBI को मौके पर वापस जाना पड़ा। उसने जेठमलानी से बात करने के लिए एक ऑफिसर भेजा। इसका कोई नतीजा नहीं निकला। पाँच दिन बाद CBI ने जवाब दिया कि वह किसी भी तरह की इम्यूनिटी नहीं दे सकती।
मेहता परिवार का मानना है कि जेठमलानी के लेटर के बाद हर्षद को नारकोटिक्स में फंसाने, उसे रिश्वत के मामले में चुप कराने और पूछताछ के ज़रिए उस पर दबाव बनाने की स्ट्रैटेजी धीमी पड़ने लगी। लेकिन 17 फरवरी के बाद चार FIR और पंद्रह रेड हुईं। रेड के दौरान, CBI ऑफिसर्स को कोई पेपर्स नहीं मिले। वे घर में कैविटी और छिपी हुई जगहों की तलाश कर रहे थे।
इस बीच, क्या कोई डील हो रही थी? हर्षद और उसके वकील महेश जेठमलानी ने इसे मानने से इनकार कर दिया। अगर ऐसा है, तो यह इसलिए नहीं हो पाया क्योंकि तीन महीने बाद 14 मई को, जेठमलानी का CBI को लिखा लेटर बिज़नेस स्टैंडर्ड में छपा। हो सकता है कि हर्षद कैंप ने इस मुद्दे को ज़बरदस्ती उठाने के लिए लेटर लीक किया हो। असल में, राम जेठमलानी की मौजूदगी – जो ज़्यादा पॉलिटिशियन थे, पब्लिसिटी पसंद करते थे और कॉन्ट्रोवर्सी से कभी नहीं कतराते थे – ने यह साफ़ कर दिया था कि लड़ाई होगी, कोई

डील नहीं। राम जेठमलानी को पॉलिटिकल रूप से सनसनीखेज मुद्दे से ज़्यादा कुछ पसंद नहीं है।
एक बार जब हर्षद का लेटर पब्लिसाइज़ हुआ, तो माहौल बनने लगा। एक खास इत्तेफ़ाक से, जिस दिन बिज़नेस स्टैंडर्ड जेठमलानी के लेटर के बारे में स्टोरी छापने वाला था, मनमोहन शर्मा बॉम्बे वापस आ गए थे। माना जाता है कि शर्मा और मेहता परिवार ने कॉपर चिमनी में दो घंटे का लंच किया, जो मेहता परिवार के घर मधुली के पास एक मशहूर रेस्टोरेंट है। शर्मा साफ़ तौर पर समझौता करने वाले और नरम थे। मेहता परिवार का कहना है कि उन्होंने उनसे पूछा कि उन्होंने अचानक अपना स्टैंड क्यों बदल लिया। उन्होंने जवाब दिया कि माहौल बदलता रहता है। शर्मा ने पूरे भरोसे के साथ उनसे कहा कि अगर वे बोल भी दें, तो PM को कुछ नहीं होगा। शर्मा ने यह नहीं बताया कि वह किसके लिए काम कर रहे हैं। मेहता परिवार ने शायद तब तक चुप रहने का फैसला किया जब तक उन्हें यकीन न हो जाए कि यह कदम सबसे ऊंचे लेवल से आ रहा है। यह डील की आखिरी और कमजोर कोशिशों में से एक थी। जब कुछ नहीं हुआ, तो तेजतर्रार जेठमल के उकसाने पर मेहता परिवार ने उन्हें मना लिया।

अनीस ने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाई और बड़ा धमाका किया। और PM के चतुर कैलकुलेशन के मुताबिक, उससे कुछ खास नतीजा नहीं निकला। इस बीच, मेहता परिवार PM के घर किस सही समय पर गया था, इस पर शक होने लगा। बहुत अजीब तरह से, हर्षद ने अपने खुलासे के कई हफ़्तों बाद इस बारे में अपनी ही बात को गलत बताया, जिससे PM का केस इनडायरेक्टली मज़बूत हो गया। क्या हर्षद किसी डील के तहत PM को बरी करने की कोशिश कर रहा था? कोई नहीं जानता, लेकिन

हर्षद मेहता पर से अचानक आंच कम हो गई और नारकोटिक्स का चार्ज फिर कभी नहीं उठाया गया।
वही एक्टर, वही रोल
उस चौंकाने वाली घटना के तीन साल बाद तक हर्षद शांत रहा। फिर अगले दो सालों में उसने तीन बार वापसी की कोशिश की और हर बार अपनी हरकतों से मार्केट को हिलाकर रख दिया। दो बार उसने कथित तौर पर मार्केट में बेनामी शेयर लाए, जिससे सिस्टम ठप हो गया। तीसरी बार वह एक मशहूर टिपस्टर के तौर पर सामने आया, जिसे अखबार के एडिटर और मैनेजर मदद कर रहे थे। हैरानी की बात यह है कि हर बार उनकी मदद उन्हीं छह अजीब ब्रोकर्स के ग्रुप ने की, जिनके बारे में रेगुलेटर हैरानी की बात है कि हाल तक नरम रहा है। हर्षद ने पहली बार दिसंबर 1996 में वापसी का प्लान बनाया था। मार्केट को लगा कि जिंदल ग्रुप के तीन शेयरों की कीमतों में अचानक आई तेज़ी में हर्षद का हाथ है। जिंदल और हर्षद मेहता दोनों ने अफवाहों से इनकार किया, लेकिन मार्केट ऑपरेटर्स का कहना है कि जिंदल स्ट्रिप्स, सॉ पाइप्स और जिंदल आयरन एंड स्टील में हर्षद का खेल कुछ ही हफ़्तों में खत्म हो गया और जिंदल को नुकसान हुआ। जनवरी 1997 में हर्षद ने टाइम्स ऑफ़ इंडिया से कहा, “सबसे पहले मैं आपको बता दूं, मैं कीमतों को खींचने या धकेलने में शामिल नहीं होना चाहता।” अगर यह फैसला सच था, तो जल्द ही इसे छोड़ दिया गया।
3 मार्च 1997 को, वह एक रेडिफ-चैट पर वापसी के प्लान की घोषणा करते हुए दिखाई दिए। इन्वेस्टर्स के लालच का फ़ायदा उठाते हुए, उन्होंने बड़े ही गर्व से ऐलान किया कि BSE सेंसिटिव इंडेक्स 7000 तक पहुँच जाएगा। साथ ही, उन्होंने कॉर्पोरेट ट्रेंड्स को एनालाइज़ करने और टिप्स देने के लिए एक वेबसाइट बनाने का प्लान

भी बताया। अगर हर्षद ने उस बातचीत पर ध्यान दिया होता, तो उन्हें अपनी दिक्कतों का अंदाज़ा हो जाता। यह साफ़ था कि भले ही लोगों का उन पर ज़बरदस्त ध्यान था, लेकिन पहले जैसी अंधी तारीफ़ अब नहीं थी। बहुत से लोग तो बिल्कुल भी यकीन नहीं कर रहे थे। जैसे, किसी ने उनसे पूछा – “क्या आप खुद को काम के बीच में फ़ायदेमंद मानते हैं या कुछ और? आप यह दावा करने के बावजूद कि आप कंगाल हैं, यह लाइफ़स्टाइल कैसे चलाते हैं...?” इसी तरह की और भी बातें थीं, लेकिन हर्षद रुके नहीं। उन्होंने तय किया कि आम जनता और रिटेल इन्वेस्टर्स ही उनके वोटर हैं और इसलिए उनकी वापसी मीडिया के ज़रिए होनी चाहिए। उनकी स्ट्रैटेजी: ज़रूरी मीडिया फिक्सर्स का इस्तेमाल करके ज़रूरी अख़बारों में अपने लिए कॉलम बनवाना ताकि वे अपनी टिप्स और राय दे सकें। उनकी लिस्ट में सबसे ऊपर द टाइम्स ऑफ़ इंडिया था, वही अख़बार जिसने 1992 में उन्हें बर्बाद कर दिया था। कुछ टॉप मैनेजरों की मदद से वे लगभग वहाँ पहुँच ही गए थे, लेकिन तब के एडिटोरियल एडवाइज़र एच.के. दुआ के कड़े एतराज़ की वजह से वे वहाँ पहुँच ही गए थे। हालाँकि, वे टाइम्स ग्रुप के एक और अख़बार नवभारत टाइम्स में घुसने में कामयाब हो गए। उनके दोस्त मीडिया ब्रोकर्स ने दो बातें कहकर उनके कॉलम तय कर दिए। पहला, सर्कुलेशन बढ़ेगा क्योंकि हर्षद के करिश्मे से इन्वेस्टर्स उनके अख़बार खरीदने के लिए दौड़ पड़ेंगे। दूसरा, जब तक हर्षद सिर्फ़ स्कैम में एक आरोपी थे, उनके कॉलमिस्ट होने में क्या गलत था? BSE ने भी ब्रोकर को निकालने से बचने के लिए इसी बात पर ज़ोर दिया था। हर्षद मेहता के BSE में एक से ज़्यादा कार्ड थे, जो सिर्फ़ सस्पेंड हैं। उनके अख़बार के कॉलम और वेबसाइट ने मार्केट में फिर से हलचल मचा दी।

एक इन्वेस्टमेंट कॉलमिस्ट के तौर पर, उनकी टेक्निक असल में वही थी: मार्केट में कोई टिप देकर और कभी न खत्म होने वाला हाइप बनाकर मैनेजमेंट के साथ मिलकर स्टॉक में हेराफेरी करना। हर्षद ने खुद को छोटे इन्वेस्टर्स का चैंपियन बनाया, लेकिन सट्टेबाजों और कुछ रिटेल इन्वेस्टर्स को अपनी ओर खींचा, क्योंकि उसने BPL को Rs 40 से Rs 400 कर दिया था। हालांकि, उसके अच्छे प्लान गड़बड़ा गए। जब उसकी लेवरेज्ड पोजीशन सबसे ऊपर थी, तब भारत ने जून 1998 में एक न्यूक्लियर टेस्ट किया। विदेशियों ने घबराकर अपना पैसा निकाल लिया और मार्केट बस पिघल गया। उसके पास अपनी पोजीशन बनाए रखने के लिए बैंक फंड्स की कभी न खत्म होने वाली सप्लाई नहीं थी। जब सब कुछ खत्म हो गया, तो हर्षद मेहता के लिए काम करने वाले ब्रोकर्स पेमेंट करने में फेल हो गए, जिससे BSE पेमेंट क्राइसिस में फंस गया। इस क्राइसिस को BSE अधिकारियों, कुछ ब्रोकर्स और उन कंपनियों ने बड़ी बेरुखी से दबा दिया जिनके शेयरों में हेराफेरी हो रही थी।

इसी समय के आसपास, प्रधानमंत्री के करीबी संकट प्रबंधन दल ने शायद यह फैसला किया होगा कि हर्षद पर दबाव बढ़ाना और उसे अलग-थलग रखना, उसकी समझदारी पर भरोसा करने और उसे चुप रहने देने से बेहतर होगा। इसी समय मेहता परिवार को शक हुआ कि उन्हें नशीले पदार्थों के कारोबार में फंसाने की साजिश रची जाने लगी थी। मेहता परिवार जानता था कि नशीले पदार्थों की तस्करी के आरोप उन्हें पूरी तरह बर्बाद कर देंगे। अश्विन मेहता ने शांत भाव से कहा, "हमने सभी सबूत इकट्ठा करने और उन्हें व्यवस्थित करने का फैसला किया।" मेहता परिवार हर्षद की जान को लेकर भी डरा हुआ था। उन्होंने हर्षद के बयान को वीडियो टेप पर रिकॉर्ड किया और

जेठमलानी जैसे प्रसिद्ध वकीलों से संपर्क किया। तनाव बढ़ता जा रहा था। लेकिन इससे पहले, मनमोहन शर्मा का दखल हुआ। बताया जाता है कि उन्होंने जनवरी 1993 के अंत में अश्विन मेहता के साथ लगभग एक घंटा बिताया और उनसे राजनीतिक दांव-पेच से दूर रहने का अनुरोध किया। मेहता का दावा है कि उन्होंने मनमोहन शर्मा से कहा कि वे जो कुछ भी कर रहे हैं, वह केवल उनके पास पहले से मौजूद सबूतों को संकलित करना है।

9 फरवरी को सीबीआई ने हर्षद को पूछताछ के लिए बुलाया और उनसे 4 नवंबर 1991 को एएनजेड ग्रिंडलेज़ बैंक, संसद मार्ग शाखा से निकाले गए 45 लाख रुपये नकद के बारे में पूछा।

मेहता परिवार के अनुसार,

सीबीआई ने प्रधानमंत्री के साथ उनकी 4 नवंबर की मुलाकात के बारे में पूछने से परहेज किया। हर्षद ने जवाब दिया कि उन्हें निकासी का कारण याद नहीं है। इसके बाद आयकर विभाग ने हर्षद से शपथ लेकर 45 लाख रुपये के सवाल पर स्पष्टीकरण देने को कहा। मेहता परिवार को लगा कि सीबीआई और आयकर विभाग उन्हें फंसाने के लिए मिलीभगत कर रहे हैं: सीबीआई की पूछताछ सबूत के तौर पर मान्य नहीं है, लेकिन आयकर विभाग को शपथ लेकर दिया गया बयान सीबीआई समेत कोई भी इस्तेमाल कर सकता है। अगर हर्षद ने आयकर अधिकारियों को शपथ लेकर वही बात दोहराई होती जो उन्होंने सीबीआई को बताई थी (कि उन्हें याद नहीं है कि उन्होंने पैसे का क्या किया), तो इससे पैसे के लाभार्थी, इस मामले में कथित तौर पर प्रधानमंत्री, को बरी किया जा सकता था।

सीबीआई-आईटी गठबंधन (जिसने पहले आर सीतारामन, एसबीआई अधिकारी जो हर्षद के साथ मिलीभगत कर रहा था, को फंसाया था) को नाकाम करने के लिए, हर्षद के वकील महेश जेठमलानी ने सीबीआई प्रमुख एस.के. दत्ता को पत्र लिखकर बताया कि नकद निकासी राजनीतिक रूप से संवेदनशील मामला है और हर्षद इसे तभी उजागर कर सकते हैं जब उन्हें राजनीतिक उत्पीड़न से छूट मिल जाए। दत्ता, जो सेवानिवृत्ति की आयु पार कर चुके थे, अपने कार्यकाल को बढ़ाए जाने के कारण पद पर बने हुए थे। दत्ता के नेतृत्व में, सीबीआई ने के. माधवन को बदनाम करने का प्रयास किया, हर्षद के स्विस बैंक खातों के बारे में झूठ बोला (इस बारे में आगे विस्तार से बताया जाएगा), उन्हें नशीले पदार्थों के मामले में फंसाने की कोशिश की और कुछ स्पष्ट सुरागों पर कार्रवाई करने से इनकार कर दिया। जब जेठमलानी का पत्र उन तक पहुंचा, तो वे चुप रहे और जेपीसी को इसकी सूचना नहीं दी गई।

जब आयकर अधिकारियों ने 18-22 फरवरी, 1993 के बीच हर्षद से पूछताछ की, तो उन्होंने नकद निकासी से संबंधित सवालों के जवाब देने से लगातार इनकार कर दिया। पूछताछ के रिकॉर्ड के अनुसार, हर्षद जवाब देने से पहले अपने वकील से सलाह लेना चाहता था, उसने और समय मांगा और आईटी विभाग की गेंद सीबीआई के पाले में डाल दी: "सीबी से मेरी प्रतिरक्षा संबंधी याचिका पर जवाब मिलने के बाद ही मैं इस प्रश्न का उत्तर दे सकता हूं।" जब हर्षद के पक्ष ने आईटी विभाग को रोकने में कामयाबी हासिल कर ली, तो सीबीआई को फिर से मौके पर लौटना पड़ा। उसने जेठमलानी से बात करने के लिए एक अधिकारी भेजा। लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। पांच दिन बाद

सीबीआई ने जवाब दिया कि वह किसी भी प्रकार की प्रतिरक्षा प्रदान नहीं कर सकती।

मेहता परिवार का मानना है कि जेठमलानी के पत्र के बाद हर्षद को नशीले पदार्थों के मामले में फंसाने, रिश्वत के बारे में उसे चुप कराने और पूछताछ के माध्यम से उस पर दबाव डालने की रणनीति धीमी पड़ने लगी थी। लेकिन 17 फरवरी के बाद चार एफआईआर दर्ज की गईं

और पंद्रह छापे मारे गए। छापों के दौरान, सीबीआई अधिकारियों को कोई कागज नहीं मिला। वे घर में गुप्त स्थानों और छिपी हुई जगहों की तलाश कर रहे थे।

इस बीच, क्या कोई सौदा चल रहा था? हर्षद और उसके वकील महेश जेठमलानी ने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

अगर ऐसा था, तो यह योजना विफल हो गई क्योंकि 14 मई को, तीन महीने बाद, जेठमलानी का सीबीआई को लिखा पत्र बिज़नेस स्टैंडर्ड में प्रकाशित हुआ। संभावना है कि हर्षद खेमे ने इस मुद्दे को उजागर करने के लिए पत्र लीक किया था। दरअसल, राम जेठमलानी की उपस्थिति
- जो एक राजनेता थे, प्रचार के शौकीन थे और विवादों से कभी नहीं कतराते थे - ने स्पष्ट कर दिया कि मामला सुलह का नहीं, बल्कि संघर्ष का होगा। राम जेठमलानी को राजनीतिक रूप से सनसनीखेज मुद्दों से बढ़कर कुछ भी पसंद नहीं है।

हर्षद का पत्र प्रकाशित होते ही मामला गरमाने लगा। एक अद्भुत

संयोग से, जिस दिन बिज़नेस स्टैंडर्ड में जेठमलानी के पत्र की खबर छपने वाली थी, उसी दिन मनमोहन शर्मा मुंबई वापस आ गए थे। माना जाता है कि शर्मा और मेहता परिवार ने माधुली (मेहता परिवार का निवास) के पास स्थित एक प्रसिद्ध रेस्तरां कॉपर चिमनी में दो घंटे तक दोपहर का भोजन किया। शर्मा का रवैया सुलहपूर्ण और नरम था। मेहता परिवार का कहना है कि उन्होंने शर्मा से पूछा कि उन्होंने अचानक अपना रुख क्यों बदल लिया। शर्मा ने जवाब दिया कि माहौल बदलता रहता है। शर्मा ने उन्हें विश्वास से कहा कि अगर वे बोलेंगे भी तो प्रधानमंत्री को कुछ नहीं होगा। शर्मा ने यह नहीं बताया कि वह किसके लिए काम कर रहे थे। शायद मेहता परिवार ने तब तक चुप रहने का फैसला किया जब तक उन्हें यह यकीन न हो जाए कि ये कदम उच्च स्तर से उठाए जा रहे हैं। यह समझौता करने का आखिरी और कमजोर प्रयास था। जब कुछ भी सफल नहीं हुआ, तो मेहता परिवार ने, दिखावटी जेठमलानी परिवार के उकसावे पर, एक प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाई और सनसनीखेज खुलासा कर दिया। और प्रधानमंत्री की चतुर योजनाओं के अनुरूप, इसका कोई नतीजा नहीं निकला।

इस बीच, मेहता परिवार के प्रधानमंत्री आवास पर जाने के सही समय को लेकर संदेह पैदा हो गया। बड़ी रहस्यमयी बात यह है कि हर्षद ने अपने खुलासे के कई हफ्तों बाद इस बारे में खुद का खंडन किया, जिससे अप्रत्यक्ष रूप से प्रधानमंत्री का पक्ष मजबूत हुआ। क्या हर्षद किसी सौदे के तहत प्रधानमंत्री को बरी करने की कोशिश कर रहे थे? कोई नहीं जानता, लेकिन अचानक हर्षद मेहता पर से दबाव हट गया और उन पर लगे नशीले पदार्थों के आरोप फिर कभी नहीं उठे।

वही अभिनेता, वही भूमिका

उस चौंकाने वाली घटना के शांत होने के बाद तीन साल तक हर्षद गुमनाम रहे। अगले दो वर्षों में उन्होंने तीन बार वापसी का प्रयास किया और हर बार अपनी करतूतों से बाजार को हिलाकर रख दिया। दो बार उन्होंने कथित तौर पर बेनामी शेयर बाजार में उतारे, जिससे व्यवस्था ठप्प हो गई। तीसरी बार वे मंत्रमुग्ध अखबार संपादकों और प्रबंधकों की मदद से एक प्रसिद्ध मुखबिर के रूप में सामने आए। आश्चर्यजनक बात यह है कि हर बार उन्हें उन्हीं छह दलालों के समूह से मदद मिली, जिनके प्रति नियामक का रवैया हाल तक आश्चर्यजनक रूप से नरम रहा।

हर्षद ने पहली बार दिसंबर 1996 में वापसी की योजना बनाई। बाजार को जिंदल समूह के तीन शेयरों की कीमतों में अचानक आई उछाल में हर्षद का हाथ होने का आभास हुआ। जिंदल और हर्षद मेहता दोनों ने अफवाहों का खंडन किया, लेकिन बाजार विश्लेषकों का कहना है कि जिंदल स्ट्रिप्स, सॉ पाइप्स और जिंदल आयरन एंड स्टील में हर्षद का दांव कुछ ही हफ्तों में विफल हो गया और जिंदल को नुकसान हुआ। जनवरी 1997 में हर्षद ने टाइम्स ऑफ इंडिया को बताया, “सबसे पहले तो मैं आपको बता दूं, मैं कीमतों में किसी भी तरह की हेराफेरी या हेरफेर में शामिल नहीं होना चाहता।” अगर यह संकल्प सच भी था, तो जल्द ही इसे त्याग दिया गया।

3 मार्च 1997 को, वह रेडिफ चैट पर दिखाई दिए और वापसी की योजना की घोषणा की। निवेशकों के लालच का फायदा उठाते हुए, उन्होंने

बड़े गर्व से घोषणा की कि बीएसई का सूचकांक 7000 तक पहुंच जाएगा। साथ ही, उन्होंने कंपनियों के रुझानों का विश्लेषण और टिप्स देने के लिए एक वेबसाइट शुरू करने की योजना की भी घोषणा की। अगर हर्षद ने उस चैट पर ध्यान दिया होता, तो उन्हें अपनी समस्याओं का अंदाजा हो जाता। यह स्पष्ट था कि हालांकि उन्हें अभी भी जनता का जबरदस्त आकर्षण प्राप्त था, लेकिन पहले जैसी अंधभक्ति गायब थी। बहुत से लोग तो बिल्कुल अविश्वास कर रहे थे। उदाहरण के लिए, किसी ने उनसे पूछा – “क्या आप खुद को नौकरीपेशा मानते हैं या फिर नौकरी के बीच में? दिवालिया होने का दावा करने के बावजूद आप इस तरह की जीवनशैली कैसे जी रहे हैं...?” इसी तरह के और भी सवाल थे, लेकिन हर्षद विचलित नहीं हुए। उन्होंने तय किया कि आम जनता और खुदरा निवेशक ही उनके समर्थक हैं, इसलिए उनकी वापसी मीडिया के माध्यम से ही होनी चाहिए। उनकी रणनीति थी: महत्वपूर्ण मीडिया एजेंटों का इस्तेमाल करके प्रमुख समाचार पत्रों में अपने कॉलम प्रकाशित करवाना, ताकि वे अपने सुझाव और विचार साझा कर सकें।

उनकी प्राथमिकता सूची में सबसे ऊपर था टाइम्स ऑफ इंडिया, वही अखबार जिसने 1992 में उन्हें बेइज्जत किया था। कुछ शीर्ष प्रबंधकों की मदद से वे लगभग वहाँ पहुँच ही गए थे, लेकिन तत्कालीन संपादकीय सलाहकार एच.के. दुआ के कड़े विरोध के कारण ऐसा नहीं हो पाया। हालांकि, वे टाइम्स समूह के एक अन्य अखबार नवभारत टाइम्स में घुसपैठ करने में कामयाब रहे। उनके मित्रवत मीडिया एजेंटों ने दो तर्क देकर उनके कॉलम प्रकाशित करवाए। पहला, हर्षद के करिश्माई व्यक्तित्व के कारण निवेशक अखबारों को खरीदने के लिए दौड़ पड़ेंगे और सर्कुलेशन में भारी वृद्धि

होगी। दूसरा, जब तक हर्षद घोटाले में सिर्फ आरोपी थे, तब तक उनके कॉलम लिखने में क्या बुराई थी? बीएसई ने भी ब्रोकर को निष्कासित करने से बचने के लिए इसी तर्क का सहारा लिया था। हर्षद मेहता के पास बीएसई में एक से अधिक कार्ड थे, जो फिलहाल निलंबित हैं। उनके अखबारों में लिखे कॉलम और वेबसाइट ने बाजार में फिर से हलचल मचा दी।

निवेश स्तंभकार के रूप में, उनकी तकनीक मूलतः एक ही थी: बाज़ार में एक सूचना जारी करके और लगातार प्रचार करके, प्रबंधन के साथ मिलकर शेयर बाज़ार में हेराफेरी करना। हर्षद ने खुद को छोटे निवेशकों के मसीहा के रूप में स्थापित किया, लेकिन उन्होंने सट्टेबाजों और कुछ खुदरा निवेशकों को भी आकर्षित किया, क्योंकि उन्होंने बीपीएल (बेसिक वैल्यू पॉइंट) को 40 रुपये से बढ़ाकर 400 रुपये कर दिया था। हालांकि, उनकी सुनियोजित योजनाएँ विफल हो गईं। जब उनका लीवरेज्ड निवेश अपने चरम पर था, जून 1998 में भारत ने परमाणु परीक्षण किया। विदेशी निवेशक घबरा गए, अपना पैसा निकाल लिया और बाज़ार धराशायी हो गया। उनके पास अपने निवेश को बनाए रखने के लिए बैंकों से असीमित धनराशि उपलब्ध नहीं थी। जब बाज़ार पूरी तरह से ध्वस्त हो गया, तो हर्षद मेहता के लिए काम करने वाले दलाल भुगतान करने में विफल रहे, जिससे बीएसई भुगतान संकट में डूब गया। बीएसई अधिकारियों, कुछ दलालों और उन कंपनियों ने, जिनके शेयरों में हेराफेरी की जा रही थी, इस संकट को बड़ी ही बेढंगी तरीके से दबा दिया।

छोटे निवेशकों के मसीहा के रूप में हर्षद मेहता की प्रतिष्ठा मात्र कुछ चालाक लोगों द्वारा गढ़ा गया एक मिथक थी। बाद में

सेबी की जांच से पता चला कि बिग बुल महज एक शातिर बाजार हेरफेर करने वाला था, जो सात फर्जी कंपनियों और अठारह दलालों के जरिए कीमतों को बढ़ा रहा था। इन कंपनियों ने बीपीएल लिमिटेड के कुल कारोबार का 70% और वीडियोकॉन और स्टरलाइट के 50% शेयरों पर कब्जा कर रखा था। जाहिर है, छोटे निवेशक हर्षद के शेयरों में पैसा लगाने के लिए उत्सुक नहीं थे; अधिकांश निवेशक यह देखने के लिए इंतजार कर रहे थे कि क्या उनका जादू लंबे समय तक चलेगा। 1992 के विपरीत, मेहता के प्रचार और मीडिया में छपी खबरों का निवेशकों पर कोई खास असर नहीं पड़ा। इससे सिर्फ इतना हुआ कि दूसरे ऑपरेटरों ने बहुत कम समय के लिए सट्टेबाजी की, जिससे उन्हें तुरंत मुनाफा तो हो गया, लेकिन बढ़े हुए शेयरों पर उनका कोई कब्जा नहीं रहा। ऐसा लगता है कि अधिकांश शेयर हर्षद मेहता के लगभग बीस दलालों के समूह के पास ही रहे। चूंकि 1998, 1992 से अलग था (बैंक फंड तक पहुंच नहीं थी), इसलिए वह छह महीने के भीतर ही धराशायी हो गए। जून 1998 के भुगतान मामले की एसईबीआई ने बेहद धीमी और हिचकिचाती हुई जांच शुरू की। यहां तक कि जब उसके पास मूल्य में हेरफेर के स्पष्ट सबूत थे, तब भी उसने टालमटोल किया और अप्रैल 2001 में ही अपना फैसला सुनाया, जब केतन पारेख घोटाले ने अचानक एसईबीआई की अन्य निष्क्रियताओं की लंबी सूची पर ध्यान केंद्रित कर दिया।
हर्षद मेहता अकेले ऐसे घोटाले के आरोपी नहीं थे जिन्होंने बार-बार वापसी की कोशिश की। राजेंद्र बंथिया, अजय कायन और केतन पारेख जैसे वही बीएसई ब्रोकर, जो 1992 के घोटाले में शामिल थे, 2001 के घोटाले में भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शामिल थे। सेबी को बंथिया के हर्षद मेहता से घनिष्ठ संबंधों और उनके

खिलाफ सीबीआई जांच की जानकारी थी, लेकिन फिर भी उसने उन्हें बीएसई का कोषाध्यक्ष और बाद में उपाध्यक्ष बनने दिया।
1995 में, बंथिया रिलायंस के शेयरों को बुरी तरह प्रभावित करने के लिए एक बड़े अंतर-एक्सचेंज ऑपरेशन (पुणे और अन्य एक्सचेंजों में) में शामिल थे। सेबी के जांचकर्ताओं को दो साल की मेहनत के बाद बंथिया को 1995 के मूल्य हेरफेर से जोड़ने वाले पुख्ता सबूत मिले। हालांकि अन्य एक्सचेंजों के खिलाफ कार्रवाई शुरू की गई, लेकिन ब्रोकर को कथित तौर पर उनके राजनीतिक संबंधों के कारण बरी कर दिया गया। सेबी ने उनसे बीएसई के शक्तिशाली पद से इस्तीफा देने के लिए भी नहीं कहा।
हर्षद द्वारा मूल्य निर्धारण में हेरफेर के कारण उत्पन्न भुगतान संकट में, हर्षद के दलालों को बीएसई द्वारा दिए गए बेलआउट में बंथिया ने अग्रणी भूमिका निभाई। बीएसई ने भुगतान संबंधी किसी भी समस्या से इनकार किया और किसी भी दलाल को डिफॉल्टर घोषित करने से मना कर दिया। एसईबीआई के अध्यक्ष, डी.आर. मेहता को भी बीएसई के बेलआउट अभियान का सक्रिय समर्थक माना गया, जबकि अधिक कुशल एनएसई ने छह दलालों को डिफॉल्टर घोषित कर दिया था।
हर्षद मेहता और उनके साथियों पर लगाम लगाने में केवल एसईबीआई ही विफल नहीं रही। कांग्रेस और संयुक्त मोर्चा दोनों सरकारों के वित्त मंत्रालय को इस बात की भली-भांति जानकारी थी कि बड़े अंतर-विनिमय लेनदेन करने वाले दलालों के एक समूह ने खुलेआम बाजारों में हेरफेर किया है। फिर भी, उसने नियामक प्रक्रिया में विश्वास जगाने के लिए कुछ नहीं किया।
अहमदाबाद के उपभोक्ता शिक्षा एवं अनुसंधान केंद्र के प्रबंध न्यासी मनुभाई शाह द्वारा दायर शिकायत के जवाब में, भारतीय

प्रेस परिषद ने उन समाचार पत्रों के खिलाफ आदेश पारित किए थे जिन्होंने हर्षद मेहता के हेरफेर को वैध ठहराया और उनके लेख प्रकाशित करके निवेशकों को प्रभावित करने में उनकी मदद की। तब तक, परिषद, जिसने 1996 में व्यावसायिक पत्रकारों के लिए आचार संहिता जारी की थी, हर्षद द्वारा मीडिया के खुलेआम दुरुपयोग को चुपचाप देखती रही।
अब सिर्फ आरोपी नहीं
संपादक और चतुर मीडिया प्रबंधक हर्षद को निवेश का मसीहा घोषित करने के लिए उत्सुक थे, यह तर्क देते हुए कि हर्षद केवल आरोपी थे और उन्हें दोषी नहीं ठहराया गया था। यह बहाना अब मान्य नहीं था। सितंबर 1999 में, न्यायमूर्ति एमएस राणे ने हर्षद मेहता को अपेक्षाकृत छोटे 38 करोड़ रुपये के मारुति उद्योग मामले में दोषी ठहराया, जिससे उन्हें बड़ा झटका लगा। अंततः, हर्षद अब प्रतिभूति घोटाले में मुख्य आरोपी नहीं रहे, उन्हें दोषी ठहराया गया।
अब उनके खिलाफ 27 मामले दर्ज हैं, एक में उन्हें पांच साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है, दो में उन्हें बरी कर दिया गया है और उन्होंने अपनी सजा के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में अपील की है। उन्होंने 1998 की गड़बड़ियों के कारण पूंजी बाजार गतिविधियों से SEBI द्वारा उन पर लगाए गए आजीवन प्रतिबंध के खिलाफ भी अपील की है।
उनके बाल कम हो गए हैं और उनमें सफ़ेद बाल आ गए हैं, चेहरा थोड़ा थका हुआ लगता है और शरीर कुछ किलो भारी हो गया है। फिर भी, अपनी सज़ा के दिन हर्षद मेहता मुस्कुराते रहे। उन्होंने मीडियाकर्मियों से कहा, “हमें न्यायपालिका पर भरोसा है। हम सर्वोच्च न्यायालय में अपील करेंगे।” पहले पूर्ण घोटाले के

मामले में दोषी ठहराए जाने के बाद वह सिर्फ़ दिखावा नहीं कर रहे थे। यह हर्षद का विशिष्ट व्यक्तित्व था, शेयर बाज़ार के पहले सुपरस्टार, एक चिरस्थायी आशावादी। जून 1992 में, जब उन्हें 110 दिनों की हिरासत से रिहा किया गया, तो उन्होंने सुचेता से कहा: “बधाई हो। आपने दशक की सबसे बड़ी कहानी उजागर की है।” यह हर्षद का विशिष्ट व्यक्तित्व था, नकारात्मक प्रचार के बीच भी आनंदित रहने की उनकी संक्रामक क्षमता। यही गुण था जिसके कारण उन्होंने बार-बार सुर्खियों में आने के प्रयास किए। अब वह आगे क्या करेंगे?

19

न्याय में देरी

पिछले सात वर्षों में विशेष न्यायालय का सबसे बड़ा कार्य यह तय करना रहा है
कि क्या अधिसूचित व्यक्ति छोटी यात्राओं के लिए भी मुंबई छोड़ सकते हैं।

यह घोटाला कितना कष्टदायक अनुभव साबित हुआ है!
इसकी जांच और मुकदमा दोनों ही बेहद दर्दनाक रहे हैं। अदालत, सीबीआई, आरबीआई, आयकर विभाग, कस्टोडियन, प्रवर्तन निदेशालय... सभी ने न्याय की गति को बेहद धीमी कर दी है। याद रहे, जल्दबाजी में बनाए गए एक अध्यादेश के तहत, घोटाले से जुड़े सभी मामलों की सुनवाई केवल विशेष न्यायालय में होनी थी। वहां लगभग 600 दीवानी

मामले लंबित हैं। कुछ विदेशी बैंकों द्वारा अभियोग लगाने के बजाय अपने नुकसान को माफ करने के समझदारी भरे फैसले के कारण यह संख्या और भी अधिक हो सकती थी। बहुत कम मामलों की सुनवाई हुई है या उन पर कोई निष्कर्ष निकला है। मौजूदा रफ्तार को देखते हुए, मुकदमा अगले दो दशकों तक चलता रहेगा।
सीबीआई ने आपराधिक मामलों के लिए 72 आरोपपत्र दाखिल किए हैं, जिनमें से केवल चार पर ही कोई कार्रवाई हुई है। सीबीआई ने चुपचाप कई महत्वपूर्ण मुकदमों को बीच में ही छोड़ दिया। गोल्डस्टार स्टील घोटाले की जांच अधर में लटकी हुई है, जिसमें प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव के बेटे और हितेन दलाल शामिल थे। इसी तरह पूर्व केंद्रीय मंत्री बी. शंकरानंद का मामला भी अधर में है, जो घोटाले के बाद इस्तीफा देने वाले दो मंत्रियों में से एक थे।
जिन मामलों का कुछ निष्कर्ष निकला है, उनमें से पहले मामले में हितेन दलाल को स्टैनचार्ट द्वारा जारी किए गए चेक को पांच महीने बाद क्लियर कराने के लिए भेजे जाने पर बाउंस करने का दोषी ठहराया गया। हितेन ने स्टैनचार्ट और उसके अधिकारी पर झूठी गवाही, अवमानना और उनके खिलाफ झूठी गवाही देने का मुकदमा दायर किया। उन्होंने दावा किया कि चेक जमा करने के लिए नहीं थे, बल्कि एक सौदे के लिए जमानत के तौर पर दिए गए थे, जो बाद में पूरा हो गया था।
11 जुलाई 2001 को, सुप्रीम कोर्ट ने हितेन की अपील खारिज कर दी और उन्हें एक साल की कैद की सजा सुनाई। यह 1992 के घोटाले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिया गया पहला फैसला था। दूसरा आपराधिक मामला स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र से संबंधित मात्र 11,000 रुपये का था। मुकदमा कुछ महीनों तक चला और अंततः आरोपियों को बरी कर

दिया गया। तीसरा मामला, जिसमें कैनम्यूचुअल की 'कैंसिगो' इकाइयों के 30 करोड़ रुपये के घोटाले शामिल थे, हितेन दलाल और कैनफिना के कर्मचारी एस मोहन को सात साल की सजा सुनाई गई। सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले पर रोक लगा दी है।
फिर सितंबर 1999 में न्यायमूर्ति एमएस राणे ने हर्षद मेहता को अपेक्षाकृत छोटे मामले, 38 करोड़ रुपये के मारुति उद्योग मामले में दोषी ठहराकर उन्हें पहला बड़ा कानूनी झटका दिया।
घोटाले के मामलों में, धन के दुरुपयोग से जुड़ा यह मामला नगण्य था - पैसा मारुति को वापस मिल गया था, जो खुद इस मामले को आगे बढ़ाने के लिए अनिच्छुक थी।
फैसले से एक दिन पहले, हर्षद के वकील बरी होने को लेकर बेहद आश्वस्त थे। हर्षद, जिन्होंने पहले ही एक स्तंभकार और बाजार विश्लेषक के रूप में वापसी का असफल प्रयास किया था, के लिए बरी होने से उन्हें यह दावा करने का मौका मिल जाता कि यह इस बात का संकेत है कि उनके खिलाफ सभी सत्ताईस मामले अंततः कैसे सुलझेंगे। चूंकि अन्य कोई भी मामला निपटारे के करीब नहीं था, इसलिए अगले कुछ वर्षों तक किसी को भी इस बारे में कोई जानकारी नहीं होती और तब तक, अपनी कमज़ोर याददाश्त के लिए कुख्यात आम जनता 1992 के घोटाले में अपनी सारी दिलचस्पी खो चुकी होती। दरअसल, हर्षद की 1998 में बेशर्मी से की गई वापसी ठीक इसी आधार पर थी कि वह केवल एक आरोपी था, दोषी नहीं। न्यायमूर्ति राणे के फैसले ने इस तर्क को पूरी तरह से खारिज कर दिया।
अधिकांश मुकदमे दीवानी विवाद हैं, जिनका अब कोई महत्व नहीं है। इस नौ वर्षों की अवधि में, विवादित राशि तीन गुना से अधिक हो गई होती और मुकदमेबाजी में लगने वाले समय और लागत की बचत एक अतिरिक्त लाभ होती। पीछे मुड़कर देखें तो, विदेशी बैंक

जिन्होंने चुपचाप अपने नुकसान को बट्टे खाते में डाल दिया और बिना प्रचार के दावों का निपटारा कर दिया, वे वास्तव में बहुत चतुर प्रतीत होते हैं। राष्ट्रीयकृत बैंकों के पास ऐसे निर्णय लेने की सुविधा नहीं थी।
यह घोटाला एक जर्जर प्रणाली और कमजोर नियामक ढांचे के तहत हुआ, जिससे सैकड़ों विवादित लेनदेन बेहद जटिल हो गए। न्यायाधीशों के लिए विशेषज्ञ सहायता के बिना इन्हें समझना मुश्किल रहा है, लेकिन अदालत ने कभी कोई विशेषज्ञ सहायता नहीं मांगी। न्यायाधीश सुनवाई के दौरान जटिल प्रतिभूति सौदों को सुलझाने का प्रयास कर रहे हैं। विडंबना यह है कि सात वर्षों के इस अनुभव के बाद, न्यायमूर्ति सैम वारियावा को सर्वोच्च न्यायालय में पदोन्नत किया गया और उनके उत्तराधिकारी न्यायमूर्ति राणे जल्द ही सेवानिवृत्त हो गए। विशेष न्यायालय की अध्यक्षता अब न्यायमूर्ति एस.एच. कपाड़िया और न्यायमूर्ति डी.के. त्रिवेदी कर रहे हैं। दीवानी और आपराधिक मामलों का अब एक ढीला विभाजन है; न्यायमूर्ति कपाड़िया मुख्य रूप से दीवानी मामलों के प्रभारी हैं, कुछ मामलों को छोड़कर जिनमें वे दीवानी और आपराधिक दोनों आरोपों की सुनवाई कर रहे हैं। न्यायमूर्ति त्रिवेदी के पास अधिकांश आपराधिक मामले हैं।
मुकदमों की सुनवाई धीमी गति से आगे बढ़ने के साथ, अभियोजन पक्ष को अन्य चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। कई प्रमुख आरोपी या गवाह गुजर चुके हैं; सीबीआई की प्रारंभिक जांच टीम के सभी सदस्यों का तबादला हो चुका है, उन्हें पदोन्नत किया जा चुका है या वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं। सभी विदेशी बैंकों के देश प्रमुख और वित्त प्रमुखों ने इस्तीफा दे दिया है और कई अब देश में नहीं हैं।

इसके विपरीत, भारतीय बैंकों के कई मध्य और कनिष्ठ स्तर के अधिकारी, जिनका कोई प्रभाव नहीं है, इस घोटाले में शामिल पाए गए हैं, अक्सर तकनीकी अपराधों के लिए, और उनका करियर पूरी तरह से बर्बाद हो गया है। इनमें से कई या तो निर्दोष हैं या फिर उन्होंने केवल लापरवाही बरती है। उनके लिए न्याय की कोई उम्मीद नहीं है, उनका करियर बर्बाद हो चुका है और आत्मरक्षा के भारी खर्च ने उन्हें कंगाल कर दिया है। अपने संगठनों द्वारा त्यागे जाने के कारण, उनमें से अधिकांश के पास कानूनी बचाव के लिए धन नहीं है और वे धीमी और अक्सर भ्रष्ट जांच प्रक्रिया से निपटने में असमर्थ हैं।
अभियोजित संस्थाओं की संपत्तियों, धन और शेयरों को अभिरक्षित कर लिया गया है, लेकिन इनमें से अधिकांश अभी भी जब्त हैं। अधिसूचित पक्षों के नाम पर 39.5 मिलियन शेयर पंजीकृत हैं, जिनमें से अधिकांश हर्षद मेहता समूह के हैं। अभियोजित संस्थाओं के पास पंजीकृत शेयरों का कुल मूल्य एक समय 658 करोड़ रुपये था। अभियोजित संस्थाओं के पास 18.9 मिलियन अपंजीकृत शेयर और 8.07 मिलियन बेनामी शेयर हैं। ये लगभग 300 कंपनियों के हैं। अभियोजित संस्थाओं ने अधिसूचित व्यक्तियों के शेयरों की बिक्री पर सलाह देने के लिए एक विशेषज्ञ 'निपटान' समिति भी गठित की थी। लेकिन यह भी मुकदमेबाजी में फंसी हुई है। जनवरी 2001 में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले से बिक्री के लिए अंतिम मंजूरी मिलने का संकेत मिला था, लेकिन अभियोजित संस्थाओं ने एक और अंतिम अपील दायर कर इसमें और देरी कर दी है।
रिप्ले के बिलीव-इट-ऑर-नॉट उपन्यास की कहानी की तरह, पिछले सात वर्षों में विशेष न्यायालय का सबसे बड़ा कार्य यह तय करना रहा है कि क्या अधिसूचित व्यक्ति मुंबई से छोटी यात्राओं के लिए भी

बाहर जा सकते हैं (इसमें मुंबई से एक घंटे की ड्राइव पर स्थित उपनगर ठाणे भी शामिल था)।
30 अक्टूबर 1999 तक, विशेष न्यायालय ने ऐसे 14,927 आवेदनों का निपटारा किया। 1993 में मुंबई को हिला देने वाले विनाशकारी सिलसिलेवार बम धमाकों के मुकदमे में शामिल आरोपियों पर भी ऐसी कड़ी शर्त लागू नहीं थी।
प्रत्येक आवेदन पर लगभग 10,000 रुपये का खर्च आता था; इसके लिए चार प्रतियों में हलफनामा, वकीलों की फीस और आवेदन पर विचार करने और आदेश देने के लिए न्यायालय के कम से कम दस मिनट का समय आवश्यक था। अक्सर, प्रक्रिया में अधिक समय लगता था क्योंकि न्यायाधीश आरोपियों से उनकी यात्रा के कारणों के बारे में पूछताछ करते थे और कभी-कभी अनुमति अस्वीकार कर देते थे। कभी-कभी न्यायालय यात्रा की अनुमानित लागत का हिसाब लगाकर आरोपियों को लगभग उतनी ही राशि संरक्षक के पास जमा करने के लिए कहता था। कई बार, इन परिस्थितियों का सामना करने पर आरोपियों ने अपनी यात्रा योजनाएँ रद्द कर दीं। अंततः, 2000 में भूपेन दलाल के एक आवेदन के जवाब में, अदालत ने देश के भीतर आरोपियों की यात्रा पर लगे सभी प्रतिबंध हटा दिए।
अदालत आरोपियों द्वारा अपने वकीलों की फीस के लिए धन जारी करने हेतु संरक्षक से अनुरोध करने वाले अनगिनत आवेदनों की सुनवाई भी करती है। अकेले हर्षद मेहता समूह ने ही वर्षों में संभवतः ऐसे 50 आवेदन दायर किए हैं।
1993 में अदालत द्वारा सुनवाई शुरू करने के तुरंत बाद, बेनामी शेयरों को उजागर करने की आवश्यकता महसूस हुई। ये वे शेयर थे जो घोटाले के आरोपियों ने 1992 में बाजार के नामों से रखे थे, और माना जाता है कि उन्होंने जांच शुरू होने के तुरंत बाद पैसे

अधिकार है कि निर्णय किस साक्ष्य पर आधारित है। जनता के सदस्य किसी भी स्तर पर आगे आकर साक्ष्यों द्वारा उजागर किए गए तथ्यों पर और प्रकाश डाल सकते हैं। न्याय कभी भी गुप्त नहीं होना चाहिए
– इसे खुलेआम दिया जाना चाहिए।” उन्होंने शपथ पर साक्ष्य लेने का भी निर्णय लिया ताकि “साक्ष्य देने वाले जिम्मेदारी की भावना और झूठी गवाही देने के परिणामों की जानकारी के साथ ऐसा करें।” मुंद्रा जांच सर्वोच्च न्यायालय में अपील सहित दो वर्षों में पूरी हो गई।
इसके विपरीत, जेपीसी ने बंद कमरे में जांच पर जोर दिया, जिसमें प्रत्येक दिन के अंत में चुनिंदा पत्रकारों को ही जानकारी दी जाती थी। तब से यह जांच अपनी प्रासंगिकता खो बैठी। अब हमें एक और घोटाले से निपटना है और इसकी जांच के लिए एक और जेपीसी का गठन किया गया है, जिसने 1992 की सुनवाई की ही प्रक्रिया अपनाई है। क्या हमें लीपापोती के अलावा कुछ और मिलेगा? पिछली बार जो हुआ, उसे देखिए।
जेपीसी का तमाशा
जेपीसी के सदस्य दस्तावेजों के अंबार में उलझे रहे और मंत्रियों को पूछताछ के लिए बुलाने पर गरमागरम बहस करते रहे – मानो इससे पता चल जाएगा कि पैसा कहां गया और कैसे गया। हैरानी की बात है कि कोई भी इस सवाल का जवाब नहीं देना चाहता था। जेपीसी की रिपोर्ट अनुचित सौदेबाजी का नतीजा थी, जिससे व्यवस्था को कोई खास फायदा नहीं हुआ। सबसे चौंकाने वाला सुराग जो दब गया, वह था हर्षद का प्रेस कॉन्फ्रेंस में खुला आरोप कि उन्होंने प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव को रिश्वत दी थी।

महीने की शुरुआत में प्रधानमंत्री के खिलाफ लगाए गए उनके आरोप के बाद हर्षद को 30 जून 1993 को जेपीसी की सुनवाई में फिर से बुलाया गया। उन्होंने कई राजनेताओं को रिश्वत देने की बात स्वीकार की, लेकिन दावा किया कि वे इसका सबूत नहीं दे सकते। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि प्रधानमंत्री के खिलाफ उनका आरोप उत्पीड़न से खुद को बचाने की हताशा में उठाया गया कदम था। उन्होंने वादा किया कि वे उन अन्य राजनेताओं के नाम बताएंगे जिन्हें उन्होंने रिश्वत दी थी, लेकिन केवल तभी जब उन्हें छूट दी जाए। जब उनसे पूछा गया कि वे किस प्रकार की छूट मांग रहे हैं, तो हर्षद ने जेपीसी को बताया, "विभिन्न अन्यायपूर्ण जांचों से छूट जो मुझे एक विशेष दिशा में धकेलने के लिए चल रही हैं।" स्टेट बैंक ऑफ इंडिया और एएनजेड ग्रिंडलेज से नकदी निकालने, उसे इंडियन एयरलाइंस की उड़ान से दिल्ली ले जाने और इस बात का विस्तृत वर्णन करने के बावजूद कि कैसे इस भुगतान के परिणामस्वरूप बीएसई द्वारा अत्यधिक सट्टेबाजी पर नरमी बरतने के रूप में उन्हें तत्काल लाभ हुआ, उनके आरोप को नजरअंदाज कर दिया गया।
जेपीसी रिपोर्ट के साथ संलग्न एक नोट में, कुछ विपक्षी सांसदों ने
(1992 में) जिनमें जसवंत सिंह, जॉर्ज फर्नांडीस, एस जयपाल रेड्डी, गुरुदास दासगुप्ता और अन्य शामिल थे, शिकायत की कि हर्षद मेहता के अलावा, रिश्वत कांड से जुड़े किसी अन्य गवाह से समिति द्वारा पूछताछ नहीं की जा सकी। उन्होंने सीबीआई के असहयोग पर नाराजगी जताई और उस पर “अस्वाभाविक जल्दबाजी में निष्कर्ष निकालने” का आरोप लगाया। अंततः उन्होंने यह मांग करते हुए मामले को निपटाया कि “श्री हर्षद मेहता द्वारा 1 करोड़

रुपये के भुगतान के आरोपों के इस पूरे मामले में जांच आयोग अधिनियम के तहत विस्तृत जांच की आवश्यकता है। हमारा यह भी मानना है कि ऐसी जांच के निष्कर्ष छह महीने के भीतर संसद को प्रस्तुत किए जाने चाहिए।”
हालांकि, इस नोट का जवाब वफादार कांग्रेस सांसदों के एक अन्य नोट से दिया गया जिसमें कहा गया कि हर्षद मेहता की गवाही में “कई अंतर्निहित विरोधाभास” थे और “समिति के पास उपलब्ध रिकॉर्ड प्रधानमंत्री को रिश्वत देने के मेहता के आरोपों की पुष्टि नहीं करते हैं।” उन्होंने आरोप लगाया कि वह ‘राजनीतिक संरक्षण’ के अपने आरोप को साबित नहीं कर सके, क्योंकि उन्हें बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज में अपनी समस्याओं से बचने का मौका दिया गया था। इस प्रकार, ठोस सबूतों के साथ स्थापित एक मौजूदा प्रधानमंत्री के खिलाफ सबसे गंभीर आरोप को खारिज कर दिया गया। एक अन्य लीपापोती में त्रिपुरा के तत्कालीन राज्यपाल रमेश भंडारी शामिल थे। उन पर आरोप था कि उन्होंने हर्षद मेहता के विदेशी खातों से किए गए कुछ रिश्वत के लेन-देन से कुछ राजनीतिक नेताओं को बदनाम करने की साजिश रची थी। यहाँ भी कांग्रेस समर्थकों ने तर्क दिया कि यह मुद्दा जेपीसी के कार्यक्षेत्र में नहीं आता। विपक्षी सांसदों के एक नोट में बताया गया कि भंडारी ने "समिति के काम से संबंधित हलफनामे, यहाँ तक कि एक विदेशी और तस्कर से भी, प्राप्त किए थे", और हर्षद मेहता के हवाला लेन-देन के बारे में जानकारी समिति से छुपाई थी। सांसदों ने आरोप लगाया कि इस मुद्दे पर सरकार की व्याख्याएँ 'पूरी तरह से असंतोषजनक' थीं और उन्होंने छह महीने के भीतर संसद को इस मुद्दे पर रिपोर्ट देने की मांग की। लेकिन इसका कोई नतीजा नहीं निकला।

नरसिम्हा राव से संबंधित तीसरा मामला उनके बेटों और हैदराबाद स्थित गोल्डस्टार स्टील एंड अलॉयज लिमिटेड नामक कंपनी से जुड़ा था। अप्रैल 1992 में, घोटालेबाज हितेन पी दलाल ने आंध्र बैंक में अपने खाते से दो करोड़ रुपये निकाले और आंध्र बैंक फाइनेंशियल सर्विसेज के माध्यम से गोल्डस्टार को भुगतान किया। जेपीसी के समक्ष गवाही देते हुए गोल्डस्टार के प्रबंध निदेशक एन कृष्ण मोहन ने कहा कि यह पैसा
उसके राइट्स इश्यू के लिए सदस्यता बढ़ाने के उद्देश्य से था, जो लड़खड़ा रहा था और 11 मई 1992 को बंद होने वाला था।
नरसिम्हा राव के पुत्र पीवी प्रभाकर राव का गोल्डस्टार से घनिष्ठ संबंध था और यह स्पष्ट था कि हितेन की उदारता इसी संबंध से प्रभावित थी। गोल्डस्टार ने कई कमजोर स्पष्टीकरण दिए, जिन्हें जेपीसी की जांच ने गलत साबित कर दिया। जेपीसी ने एसईबीआई द्वारा जांच का आदेश दिया, जिसने निष्कर्ष निकाला कि प्रमोटरों द्वारा प्राप्त धन के विवरण को सत्यापित करने के लिए गोल्डस्टार के रिकॉर्ड और खातों की पुस्तकों का निरीक्षण करना उचित था।
जेपीसी ने एसईबीआई, सीबीआई, कंपनी मामलों के विभाग, आरबीआई और केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड की संयुक्त टीम द्वारा जांच का भी आदेश दिया। अंततः, गोल्डस्टार जांच की कीमत चुकाने वाला एकमात्र व्यक्ति एसईबीआई के पूर्व प्रमुख जीवी रामकृष्ण थे। उनकी निष्पक्ष और तटस्थ रिपोर्ट से प्रधानमंत्री नाराज हो गए और उन्हें तुरंत योजना आयोग में भेज दिया गया।
जेपीसी की रिपोर्ट भी बेहद असामान्य थी। हालांकि मुख्य रिपोर्ट सांसदों के सर्वसम्मत विचारों के रूप में प्रस्तुत की गई थी, लेकिन नरसिम्हा राव पर रिश्वतखोरी के आरोपों, उनके बेटों

द्वारा गोल्डस्टार में की गई गड़बड़ियों और रमेश भंडारी की साजिशों से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों को "अन्य मुद्दे" शीर्षक के अंतर्गत डाल दिया गया था। रिपोर्ट के साथ सांसदों के विभिन्न समूहों द्वारा छह टिप्पणियां संलग्न की गई थीं। भाजपा के नेतृत्व वाले विपक्ष ने "अन्य" मुद्दों पर निष्क्रियता और सीबीआई की धीमी गति की कड़ी आलोचना की। केपी उन्नीकृष्णन का मानना था कि कई टिप्पणियां अत्यधिक कठोर थीं और जहां दोष सिद्ध नहीं हुआ था, वहां दोष मढ़ा गया था। उन्होंने बदले की भावना से की गई कार्रवाई के बजाय कई व्यावहारिक व्यवस्थागत बदलावों की वकालत की। सीपीआई सांसद गुरुदास दासगुप्ता ने उद्योगपतियों और दलालों के बीच सांठगांठ पर हमला किया, नाम लेकर कई नौकरशाहों और बैंकरों पर प्रमोटरों के कोटे के शेयर हासिल करने के विशिष्ट आरोप लगाए और तत्कालीन आरबीआई गवर्नर एस वेंकिटारमनन और आर्थिक मामलों के सचिव मोंटेक सिंह अहलूवालिया पर गंभीर आरोप लगाए।
सांसदों को औपचारिक असहमति के बजाय टिप्पणियाँ संलग्न करने के लिए कैसे राजी किया गया? जैसा कि गुरुदास दासगुप्ता ने अपनी ‘टिप्पणी’ में कहा, जेपीसी “न्यूनतम सहमत बिंदुओं” के आधार पर सर्वसम्मति पर पहुँची थी और “मैंने सोचा कि मुझे भी इसका समर्थन करना चाहिए ताकि एक सर्वसम्मत रिपोर्ट, भले ही उसके निष्कर्ष सीमित और आंशिक हों, देश पर आवश्यक प्रभाव डाल सके।”
ऐसा कुछ नहीं हुआ। जेपीसी की रिपोर्ट कुछ दिनों तक सुर्खियों में रही और फिर गुमनामी में खो गई। विपक्ष सहित सभी सांसद संभवतः रिपोर्ट तैयार करने के कठिन कार्य से इतने बोझिल थे कि वे अपनी ही सिफारिशों और मांगों पर अमल नहीं कर पाए। अंततः, जेपीसी ने घोटाले को समझने का प्रयास ही नहीं किया और उसकी

रिपोर्ट मनमोहन सिंह और एस वेंकिटारमनन जैसे व्यक्तियों को बदनाम करने का एक जरिया मात्र प्रतीत होती है। इसकी संदिग्ध उपलब्धियों में सीबीआई के आधे-अधूरे सच को आँख बंद करके स्वीकार करना और के माधवन के इस्तीफे के कारण बताने वाले पत्र को प्रसारित न करना शामिल है।
सीबीआई, ईडी और अन्य एजेंसियां
सरकार की कठपुतली बनकर काम कर रही केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबी) ने जांच पूरी करने और आरोपपत्र दाखिल करने के बजाय, यह अफवाह फैलाने में व्यस्त रही कि सीबीआई के संयुक्त निदेशक के. माधवन ने पदोन्नति न मिलने के कारण इस्तीफा दे दिया और हर्षद नशीले पदार्थों के व्यापार को वित्तपोषित कर रहा था। इसने जेपीसी से महत्वपूर्ण जानकारी भी बार-बार छिपाकर रखी। माधवन ने समिति को यह बताकर सीबीआई और उसके प्रमुख को शर्मिंदा किया कि घोटालेबाजों के विदेशी खातों की जांच करने के उनके सुझाव को नजरअंदाज कर दिया गया था।
जैसे कि अपनी इज्जत बचाने के लिए, सीबीआई ने रविवार, 14 फरवरी 1993 की रात को सरकारी समाचार एजेंसियों जैसे दूरदर्शन, पीटीआई और यूएनआई में एक रिपोर्ट प्रकाशित करवाई। इसमें कहा गया था: सीबीआई ने हर्षद के स्विस बैंक खातों को फ्रीज कर दिया है। इंडियन एक्सप्रेस ने स्विस अधिकारियों से इसकी पुष्टि की और पाया कि यह सच नहीं था। सीबीआई ने और भी घटिया तरीके से झूठ बोलने की कोशिश की, यह कहते हुए कि कुछ खाते पहले फ्रीज किए गए थे लेकिन बाद में उन्हें मुक्त कर दिया गया। इंडियन एक्सप्रेस के अनुसार, यह भी झूठ था। सीबीआई ने अपने मुख्य हथियार का इस्तेमाल जारी रखते हुए यूनाइटेड कमर्शियल बैंक के पूर्व

अध्यक्ष के. मार्गबंथु को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें कई हफ्तों तक हिरासत में रखा।
प्रवर्तन निदेशालय ने हर्षद मेहता और घोटाले में शामिल कई अन्य लोगों द्वारा प्राप्त विदेशी धन के बारे में विशिष्ट जानकारी प्रस्तुत की थी। कई वर्षों तक यह मामला दबा रहा, फिर अचानक जुलाई 2000 में बॉम्बे सिटी सिविल कोर्ट में इसकी सुनवाई हुई। अदालत ने हर्षद मेहता, उनके भाइयों अश्विन, सुधीर और हितेश के साथ-साथ दो सहयोगियों निरंजन शाह और जयराज जावा को
20 जुलाई 2000 से प्रतिदिन सुनवाई के लिए पेश होने का आदेश दिया। विडंबना यह है कि घोटाले के आठ साल बाद, प्रवर्तन निदेशालय अदालत से अतिरिक्त समय की गुहार लगा रहा था क्योंकि वह "31 शिकायतें दर्ज करने की योजना बना रहा था।" अतिरिक्त मुख्य महानगरीय मजिस्ट्रेट उषा अय्यर ने ईडी की सुनवाई स्थगित करने की याचिका खारिज कर दी, जिसमें ईडी ने आरोप लगाया था कि हर्षद ने हवाला के पैसे से प्राप्त 400,000 डॉलर का उपयोग करके 11.1 मिलियन रुपये के शेयर खरीदे थे। इन शेयरों को जब्त कर लिया गया था।
भारतीय रिज़र्व बैंक (आरबी) अधिक अधिकारपूर्वक कार्रवाई कर सकता था। आखिरकार, उसके पास खातों में हेराफेरी, अवैध लाभ की हेराफेरी और सूचना छिपाने के सबूत थे। उदाहरण के लिए, उसने पाया था कि "एनएचबी के बहीखातों में खरीद-बिक्री लेनदेन का पूरा लेखा-जोखा फर्जी था।" यह एक गंभीर आरोप था, लेकिन इस पर कोई कार्रवाई नहीं की गई।
जून 1994 में, आरबीआई ने पीएमएस योजनाओं और रेडी फॉरवर्ड लेनदेन के दुरुपयोग सहित प्रतिभूति घोटाले में विभिन्न उल्लंघनों के लिए पैंतीस बैंकों के खिलाफ जुर्माना तय किया।

इसने बीस बैंकों पर मात्र 147 करोड़ रुपये का जुर्माना लगाया और सभी पैंतीस बैंकों को अतिरिक्त जमा पर 10% का अतिरिक्त नकद आरक्षित अनुपात बनाए रखने का निर्देश दिया। सिटीबैंक को सबसे अधिक 50.5 करोड़ रुपये का जुर्माना देना पड़ा, स्टैंडर्ड चार्टर्ड को 34.2 करोड़ रुपये, हांगकांग और शंघाई बैंकिंग कॉर्पोरेशन को 17.9 करोड़ रुपये, बैंक ऑफ अमेरिका को 11.6 करोड़ रुपये और स्टेट बैंक ऑफ इंडिया को 11.2 करोड़ रुपये का जुर्माना देना पड़ा। अमेरिकन एक्सप्रेस, एएनजेड ग्रिंडलेज, ब्रिटिश बैंक ऑफ मिडिल ईस्ट, ड्यूश बैंक और बैंके इंडोसुएज़ जैसे अन्य बैंकों पर 2-3 करोड़ रुपये का जुर्माना लगाया गया।
यह प्रतिभूति घोटाला मुकदमा वित्तीय घोटालों से निपटने के गलत तरीकों का एक उदाहरण है और केतन पारेख के मुकदमे के समय एक संदर्भ के रूप में उपयोगी साबित होना चाहिए। हर्षद मेहता के खिलाफ 27 मामलों में से केवल एक फैसला आना किसी भी मानक से निराशाजनक है। भारी मात्रा में धन फंसा हुआ है, 1992 से कई बार शेयर बाजार में तेजी आने के बावजूद, कस्टोडियन कार्यालय द्वारा जब्त किए गए शेयरों को बेच नहीं पाया है। इनमें से कुछ शेयर अब पूरी तरह से बेकार हो गए हैं।
इस घोटाले का एक परिणाम यह था कि सेबीआई को वैधानिक मान्यता मिल गई। लेकिन घोटाले की जांच में ढिलाई बरती गई और सेबी ने एक सतर्क निगरानी संस्था के रूप में अपनी भूमिका बखूबी नहीं निभाई, इसलिए हर्षद को वापसी के कई मौके मिले। इससे भी दिलचस्प बात यह है कि एक और तेजी के दौर और एक नए खिलाड़ी के उदय के लिए अनुकूल परिस्थितियां बनी रहीं।

20

केतन का कमाल

बाजार को पता चला कि 'केपी' को अपने पैसे को दोगुना या तिगुना करने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह चाहता था
कि एक साल में उसका पैसा 10 गुना बढ़ जाए।

हालांकि नई जेपीसी अपनी इस जांच को सही ठहराने के लिए ढेर सारे दस्तावेज जरूर लिखेगी
(जैसा कि पिछली बार दूसरी जेपीसी ने किया था), घोटाला 2001 काफी सरल था। आधा दर्जन कंपनियों, कुछ बैंकों और निजी (मुख्य रूप से एनआरआई) स्रोतों से जुटाए गए पैसे को कुछ चुनिंदा, बुलबुले वाले शेयरों में लगाया गया, जिनकी कीमत 95% तक गिर गई, जिससे बड़े पैमाने पर डिफॉल्ट की एक श्रृंखला शुरू हो गई। इसमें कोई शक नहीं कि चालाक मंदी के विश्लेषक और एक डॉट कॉम कंपनी द्वारा रची गई एक अनोखी स्टिंग ऑपरेशन शामिल थी, जिसका मकसद शेयर बाजार में आई भीषण गिरावट को तेज करना और उसे रंगीन रूप देना था, लेकिन 2001 के घोटाले का सार पूरी तरह से केतन पारेख और शेयर बाजार में उनके अनियंत्रित और भारी मात्रा में किए गए अत्यधिक व्यापार में छिपा था। यह आदमी कौन था, उसके कारनामे कितने बड़े थे और वह सिर्फ दो साल में गुमनामी से प्रसिद्धि और फिर बदनामी तक कैसे पहुंच गया?
पारेख, दशकों पुरानी एक पारंपरिक ब्रोकिंग कंपनी के शर्मीले और शांत स्वभाव के सदस्य थे, जो कुछ वर्षों से एक बड़े सट्टेबाज थे,

लेकिन उनके बारे में बहुत कम जानकारी थी। मार्च 2001 में बिज़नेस स्टैंडर्ड में छपे एक लेख के अनुसार: “उनके दादा नरभराम हरकचंद और पिता विनोद नवोदित व्यापारियों के लिए अत्यंत सम्मानित मार्गदर्शक और सलाहकार थे। यह स्वाभाविक ही था कि पारेख अपने पूर्वजों के दिखाए रास्ते पर चलें और उनके प्रयासों को और बेहतर बनाने की कोशिश करें। स्वाभाविक प्रगति के नियम का पालन करते हुए, यह युवक अक्सर बीएसई के ट्रेडिंग रिंग में टाटा इंजीनियरिंग और बजाज ऑटो के काउंटरों पर देखा जाता था, जहाँ वह उस समय के सर्वश्रेष्ठ व्यापारियों के साथ प्रतिस्पर्धा करता था।”
लेकिन बड़े मुकाम हासिल करने के उनके शुरुआती प्रयास बुरी तरह विफल रहे, मुख्य रूप से बदकिस्मती और अस्थिर बाजार के कारण। बिज़नेस स्टैंडर्ड में उनके एक सहयोगी ने कहा: “हालाँकि सफलता हमेशा आसानी से नहीं मिलती। ऊँचाइयों के साथ-साथ गिरावट भी आती है। पोखरण संकट के बाद उन्हें एक बड़ा झटका लगा। एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी (एसीसी) में निवेश करना ही इसका कारण बना।” 1999 की शुरुआत में, कुछ बड़े 'ऑपरेशनों' के बाद, वह प्रमोटरों, संस्थागत निवेशकों और खुदरा सट्टेबाजों के लिए एक सम्मोहक मसीहा के रूप में उभरे, और उन्होंने कई संदिग्ध कंपनियों को शेयर बाजार में शीर्ष स्थान तक पहुँचाया।
1999 के मध्य तक, केतन को एक ऐसा अनूठा उपनाम मिल चुका था जो भारतीय बाजार प्रणाली में हेरफेर करने की उनकी क्षमता को दर्शाता है: 'वन-मैन आर्मी'। 1999 के शुरुआती तेजी के दौर में, बाजार ने पारेख के अकेले दम पर किए गए कारनामों के बारे में सुना, जिसकी शुरुआत पेंटाफोर सॉफ्टवेयर (अब पेंटामीडिया ग्राफिक्स) नामक एक अछूत सॉफ्टवेयर कंपनी से हुई और फिर ग्लोबल

टेलीसिस्टम्स, अफटेक इंफोसिस, हिमाचल फ्यूचरिस्टिक, ज़ी टेलीफिल्म्स आदि तक पहुँची। उनके पास मुख्य रूप से वफादार हीरा व्यापारी समुदाय से मिलने वाले अटूट धन के स्रोतों के बारे में कानाफूसी शुरू हो गई। बाजार को पता चला कि 'केपी' को अपने पैसे को दोगुना या तिगुना करने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह इसे एक साल में दस गुना बढ़ाना चाहते थे। उनकी संपत्ति हजारों करोड़ में बताई जाती थी। उन्होंने यह कैसे किया?
कार्यप्रणाली
पहला कदम वही बुनियादी तरकीब थी जो किसी भी स्टॉक ऑपरेटर की रणनीति में होती है: प्रमोटरों से बाजार मूल्य से काफी कम दाम पर पर्याप्त हिस्सेदारी खरीदना
और स्टॉक को बाजार में उतारना। हालांकि, केतन के बाकी कदम अलग थे। सभी ऑपरेटरों को अनिवार्य रूप से एक निकास योजना के बारे में सोचना पड़ता है। कुछ गड़बड़ होने पर बेकार शेयरों के बोझ से खुद को बचाने के लिए, वे आमतौर पर प्रमोटरों के साथ स्टॉक वापस उन्हें बेचने का समझौता करते हैं। इस तकनीक को करीब से देखने के बाद, केतन जानते थे कि यह कई ऑपरेटरों के लिए घातक साबित होती है। अधिकांश भारतीय प्रमोटर गड़बड़ होने पर अपनी प्रतिबद्धता निभाने से इनकार कर देते हैं। चार्टर्ड अकाउंटेंट के रूप में योग्यता प्राप्त करने के बाद बाजार में अपने लंबे अनुभव के कारण, उन्हें सैकड़ों कंपनियों के वित्तीय और व्यावसायिक विवरणों और उनके मालिकों की बाजार गतिविधियों की जानकारी थी। उन्होंने प्रमोटरों के बारे में अपनी राय बना ली थी और उनमें से कई के साथ लेन-देन करने से इनकार कर दिया था। हर्षद के विपरीत, जिसने प्रमोटरों के साथ सौदे किए लेकिन जनता के बीच एक आधार बनाना चाहता था और संभवतः उनके खरीदने पर बाहर निकलना चाहता था,

केतन जानता था कि उसका मुख्य ध्यान संस्थागत निवेशकों पर होना चाहिए।
केतन की पारिवारिक ब्रोकिंग फर्म, एनएच सिक्योरिटीज, एक संस्थागत ब्रोकर थी, लेकिन उनकी रणनीति को मजबूत करने वाला एक कारक 1998 के मध्य का उनका दर्दनाक अनुभव हो सकता है, जब भारत के परमाणु परीक्षणों के बाद विदेशी संस्थागत निवेशकों ने अंधाधुंध बिकवाली शुरू कर दी थी। साल की शुरुआत से ही बाजार में लगातार तेजी आ रही थी, जिससे सट्टेबाजों को 1 जून को पेश होने वाले बजट से ठीक पहले भारी मात्रा में लॉन्ग पोजीशन बनाने का प्रोत्साहन मिला।
11 मई को भारत ने परमाणु परीक्षण किया, जिससे विदेशी सहायता बंद हो गई और विदेशी निवेशक भयभीत हो गए। उस भयावह घटना के बाद बाजार में थोड़ी तेजी आई, लेकिन यशवंत सिन्हा के निराशाजनक बजट के बाद, इसमें तेजी से गिरावट आई क्योंकि विदेशी निवेशकों (एफआईआई) ने भारी बिकवाली की (क्योंकि वे निराश थे) और यूटीआई ने हताशा में बिकवाली की (क्योंकि वह दिवालिया हो गई थी और उसे जून के अंत तक लाभांश का भुगतान करना था)। कई सट्टेबाजों (जिनमें हर्षद मेहता भी शामिल थे) को भारी नुकसान हुआ।
उस घटना से केतन को एक बार फिर एहसास हुआ कि संस्थाएं कितनी शक्तिशाली हैं। वे ही बाजार के साथ-साथ व्यक्तिगत शेयरों को भी बना या बिगाड़ सकती हैं। तो, वह शेयरों की पहचान करते, उन्हें एक निश्चित स्तर तक ले जाते और फिर फंड मैनेजरों को बेच देते। उन्हें पहले से ही अनुमान लगाना होता था कि क्या वे फंड मैनेजरों के लिए किसी विशेष शेयर में पर्याप्त रुचि पैदा कर पाएंगे। इन तीन बातों को मिला दें - प्रमोटर का चयन, निकास की आवश्यकता (प्रमोटर बायबैक बिल्कुल नहीं) और फंड मैनेजरों पर

ध्यान केंद्रित करना - तो यही केतन की रणनीति थी। समय भी बिल्कुल सही था।
जैसे ही 1998 का अंत हुआ और बीएसई का संवेदनशील सूचकांक 2800 के स्तर से धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगा, भारत एक बार फिर निवेशकों के लिए एक आकर्षक गंतव्य बन गया। विदेशी संस्थागत निवेशकों ने कम मूल्य वाली भारतीय कंपनियों, विशेष रूप से भारतीय सॉफ्टवेयर कंपनियों में पैसा लगाना शुरू कर दिया। सूचकांक 3600 से तेजी से ऊपर चढ़ गया। जैसे-जैसे महीने बीतते गए, यह उछाल और भी वास्तविक लगने लगा, क्योंकि बाजार ने चुनावों की अनिश्चितता और कारगिल युद्ध दोनों को दरकिनार कर दिया। मामूली उतार-चढ़ाव को छोड़कर, सूचकांक साल की शुरुआत में लगभग 3000 से बढ़कर साल के अंत तक 5000 तक पहुंच गया।
जबकि दुनिया Y2K जैसी किसी अप्रत्याशित घटना का बेसब्री से इंतजार कर रही थी। फिर 2 जनवरी से शुरू होकर, बाजार 14 फरवरी को 6150 के स्तर तक उछल गया।
इसकी अंतिम उछाल टीएमटी (दूरसंचार, मीडिया और प्रौद्योगिकी) के वैश्विक उन्माद के कारण आई, जिसमें डॉट कॉम स्टॉक भी शामिल थे। उस एक साल में, बहुत से लोगों ने खूब पैसा कमाया, हालांकि बहुत कम लोग इसे बचा पाए। लेकिन केतन पारेख जैसा साल किसी का नहीं रहा। उनके करीबी सूत्रों का कहना है कि उन्होंने कम से कम बीस कंपनियों में सौदे करके हजारों करोड़ रुपये कमाए, जिनमें गुमनाम सोनी इंफोसिस या श्रीवेन मल्टीटेक से लेकर प्रतिष्ठित सत्यम कंप्यूटर्स, ज़ी टेलीफिल्म्स और रैनबैक्सी जैसी कंपनियां शामिल थीं।
इसकी शुरुआत पेंटाफोर जैसे एक बेकार स्टॉक से हुई, जो एक 'लाभ कमाने वाली' सॉफ्टवेयर कंपनी थी और जिसका पी/ई लगभग 2 था। केतन

ने इस स्टॉक को खरीदा, भारी मात्रा में नकदी जुटाई और सरकारी नियंत्रण वाले म्यूचुअल फंड और खुदरा निवेशकों के आने पर इससे बाहर निकल गए। इसके बाद, केतन ने रैनबैक्सी के दिवंगत परविंदर सिंह के साथ एक सौदा किया। फंड मैनेजरों और फार्मा विश्लेषकों के लिए यह हैरानी की बात थी कि रैनबैक्सी के शेयर लगातार बढ़ते रहे। ऐसा लग रहा था कि यह सब एक ऐसे शोध की अफवाहों के चलते हुआ जिसके बारे में केतन के अलावा किसी को पता नहीं था। इस पर इनसाइडर ट्रेडिंग के आरोप लग सकते थे, लेकिन किसी ने भी इसकी जांच नहीं की। रैनबैक्सी पर केतन की पकड़ इतनी मजबूत थी कि बाद में उन्होंने इसकी निवेश सहायक कंपनी, विद्युत इन्वेस्टमेंट्स को पारेख के ग्लोबल ट्रस्ट बैंक के कुछ शेयरों के लिए एक पार्किंग स्थल बना दिया, जिसे बाद में निरमा को बेच दिया गया। इसके बाद लगातार ऐसे शेयरों की खरीद-बिक्री होती रही, जिनमें से अधिकतर छोटी सॉफ्टवेयर कंपनियां थीं। ये शेयर अंततः म्यूचुअल फंड और खुदरा निवेशकों के पोर्टफोलियो में शामिल हो गए, जिनके बाजार मूल्य में तब से 95% की गिरावट आई है। अफटेक जैसी गुमनाम कंपनियों में आमतौर पर बहुत कम मात्रा में ट्रेडिंग होती है। केतन ने बड़े निवेशकों को इन्हें खरीदने के लिए कैसे लुभाया? भारी मात्रा में ट्रेडिंग और इंटर-एक्सचेंज आर्बिट्रेज सौदों के जरिए। कृत्रिम रूप से उत्पन्न इस मात्रा ने फंड मैनेजरों के शेयर चयन के मूल मानदंड - तरलता - को पूरा कर दिया।
पारेख द्वारा शुरू की गई इन कंपनियों ने बड़े-बड़े अनुबंध/नियोजन, अधिग्रहण, निर्यात, कारोबार और मुनाफे जैसी घोषणाओं की एक श्रृंखला के माध्यम से मीडिया का ध्यान आकर्षित किया। अधिकतम मूल्य लाभ सुनिश्चित करने के लिए इन घोषणाओं का समय सावधानीपूर्वक निर्धारित किया गया था। जैसे ही कीमतें

तेजी से बढ़ने लगीं, फंड मैनेजरों को अलग-अलग चरणों में लुभाया गया। अतीत में कई अन्य सट्टेबाजों ने भी यही रास्ता अपनाया था, लेकिन केतन ने अपने विशाल परिचालन से सभी को चौंका दिया। उन्होंने कम से कम दस प्रमुख शेयरों में बड़ी हिस्सेदारी ली, जिनमें से अधिकांश सॉफ्टवेयर कंपनियां थीं, जिन्हें अंततः K-10, 15 कहा गया और शेयरों की कीमत 10-20 गुना बढ़ा दी। उन्होंने 2000 के अंत में मीडिया शेयरों के साथ इसे दोहराने की कोशिश की, लेकिन तब तक बाजार धराशायी हो रहा था। अंततः, केतन ने संभवतः अपने दर्जनों संदिग्ध सॉफ्टवेयर शेयरों से हाथ खींच लिया, लेकिन तीन 'मुख्य' शेयरों पर ध्यान केंद्रित रखा, जिनमें उन्होंने भारी निवेश किया था और जहां प्रमोटरों के साथ उनके व्यक्तिगत रूप से बहुत अच्छे संबंध थे: ग्लोबल टेलीसिस्टम्स, हिमाचल फ्यूचरिस्टिक कम्युनिकेशंस लिमिटेड और ज़ी टेलीफिल्म्स।
1994 में मंत्री सुख राम के नेतृत्व में कुछ राज्यों में बुनियादी दूरसंचार लाइसेंस के लिए 85,000 करोड़ रुपये की बोलियां लगाकर एचएफसीएल ने भारत के दूरसंचार उदारीकरण के पहले प्रयास को मजाक बना दिया था। दिग्गज सट्टेबाज हर्षद मेहता और अजय कायन द्वारा इसके शेयरों को बढ़ाने के कुछ असफल प्रयासों के बाद, इसके शेयर मात्र 40 रुपये पर अटके हुए थे। केतन ने 1999 के तेजी के दौर की शुरुआत में इस स्टॉक में निवेश किया और एक साल से थोड़े अधिक समय में इसे 2500 रुपये तक पहुंचा दिया। इसी दौरान, एचएफसीएल ने एक निजी प्लेसमेंट किया, जिसका विपणन भारत की सबसे 'नैतिक' ब्रोकिंग फर्म फर्स्ट ग्लोबल सिक्योरिटीज ने आक्रामक रूप से किया। फंड मैनेजरों ने इसमें हिस्सेदारी पाने के लिए होड़ लगाई। ऑस्ट्रेलियाई अरबपति केरी पैकर ने कथित तौर

पर 10% हिस्सेदारी खरीदी, जिससे एचएफसीएल की विश्वसनीयता में और इजाफा हुआ। बाजार के एक वर्ग ने निजी तौर पर संदेह व्यक्त किया कि क्या वास्तव में कोई निवेश हुआ भी था।
ज़ी के शेयर का मूल्य आश्चर्यजनक रूप से बढ़ाकर 1500 रुपये (1 रुपये अंकित मूल्य) तक कर दिया गया, जबकि उस समय उसका पी/ई अनुपात 250 था। इसके बावजूद, केपी के समर्थक यह प्रचार कर रहे थे कि शेयर का मूल्य 10,000 रुपये तक पहुंच जाएगा। उनका नारा था: दस का एक और एक का दस। इसका मतलब यह था कि 10 रुपये अंकित मूल्य वाले शेयर को 1 रुपये के 10 शेयरों में विभाजित किया जाएगा और फिर इनमें से प्रत्येक 1 रुपये का शेयर बढ़कर 10,000 रुपये हो जाएगा। यूटीआई जैसे मित्रवत म्यूचुअल फंड और कुछ एफआईआई ने विभिन्न मूल्य स्तरों पर शेयर खरीदकर या मुनाफा बुक करके इस प्रक्रिया को सुचारू बनाने का प्रयास किया। ग्लोबल टेलीसिस्टम्स, जो 1998 तक फैक्स मशीनों का एक गुमनाम और संदिग्ध निर्माता था, मार्च 1997 में 80 रुपये से बढ़कर मार्च 2000 तक 3550 रुपये तक पहुँचकर एक नई अर्थव्यवस्था की कंपनी में जादुई रूप से परिवर्तित हो गया। डीएसक्यू सॉफ्टवेयर का मूल्य लगभग छह महीनों में 250 रुपये से बढ़कर 2500 रुपये हो गया। यह एक ऐसा स्टॉक था जिसे केतन के पोर्टफोलियो से हटा दिया गया था क्योंकि प्रमोटर दिनेश डालमिया की अपने निजी खाते पर बड़े पैमाने पर सट्टेबाजी की प्रवृत्ति
संभवतः केतन की हेरफेर करने की भूख से कहीं अधिक थी। 16 इसलिए, केतन ने मूल रूप से वह सब किया जो भारत में एक ऑपरेटर करता है, हालांकि कहीं अधिक बड़े पैमाने पर: मूल्य निर्धारण, हेरफेर, चक्रीय व्यापार और मित्र फंड प्रबंधकों के पोर्टफोलियो में शेयरों की डंपिंग।

इसी दौरान, केपी ने एक बैंक में भी बड़ी हिस्सेदारी हासिल कर ली क्योंकि संभवतः उन्हें अपने बढ़ते संचालन के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी। अपने पक्ष में तर्क देते हुए, उसी बिज़नेस स्टैंडर्ड के लेख में कहा गया: “विविधीकरण रणनीति के तहत, जिसका पालन हर शेयर बाजार पेशेवर को करना पड़ता है, पारेख ने बैंकिंग क्षेत्र में भी कदम रखा। एचडीएफसी बैंक और आईसीआईसीआई बैंक की तर्ज पर बैंकिंग के इंटरनेट या प्रौद्योगिकी आधारित बैंक बनने की संभावना ने उन्हें ग्लोबल ट्रस्ट बैंक (जीटीबी) की ओर आकर्षित किया। अब जीटीबी में उनकी एक बड़ी हिस्सेदारी है, आधिकारिक तौर पर चार प्रतिशत, लेकिन अफवाहों के अनुसार यह इससे कहीं अधिक है।”
केपी के जादू से जिन सॉफ्टवेयर दिग्गजों के शेयर आसमान छू रहे थे, उनके प्रशंसकों के समूह में बाद में फिल्म और टीवी जगत के लोग भी शामिल हो गए। अचानक मनोरंजन जगत के ए (अमिताभ बच्चन कॉर्पोरेशन) से जेड (ज़ी टेलीफिल्म्स) तक के सभी लोग केपी के दायरे में आ गए, जिनमें कुख्यात टिप्स इंडस्ट्रीज भी शामिल थी। टिप्स के प्रमुख प्रमोटरों में से एक पर हत्या का आरोप था। पब्लिक इश्यू का प्रबंधन पारेख की निवेश बैंकिंग कंपनी - ट्राइम्फ इंटरनेशनल ने किया था।
अमिताभ बच्चन कॉर्पोरेशन लिमिटेड (एबीसीएल) एक सुपरस्टार को ब्रांड बनाने और उनके इर्द-गिर्द एक फलती-फूलती कंपनी खड़ी करने का एक असफल प्रयास था; लेकिन यह योजना बुरी तरह विफल हो गई। जब सांसद अमर सिंह और अन्य लोगों की मध्यस्थता से केतन की नज़र एबीसीएल पर पड़ी, तब कंपनी पर लेनदार बैंकों द्वारा मुकदमा चल रहा था और उसने खुद को बीमार घोषित कर दिया था। केतन ने एबीसीएल

को औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के चंगुल से छुड़ाने के लिए पैसे दिए।
3 मार्च के आर्थिक संकट के समय, बच्चन की टीवी गेम शो 'कौन बनेगा करोड़पति' के होस्ट के रूप में अभूतपूर्व रूप से पुनर्जीवित स्टारडम का लाभ उठाकर एबीसीएल को सार्वजनिक करने की योजना थी।

एक आभारी 'बिग बी' जल्द ही केतन के रिश्तेदारों के स्वामित्व वाली कपड़ों की दुकानों का उद्घाटन करने वाले थे। महत्वाकांक्षी रथ आगे बढ़ता रहा। 1999 के अंत तक, उन्होंने आधा दर्जन मीडिया कंपनियों में निवेश किया था, उनमें से कुछ संदिग्ध व्यावसायिक योजनाओं के साथ बाजार में कूदने के लिए उत्सुक थीं। अगले एक वर्ष में, उन्होंने टिप्स, बालाजी टेलीफिल्म्स, मुक्ता आर्ट्स, यूटीवी, बी4 यू, मिड-डे मल्टीमीडिया, मिनहाज़ मर्चेंट, एचएफसीएल नाइन नेटवर्क और प्रीतिश नंदी कम्युनिकेशंस आदि में निवेश किया। मार्च 2000 में नैस्डैक और भारतीय बाजार में तेजी के चरम पर केतन पारेख, विनय मालू और ऑस्ट्रेलियाई टाइकून केरी पैकर ने मिलकर केवीपी वेंचर्स नामक एक हाई-प्रोफाइल वेंचर कैपिटल कंपनी शुरू की। हालांकि केवीपी कथित तौर पर केतन, विनय और पैकर के लिए खड़ा था हालांकि मार्केट पर उनका असर एक समय के बिग बुल हर्षद मेहता जितना ही था, पारेख पूरी तरह से लो प्रोफाइल रहे। उनके बारे में बहुत कम लोग जानते थे। मार्च 2001 में मार्केट क्रैश होने के बाद, बिजनेस स्टैंडर्ड के एक चापलूसी भरे आर्टिकल से हमें पता चला: “पैसे कमाने के अपने शौक के बावजूद, पारेख बहुत धार्मिक

हैं। हर बुधवार माहिम के सेंट माइकल चर्च में उनका जाना-पहचाना चेहरा दिखता है। दोस्तों के साथ अक्सर तीर्थयात्रा करना उनका रूटीन है जिसके लिए वह समय निकालते हैं। फिर भी, हर आदमी की अपनी पसंद होती है। पारेख की भी अपनी पसंद है। लास वेगास वह जगह है जहां उन्हें छुट्टियां बिताना पसंद है। रूले का शौक उन्हें वहां खींचता है। यहां किलर इंस्टिंक्ट हावी हो जाता है, चाहे इसके लिए उन्हें कोई भी कीमत चुकानी पड़े।”
इससे हमें एक आइडिया मिलता है लेकिन सच तो यह है कि हर्षद मेहता के जोश और चार्म के उलट, जिनसे उनकी तुलना हमेशा की जाती है, केतन पारेख शांत और गंभीर थे। उनमें और भी फर्क थे – कोई चमकदार कारें नहीं, मीडिया हाइप या दिखावटी पार्टियां नहीं। ऐसा लग रहा था जैसे केतन, जो 1992 में हर्षद के साथियों में सबसे छोटे थे, ने हर्षद के तेज़ी से ऊपर-नीचे होने से बहुत कुछ सीखा था। आखिर, उनके सबसे करीबी सलाहकारों में से एक अश्विन मेहता थे, जो हर्षद के लो-प्रोफाइल भाई थे।
जनवरी 2000 में यह सब बदल गया। यह लगभग वही समय था जब केतन ने बॉम्बे में अपनी मशहूर मिलेनियम पार्टी रखी थी ताकि यह ऐलान किया जा सके कि वह 'आ गए हैं'। मेहमान, जिनमें नए सॉफ्टवेयर किंग, मीडिया के बड़े लोग और फाइनेंशियल दुनिया के बड़े लोग शामिल थे, ताज महल होटल के सी लाउंज रेस्टोरेंट में शैंपेन रिसेप्शन के लिए इकट्ठा हुए। फिर उन्हें हाई-सिक्योरिटी कैटामरैन में समुद्र के पार, मांडवा में पारेख के समुद्र किनारे वाले बंगले तक ले जाया गया – जो साउथ बॉम्बे कोस्ट से थोड़ी ही दूरी पर था। अचानक, अकेले रहने वाले पारेख बदला लेने के लिए हर्षद के रास्ते पर चल पड़े। वह रेगुलर तौर पर मीडिया की हेडलाइन में आने लगा, कभी-कभी ऑस्ट्रेलियाई अमीर केरी पैकर, पॉलिटिशियन अमर सिंह या

हिमाचल फ्यूचरिस्टिक के विनय मालू जैसे अजीब लोगों के साथ। उसके दूसरे दोस्त ग्लोबल टेलीसिस्टम्स के मनोज तिरोडकर और ज़ी के सुभाष चंद्रा थे। अफवाह है कि तिरोडकर ने उसे एक टॉप लाइन लेक्सस गिफ्ट की थी (यह लेक्सस ही थी जिसने हर्षद को फेमस बनाया था)। पीछे न रहने के लिए, HFCL के मालू ने उसे एक शानदार कैडिलैक दी, जिसमें कई टेलीविज़न और तरह-तरह के गैजेट्स कस्टम-फिटेड थे। साथ ही, हर्षद की तरह, जो बॉम्बे के बिज़नेस डिस्ट्रिक्ट नरीमन पॉइंट में मेकर V के सभी ऑफिस खरीदना चाहता था, केतन ICICI की एक बिल्डिंग को 75 करोड़ रुपये में खरीदने के लिए मार्केट प्राइस से भारी प्रीमियम देने को तैयार हो गया। जब केतन दिवालिया हो गया तो यह डील टूट गई।
केतन के अलग-अलग पॉलिटिकल पार्टियों में कथित कनेक्शन ने उसे अछूत बना दिया। 2000 की शुरुआत में इनकम टैक्स की रेड अचानक सर्च में बदल गई, लेकिन मार्केट में घबराहट बनी रही। कई लोगों ने केतन की कमिंग आउट बैश की तुलना 9 अप्रैल 1992 को बुल ऑपरेटर्स द्वारा की गई वैसी ही शानदार पार्टी से की, जो सिक्योरिटीज स्कैम के खुलासे से ठीक पहले हर्षद के मशहूर बुल रन के खत्म होने से पहले हुई थी। अगर उसे यकीन था कि वह एंटरटेनमेंट स्टॉक्स के साथ सॉफ्टवेयर में अपनी सफलता दोहरा सकता है, तो उसने निश्चित रूप से अपने भरोसे पर खरा उतरा। केतन, जो एक ट्रेडिशनल ब्रोकिंग फर्म और जैन परिवार से था, फिल्म इंडस्ट्री के बड़े लोगों, स्टार्स और स्टारलेट्स के साथ पार्टी करने और मौज-मस्ती करने में बहुत ज़्यादा समय बिताता था। उसके इंडस्ट्रियलिस्ट दोस्तों का कहना है कि इसी वजह से आखिरकार उसकी जान चली गई। एक दोस्त, जिसके शेयर्स को उसने आसमान छूने में मदद की थी, कहता है, "वह दोपहर 3.30 बजे तक पार्टी करता रहता

था; उसने बस अपनी पकड़ खो दी थी और उसे पता नहीं था कि मार्केट की ताकतें उसे बर्बाद करने के लिए तैयार हो रही हैं।" जब मार्केट अपने पीक पर था, तो उसकी संपत्ति का एक अंदाज़ा 3000 करोड़ रुपये था। अजीब बात है, उसे आखिरकार खुद को बचाए रखने के लिए एक बैंक और कॉर्पोरेट घरानों से सैकड़ों करोड़ रुपये की ज़रूरत होगी। TMT स्टॉक्स में गिरावट से हैरान, अपनी काबिलियत पर ओवरकॉन्फिडेंस और एंटरटेनमेंट की दुनिया से हैरान, अगले एक साल में केतन ने अपने सभी ज़रूरी कामों को तोड़ दिया, जिन्होंने उसे इतना सफल ऑपरेटर बनाया था। उसने जितनी तेज़ी से खुद को बनाया था, उतनी ही तेज़ी से खुद को भी बर्बाद कर दिया।
क्या गलत हुआ?
मार्च 2000 में घरेलू मार्केट और नैस्डैक की रफ़्तार कम होने लगी और फिर यह एक लंबी गिरावट पर चला गया। 2000 के बीच तक IT का क्रेज़ कम होने लगा क्योंकि दुनिया भर में समझदारी लौट आई थी। सूत्रों के मुताबिक, केतन को इस बात का कोई भ्रम नहीं था कि उसकी ज़्यादातर चीज़ें

ck ओवरवैल्यूड थे। उदाहरण के लिए, 1500 रुपये की कीमत और 350 के P/E मल्टीपल पर, ज़ी बिल्कुल सस्ता नहीं था। असल में, 1999 की दिवाली तक ही उन्होंने अपने कई ‘ऑपरेशन’ पूरे कर लिए थे (कम कीमत पर बड़े स्टेक खरीदे, ज़ोरदार ट्रेड किया और उन्हें फंड में लगाया) और उन्हें कुछ भी अंडरवैल्यूड नहीं मिला। जो लोग उन्हें जानते थे, वे कहते थे कि वह एक समझदार मार्केट ऑपरेटर थे जो रेगुलर प्रॉफिट बुक करते थे और अपनी बड़ी पोजीशन में आते-जाते रहते थे।

लेकिन अजीब बात है, केतन को कुछ कंपनियों से प्यार हो गया था – जो स्टॉक मार्केट में एक बड़ा पाप है: ज़ी, HFCL, ग्लोबल टेली और शायद सत्यम। जब 2000 के दूसरे हाफ में नैस्डैक और भारतीय मार्केट गिरने लगे, तो केतन इन स्क्रिप्स में भारी होल्डिंग्स के साथ फंस गए। एक समय, HFCL में उनकी पोजीशन BSE में कुल कैरी फॉरवर्ड पोजीशन का लगभग 60% थी। उनकी ट्रेडिंग और इन्वेस्टमेंट एक दर्जन कंपनियों में फैले हुए थे, लेकिन ज़्यादातर पैंथर फिनकैप, ट्रायम्फ इंटरनेशनल और क्लासिक क्रेडिट में थे। लेकिन उनके कई दांव कोलकाता के ग्रे मार्केट में लगे, जो बेलगाम ऑफ-मार्केट सट्टेबाजी का अड्डा था। जैसे ही ये शेयर अपनी ऊँची जगह से गिरे, केतन ने उन्हें खरीदने और बेचने के दौर से सहारा दिया। वह इन नुकसान वाली पोजीशन से बाहर क्यों नहीं निकले? दो वजहें थीं। पहली, वह अब ट्रेडर नहीं थे। वह इन कंपनियों के अंदर के थे, और बड़े मालिकों विनय मालू (HFCL), मनोज तिरोडकर (ग्लोबल टेली) और सुभाष चंद्रा के साथ उनके गहरे पर्सनल रिश्ते थे। दूसरी, उनका अपना लॉजिक आसान था: अगर मेरे पास इन सभी कंपनियों के इतने सारे स्टॉक हैं, तो बेचने का काम कहाँ से आएगा?
दिसंबर में, TMT स्टॉक्स को कई बार झटका लगने के बाद, उनकी पकड़ कमज़ोर होने लगी। बड़े नुकसान में बैठे फंड मैनेजर और नुकसान वाली पोजीशन वाले पंटर्स, जनवरी के असर का इंतज़ार कर रहे थे – साल की शुरुआत में नए एसेट एलोकेशन के बाद FIIs भारतीय इक्विटी में पैसा लगा रहे थे। असल में जनवरी में तेज़ी आई, कुछ सपोर्ट और सपोर्ट मिला और फिर बजट से दो हफ़्ते पहले 15 फरवरी तक स्पेक्युलेटिव तेज़ी आई। जैसे ही इंडेक्स ने फरवरी 2000 से गिरती ट्रेंडलाइन को तोड़ा, यह चर्चा थी कि मार्केट एक नए

ऑर्बिट में जाएगा। हालाँकि, बुरी बात यह थी कि सॉफ्टवेयर स्टॉक्स इस रैली में हिस्सा नहीं ले रहे थे। यह केतन पारेख के अंत की शुरुआत थी। एक बेयर कार्टेल के सोचे-समझे हमले और कुछ इंस्टीट्यूशनल सेलिंग ने K-10 स्टॉक्स में ज़बरदस्त गिरावट ला दी। बेयर कार्टेल में राधाकिशन दमानी जैसे दलाल स्ट्रीट के कुछ सबसे समझदार पुराने खिलाड़ी शामिल थे। नरम बोलने वाले और बहुत तेज़, दमानी ने सालों में किसी से भी ज़्यादा स्मार्ट दांव लगाए हैं। सेंटिमेंट-ड्रिवन ट्रेडिंग और रिसर्च-ड्रिवन इन्वेस्टमेंट दोनों में माहिर, वह आसानी से भारत के सबसे अमीर इन्वेस्टर हैं, जिनके मल्टीनेशनल कंपनियों में बड़े स्टेक हैं। वह पागलपन भरे बुल-रन के दौरान एक साल से ज़्यादा समय तक मार्केट से बाहर रहे थे। HFCL और Global Tele जैसे फूले हुए स्टॉक्स एक साल में चार डिजिट तक कैसे पहुँच सकते हैं, इस बात से हैरान और हैरान, दमानी जैसे बेयर्स शॉर्ट-सेलिंग करके पैसे कमाने के लिए समय का इंतज़ार कर रहे थे। उन्होंने 2001 की शुरुआत से ही शॉर्ट पोजीशन बनाना शुरू कर दिया था।
पूरी दुनिया में TMT स्टॉक में लगातार कमजोरी महसूस करते हुए और बड़े मार्केट के लिए कोई तुरंत कैटेलिस्ट न देखकर, कार्टेल ने जनवरी और फरवरी में इसे बेचने का फैसला किया। इंस्टीट्यूशनल इन्वेस्टर्स, जो तब तक केतन के मेन बेस थे, वे भी थक चुके थे। वे बड़े नुकसान से जूझ रहे थे और निराशा के ग्लोबल माहौल में बेचना शुरू करने के लिए उन्हें बस हल्के से मनाने की ज़रूरत थी। यह एक लैंडस्लाइड में बदल गया, जो बजट से पॉजिटिव माहौल बनने के बाद पैनिक में बिकवाली के साथ खत्म हुआ।

28 फरवरी को, सिन्हा ने एक शानदार बजट पेश किया। जब उनका बजट भाषण टेलीविज़न नेटवर्क पर ब्रॉडकास्ट हो रहा था, तब भी सेंसेक्स 4247 पर पहुँच गया, जो 177 पॉइंट्स की रिकॉर्ड बढ़त थी। अगले दिन, मार्केट हैरानी की बात है कि वोलाटाइल रहा (160 पॉइंट्स से ज़्यादा का मूवमेंट) और पच्चीस पॉइंट्स की बढ़त के साथ थोड़ा ऊपर गया। तब भी, एक सीरियस पेमेंट क्राइसिस के बारे में अफवाहें थीं, लेकिन किसी को नहीं पता था कि बजट के बाद की रैली केतन और उनके ब्रोकर्स के ग्रुप को उनके नुकसान से उबरने में मदद करेगी या नहीं। ऐसा नहीं हुआ। बुरी बात यह है कि सॉफ्टवेयर स्टॉक्स में भारी गिरावट आई। इंफोसिस टेक्नोलॉजीज 28 फरवरी को Rs.6258.40 पर बंद हुआ था, जो अगले दिन 9% गिरकर Rs.5682.70 पर बंद हुआ, इसी तरह सत्यम 28 फरवरी को Rs.347.00 से लगभग 10% गिरकर 1 मार्च को Rs.312.65 पर आ गया। HCL टेक्नोलॉजीज़ और NIIT का भी यही हाल हुआ – 28 फरवरी को Rs.622.65 और Rs.1242.60 से 7% और 6% गिरकर 1 मार्च को Rs.577.15 और Rs.1169.95 पर आ गए।
जब द इकोनॉमिक टाइम्स केतन से बजट पर ज्ञान बांटने को कह रहा था, तब यह साफ हो गया कि संकट से बचा नहीं जा सकता था। अगले दिन उसकी और उसके ऑपरेटरों के ग्रुप की कमर टूट गई। बजट के बाद हुई सारी बढ़त गंवाकर, सेंसेक्स भारी गिरावट के कारण 176 पॉइंट्स नीचे चला गया।

आभारी 'बिग बी' ने जल्द ही केतन के रिश्तेदारों के स्वामित्व वाली कपड़ों की दुकानों का उद्घाटन किया। महत्वाकांक्षी कारोबार का सिलसिला जारी रहा। 1999 के अंत तक, उन्होंने आधा दर्जन मीडिया कंपनियों में निवेश किया था, जिनमें से कुछ

संदिग्ध व्यावसायिक योजनाओं के साथ बाजार में उतरने के लिए उत्सुक थीं। अगले एक वर्ष में, उन्होंने टिप्स, बालाजी टेलीफिल्म्स, मुक्ता आर्ट्स, यूटीवी, बी4 यू, मिड-डे मल्टीमीडिया, मिन्हाज़ मर्चेंट, एचएफसीएल नाइन नेटवर्क और प्रीतीश नंदी कम्युनिकेशंस आदि में निवेश किया। मार्च 2000 में, नैस्डैक और भारतीय बाजार में तेज़ी के चरम पर, केतन पारेख, विनय मालू और ऑस्ट्रेलियाई उद्योगपति केरी पैकर ने मिलकर केवीपी वेंचर्स नामक एक हाई-प्रोफाइल वेंचर कैपिटल कंपनी शुरू की। हालांकि केवीपी कथित तौर पर केतन, विनय और पैकर का संक्षिप्त रूप था, लेकिन बाजार के जानकारों का दावा था कि यह केतन वी. पारेख का संक्षिप्त रूप था और पूरी तरह से उन्हीं का उद्यम था। हालांकि बाजार पर उनका प्रभाव कभी के दिग्गज हर्षद मेहता के बराबर था, फिर भी पारेख ने हमेशा लो प्रोफाइल बनाए रखा। उनके बारे में बहुत कम जानकारी थी। मार्च 2001 में बाजार क्रैश होने के बाद, बिजनेस स्टैंडर्ड के एक चापलूसी भरे लेख ने हमें कुछ जानकारी दी: “पैसा कमाने की ललक के बावजूद, पारेख बेहद धार्मिक हैं। हर बुधवार को माहिम के सेंट माइकल चर्च में उनका चेहरा जाना-पहचाना है। दोस्तों के साथ नियमित तीर्थयात्रा करना उनकी दिनचर्या का हिस्सा है, जिसके लिए वे समय निकालते हैं। फिर भी, हर इंसान की अपनी पसंद होती है। पारेख की भी अपनी पसंद हैं। लास वेगास वह जगह है जहां उन्हें छुट्टियां बिताना पसंद है। रूलेट के प्रति उनका जुनून उन्हें वहां मंत्रमुग्ध कर देता है। वहां उनका जीतने का जज़्बा हावी हो जाता है, चाहे उन्हें कितनी भी कीमत चुकानी पड़े।”

इससे हमें एक संकेत मिलता है, लेकिन सच्चाई यह है कि हर्षद

मेहता की उमंग और आकर्षण के विपरीत, जिनसे उनकी तुलना अक्सर की जाती है, केतन पारेख शांत और गंभीर स्वभाव के थे। अन्य अंतर भी थे - न तो उनके पास महंगी कारें थीं, न मीडिया का प्रचार और न ही भव्य पार्टियां। ऐसा लग रहा था मानो केतन, जो 1992 में हर्षद के सहयोगियों में सबसे छोटा था, हर्षद के अचानक उत्थान और पतन से बहुत कुछ सीख चुका था। आख़िरकार, उसके सबसे करीबी सलाहकारों में से एक हर्षद का शांत स्वभाव वाला भाई अश्विन मेहता था।

जनवरी 2000 में सब कुछ बदल गया। यह लगभग वही समय था जब केतन ने मुंबई में अपनी मशहूर मिलेनियम पार्टी दी और यह ऐलान किया कि वह 'सफल' हो चुका है। नए सॉफ्टवेयर दिग्गजों, मीडिया जगत के बड़े नामों और वित्तीय जगत की हस्तियों से सजी इस पार्टी में मेहमान ताज महल होटल के सी लाउंज रेस्टोरेंट में शैम्पेन रिसेप्शन के लिए इकट्ठा हुए। फिर उन्हें कड़ी सुरक्षा वाली नौकाओं से समुद्र पार करके पारेख के मांडवा स्थित समुद्र किनारे वाले बंगले तक ले जाया गया – जो दक्षिण मुंबई तट से कुछ ही दूरी पर था।

अचानक, एकांतप्रिय पारेख भी हर्षद के नक्शेकदम पर चलने लगा। वह नियमित रूप से मीडिया की सुर्खियों में आने लगे, कभी-कभी ऑस्ट्रेलियाई उद्योगपति केरी पैकर, राजनेता अमर सिंह या हिमाचल फ्यूचरिस्टिक के विनय मालू जैसी अजीबोगरीब हस्तियों के साथ। उनके अन्य मित्रों में ग्लोबल टेलीसिस्टम्स के मनोज तिरोडकर और ज़ी के सुभाष चंद्र शामिल थे। अफवाह है कि तिरोडकर ने उन्हें एक बेहतरीन लेक्सस कार उपहार में दी थी (लेक्सस ने ही हर्षद को प्रसिद्धि दिलाई थी)। उनसे पीछे न रहने के लिए,

एचएफसीएल के मालू ने कथित तौर पर उन्हें एक आलीशान कैडिलैक कार दी, जिसमें कई टेलीविजन और तरह-तरह के गैजेट लगे हुए थे। हर्षद की तरह, जो मुंबई के व्यापारिक जिले नरीमन प्वाइंट स्थित मेकर वी के सभी कार्यालय खरीदना चाहते थे, केतन ने आईसीआईसीआई की एक इमारत को 75 करोड़ रुपये में खरीदने के लिए बाजार मूल्य से काफी अधिक कीमत चुकाने पर सहमति जताई। केतन के दिवालिया हो जाने पर यह सौदा रद्द हो गया।

विभिन्न राजनीतिक दलों में केतन के कथित संबंधों ने उन्हें अछूत जैसा बना दिया था। 2000 की शुरुआत में आयकर विभाग की छापेमारी अचानक तलाशी में बदल गई, लेकिन बाजार में घबराहट बनी रही।

कई लोगों ने केतन की पहली पार्टी की तुलना 9 अप्रैल 1992 को शेयर बाजार घोटाले के खुलासे से ठीक पहले हुई एक भव्य पार्टी से की, जिसने हर्षद के मशहूर बुल रन को खत्म कर दिया था।

अगर उन्हें यकीन था कि वे सॉफ्टवेयर में मिली सफलता को एंटरटेनमेंट शेयरों में दोहरा सकते हैं, तो उन्होंने निश्चित रूप से अपने इस विश्वास को जिया। एक पारंपरिक ब्रोकिंग फर्म और जैन परिवार से आने वाले केतन फिल्म उद्योग के दिग्गजों, सितारों और अभिनेत्रियों के साथ मौज-मस्ती करने में बहुत ज्यादा समय बिताते थे। उनके उद्योगपति दोस्तों का कहना है कि यही बात अंततः उनके पतन का कारण बनी। “वे दोपहर 3:30 बजे तक पार्टी करते रहते थे; वे अपना संतुलन खो बैठे और बाजार की उन ताकतों से अनजान थे जो उन्हें बर्बाद करने के लिए तैयार हो रही

थीं”, उनके एक दोस्त कहते हैं, जिनके शेयरों को उन्होंने आसमान छूने में मदद की थी।

बाजार के चरम पर होने के दौरान उनकी संपत्ति का एक अनुमान 3000 करोड़ रुपये था। अजीब बात है, उन्हें अंततः अपना कारोबार चलाने के लिए बैंक और कॉरपोरेट घरानों से करोड़ों रुपये की ज़रूरत पड़ी। टीएमटी शेयरों में आई भारी गिरावट से अचंभित, अपनी क्षमताओं पर अत्यधिक आत्मविश्वास और मनोरंजन जगत की चकाचौंध में चूर होकर, केतन ने अगले एक साल में उन सभी मूलभूत सिद्धांतों को तोड़ दिया, जिन्होंने उन्हें इतना सफल व्यवसायी बनाया था। उन्होंने जितनी तेज़ी से सफलता हासिल की, उतनी ही तेज़ी से खुद को बर्बाद भी कर दिया।

आखिर क्या गलत हुआ?

मार्च 2000 में घरेलू बाज़ार और नैस्डैक की गति धीमी पड़ने लगी और फिर उनमें लगातार गिरावट आती रही। 2000 के मध्य तक, आईटी का क्रेज़ कम होने लगा क्योंकि दुनिया भर में स्थिति सामान्य होने लगी थी। सूत्रों के अनुसार, केतन को इस बात का पूरा भ्रम था कि उनके अधिकांश शेयर ओवरवैल्यूड थे। उदाहरण के लिए, 1500 रुपये की कीमत और 350 के पी/ई अनुपात पर, ज़ी कोई सस्ता शेयर नहीं था। दरअसल, 1999 की दिवाली तक उन्होंने अपने कई 'ऑपरेशन' पूरे कर लिए थे (कम कीमत पर बड़ी हिस्सेदारी खरीदी, जमकर ट्रेडिंग की और उन्हें फंड में निवेश किया) और उन्हें कोई भी शेयर कम कीमत वाला नहीं मिला। उन्हें जानने वाले लोग कहते थे कि वे एक चतुर बाजार संचालक थे जो नियमित रूप से मुनाफा बुक करते थे और अपनी बड़ी

हिस्सेदारी में समय-समय पर निवेश करते और निकालते रहते थे।

लेकिन अजीब बात यह थी कि केतन को कुछ कंपनियों से लगाव हो गया था
- जो शेयर बाजार में एक बड़ा पाप माना जाता है: ज़ी, एचएफसीएल, ग्लोबल टेली और शायद सत्यम। जब 2000 के उत्तरार्ध में नैस्डैक और भारतीय बाजार गिरने लगे, तो केतन इन शेयरों में भारी हिस्सेदारी के साथ फंसे रहे। एक समय एचएफसीएल में उनकी हिस्सेदारी बीएसई में कुल कैरी फॉरवर्ड पोजीशन का लगभग 60% थी। उनकी ट्रेडिंग और निवेश एक दर्जन कंपनियों में फैले हुए थे, लेकिन मुख्य रूप से पैंथर फिनकैप, ट्रायम्फ इंटरनेशनल और क्लासिक क्रेडिट में। लेकिन उनके कई दांव कोलकाता के ग्रे मार्केट में खेले गए, जो बेलगाम ऑफ-मार्केट सट्टेबाजी का अड्डा था। जैसे ही इन शेयरों की ऊंची कीमत गिरी, केतन ने खरीद-फरोख्त के दौर से इन्हें सहारा दिया। उन्होंने घाटे वाले शेयरों से खुद को क्यों नहीं निकाला? इसके दो कारण थे। पहला, वे अब व्यापारी नहीं थे। वे इन कंपनियों के अंदरूनी सूत्र थे, जिनके प्रमुख मालिकों विनय मालू (एचएफसीएल), मनोज तिरोडकर (ग्लोबल टेली) और सुभाष चंद्र के साथ गहरे व्यक्तिगत संबंध थे। दूसरा, उनका अपना तर्क सीधा था: अगर मेरे पास इन कंपनियों के इतने शेयर हैं, तो मैं इन्हें बेचूंगा कहां से?

दिसंबर में, टीएमटी शेयरों को कई बार भारी नुकसान होने के बाद, उनकी पकड़ कमजोर पड़ने लगी। भारी नुकसान झेल रहे फंड मैनेजर और घाटे में चल रहे निवेशक जनवरी के प्रभाव की उम्मीद कर रहे थे – साल की शुरुआत में नए एसेट एलोकेशन के बाद एफआईआई भारतीय इक्विटी में पैसा लगाते हैं। वाकई जनवरी में तेजी आई, कुछ

शेयरों को सहारा दिया गया और फिर सट्टेबाजी के चलते शेयरों में तेजी से उछाल आया।

15 फरवरी तक, बजट से दो हफ्ते पहले। जैसे ही सूचकांक ने फरवरी 2000 से गिरती प्रवृत्ति रेखा को पार किया, बाजार में एक नई गति आने की चर्चा होने लगी। हालांकि, चिंताजनक बात यह थी कि सॉफ्टवेयर शेयरों ने इस तेजी में हिस्सा नहीं लिया। यह केतन पारेख के पतन की शुरुआत थी। मंदी के समर्थकों के एक सुनियोजित समूह और कुछ संस्थागत बिकवाली ने K-10 शेयरों में भारी गिरावट ला दी।

मंदी के समर्थकों में राधाकिशन दमानी जैसे दलाल स्ट्रीट के कुछ सबसे अनुभवी पुराने खिलाड़ी शामिल थे। मृदुभाषी और बेहद तेज दिमाग वाले दमानी ने वर्षों में सबसे अधिक समझदारी भरे दांव लगाए हैं। भावना-आधारित व्यापार और शोध-आधारित निवेश दोनों में निपुण, वे बहुराष्ट्रीय कंपनियों में बड़ी हिस्सेदारी के साथ भारत के सबसे धनी निवेशक हैं। उन्मादी तेजी के दौरान वे एक साल से अधिक समय तक बाजार से बाहर रहे थे। एचएफसीएल और ग्लोबल टेली जैसे शेयरों को एक साल में चार अंकों तक पहुंचते देखकर हैरान और उत्सुक, दमानी जैसे मंदी के समर्थक शॉर्ट-सेलिंग करके मुनाफा कमाने के लिए सही समय का इंतजार कर रहे थे। उन्होंने 2001 की शुरुआत से ही शॉर्ट पोजीशन बनानी शुरू कर दी थी।

दुनिया भर में टीएमटी शेयरों में लगातार कमजोरी को भांपते हुए और व्यापक बाजार के लिए तत्काल कोई सकारात्मक उत्प्रेरक न देखते हुए, कार्टेल ने जनवरी और फरवरी में जमकर मुनाफा कमाया।

संस्थागत निवेशक, जो तब तक केतन के मुख्य आधार थे, भी थक चुके थे। उन्हें भारी नुकसान हो रहा था और वैश्विक मंदी के माहौल में उन्हें बेचने के लिए बस थोड़ी सी प्रेरणा की जरूरत थी। यह निराशा एक बड़े भूस्खलन में बदल गई, जो बजट के बाद आशावाद का माहौल बनने के बाद अचानक हुई बिकवाली में चरम पर पहुंच गई।

28 फरवरी को सिन्हा ने एक ऐसा बजट पेश किया जिसे उत्कृष्ट बजट कहा गया। उनके बजट भाषण का टेलीविजन चैनलों पर प्रसारण होते ही सेंसेक्स 4247 पर पहुंच गया, जो 177 अंकों की रिकॉर्ड बढ़त थी। अगले दिन, बाजार में आश्चर्यजनक रूप से उतार-चढ़ाव बना रहा (160 अंकों से अधिक का उतार-चढ़ाव) और अंत में पच्चीस अंकों की मामूली बढ़त दर्ज की गई। फिर भी, गंभीर भुगतान संकट की अफवाहें थीं, लेकिन किसी को नहीं पता था कि बजट के बाद की तेजी केतन और उनके दलालों के समूह को अपने नुकसान से उबरने में मदद करेगी या नहीं। ऐसा नहीं हुआ। अशुभ रूप से, सॉफ्टवेयर शेयरों की बुरी तरह से गिरावट आई। इंफोसिस टेक्नोलॉजीज, जो 28 फरवरी को 6258.40 रुपये पर बंद हुई थी,

अगले दिन 9% गिरकर 5682.70 रुपये पर बंद हुई। इसी तरह सत्यम लगभग 10% गिर गई

28 फरवरी को 347.00 रुपये से गिरकर 1 मार्च को 312.65 रुपये पर आ गई। एचसीएल टेक्नोलॉजीज और एनआईआईटी का भी यही हाल हुआ –

28 फरवरी को 622.65 रुपये और 1242.60 रुपये से गिरकर 1 मार्च को क्रमशः 7% और 6% गिरकर 577.15 रुपये और 1169.95 रुपये पर आ गई।

जब द इकोनॉमिक टाइम्स केतन से बजट पर ज्ञान प्राप्त कर रहा था, तभी यह स्पष्ट हो गया कि संकट अपरिहार्य था। अगले ही दिन उनकी और उनके सहयोगियों की कमर टूट गई। बजट के बाद की सारी बढ़त गंवाकर सेंसेक्स में भारी गिरावट आई और यह 176 अंक नीचे गिर गया।

2 मार्च 2001 को समाप्त हुए सप्ताह में, शॉर्ट-सेल किए गए शेयरों का मूल्य 64 करोड़ रुपये बढ़ गया।

नींद से जागकर और फाइनेंस मिनिस्ट्री के उकसाने पर, SEBI ने बेयर ऑपरेटर्स पर हमला किया और उनके ट्रेड्स की जांच शुरू की। इसने शॉर्ट सेल्स पर बैन लगा दिया और मार्जिन बढ़ा दिया, बॉम्बे और कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज के ब्रोकर डायरेक्टर्स को इस्तीफा देने के लिए उकसाया। कलकत्ता एक्सचेंज के तीन सेटलमेंट बहुत ही शक वाले हालात में पूरे हुए। बेयर शायद तब तक पारेख की बहुत कमजोर पोजीशन के बारे में अंदर की जानकारी पर काम कर रहे थे। BSE के उस समय के प्रेसिडेंट आनंद राठी पर शक था कि वे उनमें से एक थे। राठी ने 2 मार्च के ब्लैक फ्राइडे पर BSE के सर्विलांस डिपार्टमेंट से अलग-अलग प्लेयर्स की ट्रेडिंग पोजीशन और बड़े ऑपरेटर्स की डिटेल्स मांगी थीं। 5 मार्च को, SEBI को वे ऑडियो- टेप मिले जो सच में राठी पर आरोप लगाते दिख रहे थे। उन्होंने 8 मार्च को इस्तीफा दे दिया। तब तक केतन की दिक्कतें पूरी तरह बढ़ चुकी थीं। कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज में पेमेंट क्राइसिस था और

BSE पर भी डिफॉल्ट का डर था। उन्होंने 6 मार्च को नैस्डैक में थोड़ी तेज़ी से इंस्पायर होकर अपने स्टॉक्स को होल्ड करने की हिम्मत की, लेकिन रिटेल इन्वेस्टर्स की बिकवाली की बाढ़ संभालना मुश्किल हो गया। केतन का खेल खत्म हो गया था। पार्लियामेंट में अपोज़िशन पार्टियां सरकार से एक्सप्लेनेशन मांग रही थीं और फाइनेंस मिनिस्टर यशवंत सिन्हा को 13 मार्च को राज्यसभा में डिटेल्ड डिबेट के लिए राज़ी होना पड़ा। जब डिबेट ज़ोरों पर थी, 13 मार्च को बेयर्स ने एक और हमला किया। फर्स्ट ग्लोबल ग्रुप के फंडेड तहलका डॉट कॉम ने एक स्टिंग ऑपरेशन के ज़रिए डिफेंस रिश्वत स्कैंडल का पर्दाफाश किया, जिसे वीडियो टेप पर फिल्माया गया था। हैरानी की बात है कि ज़ी न्यूज़, जो कभी इन्वेस्टिगेटिव स्टोरीज़ के लिए नहीं जाना जाता था, ने तहलका टेप्स में बहुत ज़्यादा इंटरेस्ट लिया, और उन्हें घंटों और दिनों तक बार-बार चलाया। इंफोसिस, जो एक दिन पहले Rs.4452.40 पर बंद हुआ था, 13 मार्च को गिरकर
Rs.4283.10 पर आ गया। इसी तरह, सत्यम भी गिरकर Rs.203.55 पर आ गया, जो पिछले दिन Rs.212.80 पर बंद हुआ था। हिमाचल और ग्लोबल दबाव में आकर Rs.230.75 और Rs.159.30 पर बंद हुए, जो पिछले दिन Rs.274.65 और Rs.189.60 पर बंद हुए थे। जनवरी से लेकर मार्च के कुछ दिनों बाद तक, केतन ने अपने पसंदीदा ग्लोबल टेली, HFCL और ज़ी के लिए अपना रेस्क्यू ऑपरेशन जारी रखा। किसी अजीब वजह से, मार्केट के सबसे समझदार खिलाड़ी KP, वही बड़ी गलती दोहरा रहे थे जिसने उनसे पहले कई ऑपरेटरों को मार डाला था: मार्केट से लड़ना। हताशा में, उन्होंने दो मुख्य सोर्स का सहारा लिया: बैंक और उनके पसंदीदा प्रमोटर। उन्हें गुजरात के एक अनजान को- ऑपरेटिव बैंक माधवपुरा को-ऑपरेटिव बैंक और ग्लोबल ट्रस्ट बैंक

नाम के एक बहुत मशहूर नए बैंक से फंड मिला था। मार्च 2001 की शुरुआत में, जब वह घाटे में डूबा हुआ था, तब उसे इन दोनों बैंकों और अपने पसंदीदा प्रमोटरों से 2000 करोड़ रुपये का ज़बरदस्त लोन मिल गया था।
ग्लोबल ट्रस्ट बैंक, जिसे उसने एक “डायवर्सिफिकेशन स्ट्रैटेजी के तौर पर खरीदा था, जिसे हर स्टॉक मार्केट प्रोफेशनल को मानना पड़ता है” (बिजनेस स्टैंडर्ड प्रोफ़ाइल के मुताबिक), 1999 के आखिर से ही केतन के ऑपरेशन्स की चाबी बनकर उभरा था। उसने इसकी कीमत बढ़ाई, इसमें बड़ी हिस्सेदारी ली और बैंक का इस्तेमाल खुद और अपने साथियों को फंड देने के लिए किया। केतन पारेख की अलग-अलग जानी-मानी कंपनियों में GTB का एक्सपोजर 250 करोड़ रुपये से ज़्यादा था। दिलचस्प बात यह है कि GTB के चेयरमैन रमेश गेली ने रिकॉर्ड पर कहा है कि RBI के नियमों के तहत पारेख को उनका लोन 100 करोड़ रुपये से ज़्यादा नहीं हो सकता।
GTB के टॉप 100 कर्जदारों में कम से कम एक दर्जन KP कंपनियां/साथी शामिल थीं; इनके अलावा, ट्रेडिंग के लिए इस्तेमाल होने वाली उसकी लगभग सभी कंपनियों के अकाउंट GTB में थे। ज़्यादातर K-10 कंपनियों और उनकी कई शेल/इन्वेस्टमेंट कंपनियों के भी बैंक में अकाउंट थे। इनमें से ज़्यादातर एंटिटीज़ के GTB में भी डिपॉजिटरी अकाउंट थे। आखिरकार, GTB ने स्कैम 2001 में 70 करोड़ रुपये के नुकसान की भरपाई की और टॉप मैनेजमेंट बदल दिया। चेयरमैन और मुख्य प्रमोटर रमेश गेली ने मीडिया पर इल्ज़ाम लगाते हुए इस्तीफ़ा दे दिया। लेकिन केतन का असली शिकार माधवपुरा बैंक था।
माधवपुरा, केतन की तीन फाइनेंस कंपनियों, क्लासिक शेयर एंड स्टॉक ब्रोकिंग सर्विसेज़ लिमिटेड, पैंथर फिनकैप मैनेजमेंट

सर्विसेज़ लिमिटेड, और पैंथर इन्वेस्ट्रेड एंड मैनेजमेंट सर्विसेज़ लिमिटेड को पे ऑर्डर जारी करता था, जिनके BOI में अकाउंट थे। BOI ने इन पे ऑर्डर को भारी फ़ीस लेकर डिस्काउंट किया और उन्हें क्रेडिट कर दिया। केतन के पास माधवपुरा को- ऑपरेटिव बैंक से 200 करोड़ रुपये का लाइन ऑफ़ क्रेडिट था, जिसके बदले उसने 300 करोड़ रुपये से ज़्यादा की सिक्योरिटीज़ गिरवी रखी थीं – मुख्य रूप से K-10 बबल स्टॉक्स।

8 और 9 मार्च को, BOI ने माधवपुरा बैंक के पे ऑर्डर डिस्काउंट किए। ये पे ऑर्डर क्लासिक शेयर एंड स्टॉकब्रोकर्स के 65 करोड़ रुपये, पैंथर इन्वेस्ट्रेड के 20 करोड़ रुपये और पैंथर फिनकैप के 52 करोड़ रुपये थे। कुल मिलाकर ये 137 करोड़ रुपये हुए। आम तौर पर, पे ऑर्डर अगले दो दिनों में क्लियर हो जाते। 10 और 11 मार्च को छुट्टियां थीं। 12 मार्च को रात 11 बजे RBI को बैंक की असली हालत का पता चला और उसने माधवपुरा को डिफॉल्टर घोषित कर दिया और 13 मार्च को 75 करोड़ रुपये (137 करोड़ रुपये नहीं) के पे ऑर्डर बिना पेमेंट किए वापस करने को कहा। तब तक, BOI ने यह मानकर कि पे ऑर्डर क्रेडिट हो गए हैं, रकम क्रेडिट कर दी थी। एडिट किया गया। हैरानी की बात है कि RBI ने 20 मार्च तक 62 करोड़ रुपये के दो पे ऑर्डर वापस करने का ऑर्डर दिया।

हालांकि, जब 12 मार्च को माधवपुरा बैंक को डिफॉल्टर घोषित किया गया, तो उसने 137 करोड़ रुपये के पे ऑर्डर देने से मना कर दिया, जिन्हें BOI पहले ही डिस्काउंट कर चुका था। BOI ने दबाव बनाया और केतन को कई मीटिंग के लिए बुलाया, मांग की कि वह नुकसान की भरपाई करे। केतन ने कहा कि वह इनकम टैक्स की चल रही रेड की वजह

से ऐसा नहीं कर सकता। हालांकि, वह 7 करोड़ रुपये ले आया और देनदारी घटकर 130 करोड़ रुपये रह गई।
बैंक ने पैसे का पता लगाना शुरू किया। यह पैसा नक्षत्र सॉफ्टवेयर प्राइवेट लिमिटेड, चित्रकूट कंप्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड और गोल्डफिश कंप्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड में गया था। इन कंपनियों को ट्रांसफर किया गया पैसा इतना बड़ा था कि शक पैदा हुआ। क्लासिक शेयर एंड स्टॉक ब्रोकिंग ने चित्रकूट कंप्यूटर्स में 249 करोड़ रुपये ट्रांसफर किए, पैंथर फिनकैप ने गोल्डफिश कंप्यूटर्स में 160 करोड़ रुपये ट्रांसफर किए और पैंथर इन्वेस्ट्रेड ने नक्षत्र कंप्यूटर्स में 260 करोड़ रुपये ट्रांसफर किए। ये साफ तौर पर शेल कंपनियों, बैंक अकाउंट्स और ब्रोकर्स के एक मुश्किल जाल का हिस्सा थे, जिससे केपी को बैंकिंग सिस्टम से बड़ी मात्रा में पैसा निकालने और अपने पसंदीदा शेयरों की कीमत बढ़ाने का मौका मिला।
आखिरकार, SEBI को पता चला कि केतन ने अपनी ग्यारह फर्मों जैसे सैमंगल, नक्षत्र, गोल्डफिश, चित्रकूट और ल्यूमिनेंट इन्वेस्टमेंट्स वगैरह के ज़रिए बैंक से 798 करोड़ रुपये उधार लिए थे। इनके अलावा, दो ब्रोकरेज फर्मों मुकेश बाबू सिक्योरिटीज और सुरेश मनियार को भी केतन की तरफ से किए गए ट्रांज़ैक्शन के लिए 200 करोड़ रुपये और 50 करोड़ रुपये दिए गए थे। RBI के नियमों के मुताबिक, माधवपुरा को 15 करोड़ रुपये से ज़्यादा उधार नहीं देना था। इसके उलट, इसने 200 करोड़ रुपये के जोखिम को स्वीकार किया, जो वास्तव में ब्रोकर को दिए गए उसके वास्तविक उधार का केवल एक चौथाई है।
130 करोड़ रुपये के डिफ़ॉल्ट का सामना करने पर, BOI ने केतन से माधवपुरा के पास गिरवी रखे गए स्टॉक्स का टाइटल ट्रांसफर करने

के लिए कहा, लेकिन वह अनिच्छुक था, और उसने अलग कोलैटरल का इंतजाम करने में सक्षम होने का दावा किया। संभवतः, केतन बिना किसी अतिरिक्त निवेश के, गिरवी रखे गए शेयरों के आधार पर कई महीनों से BoI और माधवपुरा के बीच फंड रोटेट कर रहा था। माधवपुरा बैंक से ओवर-ड्राफ्ट सुविधाओं और BOI से पे ऑर्डर डिस्काउंटिंग सुविधा के संयोजन के माध्यम से, केतन केवल इन सुविधाओं की लागत का भुगतान करके BSE सेटलमेंट को फाइनेंस करने के लिए पूरे एक सप्ताह का फंडिंग खरीदने में सक्षम हो सकता था।
जब वह माधवपुरा के साथ अपनी बड़ी स्थिति को संभालने के लिए संघर्ष कर रहा था, तो केतन को उन कंपनियों द्वारा बहुत उदारतापूर्वक
फंड दिया गया था, जिन्हें उसने बढ़ाया था। 8 और 9 मार्च को, ज़ी टेलीफिल्म्स और उसके सहयोगी सिटिकेबल ने डिजिटल सुपरहाइवे और ब्रिग्स ट्रेडिंग प्राइवेट नामक कंपनी में 225 करोड़ रुपये रूट किए। लिमिटेड, सुभाष चंद्रा के कंट्रोल वाली एस्सेल की दो इन्वेस्टमेंट कंपनियां थीं। इसे उसी दिन पारेख की फर्म क्लासिक क्रेडिट को दे दिया गया। इन सभी एंटिटीज़ के ग्लोबल ट्रस्ट बैंक में अकाउंट थे।
ज़ी टेलीफिल्म्स ने इस साल जनवरी के आसपास केतन पारेख को फंड देना शुरू किया। दो ट्रांज़ैक्शन में – एक जनवरी में
(Rs 90 करोड़) और दूसरा 9 मार्च को (Rs 50 करोड़), इसने तीन दूसरी फाइनेंस कंपनियों – गंजुम
इन्वेस्टमेंट्स, चूरू इन्वेस्टमेंट्स और प्रजाात्मा इन्वेस्टमेंट्स के ज़रिए केतन की कंपनियों – पैंथर फिनकैप और पैंथर इन्वेस्ट्रेड को और Rs 140 करोड़ ट्रांसफर किए। 8 और 9

मार्च को, HFCL ने Rs 150 करोड़ डिजिटल सुपरहाइवे को और वहां से केतन के पैंथर फिनकैप को ट्रांसफर किए। साफ है, केतन, विनय मालू और सुभाष चंद्रा एक-दूसरे के इतने करीब थे कि HFCL को ज़ी ग्रुप की इन्वेस्टमेंट कंपनी के ज़रिए केतन को पैसे भेजने में कोई दिक्कत नहीं हुई। इसके अलावा, 28 फरवरी और 8 मार्च के बीच अलग-अलग ट्रांज़ैक्शन की एक सीरीज़ में HFCL ने बर्लिंगटन फिनकैप प्राइवेट लिमिटेड नाम की एक और इन्वेस्टमेंट कंपनी के ज़रिए पारेख के पैंथर फिनकैप और क्लासिक क्रेडिट को और 154 करोड़ रुपये भेजे।
इस तरह, सिर्फ़ ज़ी और HFCL से, केतन पारेख को उनके लिए काम करने वाले ब्रोकर्स को पेमेंट करने के लिए 669 करोड़ रुपये मिले। लगभग 250 करोड़ रुपये संजय खेमानी नाम के एक अकेले कलकत्ता ब्रोकर को दिए गए। केतन पारेख के प्रति HFCL की दरियादिली में UTI द्वारा सब्सक्राइब किए गए नॉन-कन्वर्टिबल डिबेंचर इश्यू के ज़रिए जुटाए गए फंड और ICICI से 150 करोड़ रुपये का लोन शामिल था। माना जाता है कि ज़ी को भी उसी समय इंस्टीट्यूशनल फंडिंग मिली थी, जो पारेख को दी गई थी। दूसरे प्रमोटर जिनके स्टॉक्स में उन्होंने हेराफेरी की थी, उन्होंने भी 'सेव केतन' ऑपरेशन में मदद की। कोपरन ने UTI से उधार लिया और मार्च के पहले हफ़्ते में क्लासिक क्रेडिट ब्रोकर्स को सीधे 78 करोड़ रुपये दिए।

वित्त मंत्रालय के दबाव में आकर, सेबी ने मंदी के पैरवी करने वाले ऑपरेटरों पर धावा बोला और उनके लेन-देन की जांच शुरू की। उसने शॉर्ट सेलिंग पर प्रतिबंध लगा दिया और मार्जिन बढ़ा दिया,

साथ ही बॉम्बे और कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंजों के ब्रोकर निदेशकों को इस्तीफा देने के लिए प्रोत्साहित किया। कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज के तीन सेटलमेंट बेहद संदिग्ध परिस्थितियों में पूरे हुए। संभवतः मंदी के पैरवी करने वाले पारेख की उस समय तक बेहद कमजोर हो चुकी स्थिति के बारे में अंदरूनी जानकारी का इस्तेमाल कर रहे थे।

बीएसई के तत्कालीन अध्यक्ष आनंद राठी पर भी संदेह था कि वे भी उनमें से एक थे। राठी ने 2 मार्च के ब्लैक फ्राइडे पर विभिन्न खिलाड़ियों की ट्रेडिंग पोजीशन और बड़े ऑपरेटरों के विवरण के बारे में जानकारी के लिए बीएसई के निगरानी विभाग से संपर्क किया था।

5 मार्च को, सेबी को ऑडियो टेप मिले,

जिनसे राठी के खिलाफ आरोप साबित होते दिख रहे थे। उन्होंने 8 मार्च को इस्तीफा दे दिया। तब तक केतन की मुश्किलें चरम पर पहुंच चुकी थीं। कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज में भुगतान संकट था और बीएसई पर भी डिफ़ॉल्ट का डर मंडरा रहा था। उन्होंने अपने शेयरों को संभालने की भरपूर कोशिश की।

6 मार्च को नैस्डैक में आई अस्थायी तेजी से प्रेरित होकर उन्होंने अपने शेयरों को स्थिर रखने का प्रयास किया, लेकिन खुदरा निवेशकों द्वारा की गई भारी बिकवाली को संभालना असंभव था। केतन का खेल खत्म हो गया था।

संसद में विपक्षी दल सरकार से स्पष्टीकरण मांग रहे थे और वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा को 13 मार्च को राज्यसभा में विस्तृत बहस के लिए सहमत होना पड़ा।

बहस के दौरान ही, 13 मार्च को मंदी के माहौल में एक और धमाका हुआ। फर्स्ट ग्लोबल ग्रुप द्वारा वित्त पोषित तेहलका.कॉम ने एक स्टिंग ऑपरेशन के जरिए रक्षा रिश्वत कांड का पर्दाफाश किया, जिसे वीडियो टेप पर फिल्माया गया था। हैरानी की बात यह है कि खोजी पत्रकारिता के लिए कभी मशहूर न रहने वाले ज़ी न्यूज़ ने तेहलका के टेपों में असाधारण रुचि दिखाई और उन्हें घंटों और दिनों तक लगातार प्रसारित किया। इंफोसिस का शेयर पिछले दिन 4452.40 रुपये पर बंद हुआ था, लेकिन 13 मार्च को गिरकर

4283.10 रुपये पर आ गया। इसी तरह, सत्यम का शेयर भी गिरकर 203.55 रुपये पर आ गया, जबकि पिछले दिन यह 212.80 रुपये पर बंद हुआ था। हिमाचल और ग्लोबल के शेयर भी दबाव में लड़खड़ा गए और क्रमशः 230.75 रुपये और 159.30 रुपये पर बंद हुए, जबकि पिछले दिन ये क्रमशः 274.65 रुपये और 189.60 रुपये पर बंद हुए थे।

जनवरी से लेकर मार्च के कुछ दिनों बाद तक, केतन ने अपनी पसंदीदा ग्लोबल टेली, एचएफसीएल और ज़ी को बचाने का अभियान जारी रखा। कुछ अजीब कारणों से, बाज़ार के सबसे चतुर खिलाड़ी केतन, वही पुरानी गलती दोहरा रहे थे जिसने उनसे पहले कई ऑपरेटरों को बर्बाद कर दिया था: बाज़ार से लड़ना। हताशा में, उन्होंने दो मुख्य स्रोतों का सहारा लिया: बैंक और उनके चहेते प्रमोटर। उन्हें गुजरात के एक गुमनाम सहकारी बैंक, माधवपुरा कोऑपरेटिव बैंक और

एक नए चर्चित बैंक, ग्लोबल ट्रस्ट बैंक से वित्तीय सहायता मिली। मार्च 2001 की शुरुआत में, जब वह भारी घाटे में डूबे हुए थे, तब भी उनके पास इन दो बैंकों और उनके चहेते प्रमोटरों से 2000 करोड़ रुपये की अभूतपूर्व रकम उपलब्ध थी।

ग्लोबल ट्रस्ट बैंक (GTB), जिसमें उन्होंने "विविधीकरण रणनीति के तहत निवेश किया था, जिसका हर शेयर बाजार पेशेवर को पालन करना चाहिए" (बिजनेस स्टैंडर्ड की प्रोफाइल के अनुसार), 1999 के अंत से ही केतन के संचालन का मुख्य आधार बन चुका था। उन्होंने इसकी कीमत बढ़ाई, इसमें एक बड़ी हिस्सेदारी ली और बैंक का इस्तेमाल खुद और अपने सहयोगियों को वित्त पोषित करने के लिए किया। केतन पारेख की विभिन्न ज्ञात कंपनियों में GTB का ऋण 250 करोड़ रुपये से अधिक था। दिलचस्प बात यह है कि GTB के अध्यक्ष रमेश गेली ने यह कहा है कि RBI के नियमों के अनुसार, पारेख को दिया जाने वाला उनका ऋण 100 करोड़ रुपये से अधिक नहीं हो सकता।

GTB के शीर्ष 100 उधारकर्ताओं में कम से कम एक दर्जन KP कंपनियां/सहयोगी शामिल थे; इनके अलावा, उनकी लगभग सभी ट्रेडिंग कंपनियों के खाते GTB में थे। अधिकांश के-10 कंपनियों और उनकी कई शेल/निवेश कंपनियों के भी बैंक में खाते थे। इनमें से अधिकांश संस्थाओं के जीटीबी में भी डिपॉजिटरी खाते थे। अंततः, जीटीबी ने 2001 के घोटाले में हुए 70 करोड़ रुपये के नुकसान की भरपाई की और शीर्ष प्रबंधन में बदलाव किया। अध्यक्ष और प्रमुख प्रमोटर रमेश गेली ने मीडिया को दोषी ठहराते हुए विवादों के बीच इस्तीफा दे दिया। लेकिन केतन का असली निशाना माधवपुरा बैंक था।

माधवपुरा बैंक केतन के स्वामित्व वाली तीन वित्तीय कंपनियों - क्लासिक शेयर एंड स्टॉक ब्रोकिंग सर्विसेज लिमिटेड, पैंथर फिनकैप मैनेजमेंट सर्विसेज लिमिटेड और पैंथर इन्वेस्ट्रेड एंड मैनेजमेंट सर्विसेज लिमिटेड - को भुगतान आदेश जारी करता था, जिनके बीओआई में खाते थे। बीओआई इन भुगतान आदेशों को भारी शुल्क लेकर भुनाता था और उन्हें जमा करता था। केतन के पास माधवपुरा को-ऑपरेटिव बैंक से 200 करोड़ रुपये की क्रेडिट लाइन थी, जिसके बदले उसने 300 करोड़ रुपये से अधिक की प्रतिभूतियां गिरवी रखी थीं - मुख्य रूप से के-10 के बुलबुले वाले शेयर।

8 और 9 मार्च को, BOI ने माधवपुरा बैंक के क्लासिक शेयर एंड स्टॉकब्रोकर्स द्वारा प्रस्तुत 65 करोड़ रुपये, पैंथर इन्वेस्ट्रेड द्वारा प्रस्तुत 20 करोड़ रुपये और पैंथर फिनकैप के खाते में 52 करोड़ रुपये के भुगतान आदेशों को भुनाया। कुल मिलाकर यह राशि 137 करोड़ रुपये थी। सामान्य तौर पर, ये भुगतान आदेश अगले दो दिनों में ही चुका दिए जाने चाहिए थे।

10 और 11 मार्च को छुट्टियां थीं। 12 मार्च को रात 11 बजे, RBI को बैंक की वास्तविक स्थिति का पता चला और उसने माधवपुरा को डिफाल्टर घोषित कर दिया तथा 75 करोड़ रुपये (न कि 137 करोड़ रुपये) के भुगतान आदेशों को

13 मार्च को बिना भुगतान के वापस करने का आदेश दिया। तब तक, BOI ने भुगतान आदेशों के जमा होने की धारणा पर राशि पहले ही जमा कर दी थी। चौंकाने वाली बात यह है कि RBI ने 62 करोड़ रुपये के दो

भुगतान आदेशों को 20 मार्च को लौटाने का आदेश दिया।

हालांकि, जब 12 मार्च को माधवपुरा बैंक को डिफॉल्टर घोषित किया गया, तो उसने 137 करोड़ रुपये के भुगतान आदेशों का पालन करने से इनकार कर दिया, जिन्हें BOI ने पहले ही डिस्काउंट कर दिया था। BOI ने दबाव बढ़ा दिया और केतन को कई बैठकों के लिए बुलाया और उनसे नुकसान की भरपाई करने की मांग की। केतन ने चल रही आयकर छापों के कारण ऐसा न कर पाने का बहाना बनाया। हालांकि, उन्होंने 7 करोड़ रुपये जुटाए और देनदारी घटकर 130 करोड़ रुपये रह गई।

बैंक ने पैसे का पता लगाना शुरू किया। यह पैसा नक्षत्रा सॉफ्टवेयर प्राइवेट लिमिटेड, चित्रकूट कंप्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड और गोल्डफिश कंप्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड में गया था। इन कंपनियों में स्थानांतरित की गई राशि इतनी बड़ी थी कि संदेह पैदा हो गया। क्लासिक शेयर एंड स्टॉक ब्रोकिंग ने चित्रकूट कंप्यूटर्स में 249 करोड़ रुपये, पैंथर फिनकैप ने गोल्डफिश कंप्यूटर्स में 160 करोड़ रुपये और पैंथर इन्वेस्ट्रेड ने नक्षत्रा कंप्यूटर्स में 260 करोड़ रुपये स्थानांतरित किए। ये स्पष्ट रूप से शेल कंपनियों, बैंक खातों और दलालों के एक जटिल जाल का हिस्सा थे, जिसने केपान को बैंकिंग प्रणाली से बड़ी मात्रा में धन निकालने और अपने पसंदीदा शेयरों की कीमत को स्थिर रखने में सक्षम बनाया।

अंततः, सेबी को पता चला कि केतन ने अपनी ग्यारह फर्मों जैसे साइमंगल, नक्षत्र, गोल्डफिश, चित्रकूट और ल्यूमिनेंट इन्वेस्टमेंट्स आदि के माध्यम से बैंक से 798 करोड़ रुपये का

ऋण लिया था। इनके अलावा, दो ब्रोकरेज फर्मों मुकेश बाबू सिक्योरिटीज और सुरेश मनियार को भी केतन की ओर से किए गए लेन-देन के लिए क्रमशः 200 करोड़ रुपये और 50 करोड़ रुपये का ऋण दिया गया था। आरबीआई के नियमों के अनुसार, माधवपुरा को 15 करोड़ रुपये से अधिक का ऋण नहीं देना चाहिए था। इसके विपरीत, इसने 200 करोड़ रुपये के ऋण को स्वीकार किया, जो वास्तव में दलाल को दिए गए उसके वास्तविक ऋण का केवल एक चौथाई है।

130 करोड़ रुपये के डिफ़ॉल्ट का सामना करते हुए, बीओआई ने केतन से माधवपुरा के पास गिरवी रखे शेयरों का स्वामित्व हस्तांतरित करने को कहा, लेकिन वह अनिच्छुक रहा और उसने दावा किया कि वह एक अलग संपार्श्विक की व्यवस्था कर सकता है। संभवतः, केतन कई महीनों से गिरवी रखे गए शेयरों के आधार पर बिना किसी अतिरिक्त निवेश के, बैंक ऑफ इंडिया और माधवपुरा के बीच धनराशि का लेन-देन कर रहे थे। माधवपुरा बैंक की ओवरड्राफ्ट सुविधा और बैंक ऑफ इंडिया की पे ऑर्डर डिस्काउंटिंग सुविधा के संयोजन से, केतन ने केवल इन सुविधाओं की लागत का भुगतान करके बीएसई निपटान के लिए पूरे एक सप्ताह की धनराशि खरीदी होगी।

माधवपुरा के साथ-साथ अपनी बड़ी हिस्सेदारी को संभालने के संघर्ष में, केतन को उनकी स्थापित कंपनियों से उदारतापूर्वक

वित्तपोषण प्राप्त हुआ। 8 और 9 मार्च को, ज़ी टेलीफिल्म्स और उसकी सहयोगी कंपनी सिटिकेबल ने सुभाष चंद्र के नियंत्रण वाली एस्सेल की दो निवेश कंपनियों, डिजिटल सुपरहाइवे और ब्रिग्स ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड में 225 करोड़ रुपये का निवेश

किया। उसी दिन यह धनराशि पारेख की फर्म क्लासिक क्रेडिट में स्थानांतरित कर दी गई। इन सभी संस्थाओं के ग्लोबल ट्रस्ट बैंक में खाते थे।

ज़ी टेलीफिल्म्स ने इस वर्ष जनवरी के आसपास केतन पारेख को वित्त पोषण करना शुरू किया। जनवरी में हुए दो लेन-देन में – एक (90 करोड़ रुपये) और दूसरा 9 मार्च को (50 करोड़ रुपये), इसने तीन अन्य वित्त कंपनियों – गंजुम इन्वेस्टमेंट्स, चूरू इन्वेस्टमेंट्स और प्रजात्मा इन्वेस्टमेंट्स के माध्यम से केतन की कंपनियों – पैंथर फिनकैप और पैंथर इन्वेस्ट्रेड को 140 करोड़ रुपये हस्तांतरित किए।

8 और 9 मार्च को, एचएफसीएल ने डिजिटल सुपरहाइवे को 150 करोड़ रुपये हस्तांतरित किए और वहां से केतन की पैंथर फिनकैप को। स्पष्ट रूप से, केतन, विनय मालू और सुभाष चंद्र के बीच इतने घनिष्ठ संबंध थे कि एचएफसीएल को ज़ी ग्रुप की निवेश कंपनी के माध्यम से केतन को पैसा भेजने में कोई झिझक नहीं हुई।

इसके अलावा, 28 फरवरी और 8 मार्च के बीच अलग-अलग लेन-देनों की एक श्रृंखला में, एचएफसीएल ने बर्लिंगटन फिनकैप प्राइवेट लिमिटेड नामक एक अन्य निवेश कंपनी के माध्यम से पारेख की पैंथर फिनकैप और क्लासिक क्रेडिट को 154 करोड़ रुपये और भेजे। लिमिटेड

इस प्रकार, अकेले ज़ी और एचएफसीएल से ही केतन पारेख को अपने लिए काम करने वाले दलालों को भुगतान करने के लिए 669 करोड़ रुपये मिले। लगभग 250 करोड़ रुपये कोलकाता के एक दलाल संजय खेमानी को

दिए गए। एचएफसीएल की ओर से केतन पारेख को दी गई उदारता में यूटीआई द्वारा सब्सक्राइब किए गए नॉन-कन्वर्टिबल डिबेंचर इश्यू के माध्यम से जुटाई गई धनराशि और आईसीआईसीआई से लिया गया 150 करोड़ रुपये का ऋण शामिल था। ऐसा माना जाता है कि ज़ी को भी इसी अवधि में संस्थागत फंडिंग मिली थी, जिसे पारेख को भेजा गया था। अन्य ऋणी प्रमोटर, जिनके शेयरों में उसने हेराफेरी की थी, उन्होंने भी 'सेव केतन' अभियान में योगदान दिया। कोपरन ने यूटीआई से ऋण लिया और मार्च के पहले सप्ताह में क्लासिक क्रेडिट के दलालों को सीधे 78 करोड़ रुपये उधार दिए।

हालांकि, इनमें से कुछ भी केतन को बचाने के लिए पर्याप्त नहीं था। 130 करोड़ रुपये के भुगतान में कमी होने पर, बीओआई ने केतन पारेख के खिलाफ केंद्रीय जांच ब्यूरो और आयकर विभाग में शिकायत दर्ज कराई। केतन से पूछताछ, गिरफ्तारी और अगले बावन दिनों तक हिरासत में रखे जाने के कारण सेंसेक्स 147 अंक गिर गया।

जैसे ही JPC की जांच शुरू हुई, केतन पारेख के करीबी लोगों ने कुछ फ्रेंडली अखबारों का इस्तेमाल करके हम पर एक भद्दा पर्सनल अटैक किया। इस अटैक में यह आरोप भी शामिल था कि हम बेयर ऑपरेटर्स के करीब हैं। (मज़े की बात यह है कि SEBI की नज़र में एक बड़ा बेयर ऑपरेटर, फर्स्ट ग्लोबल का शंकर शर्मा खुद हमें गाली-गलौज वाले ईमेल भेज रहा है और उसने सुचेता के खिलाफ मानहानि का केस भी किया है!)। जब केतन 21 मई को CBI कस्टडी से रिहा हुआ, तो उसके पास एक अजीब बात थी – बिजनेस स्टैंडर्ड के उसी जर्नलिस्ट के सामने। उसने माना कि वह “बहक गया था” और “मेरे अपने फैसले के लिए किसी

और को दोष नहीं देना था।” फिर भी वह “BOI के खिलाफ 5000 करोड़ रुपये का मानहानि का केस करने के बारे में सोच रहा था।” अखबार के जोश में आकर, उसने यह नया आइडिया भी दिया कि पूरे मामले को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है और इसमें कोई क्रिमिनैलिटी शामिल नहीं है। अखबार ने पूछा कि भविष्य कैसा दिखता है। बिग बुल का चौंकाने वाला जवाब: “एक बात तो पक्की है। बुल बनने की कोशिश करने का कोई मतलब नहीं है। अगर मैं ऐसा कहूँ तो बुलिश होना बेवकूफी है।” कुछ एंटी-क्लाइमेक्स।

21

प्ले इट अगेन सैम

हर्षद मेहता की ओवर-ट्रेडिंग ने खस्ताहाल भारतीय इक्विटी और डेट मार्केट को तोड़ दिया था, ठीक नौ साल बाद, भारतीय स्टॉक मार्केट और इसका विशाल, देश भर का ट्रेडिंग सिस्टम मार्च-अप्रैल 2001 में तबाही के कगार पर आ गया था।

फाइनेंस मिनिस्टर यशवंत सिन्हा ने एक शानदार यूनियन बजट की घोषणा की लेकिन स्टॉक मार्केट गिर गया। सबसे बड़ा मार्केट ऑपरेटर दिवालिया हो गया और CBI ने पूछताछ के लिए उसे जेल में डाल दिया। एक को-ऑपरेटिव बैंक पर हमला हुआ। कुछ जंक स्टॉक जो 10-15 गुना बढ़े थे, अपनी पीक वैल्यू के 5%-10% तक गिर गए। कई ब्रोकर दिवालिया हो गए। शुरुआती जांच में बैंकों, ब्रोकरों, स्टॉक ऑपरेटरों, म्यूचुअल फंड और कंपनियों के बीच सांठगांठ से स्टॉक पार्क करने और कीमतों में हेराफेरी करने की एक स्कीम का

पता चला है। BSE गवर्निंग बोर्ड के ब्रोकर-मेंबर, जिसमें प्रेसिडेंट भी शामिल हैं, विवादों में बुरी तरह फंसे हुए हैं। रेगुलेटर, RBI और SEBI सोते हुए पाए गए। इन सबकी जांच के लिए एक JPC बनाई गई है।
नहीं, हम स्कैम 1992 की बात नहीं कर रहे हैं। हम स्कैम 2001 की बात कर रहे हैं। और जैसे 1992 में दिल्ली के एक बड़े अखबार के मालिक ने कहा था कि यह स्कैम पत्रकारों की सोच है, वैसे ही कुछ "बुद्धिजीवियों" ने यह कहने की कोशिश की कि 2001 में कोई स्कैम नहीं हुआ था, कोई गलत काम नहीं हुआ था। लेकिन, इतिहास के एक अनोखे दोहराव में, हर्षद मेहता की ओवर-ट्रेडिंग ने भारतीय इक्विटी और डेट मार्केट को तोड़ दिया था, उसके ठीक नौ साल बाद, मार्च-अप्रैल 2001 में भारतीय स्टॉक मार्केट और इसका बहुत बड़ा, देश भर का ट्रेडिंग सिस्टम बर्बादी के कगार पर आ गया था। इसके केंद्र में केतन पारेख थे, जो कभी बातूनी हर्षद के शांत, कभी के दोस्त थे।
हाँ, दोनों में बहुत बड़े अंतर हैं। पहले खुलासा हुआ था कि हर्षद मेहता ने SBI से 500 करोड़ रुपये (जो बाद में 660 करोड़ रुपये निकले) लेने में मदद की थी, लेकिन केतन पारेख का डिफ़ॉल्ट 130 करोड़ रुपये का था। बैंकों और PSUs के उलट, इस बार बहुत सारा पैसा खुले तौर पर प्राइवेट कॉर्पोरेट सेक्टर से आया था। साथ ही, 1992 के स्कैंडल में नेशनल हाउसिंग बैंक, सिटी बैंक, ANZ ग्रिंडलेज़, स्टैंडर्ड चार्टर्ड और दो छोटे बैंक शामिल थे। इस बार सिर्फ़ तीन बैंक हैं। फिर भी, चौंकाने वाली समानताएँ हैं। हर्षद/केतन: सीक्वल के इस ज़माने में यह हैरानी की बात नहीं है कि केतन पारेख ने हर्षद मेहता के नक्शेकदम पर चलते हुए काम किया। उनमें मेहता जैसा दिखावा और करिश्मा नहीं था, न ही वे

“रिप्लेसमेंट कॉस्ट” जैसी थ्योरी के साथ अपनी कीमतों में हेरफेर को सही ठहराने की काबिलियत रखते थे, लेकिन माना जाता था कि वे ज़्यादा पक्के इरादे वाले थे और उनका दबदबा कहीं ज़्यादा फैला हुआ था। मज़े की बात यह है कि हर्षद के भाई अश्विन मेहता केतन के करीबी सलाहकार रहे हैं, और दोनों बुल्स रिश्तेदारों और दोस्तों के एक करीबी ग्रुप के ज़रिए काम करते थे। हर्षद-अश्विन की जोड़ी की तरह, केतन के बिज़नेस ऑपरेशन में उनके कज़िन कार्तिक ने मदद की थी। एक दिलचस्प समानता: केतन 1992 के एक स्कैम केस में भी आरोपी थे। (कैनबैंक म्यूचुअल फंड केस-3, 1996)।
SBI/BOI: SBI को अपने बही-खातों में 660 करोड़ रुपये के ब्लैक होल का पता चला, जिससे 1992 के स्कैम का पर्दाफाश हुआ। नौ साल बाद, बैंक ऑफ़ इंडिया में 130 करोड़ रुपये का घोटाला हुआ, जिससे माधवपुरा मर्केंटाइल को-ऑपरेटिव बैंक और केतन पारेख तक हज़ारों करोड़ का मार्केट लॉस हुआ।
UTI: म्यूचुअल फंड्स ने 1992 के स्कैंडल में ठीक वही रोल निभाया जो कई दूसरे इंडियन बैंकों ने निभाया था। कई फंड्स के पोर्टफोलियो K-10 स्क्रिप्स से भरे हुए थे। केतन-MF नेक्सस के आरोपों के सेंटर में UTI था। 1992 में, JPC के तीन मेंबर्स, जॉर्ज फर्नांडिस, रवि रे और जयपाल रेड्डी ने बताया था कि कैसे UTI का इस्तेमाल "इंडस्ट्रियल घरानों के बेईमान लोगों ने अपने मैनिपुलेटिव गेम्स और कई दूसरे गैर-कानूनी डील्स के लिए किया...", और पूरी जांच की मांग की थी। नौ साल बाद भी, UTI की फ्लैगशिप स्कीम US-64 अभी भी SEBI के सुपरवाइजरी दायरे से बाहर है। BJP MP किरीट सोमैया बार-बार यह आरोप लगा रहे हैं लेकिन JPC जांच करने में धीमी है। केतन के पसंदीदा बबल स्टॉक

जैसे डीएसक्यू सॉफ्टवेयर, ग्लोबल टेलीसिस्टम्स, ज़ी टेलीफिल्म्स और एचएफसीएल में यूटीआई का निवेश, इसका अचानक HFCL के 50 करोड़ रुपये के डिबेंचर के सब्सक्रिप्शन से केतन पारकेह और उसके प्रमोटर्स के गैंग को मदद मिली। साथ ही, जैसा कि SEBI की शुरुआती इंस्पेक्शन रिपोर्ट में कहा गया था कि UTI ने सट्टेबाजों को कीमतों की “बेंचमार्किंग” दी थी। UTI का हाथ इतना गहरा था कि आखिरकार US-64 को छह महीने के लिए यूनिट्स की बिक्री और रीपरचेज़ पर रोक लगाने की घोषणा करनी पड़ी। UTI चीफ, पीएस सुब्रमण्यम को इस्तीफा देना पड़ा।
हितेन दलाल/निर्मल बंग: रहस्यमयी, कम जाने-पहचाने और चुप रहने वाले हितेन दलाल की जगह अब हमारे पास लो-प्रोफाइल निर्मल बंग हैं, जिन्होंने पांच कार्ड और एफिलिएट कंपनियों के ज़रिए बड़े पैमाने पर ट्रांज़ैक्शन किए। इससे उन्हें भारी एक्सपोज़र लिमिट मिली, जिसका इस्तेमाल सट्टेबाजों और बड़े ऑपरेटरों ने किया। हितेन की तरह, बंग ने भी स्टॉक्स नहीं बदले, लेकिन जो कोई भी ऐसा करता था, उसके लिए वह बहुत ज़रूरी थे। उनके क्लाइंट्स में फर्स्ट ग्लोबल सिक्योरिटीज के साफ बोलने वाले, अक्खड़ और घमंडी शंकर शर्मा से लेकर शांत ऑपरेटर नेमिश शाह और देश भर के अनगिनत डे ट्रेडर्स शामिल थे। इन प्लेयर्स ने अपने अकाउंट्स को साफ-सुथरा रखा और अपने ज़्यादातर स्पेक्युलेटिव ऑपरेशन्स निर्मल बांग और उनकी कंपनियों के ज़रिए करवाए। उदाहरण के लिए, फर्स्ट ग्लोबल ने पिछले साल अकेले ब्रोकरेज में बांग की कंपनियों को एक करोड़ रुपये दिए। इसका मतलब था लगभग 1000 करोड़ रुपये का ट्रेडिंग टर्नओवर। हितेन दलाल की तरह, निर्मल बांग भी बहुत लो प्रोफाइल रहना पसंद करते थे। प्रेस में उनका कभी ज़िक्र नहीं होता और न ही उनकी कभी फोटो खींची जाती है।

फेयरग्रोथ/GTB: ग्लोबल ट्रस्ट बैंक एक तेज़ी से बढ़ने वाला बैंक था, जबकि फेयरग्रोथ एक फाइनेंशियल सर्विसेज़ कंपनी थी। लेकिन दोनों को ही तेज़-तर्रार, प्रोफेशनल्स से एंटरप्रेन्योर बने बैंकर्स लीड कर रहे थे। दोनों में एक दुखद कमी थी – क्योंकि दोनों का ही मकसद सही था। केनरा बैंक के डाइनेमिक पूर्व चेयरमैन, सुपरबैंकर स्वर्गीय बी रत्नाकर, फेयरग्रोथ को ज़बरदस्त ग्रोथ के रास्ते पर ले गए। GTB के चेयरमैन रमेश गेली, रत्नाकर की तरह, बैंकिंग सिस्टम में आगे बढ़े और पहले एंटरप्रेन्योर-बैंकर बने। एक छोटा सा फ़र्क यह था कि रत्नाकर को बैंकिंग सिस्टम में कई “काउबॉय बैंकर्स” (जैसा कि कोई उन्हें मशहूर तौर पर कहता था) को लाने का क्रेडिट दिया गया, जिनमें से कई 1992 के स्कैम में अहम रोल में रहे। दूसरी ओर, रमेश गेली अपनी टीम में अकेले स्टार थे।
बैंक/ब्रोकर्स, FIIs: सिटीबैंक, स्टैनचार्ट, ANZ ग्रिंडलेज़ 1992 के अहम रोल में थे, जिनके ख़िलाफ़ JPC ने लाइसेंस सस्पेंड करने समेत कड़ी सज़ा की मांग की थी। इस बार, अहम रोल में विदेशी ब्रोकिंग ऑर्गनाइज़ेशन और FIIs शामिल थे जो प्राइस में हेरफेर में शामिल थे और स्टॉक मार्केट में बिना हिसाब-किताब वाले भारतीय पैसे के आने-जाने का ज़रिया थे। इसके अलावा, सिटी ने एक अमीर विरासत छोड़ी है। 2001 में क्रेडिट सुइस फ़र्स्ट बोस्टन, जिसके हेड एक पुराने सिटीबैंकर थे, और फ़र्स्ट ग्लोबल, जिसके मालिक पुराने सिटीबैंकर थे, जांच के दायरे में थे। SEBI की जांच में CSFB के साथ रजिस्टर्ड पांच विदेशी कॉर्पोरेट बॉडीज़ का पता चला, जो मुख्य रूप से केतन पारेख के लिए काम कर रही थीं। ऐसा लगता है कि उन्होंने मार्च 2001 तक पंद्रह महीनों में विदेश में 2900 करोड़ रुपये ट्रांसफर किए हैं।

FIIs उन ब्रोकर्स और बिजनेसमैन के बीच मिसिंग लिंक देंगे जिनके स्टॉक्स में तेज़ी आई थी। वे भारतीय इंडस्ट्रियलिस्ट्स द्वारा स्टॉक ऑपरेशन्स के लिए अपने एनॉनिमस सब-अकाउंट की सेफ्टी ऑफर करने के लिए जाने जाते हैं। कुछ ने तो एक पैकेज डील भी ऑफर की है, जिसमें ओवरसीज अकाउंट्स और कंपनियां बनाना और कई ट्रेडिंग ऑप्शन शामिल थे। हालांकि, अब तक, SEBI ने पार्टिसिपेटरी नोट्स (एक ओम्निबस फाइनेंशियल इंस्ट्रूमेंट जो भारतीय मार्केट में खरीदी गई खास अंडरलाइंग सिक्योरिटीज को दिखाता है) के इश्यू और केतन पारेख के ऑपरेशन्स से उनके लिंक्स की जांच करने से मना कर दिया है।

जेपीसी की जांच शुरू होते ही, केतन पारेख के करीबी लोगों ने कुछ मित्र अखबारों का इस्तेमाल करते हुए हम पर व्यक्तिगत हमले शुरू कर दिए। इन हमलों में आरोप लगाया गया कि हम बियर ऑपरेटरों के करीबी हैं। (विडम्बना यह है कि सेबी की नजर में एक बड़ा बियर ऑपरेटर, फर्स्ट ग्लोबल के शंकर शर्मा खुद हमें अपमानजनक ईमेल भेज रहे हैं और सुचेता के खिलाफ मानहानि का मुकदमा दायर कर चुके हैं!) जब केतन 21 मई को सीबीआई हिरासत से रिहा हुए,

उन्होंने बिजनेस स्टैंडर्ड के उसी पत्रकार को एक अजीबोगरीब दलील दी। उन्होंने स्वीकार किया कि वे "बहक गए थे" और "अपने फैसले के लिए किसी और को दोष नहीं दे सकते।" फिर भी वे "बीओआई के खिलाफ 5000 करोड़ रुपये का मानहानि का मुकदमा दायर करने पर विचार कर रहे थे।" अखबार द्वारा उकसाए जाने पर, उन्होंने यह अनोखा विचार भी पेश किया कि पूरा मामला बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया

गया है और इसमें कोई आपराधिक कृत्य शामिल नहीं है। अखबार ने पूछा कि भविष्य कैसा दिखता है? बिग बुल का चौंकाने वाला जवाब: “एक बात तो तय है। बुल बनने की कोशिश करने का कोई मतलब नहीं है। अगर मैं कहूँ तो, बुलिश होना मूर्खता है।” कितना निराशाजनक अंत!

प्ले इट अगेन सैम

हर्षद मेहता के अत्यधिक ट्रेडिंग के कारण खस्ताहाल भारतीय शेयर बाजार के नौ साल बाद,

मार्च-अप्रैल 2001 में भारतीय शेयर बाजार और उसकी विशाल, राष्ट्रव्यापी ट्रेडिंग प्रणाली तबाही के कगार पर पहुँच गई।

वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा ने एक शानदार केंद्रीय बजट की घोषणा की।

लेकिन शेयर बाजार धराशायी हो गया। सबसे बड़ा बाजार संचालक

दिवालिया हो गया और सीबीआई ने उसे पूछताछ के लिए जेल भेज दिया। एक सहकारी बैंक में भगदड़ मच गई। कुछ जंक स्टॉक, जो 10-15 गुना बढ़ गए थे, अपने उच्चतम मूल्य के 5%-10% तक गिर गए। कई ब्रोकर दिवालिया हो गए। प्रारंभिक जांच में बैंकों, दलालों, शेयर संचालकों, म्यूचुअल फंडों और कंपनियों के बीच मिलीभगत से शेयरों की हेराफेरी और मूल्य निर्धारण में हेरफेर की एक योजना का खुलासा हुआ है। बीएसई गवर्निंग बोर्ड के दलाल सदस्य, जिनमें अध्यक्ष भी शामिल हैं, गहरे विवादों में घिरे हैं। नियामक

निकाय, आरबीआई और सेबी, निष्क्रिय पाए गए हैं। इन सब की जांच के लिए एक जेपीसी (न्याय समिति) नियुक्त की गई है।

नहीं, हम 1992 के घोटाले की बात नहीं कर रहे हैं। हम 2001 के घोटाले की बात कर रहे हैं। और जिस तरह 1992 में दिल्ली के एक प्रतिष्ठित अखबार मालिक ने कहा था कि घोटाला पत्रकारों की कल्पना मात्र है, उसी तरह कुछ "बुद्धिजीवियों" ने यह सुझाव देने की कोशिश की कि 2001 में कोई घोटाला नहीं हुआ, कोई गलत काम हुआ ही नहीं।

हालांकि, इतिहास की एक उल्लेखनीय पुनरावृत्ति में, हर्षद मेहता के अत्यधिक व्यापार के कारण भारतीय शेयर बाजार और ऋण बाजार के बुरी तरह से क्षतिग्रस्त होने के ठीक नौ साल बाद, मार्च-अप्रैल 2001 में भारतीय शेयर बाजार और इसकी विशाल, राष्ट्रव्यापी व्यापार प्रणाली तबाही के कगार पर पहुँच गई। इस घोटाले के केंद्र में केतन पारेख थे, जो हर्षद मेहता के कभी दोस्त रहे एक शांत स्वभाव के व्यक्ति थे।

निस्संदेह, दोनों में बड़े अंतर हैं। हर्षद मेहता द्वारा एसबीआई से 500 करोड़ रुपये (बाद में 660 करोड़ रुपये निकले) की हेराफेरी के पहले खुलासे के विपरीत, केतन पारेख का डिफ़ॉल्ट 130 करोड़ रुपये का था। बैंकों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विपरीत, इस बार बड़ी मात्रा में धन निजी कॉरपोरेट क्षेत्र से आया। साथ ही, 1992 के घोटाले में नेशनल हाउसिंग बैंक, सिटी बैंक, एएनजेड ग्रिंडलेज़, स्टैंडर्ड चार्टर्ड और दो छोटे बैंक शामिल थे। इस बार केवल तीन बैंक शामिल हैं। फिर भी,

चौंकाने वाली समानताएँ हैं।

हर्षद/केतन: आज के दौर में जब हर कहानी की अगली कड़ी देखने को मिलती है, तो यह आश्चर्य की बात नहीं है कि केतन पारेख ने हर्षद मेहता के नक्शेकदम पर चलना शुरू किया। उनमें मेहता जैसी शान-शौकत और करिश्मा नहीं था, न ही "प्रतिस्थापन लागत" जैसे सिद्धांतों से कीमतों में हेराफेरी को सही ठहराने की क्षमता, लेकिन माना जाता था कि वे उनसे कहीं अधिक आत्मविश्वासी थे और उनका प्रभाव कहीं अधिक व्यापक था। विडंबना यह है कि हर्षद के भाई अश्विन मेहता केतन के करीबी सलाहकार रहे हैं, और दोनों ही अपने करीबी रिश्तेदारों और दोस्तों के माध्यम से कारोबार करते थे। हर्षद-अश्विन की जोड़ी की तरह, केतन के कारोबार में भी उनके चचेरे भाई कार्तिक ने उनकी मदद की। एक दिलचस्प समानता यह है कि केतन भी 1992 के एक घोटाले (कैनबैंक म्यूचुअल फंड केस-3, 1996) में आरोपी थे।

एसबीआई/बीओआई: एसबीआई द्वारा अपने खातों में 660 करोड़ रुपये के घोटाले का पता चलने से 1992 के घोटाले का पर्दाफाश हुआ। नौ साल बाद, बैंक ऑफ इंडिया में 130 करोड़ रुपये के घोटाले ने माधवपुरा मर्केंटाइल को-ऑपरेटिव बैंक और केतन पारेख तक का रास्ता खोल दिया, जिससे बाजार को हजारों करोड़ रुपये का नुकसान हुआ।

यूटीआई: म्यूचुअल फंड्स ने ठीक वही भूमिका निभाई जो कई अन्य भारतीय बैंकों ने 1992 के घोटाले में निभाई थी। कई फंड्स के पोर्टफोलियो में के-10 शेयरों की भरमार थी। केतन-म्यूचुअल

फंड्स के गठजोड़ के आरोपों के केंद्र में यूटीआई था। 1992 में, जेपीसी के तीन सदस्यों, जॉर्ज फर्नांडीस, रबी रे और जयपाल रेड्डी ने बताया था कि कैसे यूटीआई का इस्तेमाल "औद्योगिक घरानों के बेईमान लोगों द्वारा अपने हेरफेर वाले खेलों और कई अन्य अवैध सौदों के लिए किया जा रहा था...", और उन्होंने पूरी जांच की मांग की थी। नौ साल बाद भी, यूटीआई की प्रमुख योजना यूएस-64 सेबी के पर्यवेक्षण क्षेत्र से बाहर है। भाजपा सांसद किरीट सोमैया बार-बार यह आरोप लगाते रहे हैं, लेकिन जेपीसी जांच में धीमी गति से काम कर रही है। केतन के पसंदीदा शेयरों जैसे डीएसक्यू सॉफ्टवेयर, ग्लोबल टेलीसिस्टम्स, ज़ी टेलीफिल्म्स और एचएफसीएल में यूटीआई का निवेश, एचएफसीएल के 50 करोड़ रुपये के डिबेंचर की अचानक सदस्यता, इन सभी ने केतन पारखे और उनके प्रमोटरों के गिरोह को फायदा पहुंचाया। साथ ही, सेबी की प्रारंभिक जांच रिपोर्ट में कहा गया कि यूटीआई ने सट्टेबाजों को कीमतों का "बेंचमार्किंग" प्रदान किया था। यूटीआई की संलिप्तता इतनी गहरी थी कि अंततः यूएस-64 को छह महीने के लिए यूनिटों की बिक्री और पुनर्खरीद को निलंबित करने की घोषणा करनी पड़ी। यूटीआई प्रमुख, पीएस सुब्रमण्यम को इस्तीफा देना पड़ा।

हितेन दलाल/निर्मल बैंग: गुमनाम, कम प्रसिद्ध और कम बोलने वाले हितेन दलाल की जगह अब हमारे पास कम चर्चित निर्मल बैंग हैं, जिन्होंने पांच कार्डों और संबद्ध कंपनियों के माध्यम से बड़े पैमाने पर लेनदेन किए। इससे उन्हें भारी जोखिम सीमाएं प्राप्त हुईं, जिनका उपयोग सट्टेबाजों और बड़े ऑपरेटरों ने किया। हितेन की तरह, बैंग ने शेयरों में हेरफेर नहीं किया, लेकिन जो भी ऐसा करता था, उसके लिए वह अपरिहार्य थे। उनके ग्राहकों में फर्स्ट

ग्लोबल सिक्योरिटीज के मुखर, तीखे और अहंकारी शंकर शर्मा से लेकर शांत स्वभाव के नेमिश शाह और देश भर के अनगिनत डे ट्रेडर शामिल थे।

इन खिलाड़ियों ने अपने खातों को बेदाग रखा और अपने अधिकांश सट्टेबाजी के संचालन निर्मल बैंग और उनकी कंपनियों के माध्यम से किए। उदाहरण के लिए, फर्स्ट ग्लोबल ने पिछले साल अकेले ब्रोकरेज के रूप में बैंग की कंपनियों को एक करोड़ रुपये का भुगतान किया। इससे लगभग 1000 करोड़ रुपये का ट्रेडिंग कारोबार हुआ। हितेन दलाल की तरह, निर्मल बैंग भी बेहद लो प्रोफाइल रहना पसंद करते थे। प्रेस में उनके बयान कभी नहीं छपते और न ही उनकी कोई तस्वीर सामने आती है।

फेयरग्रोथ/जीटीबी: ग्लोबल ट्रस्ट बैंक एक तेजी से बढ़ता हुआ बैंक था, जबकि फेयरग्रोथ एक वित्तीय सेवा कंपनी थी। लेकिन दोनों का नेतृत्व महत्वाकांक्षी, तेजतर्रार बैंकरों, पेशेवरों से उद्यमी बने लोगों ने किया। दोनों में एक दुखद खामी थी - दोनों के लिए लक्ष्य को साधने का कोई भी तरीका जायज था। केनरा बैंक के गतिशील पूर्व अध्यक्ष, दिग्गज बैंकर स्वर्गीय बी रत्नाकर ने फेयरग्रोथ को तीव्र विकास के पथ पर अग्रसर किया। जीटीबी के चेयरमैन रमेश गेली ने रत्नाकर की तरह ही बैंकिंग प्रणाली में अपनी ताकत का इस्तेमाल करते हुए पहला उद्यमी-बैंकर बनने का सफर तय किया। एक छोटा सा अंतर यह था कि रत्नाकर को बैंकिंग प्रणाली पर कई "अव्यवस्थित बैंकरों" (जैसा कि किसी ने मशहूर तौर पर उन्हें कहा था) को थोपने का श्रेय दिया जाता है, जिनमें से कई 1992 के घोटाले में प्रमुख खिलाड़ी बन गए। दूसरी ओर, रमेश गेली

अपनी टीम के इकलौते स्टार थे।

बैंक/ब्रोकर, एफआईआई: सिटीबैंक, स्टैनचार्ट, एएनजेड ग्रिंडलेज़ 1992 के घोटाले के प्रमुख खिलाड़ी थे, जिनके खिलाफ जेपीसी ने लाइसेंस रद्द करने सहित कड़ी सजा की मांग की थी। इस बार, प्रमुख खिलाड़ियों में विदेशी ब्रोकिंग संस्थाएं और एफआईआई शामिल थे जो मूल्य निर्धारण में हेरफेर करने में लगे थे और शेयर बाजार में आने-जाने वाले बेहिसाब भारतीय धन के लिए माध्यम का काम करते थे। इसके अलावा, सिटी ने एक समृद्ध विरासत छोड़ी है। 2001 में क्रेडिट सुइस फर्स्ट बोस्टन, जिसका नेतृत्व एक पूर्व सिटीबैंक कर्मचारी कर रहा था, और फर्स्ट ग्लोबल, जिसका स्वामित्व भी पूर्व सिटीबैंक कर्मचारियों के पास था, जांच के दायरे में आए। एसईबीआई की जांच में सीएसएफबी के साथ पंजीकृत पांच विदेशी कॉर्पोरेट निकाय सामने आए, जो मुख्य रूप से केतन पारेख के लिए काम कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने मार्च 2001 तक पंद्रह महीनों में भारी भरकम 2900 करोड़ रुपये विदेश में स्थानांतरित किए थे।

वित्तीय सूचकांक (एफआईआई) उन दलालों और व्यापारियों के बीच की कड़ी का काम करते हैं जिनके शेयरों में हेरफेर किया गया था। ये भारतीय उद्योगपतियों द्वारा शेयर लेनदेन के लिए अपने गुमनाम उप-खातों की सुरक्षा प्रदान करने के लिए जाने जाते हैं। कुछ ने तो एक पैकेज डील भी पेश की है, जिसमें विदेशी खाते और कंपनियां स्थापित करना और कई ट्रेडिंग विकल्प शामिल हैं। हालांकि, अब तक एसईबीआई ने विदेशों में पार्टिसिपेटरी नोट्स (भारतीय बाजार में खरीदी गई विशिष्ट अंतर्निहित प्रतिभूतियों का

प्रतिनिधित्व करने वाला एक व्यापक वित्तीय साधन) और केतन पारेख के संचालन से उनके संबंधों की जांच करने से इनकार कर दिया है।

सहकारी बैंक: माधवपुरा मर्केंटाइल कोऑपरेटिव बैंक और अन्य छोटे बैंकों की गड़बड़ियां 1992 के मेट्रोपॉलिटन कोऑपरेटिव बैंक और बैंक ऑफ कराड की घटनाओं से स्पष्ट रूप से मिलती-जुलती हैं। संयोगवश, 1992 में सहकारी बैंकों और छोटे निजी बैंकों की भूमिका पर टिप्पणी करने के बावजूद, जेपीसी ने इन बैंकों पर निगरानी नियंत्रण को सख्त करने के संबंध में कोई सिफारिश नहीं की थी। आरबीआई की निगरानी अभी भी ढीली है। अंतर केवल इतना है कि इस बार माधवपुरा को अहमदाबाद के सांसद एलके आडवाणी द्वारा प्रेरित एक स्वार्थी राजनीतिक निर्णय के तहत बचाया जा रहा है। खराब व्यवस्था: 1992 का घोटाला खराब व्यवस्था के कारण हुआ था। 2001 में भी यही स्थिति थी। 1992 के बाद बाजार व्यवस्था में व्यापक बदलाव तो हुए, लेकिन सुधारों के अगले चरण में प्रवेश नहीं हो सका, जिसमें रोलिंग सेटलमेंट, तेईस स्टॉक एक्सचेंजों में एकसमान सेटलमेंट तिथियां (मनमानी से होने वाले आर्बिट्रेज को कम करने के लिए) और विलय या बंद करने के माध्यम से स्टॉक एक्सचेंजों की संख्या में कमी शामिल होनी चाहिए थी। पर्यवेक्षी ढांचा भी कमजोर था। इन प्रणालीगत खामियों के कारण ब्रोकरों ने सीमित धनराशि से एक स्टॉक एक्सचेंज से दूसरे स्टॉक एक्सचेंज में ट्रेडिंग पोजीशन को रोल करके ट्रेडिंग बबल बना लिया। 1992 में, लगभग 300 करोड़ रुपये के दैनिक कारोबार के साथ बीएसई राष्ट्रीय व्यापार का दो-तिहाई हिस्सा था और एनएसई अस्तित्व में नहीं था। 2000 में अपने चरम पर, बीएसई और एनएसई ने मिलकर प्रतिदिन 12,000 करोड़ रुपये का कारोबार दर्ज किया।

शक्तिशाली ब्रोकर लॉबी ने यह तर्क देकर सुधारों को लागू करने के विभिन्न प्रयासों को विफल कर दिया कि इतनी बड़ी मात्रा में व्यापार होने से ये बदलाव गायब हो जाएंगे। एक एक्सचेंज से दूसरे एक्सचेंज में बेरोकटोक स्थानांतरित हो रही इन विशाल ट्रेडिंग पोजीशनों ने ही 2001 के घोटाले को हवा दी।
RBI/SEBI: 1992 की जेपीसी ने विशेष रूप से 1986 से चेतावनी संकेतों की अनदेखी के लिए RBI को जिम्मेदार ठहराया था। इसमें कहा गया था: "रेड अलर्ट को नजरअंदाज किया गया, रिपोर्टों को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया और बाजार की जानकारियों को तिरस्कार के साथ देखा गया।" यह बयान 2001 के घोटाले पर जेपीसी की रिपोर्ट में हूबहू शामिल किया जा सकता है। पिछली जेपीसी रिपोर्ट में नामित डिप्टी गवर्नर और अन्य अधिकारियों पर कोई कार्रवाई नहीं की गई। पर्यवेक्षण विभाग, जिसे शुरू में एक शक्तिशाली और स्वतंत्र पर्यवेक्षी एजेंसी के रूप में परिकल्पित किया गया था, एक सुस्त आरबीआई विभाग बनकर रह गया। इसका नेतृत्व एक डिप्टी गवर्नर कर रहे थे, जिनका दूसरा कार्यकाल विस्तार हो चुका था और जो किसी भी सख्त पर्यवेक्षी कार्रवाई के लिए जाने जाते थे। 2001 का घोटाला कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज की पूर्ण अराजकता या मुंबई स्थित ऑपरेटरों द्वारा मनमाने ढंग से कीमतों में हेरफेर करने पर रोक लगाने में SEBI की अक्षमता के कारण हुआ था। जेपीसी द्वितीय: जेपीसी की एक और जांच में पुरानी कहानी की झलक दिखाई दे रही है। पिछली जेपीसी की संरचना और उसकी धीमी और बेतरतीब जांच से लगभग कुछ हासिल नहीं हुआ और यह मामला सौदेबाजी में सिमट गया, जिसमें यह तय किया जा रहा था कि किसे दोषी ठहराया जाए और किसे बरी किया जाए। उसकी कई मुख्य सिफारिशों को इतना कमजोर कर दिया गया कि वे बेअसर हो गईं। गोल्डस्टार-आंध्र बैंक

घोटाले में प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव और उनके बेटों की संलिप्तता के गंभीर रिश्वतखोरी के आरोपों को मुख्य रिपोर्ट के साथ संलग्न कई नोटों तक सीमित कर दिया गया। उद्योगपतियों की भूमिका भी केवल नोटों में ही दिखाई दी और उसे तुरंत नजरअंदाज कर दिया गया। आखिर राजनेता ही बेहतर जानते हैं कि सरकार को सुचारू रूप से चलाने में उद्योग की क्या भूमिका होती है।
कॉर्पोरेट गठजोड़: 1992 के घोटाले में, कुछ व्यवसायी हर्षद मेहता के साथ मूल्य वृद्धि में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। जैसा कि जेपीसी ने कहा, उसे "प्रमुख औद्योगिक घरानों, बैंकों और दलालों के बीच घनिष्ठ गठजोड़ के कई उदाहरण" मिले। पिछली बार रिलायंस इंडस्ट्रीज, अपोलो टायर्स और यूनाइटेड ब्रुअरीज जैसे नाम सामने आए थे। उनके खिलाफ कुछ नहीं हुआ। 1998 में, बीपीएल, वीडियोकॉन और स्टरलाइट इंडस्ट्रीज को हर्षद के साथ मिलकर अपने शेयरों की कीमतें बढ़ाने में शामिल पाया गया। लेकिन फिर भी इन प्रमोटरों के खिलाफ (2001 के मध्य तक) कोई कार्रवाई नहीं हुई। संभवतः नियामकों की निष्क्रियता से उत्साहित होकर, केतन पारेख और ज़ी, एचएफसीएल, ग्लोबल टेली जैसी कंपनियों ने शेयरों की कीमतों में हेराफेरी और समर्थन का सबसे घिनौना कारनामा शुरू किया। केतन को रैनबैक्सी, कोपरान और निरमा से भी वित्तीय सहायता मिली थी। इस सांठगांठ के विभिन्न पहलुओं का अभी भी खुलासा हो रहा है। डीएसक्यू सॉफ्टवेयर नामक एक कंपनी एक विचित्र मामला है, जिस पर हर तरह की जांच की जा सकती है। हमने इसका वर्णन आगे किया है। इस बीच, यहां 2001 के घोटाले के प्रमुख किरदारों की एक झलक है:
क्रेडिट सुइस फर्स्ट बोस्टन

1992 के घोटाले में विदेशी बैंकों ने अहम भूमिका निभाई थी। 2001 में, विदेशी निवेशित कंपनियों (एफआईआई) की बारी आई, जिन्होंने अपने उप-खातों और विदेशी ब्रोकिंग फर्मों के इस्तेमाल की अनुमति दी (यह दावा करते हुए कि उनके भारतीय समकक्षों की तुलना में उनके नैतिक मानक और आचार संहिता बेहतर हैं)। वर्षों से यह फुसफुसाहट चल रही थी कि एफआईआई के उप-खाते भारतीय धन (जो बाहर चला गया था) को पार्टिसिपेटरी नोटों और विदेशी निगम निकायों के माध्यम से भारतीय बाजारों में वापस लाने का माध्यम थे। प्रवर्तन निदेशालय और आयकर विभाग ने समय-समय पर इसकी जांच करने की इच्छा जताई, लेकिन वित्त मंत्रालय ने इसे रोक दिया। अब एसईबीआई सबूत पेश कर रहा है, अगर जेपीसी जांच करना चाहे।
एसईबीआई ने अप्रैल 2001 में क्रेडिट सुइस फर्स्ट बोस्टन (आई) सिक्योरिटीज प्राइवेट लिमिटेड को निलंबित कर दिया, जब यह पता चला कि उसने मार्च 1999 से मार्च 2001 के बीच केतन पारेख के लिए काम कर रही मॉरीशस में पंजीकृत पांच विदेशी निगम निकायों (ओसीबी) - ब्रेंटफील्ड होल्डिंग लिमिटेड, केंसिंग्टन इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड, वेकफील्ड होल्डिंग्स, यूरोपियन इन्वेस्टमेंट और फार ईस्ट इन्वेस्टमेंट - के माध्यम से 2900 करोड़ रुपये की भारी रकम वापस भारत भेजी थी। आखिरी दो कंपनियों की जारी और भुगतान की गई पूंजी मात्र 10 डॉलर थी। पहली तीन कंपनियों को केतन पारेख की कंपनी ट्राइम्फ इंटरनेशनल द्वारा बैंक खातों से परिचित कराया गया था।
केतन की अधिकांश बिक्री सीएसएफबी के माध्यम से हुई थी और हैरानी की बात यह है कि सीएसएफबी इन बिक्री के लिए आधिकारिक स्टॉक एक्सचेंज भुगतान की प्रतीक्षा किए बिना, भुगतान की तारीख

पर ही धनराशि जमा करने को तैयार थी। एक उदाहरण: अदानी एक्सपोर्ट्स के तीन लाख शेयरों की बिक्री के लिए, 25 करोड़ रुपये का भुगतान बिक्री की तारीख पर ही कर दिया गया, जबकि शेयर अगले दिन जमा हुए थे। इससे एक और खुलासा हुआ। इन सभी सौदों पर अस्पष्ट रूप से अलग-अलग ब्रोकरेज दरें लगाई गईं। जब सेबी ने ग्राहक को भुगतान और भुगतान से धनराशि प्राप्त होने के बीच की अवधि के साथ भुगतान की गई ब्रोकरेज का मिलान किया, तब यह स्पष्ट हुआ कि इसमें वित्तपोषण शुल्क शामिल था। सेबी ने कई उदाहरण दिए हैं जहां केतन पारेख ने सीएसएफबी से 7-14 दिनों के लिए धनराशि प्राप्त की और अलग-अलग ब्रोकरेज के बहाने ब्याज का भुगतान किया।
इसके बाद, SEBI ने इन बिक्री आदेशों का मिलान किया, जो स्पष्ट रूप से फंडिंग लेनदेन थे, और उन्हें BSE पर खरीद आदेशों से मिलाया। SEBI को एक और चौंकाने वाली बात पता चली। उसने पाया कि दूसरी तरफ केतन के लिए काम करने वाले ब्रोकर थे, जैसे कि ट्रायम्फ इंटरनेशनल, मिलन महेंद्र, हेम सिक्योरिटीज, ओमेगा इक्विटी, सीजे दलाल, इंडसेक सिक्योरिटीज, विसारिया सिक्योरिटीज और व्योमित शेयर्स।

इसलिए, संदेह यह है कि केतन CSFB के माध्यम से FII के उप-खाते से शेयर बेच रहा था और एक भारतीय निवेशक के रूप में खरीद रहा था। यदि यह सच है, तो इसका अर्थ है कि FII की बिक्री की आड़ में पैसा भारत से बाहर गया है और शेयर यहां पहुंचाए गए हैं।
इस ऑपरेशन का एक दिलचस्प पहलू यह है कि इतनी बड़ी मात्रा में लेनदेन स्वचालित प्रणाली का उपयोग करके बिना कीमत को प्रभावित किए कैसे किया गया। ब्रोकर इसे स्वचालित ऑर्डर-मैचिंग सिस्टम

में हेरफेर करने की '1,2,3 प्रणाली' कहते हैं। इस तरह के मिलीभगत वाले लेनदेन के लिए स्क्रिप, कीमत और मात्रा के संदर्भ में समान खरीद और बिक्री आदेश पहले संबंधित कंप्यूटरों में दर्ज किए गए थे। इसके बाद, डीलरों ने टेलीफोन पर तीन गिनते ही खरीद/बिक्री बटन दबा दिया, जिससे उनके सौदे कुछ ही सेकंडों के भीतर सिंक्रनाइज़ हो गए। (बदला पर प्रतिबंध लगने से पहले भारी मात्रा में होने वाले सौदों का यही हाल था!) सेबी ने बीएसई पर अदानी एक्सपोर्ट्स और शोंख टेक्नोलॉजीज तथा एनएसई पर ग्लोबल ट्रस्ट बैंक और ज़ी टेलीफिल्म्स में ऐसे सौदों का पता लगाया, जिनमें शेयरों की मात्रा 1.6 लाख से 14 लाख तक थी। सेबी की जांच के अनुसार, जनवरी-मार्च 2001 की अवधि में ही बीएसई और एनएसई पर ऐसे फंडिंग सौदों का कुल मूल्य 1813 करोड़ रुपये था। हालांकि भुगतान सीएसएफबी के अपने फंड से किया गया था, शेयरों की डिलीवरी और पुनर्भुगतान स्टॉक एक्सचेंजों की निपटान प्रणाली के माध्यम से सुनिश्चित किया गया था।
सीएसएफबी ने दावा किया कि ये सामान्य लेनदेन थे और उसने तत्काल डिलीवरी की मांग करके अपने जोखिम का बीमा कराया था। हालांकि, वह यह नहीं समझा सका कि स्पष्ट रूप से सिंक्रनाइज़ किए गए सौदों पर अलग-अलग ब्रोकरेज दरें फंडिंग शुल्क से कैसे मेल खाती हैं। ओसीबी के-10 शेयर क्यों बेच रहे थे और केतन के ब्रोकर उन्हें क्यों खरीद रहे थे? सीएसएफबी ने चौंकाने वाला दावा किया कि केतन पारेख को अपने सौदों के बदले खरीदार ढूंढने के लिए कहा गया था क्योंकि उनके सौदे बहुत बड़े थे। सेबी ने इस स्पष्टीकरण को अविश्वसनीय बताया और कहा कि इससे सीएसएफबी के साथ मिलीभगत के आरोप की पुष्टि ही होती प्रतीत होती है। सेबी को संदेह था कि लेन-देन इस तरह से किए गए थे कि केतन पारेख को अल्पकालिक धनराशि

प्राप्त हुई, जबकि स्टॉक एक्सचेंजों के निपटान गारंटी फंड ने पारेख के डिफ़ॉल्ट होने की स्थिति में सीएसएफबी को भुगतान सुनिश्चित किया। इस प्रकार, समन्वित सौदों का छल किया गया। सेबी को सीएसएफबी की भूमिका के और भी पुख्ता सबूत मिले। इसने अपने खाते से और मॉरीशस में निगमित कंपनी कल्लर कहार के लिए बड़े पैमाने पर मालिकाना व्यापार किया, जो इसकी स्वामित्व वाली और उप-खाते के रूप में पंजीकृत कंपनी थी। पंजीकरण के समय कल्लर कहार की शेयर पूंजी केवल दो डॉलर थी, जिसे बाद में बढ़ाकर
$100 कर दिया गया। 12 अप्रैल 2001 तक, इसकी अधिकांश पूंजी 267 मिलियन अमेरिकी डॉलर के पार्टिसिपेटरी रिडीमेबल प्रेफरेंस शेयरों के रूप में थी। सब्सक्राइबर कौन थे? क्या जेपीसी सीएसएफबी से इस बारे में पूछेगा?
दिलचस्प बात यह है कि कल्लर कहार के लेन-देन का एक बड़ा हिस्सा केवल केतन पारेख के शेयरों में था, और ट्रेडिंग के पैटर्न में खरीदारों की पहचान छिपाने के लिए पार्टिसिपेटरी नोट्स का उपयोग शामिल था। सेबी के प्रारंभिक निष्कर्ष सीएसएफबी द्वारा अपने खाते और कल्लर कहार खाते में फ्रंट-रनिंग की संभावना से इनकार नहीं करते हैं।
सीएसएफबी का कलकत्ता के ब्रोकर अजय कायन के साथ भी इसी तरह का लेन-देन था, जिनकी 1992 के प्रतिभूति घोटाले में जांच हुई थी और उन पर आरोप लगे थे। वे सिटीबैंक के बेहद करीबी थे। संयोग से, सीएसएफबी के भारत प्रमुख के.आर. भरत सिटीबैंक के पूर्व कर्मचारी हैं और घोटाले की जांच के दौरान बैंक छोड़ने के लिए कहे गए सात लोगों में से एक थे।

बाजार के सचिन तेंदुलकर

हर घोटाले में कुछ बेहद दिलचस्प किरदार सामने आते हैं। 2001 के घोटाले में केतन पारेख भले ही चर्चा में रहे हों, लेकिन सबसे दिलचस्प किरदार शंकर शर्मा थे, जो अपनी पत्नी देवना मेहरा के साथ भारत की सबसे तेज़ी से बढ़ती और कुशल ब्रोकरेज फर्मों में से एक, फर्स्ट ग्लोबल के मालिक हैं। शंकर और देवना एक तीक्ष्ण बुद्धि और वाक्पटु दंपति हैं, जो बारी-बारी से 'बिजनेस वर्ल्ड' में साप्ताहिक कॉलम लिखते थे, जिसमें नैतिकता, पारदर्शिता, जवाबदेही और शासन पर ज़ोर दिया जाता था। अपने बेबाक और बेबाक अंदाज़ के लिए मशहूर इस फर्म ने SEBI को दिए अपने बयान में खुद को "सिक्योरिटीज इंडस्ट्री का सचिन तेंदुलकर" बताया। इसकी वेबसाइट पर इसका आत्म-विचार है: "सच कहें तो, हमने कभी भी प्रतिस्पर्धा के आधार पर खुद को नहीं परखा है, और न ही कभी परखेंगे, क्योंकि कोई प्रतिस्पर्धा है ही नहीं।" यह बात तेंदुलकर से कम और मोहम्मद अली से ज़्यादा मिलती-जुलती लगती है।
वास्तव में, उनकी सफलता की कहानी साहस, उद्यमशीलता, दूरदर्शिता, शोध और कड़ी मेहनत पर आधारित एक अद्भुत कहानी प्रतीत होती है। शर्मा ने एशियन इंस्टीट्यूट ऑफ फाइनेंस, मनीला से एमबीए किया है और सिटीबैंक में काम किया। 1990 के बाद उन्होंने निवेश बैंकिंग की अपनी स्थिर नौकरी छोड़कर स्टॉकब्रोकर बनने का फैसला किया। उन्होंने एक सब-ब्रोकर के रूप में शुरुआत की और धीरे-धीरे अपनी ब्रोकिंग सदस्यता हासिल की। फर्स्ट ग्लोबल की वेबसाइट पर देवना मेहरा के बारे में लिखा है कि उनके पास लखनऊ विश्वविद्यालय से गणित, सांख्यिकी और अंग्रेजी साहित्य में सात स्वर्ण पदक हैं (60 वर्षों का रिकॉर्ड धारक) - और फिर, बात यहीं खत्म नहीं होती - वे आईआईएम-अहमदाबाद की स्वर्ण पदक विजेता

हैं, बैच 1986! सिटीबैंक में उनकी मुलाकात शंकर से हुई और उन्होंने वहीं उनसे शादी कर ली और स्टॉक ब्रोकिंग की हलचल भरी दुनिया में कदम रखा।
उनकी पृष्ठभूमि पहले से ही उन्हें विशिष्ट बनाती थी, लेकिन उन्होंने अपने तीखे, व्यंग्यात्मक, बेबाक और अक्सर हास्यपूर्ण शोध रिपोर्टों और टिप्पणियों से जल्द ही सबका ध्यान आकर्षित किया। उनका दावा था कि उनका व्यवसाय उच्च गुणवत्ता वाले शोध और मूलभूत मूल्यों पर आधारित है। अगले पांच वर्षों में, उन्होंने घरेलू संस्थानों पर बहुत अधिक निर्भर हुए बिना, अविश्वसनीय विकास का रिकॉर्ड बनाया। जैसा कि वे अपनी वेबसाइट पर दावा करते हैं: “फर्स्ट ग्लोबल की ‘बाय’ सिफारिश पर, लाखों डॉलर का विदेशी पैसा शेयरों में निवेश होता है। उदाहरण के लिए, टेल्को (150-160 रुपये पर) पर हमारी ‘बाय’ सिफारिश के बाद लगभग 60 मिलियन डॉलर के खरीद ऑर्डर आए – हमने टेल्को के लगभग 4-5% शेयर खरीदे! और हिमाचल फ्यूचरिस्टिक पर हमारी ‘बाय’ सिफारिश के बाद विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफआईआई) ने लगभग 12.5 मिलियन शेयर खरीदे – जो कंपनी का लगभग 20% हिस्सा था। हमने विकास डब्ल्यूएसपी की 28% एफआईआई हिस्सेदारी लगभग पूरी तरह से खरीद ली है। यही है फर्स्ट ग्लोबल के शोध की जबरदस्त ताकत – इस क्षेत्र में कोई भी अन्य फर्म, चाहे भारतीय हो या विदेशी, इसकी बराबरी नहीं कर सकती।”
2001 तक, फर्स्ट ग्लोबल शीर्ष पांच स्टॉक ब्रोकिंग फर्मों में शामिल हो गई थी और कई एफआईआई की पसंदीदा ब्रोकर बन गई थी। उन्होंने लंदन और दुबई में कार्यालय खोले थे, स्वयं को डीम्ड एफआईआई का दर्जा प्राप्त कर लिया था (जिसे बाद में सेबी ने रद्द कर दिया) और न्यूयॉर्क स्टॉक एक्सचेंज में ट्रेडिंग सदस्यता

प्राप्त करने की कतार में थे। उनका शोध अब विश्व अर्थव्यवस्था पर भी केंद्रित था।
उनकी दूरदर्शी सोच स्टार्टअप्स के लिए मार्गदर्शक की भूमिका भी निभा रही थी। उन्होंने कार डिजाइनर दिलीप छाब्रिया की कंपनी (डीसी मोटर्स) में निवेश किया था, इस उम्मीद में कि इसकी लिस्टिंग धमाकेदार होगी और उनका दावा था कि यह "इंफोसिस से बेहतर" होगी। हालांकि, उनके एक अन्य साधारण निवेश ने एक अलग ही तरह का प्रभाव डाला। उन्होंने Tehelka.com में 5% हिस्सेदारी हासिल की, यह वही वेबसाइट थी जिसने रक्षा सौदों में भ्रष्टाचार को वीडियो टेप पर उजागर करके भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को हिलाकर रख दिया था। बाद में हिस्सेदारी बढ़ाकर 15% कर दी गई और शर्मा Tehelka के लिए दूसरे दौर की फंडिंग जुटाने में लगे हुए थे।
2001 तक, वे भारी मात्रा में धन कमा रहे थे (कथित तौर पर 50 करोड़ रुपये का कर चुकाया था)। बेशक, यह सारा धन केवल बेहतरीन शोध प्रदान करके प्राप्त की गई ब्रोकरेज के माध्यम से नहीं था। 1998 तक, वे इस बात से निराश होने लगे थे कि उनके अधिकांश (सही) अनुमान बेचने के थे, जबकि ग्राहक हमेशा खरीदने के विकल्प तलाश रहे थे। शायद यही एहसास इस चतुर दंपत्ति के लिए निर्णायक मोड़ साबित हुआ। अगले वर्ष उन्होंने खरीदने की सिफारिशों की एक श्रृंखला जारी की, जिसने सबसे अति उत्साही विश्लेषकों को भी पीछे छोड़ दिया।
इससे उन्हें निश्चित रूप से भारी मुनाफा हुआ, लेकिन इसका एक बड़ा हिस्सा ठीक उसी तरह कमाया गया जैसे बाकी वित्तीय जगत कमाता है: मनमाने ढंग से तय कीमतों पर शेयरों का प्लेसमेंट करके। अपनी साख का इस्तेमाल करते हुए, उन्होंने विनय मालू और

महेंद्र नाहटा द्वारा संचालित अत्यधिक विवादास्पद कंपनी एचएफसीएल के 10% शेयरों का एक त्वरित निजी प्लेसमेंट किया और 1050 रुपये प्रति शेयर के हिसाब से 735 करोड़ रुपये जुटाए। एचएफसीएल के अध्यक्ष विनय मालू, ज़ाहिर है, केतन पारेख के घनिष्ठ मित्र और सहयोगी थे, इतने घनिष्ठ कि एचएफसीएल के शेयरधारकों का पैसा केतन को उनके सट्टेबाजी के नुकसान की भरपाई के लिए उपलब्ध कराया गया था। शंकर और देवना का मानना था कि प्लेसमेंट पूरी तरह से उनके प्रयासों का नतीजा था, हालांकि फंड मैनेजरों को "प्रभावित" करने में केतन की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही होगी। फर्स्ट ग्लोबल ने एक सतही और अविश्वसनीय शोध रिपोर्ट जारी की, जिसमें शुरुआत में ही यह स्वीकार किया गया था कि एचएफसीएल एक उच्च जोखिम वाला शेयर है। 1996 में इसकी कीमत 85% गिर गई थी और 2000 में (केतन के कमाल के प्रयासों के कारण) इसमें 2000% की उछाल आ चुकी थी, जब वे इसे बेच रहे थे। मार्च 2000 में इसकी कीमत 2553 रुपये के उच्चतम स्तर पर पहुंच गई और 2001 के मध्य में गिरकर 80 रुपये से नीचे आ गई। शर्मा ने दावा किया कि उन्होंने अपने ग्राहकों को सबसे अच्छा सौदा दिलाया, शेयर को उसके उच्चतम स्तर से काफी पहले खरीदा और क्रैश से पहले बेच दिया। यह बात सही है, लेकिन यह उस स्थिति से बेहतर नहीं थी जब कोई सट्टेबाज फ्री कैश फ्लो, निवेशित पूंजी पर रिटर्न और उचित मूल्य जैसी ठोस बातों की परवाह किए बिना शेयर खरीदता और बेचता है - जो फर्स्ट ग्लोबल के प्रशंसित शोध के मुख्य तत्व हैं। यह उनके उस विचार से बिल्कुल विपरीत था जिसमें वे अन्य निवेश बैंकरों और विश्लेषकों को अवसरवादी मानते थे। लेकिन इससे उन्हें निश्चित रूप से मोटी रकम मिली।

खास बात यह है कि कुछ उत्कृष्ट शोध के साथ-साथ, फर्स्ट ग्लोबल के पसंदीदा शेयरों में से एक ग्लोबल टेली भी रहा, जो एक और विवादास्पद कंपनी है और केतन पारेख की शीर्ष तीन पसंदीदा कंपनियों में से एक है (ज़ी और एचएफसीएल के साथ)। ग्लोबल टेली का शेयर शून्य से बढ़कर 3550 रुपये तक पहुंच गया और अप्रैल 2001 के मध्य में गिरकर लगभग 100 रुपये तक आ गया, लेकिन फर्स्ट ग्लोबल की 'स्ट्रॉन्ग बाय' रेटिंग बनी रही। ग्लोबल टेली के कारोबार और इसके प्रमुख प्रमोटरों से थोड़ी भी परिचित हर कोई उत्सुक था। विश्लेषक और फंड मैनेजर भी उत्सुक थे। क्या जिन कारणों से वे ग्लोबल टेली के प्रति आशावादी थे, उन्हीं कारणों ने उनकी दो सबसे बड़ी उपलब्धियों में भी भूमिका निभाई, जैसे कि 239 रुपये पर टेलीकॉम कंपनी को खरीदने की सलाह देना और 1000 रुपये का लक्ष्य मूल्य निर्धारित करना? शेयर की कीमत अब 60 रुपये है। विकास डब्ल्यूएसपी, जिसे फर्स्ट ग्लोबल ने एफआईआई के लिए एक खोज के रूप में पेश किया था, जैसा कि द इकोनॉमिक टाइम्स ने खुलासा किया था, न तो पेशेवर सेटअप वाली कंपनी थी और न ही एक अच्छी कंपनी के लायक वेतनमान। फर्स्ट ग्लोबल ने शेयर को 80-90 रुपये के स्तर से उठाकर 1400 रुपये तक पहुँचाया और बाद में भारी मुनाफे के बावजूद यह गिरकर 200 रुपये पर आ गया।

2 मार्च को, जब वित्त मंत्रालय ने सेबी को बजट के बाद हुए शेयर संकट की जांच का आदेश दिया, तो स्टॉक एक्सचेंजों ने फर्स्ट ग्लोबल को उन चार फर्मों में से एक के रूप में पहचाना, जिन पर भारी मंदी लाने का आरोप था। ठीक ग्यारह दिन बाद, तेहलका डॉट कॉम में उनके निवेश को लेकर काफी अटकलें लगाई गईं। तेहलका के टेप ठीक उसी समय जारी किए गए जब संसद शेयर बाजारों में भुगतान संकट

पर बहस कर रही थी। क्या शंकर और देवना को तेहलका की जांच के बारे में पता था? क्या यही कारण था कि वे मंदी का रुख अपना रहे थे? और क्या संसद में बहस के साथ ही टेप जारी किए गए ताकि और अधिक अराजकता पैदा की जा सके? वे तीनों आरोपों का पुरजोर खंडन करते हैं।
देवीना मेहरा ने टेलीविजन पर दावा किया कि वे तेहलका के अल्पसंख्यक शेयरधारक (केवल 15%) हैं। लेकिन फर्स्ट ग्लोबल ही तेहलका का एकमात्र वित्तपोषक था, जिसके लिए उनकी 15% हिस्सेदारी डॉट कॉम कंपनियों के वित्तपोषण के तरीके के अनुरूप थी। तेहलका का राजस्व लगभग न के बराबर था। क्रिकेट पर स्टिंग ऑपरेशन (मनोज प्रभाकर के सौजन्य से) और रक्षा सौदों, जिनमें से रक्षा सौदे पर लगभग 30 लाख रुपये खर्च हुए, का वित्तपोषण इसने कैसे किया? और एकमात्र वित्तपोषक होने के नाते शंकर और देवीना का इसमें कोई दखल क्यों नहीं था? अगर ऐसा था, तो उन्हें निश्चित रूप से जांच की जानकारी होगी। वे इससे इनकार करते हैं। दिलचस्प बात यह है कि फर्स्ट ग्लोबल ने केतन पारेख, विनय मालू और केरी पैकर द्वारा स्थापित तथाकथित वेंचर फंड केवीपी वेंचर्स से तेहलका के लिए धन जुटाने की कोशिश की। बातचीत विफल रही और इसके बजाय, ज़ी टेलीफिल्म्स ने शुरू में 26% हिस्सेदारी लेने पर सहमति जताई। ज़ी न्यूज़ ने इन टेपों को दुनिया भर में बार-बार प्रसारित करने में अग्रणी भूमिका निभाई, जबकि साथ ही साथ यह दिखावा भी किया कि केतन पारेख घोटाला और 2001 का घोटाला हुआ ही नहीं था।
बाजार में आई गिरावट पर एसईबीआई की जांच में फर्स्ट ग्लोबल की अजीबोगरीब कार्यप्रणालियों, बड़े पैमाने पर सट्टेबाजी के सौदों और संदिग्ध व्यापारिक सहयोगियों का पर्दाफाश हुआ। शोध-

आधारित, नैतिक और जवाबदेह ब्रोकिंग फर्म से फर्स्ट ग्लोबल अचानक सट्टेबाजों के रूप में देखी जाने लगी, जो बाजार में हेरफेर करने की कोशिश कर रही थी, अपने ग्राहकों के लेन-देन में अग्रिम भुगतान करने का संदेह था और निर्मल बैंग जैसे संदिग्ध दलालों के साथ मिलीभगत कर रही थी। कम से कम, एसईबीआई की रिपोर्ट तो यही बताती है।
एक बार बेनकाब होने के बाद, फर्स्ट ग्लोबल ने अपने खिलाफ हर आरोप का आक्रामक ढंग से जवाब देने की नीति अपनाई। इसने आयकर अधिकारियों (जिसके लिए शर्मा को गिरफ्तार किया गया था), एसईबीआई और उन सभी पत्रकारों को गाली दी जिन्होंने फर्स्ट ग्लोबल की बात नहीं मानी। शर्मा ने इकोनॉमिक टाइम्स को घटिया अखबार कहा और हमें अपमानजनक और अक्सर बचकाने ईमेल भेजकर भ्रष्ट और मूर्ख बताया, साथ ही यह भी कहा कि हम "एसईबीआई के सामने दुम हिलाने को तैयार हैं, जो एक तानाशाही शासन के इशारे पर काम कर रही है।" दरअसल, जैसे ही उन्हें 'शॉर्ट सेलर्स' और 'हेरफेर करने वाले' के रूप में निशाना बनाया गया, उन्होंने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस आयोजित कर शॉर्ट सेलिंग से इनकार किया और दावा किया कि बजट के समय के आसपास तीन दिनों की अवधि में वे वास्तव में नेट बायर्स थे। जब उनकी बड़ी शॉर्ट पोजीशन के बारे में और अधिक जानकारी सामने आई, तो उन्होंने आरोप लगाया कि उन्हें तेहलका से जुड़े होने के कारण निशाना बनाया जा रहा है। उन्होंने एक अन्य प्रेस कॉन्फ्रेंस और कई प्रेस विज्ञप्तियों में दावा किया कि एसईबीआई की रिपोर्ट झूठ, गलत आंकड़ों और मूर्खतापूर्ण व्याख्याओं से भरी हुई है।
फर्स्ट ग्लोबल की छह सहयोगी कंपनियाँ थीं: यूके और यूएसए में सदस्यता आवेदन के लिए एक-एक; मॉरीशस स्थित एक निवेश कंपनी जो

जीडीआर/एडीआर में आर्बिट्रेज का काम करती थी; फर्स्ट ग्लोबल पोर्टफोलियो मैनेजर; फर्स्ट ग्लोबल डिपॉजिटरी पार्टिसिपेंट; और अंत में वृद्धि कॉन्फइन्वेस्ट इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, जो इसकी अपनी सब-ब्रोकरेज फर्म थी।
एसईबीआई की जांच में पाया गया कि हालांकि शंकर शर्मा और देवना मेहरा स्वयं बीएसई और एनएसई के सदस्य थे, लेकिन उनके कई निजी लेनदेन वृद्धि, बैंग इक्विटी ब्रोकिंग और बैंग सिक्योरिटीज प्राइवेट लिमिटेड (निर्मल बैंग की एक सब-ब्रोकर) के माध्यम से किए गए थे। बैंग ने शर्मा को पालोम्बे सिक्योरिटीज एंड फाइनेंस से मिलवाया, जो एक गुमनाम ब्रोकिंग फर्म थी, और वह भी सीएसएल सिक्योरिटीज नामक एक अन्य इकाई के माध्यम से। इन जटिल संपर्कों के कारण, पालोम्बे और सीएसएल सिक्योरिटीज ने शर्मा से अर्जित ब्रोकरेज को आपस में बाँट लिया, जो वर्ष 2000-01 के लिए 30 लाख रुपये था। इन छोटी फर्मों को किए गए ट्रेडों का रूटिंग और ब्रोकरेज फीस का भुगतान, प्रथम दृष्टया, बड़े बाजार संचालन को छिपाने के प्रयास का संकेत देता है, ऐसा SEBI ने कहा। फर्स्ट ग्लोबल ने SEBI को बताया कि SEBI के नियमों के तहत ट्रेडिंग सीमा समाप्त होने पर फर्म ने निर्मल बैंग के माध्यम से ट्रेडिंग की, लेकिन SEBI की जांच में पाया गया कि उनके अपने कार्डों पर एक्सपोजर सीमा उपलब्ध होने के बावजूद भी इस तरह की रूटिंग की गई थी।
SEBI ने आरोप लगाया कि फर्स्ट ग्लोबल जनवरी-मार्च 2001 की अवधि (विशेष रूप से
12 फरवरी से 16 मार्च के बीच) में BSE पर ग्लोबल टेलीसिस्टम्स, HFCL और सत्यम जैसे शेयरों में भारी मात्रा में नेट सेलर थी। एक समय तो अकेले HFCL की बिक्री एक्सचेंज पर कुल बिक्री का

18% थी। SEBI के अनुसार, जब बाजार में भारी गिरावट आ रही थी, तब वृद्धि ने विप्रो, सत्यम, MTNL, स्टेट बैंक, HFCL और इंफोसिस जैसे अस्थिर शेयरों में बड़ी फॉरवर्ड सेल्स पोजीशन ले रखी थी। ये बिक्री 28 फरवरी से 28 मार्च के बीच हुई थी। डिपॉजिटरी रिकॉर्ड से पता चलता है कि वृद्धि के पास ये शेयर नहीं थे। ये सीधे-सीधे शॉर्ट सेल थे। सेबी ने दावा किया कि हालांकि आयकर विभाग की तलाशी और ज़ब्ती कार्रवाई से उसकी जांच में बाधा आई, लेकिन उसके अपने निष्कर्षों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि "आर्बिट्रेज ट्रेडिंग, मिलीभगत से किए गए व्यापार, बाजार को कमजोर करने के प्रयास और धोखाधड़ी और अनुचित व्यापार प्रथाओं सहित विभिन्न नियमों का प्रथम दृष्ट्या उल्लंघन" की आड़ में सुनियोजित व्यवस्थाएं की गई थीं। फर्स्ट ग्लोबल ने सेबी और अन्य अधिकारियों के खिलाफ लगातार टालमटोल और बयानबाजी जारी रखी, जबकि उसके ब्रोकरेज कारोबार पर प्रतिबंध लगने के कारण उसे अपने अधिकांश कार्यालय बंद करने पड़े। बाद में, उसे मीडिया की भावुक रिपोर्टों (जिनमें तथ्यों की गहराई में जाने की कोई गुंजाइश नहीं थी) और जेपीसी की स्पष्ट सिफारिश के बावजूद सेबी की सुनियोजित निष्क्रियता का फायदा मिला, जिसमें सबूतों के अंबार पर कोई कार्रवाई नहीं की गई थी।

शांत स्वभाव के प्रभावशाली कारोबारी: निर्मल बैंग

यशवंत सिन्हा के बहुचर्चित बजट से पहले जब तक SEBI ने निर्मल बैंग को प्रमुख कारोबारी कंपनियों में से एक के रूप में पहचाना नहीं, तब तक ट्रेडिंग जगत से बाहर के कुछ ही लोग उनके बारे में जानते थे। फिर भी, जैसा कि सुचेता ने जनवरी 2000 में द इंडियन एक्सप्रेस में लिखा था, निर्मल बैंग बड़े बाज़ार संचालन में उतने ही महत्वपूर्ण थे जितने कि केतन पारेख या नेमिश शाह जैसे अधिक चर्चित और प्रसिद्ध नाम। उनके विपरीत, निर्मल बैंग सीधे तौर पर कीमतों में उतार-चढ़ाव नहीं लाते थे, लेकिन ऐसा करने की प्रक्रिया में उनकी भूमिका अपरिहार्य थी। उनके कई कार्ड और सहायक ब्रोकिंग संस्थाओं ने एक राष्ट्रव्यापी नेटवर्क बनाया था जो डे ट्रेडर्स के लिए आकर्षण का केंद्र था और किसी विशेष स्टॉक के 'प्रगतिशील' होने की खबर फैलाने का सबसे तेज़ तरीका था। इसके अलावा, उनकी एक अच्छी आदत थी कि वे नकदी प्रवाह को बड़ी कुशलता से संतुलित करके अपने वित्त का प्रबंधन करते थे और मार्जिन भुगतान के लिए ग्राहकों को कभी परेशान नहीं करते थे। बैंग पांच संस्थाओं के माध्यम से काम करता था: एनएसई की सदस्य बामा सिक्योरिटीज लिमिटेड, बीएसई की सदस्य निर्मल बैंग सिक्योरिटीज और बैंग इक्विटी ब्रोकिंग, और दो उप-ब्रोकिंग फर्म, बैंग सिक्योरिटीज और नाडी फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट। ये तीन संस्थाओं - एनबीएस, बीएसएल और सुरेश राठी सिक्योरिटीज - के पंजीकृत उप-ब्रोकर थे।
एसईबीआई की जांच में बैंग की कई ट्रेडिंग संस्थाओं द्वारा किए गए लेन-देन के कई दस्तावेज मिले हैं, जो बजट 2001 से पहले की अवधि में भारी मात्रा में शॉर्ट सेलिंग के सबूत हैं। जांच में

इन भारी बिक्री को विशिष्ट समय-सीमाओं से भी जोड़ा गया है, जब इनका उद्देश्य स्पष्ट रूप से शेयर की कीमतों में भारी गिरावट लाना था,
स्पष्ट "हेरफेर के इरादे" से। उदाहरण के लिए, 2 मार्च 2001 को, दोपहर 12:35 से 12:42 बजे के बीच सात मिनट के भीतर, जब ग्लोबल टेलीसिस्टम्स के शेयर की कीमत में 16% की भारी गिरावट आई थी, बैंग की तीन ब्रोकरेज फर्मों ने कई लाख शेयर बेचे - जो उस शेयर में दहशत पैदा करने का एक स्पष्ट प्रयास था।
बैंग, कारोबार के सबसे बड़े और बेहतरीन लोगों के लिए आकर्षण का केंद्र था। चाहे वो दिग्गज सट्टेबाज केतन पारेख हों या शोध-उन्मुख शंकर शर्मा, दोनों की कार्यशैली एक-दूसरे से बिल्कुल अलग थी, फिर भी सभी बैंग के माध्यम से कारोबार करते थे। फिर भी, बैंग खुद हमेशा लो प्रोफाइल रहे। वे प्रेस से दूर रहते थे, कभी टेलीविजन पर नहीं दिखे और यहां तक कि इंडियन एक्सप्रेस द्वारा उनकी तस्वीर खींचने का प्रयास भी नाकाम रहा। किसी को नहीं पता था कि वे कैसे दिखते हैं और कैमरे में गलत व्यक्ति की तस्वीर खींची गई। उनकी खासियत उनके ग्राहकों का अनोखा मिश्रण और बिना किसी टकराव के उनके सभी हितों और कार्यों को कुशलतापूर्वक संभालने की क्षमता थी।
एसईबी के जांचकर्ताओं ने पाया कि फर्स्ट ग्लोबल सिक्योरिटीज के प्रमुख शंकर शर्मा, बैंग के एक बड़े ग्राहक थे। शर्मा की कंपनियों ने फर्स्ट ग्लोबल की एक निजी सब-ब्रोकरेज कंपनी, वृद्धि कॉन्फइन्वेस्ट इंडिया लिमिटेड के साथ 50 करोड़ रुपये से अधिक के बेहद जटिल 'सिंक्रोनाइज्ड ट्रेड' किए थे। ये लेन-देन 20 फरवरी से 2 मार्च के बीच किए गए थे और ऑर्डर में शेयरों, मात्रा और कीमतों का बिल्कुल सटीक मिलान था, जिससे हेरफेर वाले

चक्रीय लेन-देन का संदेह पैदा हुआ। SEBI का कहना है कि शंकर शर्मा के मालिकाना हक वाले लेन-देनों के लिए फर्स्ट ग्लोबल और निर्मल बैंग समूह के बीच चक्रीय लेन-देन का एक स्पष्ट पैटर्न है, जिसे ऑर्डर एंट्री को सिंक्रनाइज़ करके संरचित किया गया है। SEBI ने कहा कि सौदों के जटिल रूटिंग ने फ्रंट रनिंग का संदेह पैदा किया, क्योंकि फर्स्ट ग्लोबल घरेलू और विदेशी संस्थागत निवेशकों के लिए एक बड़ा डीलर था। फर्स्ट ग्लोबल ने दावा किया था कि यह केवल अपने कार्ड पर एक्सपोजर लिमिट के अनुरूप कारोबार को स्थानांतरित करने का एक तरीका था। पालोम्बे सिक्योरिटीज, एक सब-ब्रोकिंग फर्म, ने SEBI को बताया कि उसका "मुख्य व्यवसाय अपने खाते पर जॉबिंग और निवेश करना और ग्राहकों को अन्य ब्रोकरों और सब-ब्रोकरों से परिचित कराना था, जिससे इन परिचय के माध्यम से ब्रोकरेज अर्जित किया जा सके।" भास्कर हिंगाड इस फर्म को चलाते हैं, और इसके प्रमुख बाजार संचालकों के साथ एक अजीब तरह से जटिल संबंध थे। इसके निदेशकों में से एक दिवंगत मनु मानेक के पूर्व सहयोगी थे, जो एक बड़े मंदी के विश्लेषक थे और 1980 के दशक में बीएसई के सरगना हुआ करते थे। पालोम्बे के अच्छे संपर्क थे और निर्मल बैंग की विभिन्न संस्थाओं के ट्रेडिंग टर्मिनल उसके कार्यालय में स्थापित थे। यह केतन पारेख के भी बहुत करीब था, जो अपने संचालन का एक बड़ा हिस्सा इसी फर्म के माध्यम से संचालित करते थे। फिर भी, पालोम्बे ने ही शंकर शर्मा को निर्मल बैंग से मिलवाया था; वह भी कंसोर्टियम सिक्योरिटीज नामक एक अन्य फर्म के माध्यम से। पालोम्बे सिक्योरिटीज और सीएसएल ने शंकर शर्मा को बैंग सिक्योरिटीज से मिलवाने का श्रेय साझा किया और वर्ष 2000-2001 में 30 लाख रुपये की परिचयात्मक ब्रोकरेज का 50% हिस्सा आपस

में बाँटा। एसईबीआई को पालोम्बे, निर्मल बैंग और शंकर शर्मा के बीच धन के उदार हस्तांतरण के उदाहरण भी मिले, जो उनके घनिष्ठ संबंधों को रेखांकित करते हैं। पालोम्बे ने ही केतन पारेख को सीएसएल या कंसोर्टियम समूह से मिलवाया था, जो बाद में केतन के लिए एक प्रमुख ऑपरेटर बन गया। कंसोर्टियम में तीन संस्थाएं थीं जिनकी सदस्यता बीएसई, एनएसई और दिल्ली स्टॉक एक्सचेंज में थी, साथ ही विक्रम केनिया सिक्योरिटीज और बैंग इक्विटी ब्रोकिंग के साथ पंजीकृत सब-ब्रोकिंग फर्म भी थीं। पालोम्बे, सीएसएल का ग्राहक था, और कंसोर्टियम के बहीखातों में उसके खातों से पता चलता है कि फरवरी 2001 के अंत के बाद, जब उसका बैलेंस शून्य हो गया था, उसे भुगतान संबंधी गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ा और वह डेबिट बैलेंस बनाए हुए था।
एसईबीआई द्वारा सीएसएल समूह के रिकॉर्ड की सीमित समीक्षा से पता चला कि उसके अपने खाते के साथ-साथ केतन पारेख, फर्स्ट ग्लोबल, पालोम्बे सिक्योरिटीज और निर्मल बैंग के लिए किए गए बड़े ट्रेडिंग कार्यों की विस्तृत जांच की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, सीएसएल के बैंक खातों में पांच कंपनियों से 10 करोड़ रुपये से अधिक के बड़े असुरक्षित ऋण दर्ज हैं, जिनमें एचएफसीएल की चार कंपनियां और मैक्स इंडिया की एक कंपनी शामिल हैं। एसईबीआई और कंपनी मामलों के विभाग को धन के गबन की जांच करनी चाहिए। इसके अलावा, सीएसएल की सहयोगी कंपनी ओमेगा फिनहोल्ड को कुछ कंपनियों से अंतर-कॉर्पोरेट फंड प्राप्त हुए, जिनका उपयोग केतन पारेख के संचालन के लिए किया गया।
इन जांचों से ब्रोकर-कॉर्पोरेट सांठगांठ का पर्दाफाश होगा – कंपनियां अपने बाजार संचालन के लिए अपने पैसे का दुरुपयोग कैसे करती हैं। हर्षद मेहता के साथ वीडियोकॉन, बीपीएल और स्टरलाइट

की सांठगांठ 2001 के घोटाले में चल रही घटनाओं के मुकाबले छोटी लग सकती है।
बीएसई के सबसे कुशल और ऊर्जावान अध्यक्षों में से एक आनंद राठी को लगातार दूसरे बीएसई प्रमुख के रूप में पद से हटाए जाने का दुर्भाग्यपूर्ण रिकॉर्ड मिला, क्योंकि उन्होंने एक्सचेंज के प्रमुख के रूप में अपने पद का दुरुपयोग किया था। राठी पर शॉर्ट सेलर्स को बाजार की जानकारी देने और उसका इस्तेमाल करने का आरोप था। निगरानी अधिकारियों के साथ राठी की बातचीत का एक टेप प्रेस में लीक हो गया और सेबी ने उन्हें पद छोड़ने के लिए मजबूर किया। हालांकि, उन्होंने किसी भी गलत काम को स्वीकार नहीं किया और जोर देकर कहा कि उन्होंने केवल एक्सचेंज की गरिमा बनाए रखने के लिए इस्तीफा दिया था। विडंबना यह है कि ठीक उसी तरह जैसे राठी के पूर्ववर्ती जसवंतलाल छोटालाल को 1998 में अपना कार्यकाल समाप्त होने से कुछ दिन पहले ही इस्तीफा देने के लिए कहा गया था, राठी को भी महीने के अंत में अपना कार्यकाल समाप्त होने से ठीक पहले जाना पड़ा।
दोनों स्थितियाँ समान थीं। जून 1998 में, बीएसई अध्यक्ष और अन्य ब्रोकर-अधिकारियों ने कुछ ब्रोकरों को आधी रात को ट्रेडिंग सिस्टम में सेंध लगाने और एक बड़े डिफ़ॉल्ट को छिपाने के लिए समन्वित ट्रेड डालने की अनुमति दी थी। उस समय, बीएसई अधिकारी हर्षद मेहता द्वारा बाज़ार में अपनी शानदार वापसी के बाद बीपीएल, वीडियोकॉन और स्टरलाइट में बड़े पैमाने पर मूल्य हेरफेर के कारण उत्पन्न भुगतान संकट को सुलझाने का प्रयास कर रहे थे।
आदित्य बिरला के पूर्व वरिष्ठ कार्यकारी, राठी पर दो आरोप थे, जिन्होंने 1997 से 2001 के बीच तीव्र गति से तरक्की की। पहला

आरोप था आधिकारिक पद का दुरुपयोग करके व्यापारिक जानकारी प्राप्त करना, जिससे उन्हें स्टॉकब्रोकर केतन पारेख की वित्तीय कठिनाइयों के बारे में विशेष जानकारी मिली। दूसरा आरोप यह था कि उन्होंने संभवतः यह जानकारी उन ब्रोकरों को दी जो फोन कॉल के दौरान उनके कार्यालय में मौजूद थे, और उन्होंने इसके बाद भारी शॉर्ट सेलिंग की, जिससे बीएसई सेंसेक्स 177 अंक गिर गया।

22

इसमें कुछ भी आधिकारिक नहीं है

कोलकाता के ग्रे मार्केट में नुकसान आसानी से लगभग 2000 करोड़ रुपये हो सकता है, जबकि
आधिकारिक चूकों को बड़ी चालाकी से दबा दिया गया है।

2001 के घोटाले का केंद्र मुंबई नहीं था,
वित्तीय राजधानी, बल्कि जर्जर शहर कोलकाता था। वास्तव में, अधिकांश गतिविधियां तो आधिकारिक भी नहीं थीं, बल्कि शहर में दशकों से फल-फूल रहे विशाल ग्रे मार्केट में हुईं। कोलकाता देश का सबसे बड़ा अवैध व्यापार केंद्र था, और निजी ट्रेडिंग पोजीशन को वित्तपोषित करने की इसकी धनशक्ति इसकी कमजोर अर्थव्यवस्था के बिल्कुल विपरीत थी। एक अनुमान के अनुसार, K-10 शेयरों के गिरने से ग्रे मार्केट में लगभग 2000 करोड़ रुपये का नुकसान हो सकता है, और आधिकारिक चूकों को बड़ी चालाकी से दबा दिया गया है। अगर CSE की कहानी की ठीक से जांच की जाए, तो एक्सचेंज, UTI, SEBI, केतन पारेख और एक कुख्यात कंपनी, DSQ सॉफ्टवेयर और उसके प्रमोटर दिनेश डालमिया की भूमिका उजागर हो जाएगी।
अगर CSE ने देश भर से सट्टेबाजों और फाइनेंसरों को आकर्षित किया, तो इसका कारण यह था कि "अनौपचारिक" कारोबार आधिकारिक व्यापार की तरह ही सुचारू रूप से चलता था। इससे भारी बदला दरें आकर्षित होती थीं, जिनका भुगतान आमतौर पर बिना किसी रुकावट के नकद में किया जाता था। आधिकारिक और अनौपचारिक कारोबार इतने

घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे कि एक को दूसरे के बिना समझना व्यर्थ है।
दरअसल, कोलकाता के कुछ सट्टेबाजों के लिए, विशाल सट्टेबाजी बाजार में कुछ भी अनौपचारिक नहीं था। मार्च 2001 के मध्य तक इसके बदला सत्र खुलेआम आयोजित किए जाते थे। संकट के बाद भी, कोलकाता के ऑपरेटर इस बात पर अफसोस जता रहे थे कि दशकों में पहली बार सीएसई गुरुवार को निर्धारित समय पर 'बदला' सत्र आयोजित करने में विफल रहा। एक ऑपरेटर से जब पूछा गया कि क्या वह अनौपचारिक बदला सत्र की बात कर रहे हैं, तो वह असमंजस में पड़ गए। उनके अनुसार, आधिकारिक और अनौपचारिक सत्रों में केवल यही अंतर था कि एक "कंप्यूटर का बदला" (स्वचालित प्रणाली के माध्यम से आगे ले जाए जाने वाले लेनदेन) था और दूसरा "कंप्यूटर के बाहर वाला बदला" (कंप्यूटर प्रणाली के बाहर किए गए लेनदेन)। दोनों को ही समान रूप से पवित्र माना जाता था। अनौपचारिक बाजार को यह पवित्रता केवल इसलिए प्राप्त थी क्योंकि सेबी ने जानबूझकर अनदेखी की, जबकि अनौपचारिक बदला सत्र एक्सचेंज के फ्लोर पर ही आयोजित किए जाते थे और व्यावसायिक प्रेस नियमित रूप से दरों को प्रकाशित करता था।
अन्य जगहों की तरह, सीएसई में भुगतान संकट का कारण गिरती हुई के- 10 शेयरों में भारी निवेश था। अकेले अनौपचारिक व्यापार में ही लगभग 2000 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ था। शीर्ष छह बाज़ार संचालकों पर बकाया राशि 150 करोड़ रुपये से अधिक थी। इसमें मुंबई के वे उद्योगपति शामिल नहीं थे जो बड़ी कंपनियों के माध्यम से व्यापार करते थे।

आधिकारिक बाज़ार में भी स्थिति उतनी ही खराब थी। सीएसई अधिकारियों ने दावा किया था कि 1 मार्च के निपटान के लिए 96 करोड़ रुपये की भुगतान समस्या हल हो गई है,
लेकिन एक सप्ताह बाद उन्होंने स्वीकार किया कि 40 करोड़ रुपये अभी भी बकाया हैं। उन्होंने दावा किया कि बकाया राशि की भरपाई के लिए उन्होंने बैंक गारंटी का सहारा लिया है। 8 मार्च को समाप्त हुए निपटान के लिए, सीएसई ने 15 करोड़ रुपये के बकाया को स्वीकार किया, लेकिन कोलकाता के जानकार संचालकों ने इस आंकड़े पर विश्वास करने से इनकार कर दिया। उन्हें संदेह था कि स्थिति कहीं अधिक गंभीर है और उन्होंने बताया कि निपटान सीएसई के बाहर एक स्थान पर किया गया था, क्योंकि पदाधिकारियों को डर था कि कुछ संचालक हिंसक हो सकते हैं।
इसके बावजूद, भुगतान संबंधी समस्याओं और चूक को संभालने का पूरा प्रयास आश्चर्यजनक रूप से अक्षम था। सीएसई ने मार्जिन के बदले कुछ अस्थिर शेयरों को गिरवी के तौर पर स्वीकार किया, जो केतन की पसंदीदा कंपनियों की सूची में शामिल थे, जैसे एचएफसीएल, डीएसक्यू सॉफ्टवेयर, ज़ी और ग्लोबल टेली। सीएसई ब्रोकरों के खातों से डेबिट करने के बजाय मार्जिन भुगतान के लिए पोस्ट-डेटेड चेक स्वीकार करने का भी दोषी था, जो स्पष्ट रूप से बेमानी थे। इनमें से कई चेक बाउंस हो गए और संकट को और बढ़ा दिया। कई प्रभावशाली ब्रोकरों को उनकी वित्तीय कठिनाइयाँ स्पष्ट होने के बावजूद ट्रेडिंग जारी रखने की अनुमति दी गई। यह उन ब्रोकरों पर लगाम लगाने में विफल रहा जिन्होंने पहले ही अपनी एक्सपोजर सीमा पार कर ली थी और एक्सपोजर सीमा के विरुद्ध जमा की गई पूंजी का उपयोग मार्जिन भुगतान के रूप में किया था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जब पहली बार सीएसई घोटाले से प्रभावित हुआ था,

तब अध्यक्ष कमल पारेख द्वारा दावा किया गया 500 करोड़ रुपये का मार्जिन गहन जांच करने पर गायब हो गया। अगर स्टॉक एक्सचेंज ने डिफॉल्ट करने वाले सदस्यों के टर्मिनलों को थोड़ा पहले ही निष्क्रिय कर दिया होता, तो नुकसान को बेहतर ढंग से नियंत्रित किया जा सकता था।
कोलकाता से आ रही ये विचित्र कहानियाँ अगर इतनी घृणित न होतीं, तो हास्यास्पद होतीं। जून 2001 के अंत में जब जेपीसी ने कोलकाता के अधिकारियों को ब्रीफिंग के लिए बुलाया, तो सीएसई के कार्यकारी निदेशक तापस दत्ता ने एक दिलचस्प कहानी सुनाई कि कैसे एक्सचेंज की मार्जिन गणना प्रणाली में एक गंभीर खामी (बग) थी। जब देय मार्जिन का मूल्य एक निश्चित संख्या (ईडी ने इसे 'फील्डों की संख्या' कहा) से ऊपर चला जाता था, तो देय मार्जिन शून्य के रूप में दिखाई देता था। एक्सचेंज ने इसका दोष सॉफ्टवेयर आपूर्तिकर्ता पर डाला, जिसने इस आरोप को पूरी तरह से नकार दिया। इस बेहद सुविधाजनक 'बग' का नतीजा यह हुआ कि सबसे बड़े ब्रोकरों, जिन्हें बाद में डिफॉल्टर घोषित किया गया, के मार्जिन की सही गणना नहीं हो सकी। एक्सचेंज को इस खामी की गंभीरता का एहसास तभी हुआ जब उसे भारी डिफॉल्ट का सामना करना पड़ा।
सीएसई में नुकसान का एक बड़ा कारण वह पैसा था जो निवेशकों ने मुंबई में बदला फाइनेंसिंग (कैरी फॉरवर्ड ट्रेडों के लिए फाइनेंसिंग) में स्थिर रिटर्न के लिए लगाया था। कई बीएसई ब्रोकर आधिकारिक बदला में निवेश करने के बहाने ग्राहकों से पैसे ले रहे थे, लेकिन असल में वे उस पैसे को कोलकाता के अनौपचारिक बदला बाजार में भेज रहे थे क्योंकि वहां दरें बहुत अधिक थीं (बीएसई में 10-12% की तुलना में 24-30%)।

जब के-10 शेयरों की कीमत गिर रही थी, तो ग्राहकों का वह सुरक्षित पैसा जिसे उन्होंने बदला में लगाया था, सट्टेबाजों के भारी नुकसान की भरपाई के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था। कई बीएसई ब्रोकरों ने खुद भी अपने भुगतान पूरे करने के लिए बदला के पैसे का इस्तेमाल किया। ग्राहकों को लगभग 600 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ होगा।
ये ब्रोकर पैसे की सुरक्षा का दिखावा करते हुए इन लेन-देन के फर्जी कॉन्ट्रैक्ट नोट या ग्राहक पुष्टिकरण आदेश जारी कर रहे थे। अधिकांश लेन-देन कभी भी बीएसई और एनएसई के आधिकारिक सिस्टम से होकर नहीं गुजरे और वे केवल ब्रोकरों की आंतरिक प्रविष्टियां थीं। इसलिए, एक्सचेंज द्वारा ग्राहकों को कोई सुरक्षा नहीं दी गई।
सीएसई घोटाला न केवल सेबी की निगरानी में विफलता का स्पष्ट उदाहरण है, बल्कि यूटीआई, सेबी और सीएसई के बीच एक शर्मनाक मिलीभगत भी है, जिसने संचालकों को छूट दी और यूटीआई के यूनिट धारकों को धोखा दिया। इससे पहले से ही संकटग्रस्त यूटीआई पर भारी दबाव पड़ा और जुलाई की शुरुआत में चेयरमैन पी. सुब्रमण्यम को अपमानजनक तरीके से पद छोड़ना पड़ा। अब तक सेबी पर कोई दबाव नहीं डाला गया है। उसे सीएसई की सभी गड़बड़ियों की जानकारी थी। उसके कई निरीक्षणों में स्टॉक एक्सचेंज पर गंभीर आरोप लगे थे, लेकिन सेबी सुधारात्मक और अनुशासनात्मक कार्रवाई करने में विफल रहा। भुगतान संकट पर उसकी रिपोर्ट और पिछली तीन निरीक्षण रिपोर्टों में सीएसई की अधिकांश निंदनीय प्रथाओं का उल्लेख है, फिर भी उसने सीएसई और उसे नियंत्रित करने वाले कुख्यात संचालकों को बचाने के लिए यूटीआई के साथ हाथ मिलाया।

जब केतन पारेख के जंक स्टॉक के धराशायी होने के बोझ तले सीएसई लड़खड़ा रहा था, तब यूटीआई ने पूर्व सीएसई अध्यक्ष दिनेश सिंघानिया द्वारा गिरवी रखे गए डीएसक्यू शेयरों का एक बड़ा हिस्सा खरीद लिया, जिन्होंने भुगतान में चूक की थी। मार्च 2001 में इसने एचएफसीएल, ज़ी और ग्लोबल टेली के बड़े और अस्पष्ट हिस्से भी खरीदे, लेकिन जाहिर तौर पर सीएसई से नहीं। सिर्फ इसी कारण से यूटीआई के शीर्ष अधिकारियों को बर्खास्त किया जाना चाहिए।
ज़रा सोचिए कि यूटीआई की भूमिका श्रीराम म्यूचुअल फंड की भूमिका से कितनी मिलती-जुलती थी। जून 1998 में, श्रीराम म्यूचुअल फंड ने बीएसई पर वीडियोकॉन के 1,20,600 शेयर खरीदे ताकि दिवालिया होने की कगार पर खड़े दलालों को बचाया जा सके और साथ ही हर्षद मेहता के मूल्य में हेरफेर को मुख्य रणनीति बनाकर वापसी के प्रयास को आगे बढ़ाया जा सके।
2 फरवरी 2000 को, सेबी ने फैसला सुनाया कि श्रीराम म्यूचुअल फंड की कार्रवाई 'उसके निवेशकों के हितों के लिए हानिकारक' थी; फंड के प्रायोजकों को वीडियोकॉन शेयरों के खरीद मूल्य और बाजार मूल्य के बीच 19 रुपये प्रति शेयर का अंतर चुकाने का आदेश दिया; प्रबंध निदेशक और उनके दो अधिकारियों को इस्तीफा देने के लिए कहा और श्रीराम के न्यासी बोर्ड की संरचना में बदलाव का आदेश दिया। अब मार्च-अप्रैल 2001 में कोलकाता में यूटीआई ने श्रीराम म्यूचुअल की भूमिका से अलग क्या किया?

यूटीआई के कार्यकारी निदेशक बीजी डागा के अनुसार, 9 मार्च को यूटीआई ने सीएसई को संकट से उबारने के लिए डीएसक्यू सॉफ्टवेयर के 13,30,000 शेयर 189 रुपये प्रति शेयर के भाव पर खरीदे, जो उस

समय के बाजार भाव से काफी कम था। डागा ने यह भी बताया कि सीएसई से सीधे 25 करोड़ रुपये के शेयर खरीदे गए थे - ताकि शेयर बाजार को विवादित समझौता संख्या 148 को पूरा करने में मदद मिल सके - ये शेयर डिफॉल्टर ब्रोकर दिनेश सिंघानिया के थे।
यूटीआई के पास पहले से ही डीएसक्यू के बड़ी मात्रा में शेयर थे, जिनमें से लगभग 56 लाख शेयर फरवरी-मार्च 2000 में औसतन लगभग 2000 रुपये प्रति शेयर के भाव पर खरीदे गए थे। जनवरी-फरवरी 2001 में ही उसने शेयरों के छोटे-छोटे हिस्से (पांच लाख शेयर) बेचना शुरू किया था। दरअसल, यूटीआई के स्वामित्व में मौजूद डीएसक्यू सॉफ्टवेयर के 23.7 लाख शेयरों का औसत होल्डिंग मूल्य लगभग 760 रुपये था।

189 रुपये के अपने बेलआउट लेवल से, DSQ सॉफ्टवेयर जुलाई 2001 में एक तिहाई पर आ गया, जब UTI ने US-64 के एग्जिट डोर बंद कर दिए। इसका मतलब था कि अकेले एक बेलआउट डील में यूनिट होल्डर्स को 25 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ। भले ही UTI ने मार्केट के मुकाबले डिस्काउंट पर खरीदा था, लेकिन यह सभी को साफ था कि स्टॉक ब्रोकर केतन पारेख से जुड़े सभी शेयर कई हफ्तों तक गिरते रहेंगे। CSE को बेलआउट करने का UTI का फैसला और भी विवादित लग रहा था, क्योंकि इसने अपनी MIP-95 और MIP-96 स्कीम पर पेमेंट घटाकर पांच परसेंट कर दिया था; और यह पहले से ही सरकार के साथ US-64 स्कीम के दूसरे बेलआउट पर बात कर रहा था। US-64 को अपनी नेट एसेट वैल्यू और अपने रीपरचेज प्राइस के बीच 6000 करोड़ रुपये से ज़्यादा की कमी का सामना करना पड़ा। इसलिए, अगर श्रीराम म्यूचुअल फंड को अपने यूनिट होल्डर्स की कीमत पर स्टॉक ब्रोकर्स को बेलआउट करने के लिए सज़ा मिली, तो UTI को भी मिलनी

चाहिए। श्रीराम केस में SEBI ने कहा था कि खरीद कीमत “इन्वेस्टर्स के सबसे अच्छे हित में नहीं थी और फालतू बातों पर आधारित थी”। उसने यह भी कहा कि “म्यूचुअल फंड की स्कीमों को समझदारी और मेहनत से नहीं संभाला गया” जैसा कि “प्रोफेशनल तरीके से चलने वाले फंड से उम्मीद की जाती है”। यह सब UTI के CSE और उसके ऑपरेटरों को बेल आउट करने के फैसले पर भी लागू होता है। इससे भी ज़्यादा परेशान करने वाली बात यह थी कि बेलआउट की निगरानी SEBI के एक डिविजनल चीफ ने की थी, जिसमें UTI के डागा ऑब्जर्वर के तौर पर काम कर रहे थे। इसके अलावा, SEBI चेयरमैन ने खुद पूरे बेलआउट की कोशिश की देखरेख की। डागा का तर्क था कि UTI की डील श्रीराम की डील से “मिलती-जुलती नहीं” थी, क्योंकि शेयर CSE की प्रॉपर्टी थे, ब्रोकर्स की नहीं और चेक सीधे एक्सचेंज को दिया गया था। फिर भी, एक ब्रोकर ने शेयर गिरवी रखे थे और UTI के इस कदम से, अपने यूनिट होल्डर्स को नुकसान पहुंचाकर, उसके फिड्यूशरी कामों के साथ धोखा हुआ। दूसरी बात, डागा ने कहा कि श्रीराम म्यूचुअल फंड ने मार्केट से ऊपर खरीदा था, जबकि UTI का एक्विजिशन डिस्काउंट पर था। कुछ ही हफ़्तों में यह बात मज़ाकिया लगने लगी जब शेयर की कीमत लगभग एक चौथाई रह गई। तीसरी बात, डागा का कहना है कि CSE ने उन्हें तीन दूसरी कंपनियों के शेयर ऑफर किए लेकिन UTI ने सिर्फ़ DSQ सॉफ्टवेयर को खरीदा था। मार्च में HFCL, ग्लोबल टेली और ज़ी टेलीफिल्म्स को होल्ड करने वाले ब्रोकर्स को बेल आउट करने के बाद यह बढ़िया स्टॉक पिक था! सिवाय इसके कि DSQ और उसके प्रमोटर शायद किसी तरह के फ्रॉड में शामिल थे।

CSE बेलआउट से पता चला कि UTI को छोटे बचत करने वालों के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी की कोई परवाह नहीं थी, जिनसे वह कैश ले रहा था, जबकि SEBI पुलिस वाले की भूमिका निभाने के बजाय चोरों की समस्याओं को सुलझाने में ज़्यादा दिलचस्पी रखता था। स्टॉक मार्केट रेगुलेटर के लिए किसी फैलने वाले असर से बचने की कोशिश करना एक बात है, और UTI के यूनिट होल्डर्स की कीमत पर ऐसा करना बिल्कुल दूसरी बात है।
UTI, जिसे पहले ही आम जनता की कीमत पर एक बार बेलआउट किया जा चुका था, ने अपनी मंथली इनकम स्कीमों पर रिटर्न में भारी कटौती की और राजलक्ष्मी स्कीम को छोड़ दिया, जिससे कई छोटी बच्चियां मुश्किल में पड़ गईं। साथ ही, अगर SEBI CSE को बचाना चाहता था, तो उसे UTI के साथ किसी चोरी-छिपे डील के बजाय फाइनेंस मिनिस्ट्री से संपर्क करना चाहिए था। सवाल यह है कि जब कोई म्यूचुअल फंड रेगुलेटर से सलाह करके या उसके कहने पर अपनी फिड्यूशरी ड्यूटी तोड़ता है, तो पुलिस वाला कौन बनेगा? शायद JPC, जो पहले UTI की जांच नहीं करना चाहता था। CSE की जांच से न सिर्फ K-10 स्क्रिप्स में सट्टेबाजों की पोजीशन और UTI और SEBI द्वारा उनके लिए किए गए बचाव प्रयासों का पता चलेगा, बल्कि इससे स्कैम में कॉर्पोरेट एंगल के बारे में भी बहुत कुछ पता चलेगा, खासकर K-10 पोर्टफोलियो के एक अहम सदस्य, DSQ सॉफ्टवेयर के बारे में। पिछले तीन सालों से, DSQ और इसके मैनेजिंग डायरेक्टर, दिनेश डालमिया अपने मैनेजमेंट स्किल्स से ज़्यादा अपने स्टॉक मार्केट ऑपरेशन्स के लिए खबरों में रहे हैं। पिछले साल यह स्क्रिप 2800 रुपये तक पहुंच गया था, जो जून के आखिर में लगभग 50 रुपये तक गिर गया। डालमिया को कोलकाता के अनऑफिशियल मार्केट में एक बड़ा सट्टेबाज माना जाता था और CSE के कई टॉप

डिफॉल्टर्स के पास DSQ सॉफ्टवेयर के बहुत सारे शेयर फंसे हुए थे, जिनमें से कुछ को UTI ने बहुत खुले दिल से खरीद लिया था। डालमिया, गणपति एक्सपोर्ट्स के ओपी अग्रवाल के दामाद हैं, जिनके खिलाफ कई तरह के रेवेन्यू केस हैं, उनकी ज़िंदगी उतार-चढ़ाव भरी रही है, उन्होंने अलग-अलग समय पर बहुत सारा पैसा कमाया और गंवाया है। स्टॉक्स में जुआ खेलने वाले केतन को अपने लिए सब कुछ ठीक करने का मौका तब मिला, जब 1999 में, DSQ ने बैंक ऑफ़ अमेरिका के प्राइवेट-इक्विटी फंड और केतन पारेख की दिलचस्पी दिखाई। BankAm को मेजोरिटी स्टेक चाहिए था और डालमिया को DSQ बोर्ड से हटना था, जबकि 5% होल्डिंग के साथ वह इन्वेस्टर बने रहना चाहते थे। नए मालिक कंपनी में आने वाले Rs 220 करोड़ का इस्तेमाल DSQ के लोन, कंटिंजेंट लायबिलिटीज़ (बैंक गारंटी) को चुकाने के लिए करते। हालाँकि, हुआ बस इतना कि स्टॉक Rs 2800 तक बढ़ गया और केतन पारेख ने शायद कई बार खरीदने और बेचने पर बहुत पैसा कमाया। डालमिया ने पद नहीं छोड़ा, BankAm निकल गया, कोई भी प्रोफेशनल ज़्यादा दिन नहीं टिका और जो भी पैसा DSQ में आया, वह सीधे मार्केट में वापस चला गया। लेकिन दिनेश डालमिया की हरकतों की सबसे चौंकाने वाली कहानियों में से एक है DSQ सॉफ्टवेयर का मनगढ़ंत टेकओवर और उसकी कैपिटल में बढ़ोतरी और नकली शेयरों का सर्कुलेशन!

डालमिया 25 मई 2001 को सुचेता से मिलना चाहते थे, क्योंकि उन्होंने कहा था कि वे डीएसक्यू सॉफ्टवेयर के बारे में ‘कुछ मुद्दों और गलतफहमियों’ को स्पष्ट करना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि कंपनी कर्ज मुक्त है और यह उन कुछ भारतीय कंपनियों में से एक है जिसने बैंकों और संस्थाओं का सारा बकाया चुका दिया है

(इसे इंडियन बैंक और एचडीएफसी बैंक सहित आधा दर्जन बैंकों ने डिफॉल्टर के रूप में सूचीबद्ध किया था)। अन्य बातों के अलावा, उन्होंने कहा कि अब वे अटकलों से दूर हैं और केवल अपनी कंपनी चलाने पर ध्यान केंद्रित करने के लिए दृढ़संकल्प हैं (उन्होंने कहा, महाभारत में अर्जुन की तरह)। उन्हें विश्वास था कि डीएसक्यू एक और इंफोसिस होगी। डालमिया का दृढ़संकल्प प्रभावशाली लग रहा था। वह भविष्य की बात है। उससे पहले कुछ छोटे-मोटे स्पष्टीकरण किए जाने थे। मार्च में कंपनी की पूंजी 30.5 करोड़ रुपये से बढ़कर 47 करोड़ रुपये क्यों हो गई उन्होंने दावा किया कि DSQ जिन छह स्टॉक एक्सचेंज में लिस्टेड थी, उन्हें सारी जानकारी दे दी गई थी। क्या कुछ डिटेल्स मिल सकती हैं? उन्होंने भरोसा दिलाया कि अगले ही दिन ईमेल कर दिया जाएगा। वे चुप हो गए। सुचेता ने उन्हें जानकारी मांगने के लिए एक दर्जन बार लिखा। उनके ऑफिस से आने वाले जवाबों में कई तरह के बहाने थे: वे विदेश में थे, उनकी तबीयत ठीक नहीं थी, आखिर में उन्होंने कहा कि फोर्टुना टेक्नोलॉजीज के साथ एग्रीमेंट के तहत, जब तक फोर्टुना के कर्मचारियों को DSQ में ट्रांसफर नहीं कर दिया जाता, तब तक टेकओवर की घोषणा नहीं की जा सकती। भारतीय शेयरहोल्डर्स और स्टॉक एक्सचेंजों को जानकारी देने का क्या? उन्होंने बस जवाब देना बंद कर दिया।
उत्सुक होकर, सुचेता ने SEBI, BSE और NSE से जानकारी मांगी। SEBI के एग्जीक्यूटिव डायरेक्टर पार्टिप कर ने कन्फर्म किया कि कंपनी ने एक्विजिशन/मर्जर के बारे में SEBI को जानकारी नहीं दी थी; उन्होंने यह भी कहा कि लिस्टिंग एग्रीमेंट और टेकओवर नियमों के उल्लंघन के संकेत थे। उन्होंने कहा कि SEBI मामले की आगे जांच करेगी। BSE ने, हमेशा की तरह, जवाब देने की जहमत नहीं

उठाई और NSE ने कहा कि DSQ ने लिस्टिंग नियमों का उल्लंघन किया होगा। उसने कहा कि वह डिटेल्स लेने के लिए कंपनी से बातचीत कर रहा है और कुछ डिसिप्लिनरी एक्शन लेने का प्लान बना रहा है। चेन्नई के एक फंड मैनेजर ने भी लिखकर कहा कि कोई जानकारी अवेलेबल नहीं है।
जब उन्होंने चेक किया तो मद्रास स्टॉक एक्सचेंज में यह उपलब्ध नहीं था।
DSQ की वेबसाइट पर एक्विजिशन या कैपिटल में बढ़ोतरी के बारे में कुछ नहीं कहा गया था, भले ही साइट अप्रैल 2001 तक अपडेट की गई थी। फोर्टुना का कोई ज़िक्र नहीं था। इसके बजाय, अप्रैल तक, US की सैन विज़न टेक्नोलॉजीज़ के साथ इसकी बातचीत और फिर से बातचीत के बारे में प्रेस क्लिपिंग थीं। उस समय, फोर्टुना टेक्नोलॉजीज़ का एक्विजिशन सच में दिलचस्प हो गया था। पहली बात, फोर्टुना सैन होज़े में नहीं था, जैसा कि डालमिया ने दावा किया था, बल्कि सनीवेल, कैलिफ़ोर्निया में था। दूसरी बात, 10 नवंबर 2000 को एक बोर्ड मीटिंग में कुछ OCBs को प्रेफरेंशियल/प्राइवेट प्लेसमेंट के आधार पर 1.5 करोड़ शेयर जारी करने का फ़ैसला किया गया था।
फिर 11 दिसंबर को एक एक्स्ट्राऑर्डिनरी जनरल मीटिंग में, 1.4 करोड़ शेयर जारी करके फोर्टुना टेक्नो-लोजीज़ इंक. के एक्विजिशन के लिए शेयरहोल्डर की मंज़ूरी मांगी गई।

इसके बाद, कंपनी ने 12 जनवरी 2001 को एक मीटिंग में अपने बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स को बताया कि मॉरिशस की तीन कंपनियों – टेक्नोलॉजी ट्रस्ट (60 लाख शेयर), सॉफ्टी कॉर्पोरेशन (40 लाख शेयर) और न्यू विज़न इन्वेस्टमेंट्स (40 लाख शेयर) को 1.40

करोड़ शेयर, हर एक Rs 675 के हिसाब से डीमैटेरियलाइज़्ड फ़ॉर्म में दिए गए हैं। इन शेयरों पर खास नंबर 33250001-47250000 थे। भविष्य में होने वाली घटनाओं के हिसाब से ये खास नंबर ज़रूरी थे।

जुलाई 2001 में जब यूटीआई ने यूएस-64 योजना के लिए शेयर जारी किए, तो डीएसक्यू सॉफ्टवेयर का शेयर 189 रुपये के बेलआउट स्तर से गिरकर एक तिहाई रह गया। इसका मतलब था कि सिर्फ एक बेलआउट डील में ही शेयरधारकों को 25 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ। हालांकि यूटीआई ने बाजार मूल्य से कम दाम पर शेयर खरीदे थे, लेकिन यह बात सभी को स्पष्ट थी कि स्टॉक ब्रोकर केतन पारेख से जुड़े सभी शेयरों की कीमत अगले कई हफ्तों तक गिरती रहेगी। यूटीआई का सीएसई को बेलआउट देने का फैसला और भी विवादास्पद लग रहा था, क्योंकि उसने अपनी एमआईपी-95 और एमआईपी-96 योजनाओं पर भुगतान घटाकर पांच प्रतिशत कर दिया था; और वह पहले से ही सरकार के साथ यूएस-64 योजना के दूसरे बेलआउट पर चर्चा कर रहा था। यूएस-64 योजना के नेट एसेट वैल्यू और रीपरचेज प्राइस के बीच 6000 करोड़ रुपये से अधिक का घाटा था। इसलिए, अगर श्रीराम म्यूचुअल फंड को अपने शेयरधारकों के नुकसान पर स्टॉक ब्रोकरों को बेलआउट देने के लिए दंडित किया गया, तो यूटीआई को भी दंडित किया जाना चाहिए। श्रीराम मामले में एसईबीआई ने कहा था कि खरीद मूल्य "निवेशकों के हित में नहीं था और इसे बाहरी लाभ के लिए तय किया गया था"। उसने यह भी कहा कि "म्यूचुअल फंड की योजनाओं का संचालन विवेकपूर्ण और सावधानीपूर्वक तरीके से नहीं किया गया था", जैसा कि "पेशेवर सिद्धांतों" पर चलने वाले फंड से अपेक्षित होता है।

यह सब यूटीआई द्वारा सीएसई और उसके संचालकों को वित्तीय सहायता देने के निर्णय पर भी लागू होता है। इससे भी अधिक चौंकाने वाली बात यह थी कि वित्तीय सहायता की निगरानी स्वयं एसईबीआई के एक संभागीय प्रमुख ने की थी, जबकि यूटीआई के डागा पर्यवेक्षक के रूप में कार्य कर रहे थे। इसके अलावा, एसईबीआई अध्यक्ष ने स्वयं पूरी वित्तीय सहायता प्रक्रिया की निगरानी की। डागा का तर्क था कि यूटीआई का सौदा श्रीराम के सौदे से "अलग" था, क्योंकि शेयर सीएसई की संपत्ति थे, न कि ब्रोकरों की, और चेक सीधे एक्सचेंज को दिया गया था। फिर भी, एक ब्रोकर ने शेयरों को गिरवी रखा था और यूटीआई की इस कार्रवाई ने, अपने यूनिट धारकों को नुकसान पहुंचाकर, अपने न्यासी कर्तव्यों का उल्लंघन किया था। दूसरे, डागा ने कहा कि श्रीराम म्यूचुअल फंड ने बाजार मूल्य से अधिक पर शेयर खरीदे थे, जबकि यूटीआई का अधिग्रहण रियायती दर पर हुआ था। कुछ ही हफ्तों में यह तर्क हास्यास्पद साबित हुआ जब शेयर की कीमत लगभग एक चौथाई तक गिर गई। तीसरे, डागा का कहना है कि सीएसई ने उन्हें तीन अन्य कंपनियों के शेयर पेश किए थे, लेकिन यूटीआई ने केवल डीएसक्यू सॉफ्टवेयर के शेयर खरीदे। मार्च में एचएफसीएल, ग्लोबल टेली और ज़ी टेलीफिल्म्स के ब्रोकरों को बेलआउट देने के बाद यह एक शानदार स्टॉक चयन था! सिवाय इसके कि डीएसक्यू और उसके प्रमोटर संभवतः किसी प्रकार की धोखाधड़ी में शामिल थे।

सीएसई द्वारा बेलआउट से यह स्पष्ट हो गया कि यूटीआई को उन छोटे बचतकर्ताओं के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं थी जिनसे वह नकदी जुटा रही थी, जबकि सेबी पुलिस की भूमिका निभाने के बजाय चोरों की समस्याओं को सुलझाने में अधिक रुचि रखती थी। शेयर बाजार

नियामक के लिए संक्रामक प्रभाव से बचने के प्रयास करना एक बात है, और यूटीआई के यूनिट धारकों की कीमत पर ऐसा करना बिल्कुल दूसरी बात है।

यूटीआई, जिसे पहले ही आम जनता के पैसे की कीमत पर बचाया जा चुका था, ने अपनी मासिक आय योजनाओं पर रिटर्न में भारी कटौती की और राजलक्ष्मी योजना को बंद कर दिया, जिससे कई छोटी बच्चियां अधर में लटक गईं। इसके अलावा, अगर सेबी सीएसई को बचाना चाहता था, तो उसे यूटीआई के साथ गुपचुप समझौते में शामिल होने के बजाय वित्त मंत्रालय से संपर्क करना चाहिए था। सवाल यह है कि जब कोई म्यूचुअल फंड नियामक के परामर्श से या उसके अनुरोध पर अपने न्यासी कर्तव्य का उल्लंघन करता है, तो कौन कार्रवाई करेगा? शायद जेपीसी, जिसने पहले यूटीआई की जांच करने से इनकार कर दिया था।

सीएसई की जांच से न केवल के-10 शेयरों में निवेशकों की स्थिति और यूटीआई और सेबी द्वारा उनके लिए किए गए बचाव प्रयासों का खुलासा होगा, बल्कि इससे घोटाले में कॉर्पोरेट पक्ष के बारे में भी बहुत कुछ पता चलेगा, खासकर के-10 पोर्टफोलियो के एक प्रमुख सदस्य, डीएसक्यू सॉफ्टवेयर के बारे में। पिछले तीन वर्षों से, डीएसक्यू और इसके प्रबंध निदेशक दिनेश डालमिया अपने प्रबंधन कौशल से कहीं अधिक शेयर बाजार में अपने संचालन के कारण सुर्खियों में रहे हैं। पिछले वर्ष शेयर की कीमत बढ़कर 2800 रुपये तक पहुंच गई, लेकिन जून के अंत तक यह गिरकर लगभग 50 रुपये पर आ गई। डालमिया कोलकाता के अनौपचारिक बाजार में एक बड़े सट्टेबाज के रूप में जाने जाते थे और सीएसई के कई शीर्ष

डिफॉल्टरों के पास डीएसक्यू सॉफ्टवेयर के भारी मात्रा में शेयर फंसे हुए पाए गए, जिनमें से कुछ शेयर यूटीआई ने बड़ी उदारता से खरीद लिए।

गणपति एक्सपोर्ट्स के ओपी अग्रवाल के दामाद डालमिया, जिनके खिलाफ कई राजस्व मामले चल रहे हैं, का जीवन उतार-चढ़ाव भरा रहा है, जिसमें उन्होंने अलग-अलग समय पर भारी मुनाफा कमाया और गंवाया है। शेयरों में एक पक्के जुआरी के रूप में, उन्हें 1999 में अपने लिए सब कुछ ठीक करने का एक मौका मिला, जब बैंक ऑफ अमेरिका के प्राइवेट इक्विटी फंड और केतन पारेख ने डीएसक्यू में रुचि दिखाई। बैंकएम कंपनी में बहुमत हिस्सेदारी चाहता था और डालमिया को डीएसक्यू के बोर्ड से इस्तीफा देना था, लेकिन 5% हिस्सेदारी के साथ निवेशक बने रहना था। नए मालिक कंपनी में आने वाले 220 करोड़ रुपये का इस्तेमाल डीएसक्यू के ऋण और आकस्मिक देनदारियों (बैंक गारंटी) को चुकाने के लिए करते। हालांकि, हुआ यह कि शेयर की कीमत में हेराफेरी करके उसे 2800 रुपये तक बढ़ा दिया गया और केतन पारेख ने कई दौर की खरीद-बिक्री में खूब पैसा कमाया। डालमिया ने इस्तीफा नहीं दिया, बैंकएम कंपनी ने कंपनी छोड़ दी, कोई भी पेशेवर लंबे समय तक टिक नहीं पाया और डीएसक्यू में जो भी पैसा आया, वह वापस बाजार में चला गया। लेकिन दिनेश डालमिया की करतूतों की सबसे चौंकाने वाली कहानियों में से एक है डीएसक्यू सॉफ्टवेयर का फर्जी अधिग्रहण, उसकी पूंजी में वृद्धि और फर्जी शेयरों का प्रचलन!

डालमिया 25 मई 2001 को सुचेता से मिलना चाहते थे, क्योंकि उन्होंने कहा था कि वे डीएसक्यू सॉफ्टवेयर के बारे में 'कुछ

मुद्दों और गलतफहमियों' को स्पष्ट करना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि कंपनी कर्ज मुक्त है और उन चुनिंदा भारतीय कंपनियों में से एक है जिन्होंने बैंकों और संस्थानों का सारा बकाया चुका दिया है (इंडियन बैंक और एचडीएफसी बैंक समेत आधा दर्जन बैंकों में इसे डिफॉल्टर घोषित किया गया था)। उन्होंने यह भी कहा कि अब उन्होंने सट्टेबाजी छोड़ दी है और पूरी तरह से अपनी कंपनी चलाने पर ध्यान केंद्रित करने का निश्चय किया है (महाभारत के अर्जुन की तरह)। उन्हें पूरा भरोसा था कि डीएसक्यू एक और इंफोसिस बनेगी। डालमिया का दृढ़ संकल्प प्रभावशाली लग रहा था। यह तो भविष्य की बात थी। उससे पहले कुछ पेचीदा सवालों के जवाब चाहिए थे। मार्च में कंपनी की पूंजी 30.5 करोड़ रुपये बढ़कर 47 करोड़ रुपये क्यों हो गई थी और अगर उन्होंने उस दौरान कोई कंपनी खरीदी थी, तो यह बात इतनी गुप्त क्यों रखी गई थी? डालमिया ने बताया कि डीएसक्यू ने सैन जोस, कैलिफोर्निया स्थित फोर्टुना टेक्नोलॉजीज नामक कंपनी का अधिग्रहण किया था। उन्होंने दावा किया कि डीएसक्यू जिन छह स्टॉक एक्सचेंजों पर सूचीबद्ध है, उन सभी को इसकी जानकारी दे दी गई थी। क्या कुछ और जानकारी मिल सकती है? उन्होंने आश्वासन दिया कि अगले ही दिन ईमेल कर दी जाएगी। फिर वे चुप हो गए। सुचेता ने जानकारी मांगने के लिए उन्हें एक दर्जन बार पत्र लिखा। उनके कार्यालय से आए जवाबों में तरह-तरह के बहाने थे: वे विदेश में थे, वे अस्वस्थ थे, और अंत में उन्होंने कहा कि फोर्टुना टेक्नोलॉजीज के साथ हुए समझौते के तहत, फोर्टुना के कर्मचारियों को डीएसक्यू में स्थानांतरित किए जाने तक अधिग्रहण की घोषणा नहीं की जा सकती। भारतीय शेयरधारकों और स्टॉक एक्सचेंजों को सूचना देने का क्या? उन्होंने जवाब देना ही बंद कर दिया।

जिज्ञासावश, सुचेता ने एसईबीआई, बीएसई और एनएसई से जानकारी मांगी। एसईबीआई के कार्यकारी निदेशक प्रताप कर ने पुष्टि की कि कंपनी ने एसईबीआई को अधिग्रहण/विलय के बारे में सूचित नहीं किया था; उन्होंने यह भी कहा कि लिस्टिंग समझौते और अधिग्रहण नियमों के उल्लंघन के संकेत मिले हैं। उन्होंने कहा कि एसईबीआई मामले की आगे जांच करेगी। बीएसई ने हमेशा की तरह जवाब देने की जहमत नहीं उठाई और एनएसई ने कहा कि डीएसक्यू ने लिस्टिंग नियमों का उल्लंघन किया हो सकता है। उसने कहा कि वह कंपनी से बातचीत कर रहा है ताकि विवरण प्राप्त कर सके और कुछ अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू करने की योजना बना रहा है। चेन्नई के एक फंड मैनेजर ने भी लिखकर बताया कि मद्रास स्टॉक एक्सचेंज से संपर्क करने पर कोई जानकारी उपलब्ध नहीं थी।

डीएसक्यू की वेबसाइट पर अधिग्रहण या पूंजी में वृद्धि के बारे में कुछ भी नहीं बताया गया था, जबकि वेबसाइट अप्रैल 2001 तक अपडेट की गई थी। फोर्टुना का तो कोई ज़िक्र ही नहीं था। इसके बजाय, अप्रैल तक, अमेरिका की सैन विज़न टेक्नोलॉजीज़ के साथ इसकी बातचीत और पुनर्विचार से संबंधित प्रेस क्लिपिंग्स मौजूद थीं। उस समय, फोर्टुना टेक्नोलॉजीज़ का अधिग्रहण वाकई पेचीदा हो गया। पहली बात तो यह कि फोर्टुना सैन जोस में नहीं थी, जैसा कि डालमिया ने दावा किया था, बल्कि सनीवेल, कैलिफ़ोर्निया में थी। दूसरी बात, 10 नवंबर 2000 को हुई बोर्ड मीटिंग में कुछ ओसीबी को तरजीही/निजी प्लेसमेंट के आधार पर 1.5 करोड़ शेयर जारी करने का निर्णय लिया गया।

फिर 11 दिसंबर को हुई एक असाधारण आम बैठक में, 1.4 करोड़ शेयर जारी करके फोर्टुना टेक्नोलॉजीज़ इंक. के अधिग्रहण के लिए शेयरधारकों की मंजूरी मांगी गई।

इसके बाद, कंपनी ने 12 जनवरी 2001 को हुई निदेशक मंडल की बैठक में घोषणा की कि मॉरीशस स्थित तीन कंपनियों - टेक्नोलॉजी ट्रस्ट (60 लाख शेयर), सोफ्टी कॉर्पोरेशन (40 लाख शेयर) और न्यू विजन इन्वेस्टमेंट्स (40 लाख शेयर) को 675 रुपये प्रति शेयर की दर से 1.40 करोड़ शेयर विमूर्त रूप में आवंटित किए गए हैं। इन शेयरों पर विशिष्ट क्रमांक 33250001-47250000 अंकित थे। आगे की घटनाओं के लिए ये विशिष्ट क्रमांक महत्वपूर्ण साबित हुए।

यह स्पष्ट नहीं था कि क्या ये कंपनियां फोर्टुना की मालिक थीं या फोर्टुना का अधिग्रहण कैसे हुआ, लेकिन शेयरों का आवंटन अपने आप में पेचीदा था। डीएसक्यू ने आवंटन की पुष्टि करने वाले लेखा परीक्षकों के प्रमाण पत्र के साथ एनएसडीएल को सूचित किया कि उल्लिखित विशिष्ट क्रमांक वाले शेयरों को मॉरीशस स्थित तीनों कंपनियों के खातों में जमा किया जाना चाहिए। एनएसडीएल ने कहा कि शेयरों को तभी जमा किया जा सकता है जब डीएसक्यू को अपने सभी स्टॉक एक्सचेंजों से सैद्धांतिक लिस्टिंग स्वीकृति प्राप्त हो जाए।

28 मई 2001 को, सीएसई को लिस्टिंग आवेदन पत्र प्राप्त हुआ। डीएसक्यू ने सभी एक्सचेंजों को पत्र लिखकर बताया कि उन्हें भुगतान न करने वाले सदस्यों में से एक, हरीश बियानी से, उनकी देनदारी के बदले में, 43250001-44250000 विशिष्ट संख्या वाले

10 लाख इक्विटी शेयर प्राप्त हुए हैं। चूंकि ये शेयर मॉरीशस स्थित कंपनियों को कथित तौर पर जारी किए गए शेयरों की श्रेणी में आते हैं, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि डीएसक्यू ने कम से कम कुछ शेयर एक ही विशिष्ट संख्या के साथ दो बार जारी किए - एक बार कोलकाता के कुछ दलालों को और दूसरी बार मॉरीशस स्थित कंपनियों को। सवाल यह है कि क्या डीएसक्यू ने कोलकाता के उन दलालों को बचाने के लिए शेयर प्रमाणपत्र छापे थे, जिन्हें डीएसक्यू शेयरों में अत्यधिक सट्टेबाजी के कारण भारी नुकसान हुआ था? इसमें सट्टेबाज दिनेश डालमिया की कितनी भूमिका थी? क्या यूटीआई द्वारा दलाल दिनेश सिंघानिया (सीएसई के माध्यम से) से खरीदे गए 13.3 लाख शेयर भी इसी विशिष्ट संख्या श्रेणी में थे? और अंत में, दिनेश सिंघानिया जानकारी देने में इतने अनिच्छुक क्यों थे? अंत में, निर्णायक खुलासा सुचेता के लेख के इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित होने के बाद हुआ।
याद रहे, डीएसक्यू ने फोर्टुना के अधिग्रहण के लिए मॉरीशस स्थित तीन कंपनियों को 675 रुपये प्रति शेयर की दर से 1.4 करोड़ शेयर आवंटित करने का प्रस्ताव पारित किया था। फोर्टुना टेक्नोलॉजीज के प्रबंध निदेशक, टीसी अशोक ने उन्हें ईमेल करके कहा, "मैं स्पष्ट करना चाहता हूं कि आपके लेख में उल्लिखित मॉरीशस की तीन कंपनियां न तो फोर्टुना की मालिक हैं और न ही फोर्टुना उनकी मालिक है।" उन्होंने कहा, "मैं फोर्टुना यूएसए का 100% मालिक हूं और फोर्टुना यूएसए किसी अन्य कंपनी का मालिक नहीं है।" इसके बजाय, वे फोर्टुना टेक्नोलॉजीज इंडिया प्राइवेट लिमिटेड के मालिक हैं, जो विशेष रूप से फोर्टुना यूएसए के लिए काम करती है। तो सवाल यह उठता है कि दिनेश डालमिया ने पिछले दिसंबर में गुपचुप तरीके से हुई एक विशेष आम बैठक में 1.4 करोड़

शेयर किसे आवंटित किए? साथ ही, इस तरह के झूठ से बचने में किस तरह की शासन और प्रकटीकरण प्रथाएं झलकती हैं?
डीएसक्यू सॉफ्टवेयर के शेयरों का रहस्य यहीं खत्म नहीं हुआ। जून में अचानक सीएसई पर हलचल मच गई, ताकि स्टॉकब्रोकर हरीश बियानी द्वारा जमा किए गए डीएसक्यू के 10 लाख शेयर (अधिग्रहण के लिए आवंटित 1.4 करोड़ शेयरों के दायरे में) उन्हें जारी किए जा सकें। बियानी, जिनके पास हाल तक बिल्कुल भी पैसा नहीं था और स्टॉक एक्सचेंज को 30 करोड़ रुपये का भुगतान न कर पाने के कारण उन्हें डिफाल्टर घोषित कर दिया गया था, ने अचानक समझौते के तौर पर 26 करोड़ रुपये (किश्तों में) देने की पेशकश की। शर्त यह थी कि उनका निलंबन रद्द किया जाए, उनका कार्ड पुनः सक्रिय किया जाए, बकाया राशि माफ की जाए और सीएसई की हिरासत में मौजूद विवादित डीएसक्यू शेयर उन्हें जारी किए जाएं। कोलकाता के ट्रेडर्स का मानना है कि कोई डीएसक्यू के इन शेयरों को जारी करवाने के लिए बेताब है ताकि डुप्लिकेट शेयरों की समस्या को दबाया जा सके।
यह एक ऐसी कहानी है जिसमें 2001 के घोटाले के सभी आयाम समाहित हैं: एक सॉफ्टवेयर कंपनी का तेजी से विकास, एक संदिग्ध प्रमोटर, ऑपरेटर के साथ सांठगांठ (जो K-10 सूची में शामिल है), खुदरा निवेशकों को भारी नुकसान, UTI द्वारा संदिग्ध बेलआउट, कंपनी कानूनों का उल्लंघन, लिस्टिंग नियमों का उल्लंघन और नकली शेयरों की संभावित धोखाधड़ी। इसमें 2001 के घोटाले के सभी प्रमुख तत्व मौजूद हैं और इनमें से अधिकांश कोलकाता के अनौपचारिक बाजार की बदौलत संभव हुए हैं। कम से कम अब तो यह आधिकारिक हो चुका है।

उपसंहार

घोटाले के प्रमुख किरदारों की मौत, रिजर्व बैंक की बेहद खराब बैंक निगरानी,
ग्लोबल ट्रस्ट बैंक को उसका संदिग्ध समर्थन, एक और निरर्थक जेपीसी रिपोर्ट, डीएसक्यू सॉफ्टवेयर
गाथा और मीडिया का हेरफेर

भारत में एक दशक के भीतर दो बड़े वित्तीय बाजार घोटाले हुए हैं। इनमें से किसी का भी समाधान नहीं हुआ है। दोनों की जांच एक तमाशा बनकर रह गई है। बहुत कम धन बरामद हुआ है। शुरुआती दौर में हुई गिरफ्तारियों और मीडिया की सनसनीखेज खबरों की तुलना में, नियामकों, राजनेताओं, म्यूचुअल फंडों, बैंकों और सरकारी अधिकारियों में शामिल प्रमुख दोषियों को कोई सजा नहीं मिली है। घोटालों में मुख्य भूमिका निभाने वाले कुछ दलालों और सट्टेबाजों का जीवन कुछ समय के लिए अस्त-व्यस्त हो गया है, लेकिन उनकी अवैध संपत्ति का व्यवस्थित रूप से पता नहीं लगाया जा सका है और वे क्षेत्रीय स्टॉक एक्सचेंजों के माध्यम से व्यापार करना जारी रखे हुए हैं। नियामकों को बार-बार लापरवाही बरतते हुए पकड़ा गया है, लेकिन किसी पर कोई कार्रवाई नहीं हुई है। इस बीच, पिछले घोटाले से जुड़े कई लोगों का निधन हो चुका है। हम 2001 में अपने पिछले अंक के प्रकाशन के बाद से हुए प्रमुख घटनाक्रमों पर एक संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत करते हैं।

किसके लिए मृत्यु का आंकड़ा

31 दिसंबर 2001 को जब मुंबई में नव वर्ष का जश्न अभी आधा ही बीता था, तब 1992 के घोटाले के मुख्य पात्र को दिल का दौरा पड़ा। घोटाले की जांच ने 47 वर्षीय पूर्व बिग बुल को पहले ही बुरी तरह प्रभावित कर दिया था। उनके बाल कम हो गए थे और उनमें सफेदी आ गई थी, और वर्षों के साथ उनका वजन कई किलो बढ़ गया था; कभी हंसमुख रहने वाले हर्षद के चेहरे पर चिंता की लकीरें साफ दिख रही थीं, और वह अपनी स्वाभाविक मुस्कान को बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रहे थे। दिल के दौरे ने सब कुछ खत्म कर दिया।
अपनी मृत्यु के समय, हर्षद अपने भाई सुधीर मेहता के साथ मुंबई के बाहरी इलाके स्थित ठाणे केंद्रीय जेल में बंद थे। अदालत ने उनकी जमानत याचिका खारिज कर दी थी। उन पर कई प्रतिष्ठित कंपनियों के 27 लाख शेयरों के गबन का आरोप था, जिनकी कीमत उस समय 250 करोड़ रुपये थी। सीने में दर्द की शिकायत पर उन्हें ठाणे सिविल अस्पताल में भर्ती कराया गया। अस्पताल में ही उन्हें एक और दिल का दौरा पड़ा। उन्हें बचाने के तमाम प्रयासों के बावजूद, आधी रात के पांच मिनट बाद उन्हें मृत घोषित कर दिया गया। इस तरह एक ऐसे व्यक्ति की कहानी का अंत हुआ, जिसने गरीबी से अथाह धन और फिर बदनामी बटोरी थी। 1991-92 के दो छोटे वर्षों में इस कहानी ने पूरे देश का ध्यान अपनी ओर खींचा था और हर्षद को शेयर बाजार का पहला सुपरस्टार बना दिया था। एक ऐसे व्यक्ति के लिए यह एक अप्रत्याशित अंत था जो हमेशा आशावादी था और नकारात्मक प्रचार के बीच भी खुश रहने की क्षमता रखता था। कुछ समय के लिए उन्होंने अपार दौलत, महंगी कारों और आलीशान अपार्टमेंट के अपने बड़े सपने को साकार कर दिया था। वे निवेशकों को अपार धनवान बनाने वाले जादूगर बनना चाहते थे। क्या इस तथ्य में कोई संदेश छिपा है कि उनके अंतिम क्षण जेल की कोठरी और सरकारी अस्पताल में बीते?

दरअसल, उनकी मृत्यु भी विवादों से घिरी रही। हर्षद के वकील महेश जेठमलानी ने इस पूरे घटनाक्रम को नया रंग और राजनीतिक रंग देने की कोशिश की। उन्होंने आरोप लगाया कि कैलाश गुप्ता, समीर जानी और दिनेश शाह नाम के तीन व्यक्तियों ने बेनामी शेयरों के जरिए हासिल की गई रकम का एक बड़ा हिस्सा हड़प लिया था, लेकिन उन्हें छोड़ दिया गया। उन्होंने आरोप लगाया कि इन तीनों के शक्तिशाली राजनीतिक संबंध थे और उन्होंने अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके इस सौदे की पुलिस जांच को बाधित किया। उन्होंने अदालत में खुलेआम आरोप लगाया कि उच्च पदस्थ डीसीपी संजय पांडे का तबादला इसलिए किया गया क्योंकि वे इन तीनों व्यक्तियों का पीछा कर रहे थे। अदालत ने सीबीआई को जेठमलानी के आरोपों की जांच करने का निर्देश दिया। लेकिन इससे कोई नतीजा नहीं निकला।
1992 के घोटाले में शामिल कई लोग या तो कानून से बच निकले हैं या अंतहीन मुकदमों में उलझे हुए हैं। लेकिन इनमें मरने वालों की संख्या भी चौंकाने वाली है। 2004 के अंत तक, मुश्किल से आधा दर्जन मामले ही मुकदमेबाजी की लंबी प्रक्रिया से गुजरकर भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निपटाए गए थे। हितेन दलाल 1992 के घोटाले के एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें अदालत ने दोषी ठहराया है। बाकी ज्यादातर लोग इस दुनिया से विदा हो चुके हैं। यह एक लंबी सूची है जो एमजे फेरवानी से शुरू होकर एमएन गोइपोरिया, सीएल खेमानी, आरएल कामथ (सभी एसबीआई से), सीबीआई के एसजी गाधे, फेयरग्रोथ के के धर्मपाल और जेपी गांधी तक जाती है, जो भूपेन दलाल के भरोसेमंद सहयोगी थे और स्टैंडर्ड चार्टर्ड, बैंक ऑफ कराड और मेट्रोपॉलिटन कोऑपरेटिव बैंक से जुड़े लेन-देन को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

28 सितंबर 2001 को, निर्मल बंग, एक दलाल जो घोटाले के विभिन्न आरोपियों के बीच बड़े पैमाने पर लेन-देन की सुविधा प्रदान करता था, की कार के टायर फटने से हुई दुर्घटना में मृत्यु हो गई। 41 वर्षीय सफल स्टॉकब्रोकर और दिल विकास फाइनेंस और एल्डोराडो इन्वेस्टमेंट्स के मालिक बिमल गांधी ने 2001 के मध्य में आत्महत्या कर ली थी। उससे पहले, अजय ठक्कर ने अप्रैल 2001 में आत्महत्या कर ली थी। ठक्कर छोटे जमाकर्ताओं से बड़ी रकम इकट्ठा करता था और फिल्म उद्योग को उधार देकर एक सफल व्यवसाय चलाता था। वह शेयर बाजार से मिलने वाले उच्च प्रतिफल के भ्रम में फंसा हुआ था। कई मौतों और सीबीआई टीम में लगातार बदलावों ने जांच की निरंतरता को बाधित कर दिया। जटिल वित्तीय मामलों में, यह समाधान की किसी भी संभावना को नष्ट करने का सबसे अच्छा तरीका है। परिणामस्वरूप, लंबी और जटिल सुनवाई कम से कम एक और दशक तक चलती रहने की संभावना है, और केवल दुर्भाग्यपूर्ण मौत ही अंतिम समाधान का वादा करती है।

एक और बैंक का पतन
2001 में, केतन पारेख की अनियंत्रित सट्टेबाजी के कारण माधवपुरा मर्केंटाइल कोऑपरेटिव बैंक (एमएमसीबी) दिवालिया हो गया। लेकिन ग्लोबल ट्रस्ट बैंक (जीटीबी), जो सट्टेबाजों, दलालों और संदिग्ध व्यापारियों का एक और अड्डा था, आंध्र प्रदेश में अपने गहरे राजनीतिक संबंधों और आरबीआई के गुप्त समर्थन के कारण बच निकला। हालांकि, यह बैंक सिर्फ तीन साल और चल पाया। जीटीबी का संचालन रमेश गेली कर रहे थे, जो एक जाने-माने बैंकर थे और इससे पहले वैश्य बैंक के प्रमुख रह चुके थे। वे पद्म श्री से सम्मानित होने वाले एकमात्र बैंकर थे। जीटीबी का बैंकिंग

लाइसेंस वास्तव में जयंत माधव को दिया गया था, गेली को नहीं। माधव शुरुआत में जीटीबी के बोर्ड में थे, लेकिन जल्द ही असम लौट गए। जयंत गेली ने तुरंत अपने हीरा व्यापारी मित्रों को जुटाया और उन्होंने कुछ जटिल वित्तीय व्यवस्थाओं के माध्यम से इसकी 100 करोड़ रुपये की पूंजी इकट्ठा की। जीटीबी के कामकाज पर संदेह 1999 में ही शुरू हो गया था। यह चौंकाने वाला लग सकता है, लेकिन आरबीआई को 1999-00 में ही पता चल गया था कि हालात कितने खराब हैं, लेकिन उसने इसे दबाने की कोशिश की। विडंबना यह है कि पहला खुलासा आरबीआई के स्वयं पर्यवेक्षण विभाग (डीओएस) द्वारा किया गया था, लेकिन इसे जानबूझकर दबा दिया गया। उस निरीक्षण रिपोर्ट में जीटीबी के पतन में योगदान देने वाले हर महत्वपूर्ण मुद्दे को शामिल किया गया था, जिसमें केतन पारेख को दिए गए ऋण के साथ-साथ प्रमोटर समूह से संबंधित कुछ हाई-प्रोफाइल कंपनियों और कई निवेश कंपनियों को दिए गए ऋण भी शामिल थे। इससे हमें बैंक के संचालन के तरीके का अंदाजा लगता है।
रिपोर्ट में रमेश गेली समूह की 18 कंपनियों के खातों में गंभीर अनियमितताओं और "संदिग्ध मनी लॉन्ड्रिंग" की ओर ध्यान दिलाया गया। यहाँ एक संदिग्ध मामला है। 1999-00 में, जीटीबी ने 82 करोड़ रुपये का ऋण माफ कर दिया, जिसमें से ठीक आधा (41.23 करोड़ रुपये) पेट्रो एनर्जी प्रोडक्ट्स कंपनी इंडिया (पीईपीसीओ) नामक एक खाते से संबंधित था। इसे एक पुरानी रिफाइनरी के लिए विदेश में पैसा भेजने की अनुमति दी गई थी, जबकि परियोजना के लिए भूमि का अधिग्रहण नहीं किया गया था, तकनीक पुरानी हो चुकी थी और परियोजना की व्यवहार्यता संदिग्ध थी। इस धन प्रेषण और ऋण माफी का असली लाभार्थी कौन था? आरबीआई निरीक्षक ने इसकी जांच का सुझाव दिया क्योंकि बैंक ने वसूली के लिए कोई गंभीर प्रयास

नहीं किया था। निरीक्षण रिपोर्ट में 10 अन्य कंपनियों की सूची दी गई है जहाँ जीटीबी ने एक वर्ष के भीतर बिना किसी गंभीर वसूली प्रयास के ऋण माफ कर दिए थे।
2000 में निरीक्षण के दौरान दो उद्योग समूहों को जीटीबी के साथ उनके विशेष संबंधों के लिए चिह्नित किया गया था। इनमें से एक था बालाजी समूह की कई कंपनियों जैसे बालाजी डिस्टिलरीज, बालाजी होटल्स, बालाजी इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन, जयसवाल नेको को दिया गया 150 करोड़ रुपये का समस्याग्रस्त ऋण और दूसरा था पर्ल डिस्टिलरीज (जिसमें बालाजी समूह की 60 प्रतिशत हिस्सेदारी थी) को दिया गया 46 करोड़ रुपये का ऋण। जीटीबी ने इन कंपनियों को लापरवाही से खराब ऋण लेने, लेनदारों को भुगतान करने के लिए समूह के भीतर ही धन का दुरुपयोग करने और यहां तक कि ऋण खातों को 'एवरग्रीन' करने में मदद करने के लिए उनके प्रेफरेंस शेयरों और डिबेंचरों की सदस्यता लेने की अनुमति दी थी।
एक अन्य बड़ा सावधि ऋण हीरा व्यापारी भरत शाह की कंपनी रिदय रियल एस्टेट (43 करोड़ रुपये) को मुंबई में 72.49 करोड़ रुपये के वाणिज्यिक परिसर (ट्राम्बक कोर्ट) के वित्तपोषण के लिए दिया गया था। बैंक ने सभी विवेकपूर्ण दिशानिर्देशों का उल्लंघन करते हुए धनी शाह को ऋण दिया और 2000 तक यह ऋण पहले ही खराब हो चुका था। बैंक का भरत शाह की कंपनियों जैसे ब्यूटीफुल डायमंड्स (46 करोड़ रुपये का डिफॉल्ट), बी. विजयकुमार एंड कंपनी (2000 में 131 करोड़ रुपये का एक्सपोजर) और क्रिस्टल जेम्स में भारी निवेश था, जबकि इन ऋणों पर सुरक्षा कवर बेहद कमजोर था। इनमें से कई ऋण तब तक खराब हो चुके थे।
सट्टेबाजों के साथ जीटीबी के संबंधों के स्पष्ट संकेत 2000 में तब सामने आए जब जीटीबी ने आईएफसी वाशिंगटन, सन एफ एंड सी, कोटक

महिंद्रा फाइनेंस और प्रूडेंशियल आईसीआईसीआई फंड जैसी संस्थाओं को 125.80 करोड़ रुपये मूल्य के 148 लाख शेयर तरजीही रूप से आवंटित किए। सब्सक्राइबर्स में कुख्यात निष्कल्प इन्वेस्टमेंट्स भी शामिल थी, जो टाटा फाइनेंस को डुबाने वाली सहायक कंपनी थी। निष्कल्प, जिसके केतन पारेख के एक करीबी सहयोगी से बेहद घनिष्ठ संबंध पाए गए, 50 करोड़ रुपये के आवंटन के साथ सबसे बड़ा निवेशक था। दिलचस्प बात यह है कि जीटीबी से इसके पास ठीक 50 करोड़ रुपये की ओवरड्राफ्ट सुविधा भी थी, जिसे कई बार रोलओवर किया गया था। जीटीबी और निष्कल्प के संबंधों की जांच करने के बजाय, आरबीआई के पर्यवेक्षकों ने निरीक्षण रिपोर्ट से विशिष्ट नामों को हटाकर उनके स्थान पर सामान्य संदर्भों का उपयोग करने की मांग की।
अन्य बड़े आवंटियों में केतन पारेख की कंपनियां नक्षत्रा सॉफ्टवेयर और चित्रकूट कंप्यूटर्स शामिल थीं। 22 दिसंबर 2000 को, रमेश गेली ने एक फ्लोचार्ट के साथ समझाया था कि चित्रकूट और नक्षत्रा ने जीटीबी के तरजीही शेयरों की खरीद के लिए धन कैसे जुटाया था। दोनों को एमएमसीबी और बैंक ऑफ इंडिया (बीओआई) आदि से धन प्राप्त हुआ था।
इसलिए, जब 24 जुलाई 2004 को बैंक पर स्थगन लगाया गया, तो केतन पारेख पर बैंक का लगभग 240 करोड़ रुपये का बकाया था, जिसमें 2001 के घोटाले में अपने करीबी उद्योगपतियों को दिए गए खराब ऋण शामिल नहीं थे।
जीटीबी सिर्फ एक अति उत्साही ऋणदाता नहीं था जो अंधाधुंध कारोबार करता था, बल्कि केतन पारेख की गतिविधियों का केंद्र था। उनके सभी कॉर्पोरेट सहयोगियों, उनकी निवेश कंपनियों, साथ ही पारेख के अपने निवेश फर्मों के नेटवर्क के भी जीटीबी में

खाते थे, जैसा कि फर्स्ट ग्लोबल और उसकी सहयोगी कंपनियों के थे। घोटाले के बाद की जांच से पता चला कि कैसे एक ही कार्यदिवस के भीतर इस समूह के विभिन्न खातों के बीच तेजी से और बार-बार धन का हस्तांतरण किया गया था। जीटीबी ने ज़ी टेलीफिल्म्स और एचएफसीएल को बड़ी मात्रा में धन उधार दिया, जिसने तुरंत इसे केतन पारेख को हस्तांतरित कर दिया। गेली के शक्तिशाली राजनीतिक संबंधों के कारण घोटाले के बाद की जांच के दौरान इन सभी बातों को दबा दिया गया। दरअसल, जब घोटाला सामने आने लगा था, तभी पूरे मामले को दबाने की कोशिश की गई। अपने खराब ऋणों को छिपाने के लिए जीटीबी ने यूटीआई बैंक के साथ विलय का प्रयास किया।
हालांकि रमेश गेली को अप्रैल 2001 में पद छोड़ने के लिए कहा गया था, लेकिन वे अप्रत्यक्ष रूप से बैंक का संचालन करते रहे। जीटीबी के पूर्व कार्यकारी निदेशक और गेली के करीबी श्रीधर सुबाश्री ने एक अखबार को लिखे पत्र में कहा, ‘‘बैंकिंग क्षेत्र में कोई भी इस बात से अवगत होगा’’ कि जीटीबी से गेली के पद छोड़ने के बाद भी ‘‘वे अपनी बहन परिमाला आनंद (एक निदेशक) और अपने बेटे गिरीश गेली (जो नवंबर 2003 में निदेशक बने) के माध्यम से बैंक के निर्णयों का मार्गदर्शन करते रहे’’। जीटीबी के कार्यकारी निदेशक के रूप में पदभार संभालने वाले सुधाकर गांधे भी गेली के करीबी थे। फिर भी, आरबीआई ने गेली के बैंक से खुद को अलग करने के झूठ को आसानी से स्वीकार कर लिया।
आरबीआई जीटीबी के संचालन की पूरी जानकारी होने के बावजूद तीन साल तक जीटीबी का संरक्षण करता रहा। दरअसल, फरवरी 2004 में, आत्मविश्वास से भरे गेली को जीटीबी बोर्ड में फिर से शामिल कर लिया गया और ऐसा लग रहा था कि सब कुछ पहले की तरह ही चल रहा था –

स्पष्ट रूप से आरबीआई की मौन स्वीकृति से। सुचेता ने तब पूर्व वित्त मंत्री जसवंत सिंह को पत्र लिखकर पूछा कि गेली को पूरी तरह से दोषमुक्त किए बिना वापस कैसे लाया जा सकता है। उन्हें बताया गया कि उनकी चिंताओं पर आरबीआई द्वारा ध्यान दिया जा रहा है। वित्त मंत्रालय के कहने पर, आरबीआई ने गेली को फिर से इस्तीफा देने के लिए प्रेरित किया और मीडिया को बताया कि इसके लिए आरबीआई से अनुमति नहीं ली गई थी।
समस्या की गंभीरता के बारे में बाद में हुए खुलासे से गेली और जीटीबी के प्रति आरबीआई का नरम रवैया निंदनीय हो जाता है। चूंकि जीटीबी की करतूतें और घोटाले से उसका गहरा संबंध या तो आरबीआई की रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से बताया गया था या केंद्रीय बैंक को अन्य स्रोतों से इसकी जानकारी थी, इसलिए हम केवल यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि नियामक जानबूझकर या अनजाने में निष्क्रिय था। 2003-04 में, गेली ने आरबीआई के पूर्ण समर्थन से एक विदेशी निजी इक्विटी फंड को नियंत्रण सौंपने का प्रयास किया। जीटीबी के प्रबंध निदेशक सुधाकर गांधे ने अखबारों को बताया, "पिछली सभी समस्याएं सुलझ गई हैं।" यह दिखावा महज 10 महीने बाद ही खत्म हो गया जब बैंक को मोरेटोरियम के तहत रखा गया और जबरन ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स में विलय कर दिया गया। लेकिन इससे भी कई सवाल उठे। क्या सार्वजनिक रूप से सूचीबद्ध बैंक ओबीसी ने उचित जांच-पड़ताल की, और वह भी सप्ताहांत में? क्या हम यह मान सकते हैं कि जीटीबी के एनपीए लगभग 1,200 करोड़ रुपये पर स्थिर हो गए हैं और कोई नया घोटाला सामने नहीं आएगा? आरबीआई घोटाले में फंसी जीटीबी को जीवित रखने और लापरवाह प्रबंधन को बचाने के लिए इतना बेताब क्यों था? जीटीबी की गाथा हमें भारतीय वित्तीय प्रणाली के काले पक्ष की ओर ले जाती है - एक अपारदर्शी,

अक्सर सुस्त लेकिन बेदाग केंद्रीय बैंक द्वारा बेहद कमजोर नियामक निगरानी।

जवाबदेही से मुक्त नियामक
यदि 1992 के घोटाले में आरबीआई को सोता हुआ देखा गया, तो 2001 में सेबी की बारी थी, जो पूरी तरह से एक स्टॉक घोटाला था। सेबी ने अत्यधिक अटकलों को नजरअंदाज करने या केतन पारेख के भारी मात्रा में किए गए लेन-देन की जांच न करने में गलती की। यदि उसने विभिन्न स्टॉक एक्सचेंजों में लेन-देन का ऑडिट ट्रेल स्थापित किया होता, तो उसे निश्चित रूप से विदेशी कॉर्पोरेट निकायों (ओसीबी) और विदेशों में जारी किए गए पार्टिसिपेटरी नोट्स के माध्यम से विदेशी निवेश जैसी संदिग्ध प्रथाओं का पता चल जाता। इससे जीटीबी का भी पता चलता, जो पारेख और अन्य घोटालेबाजों के वित्तीय संचालन का केंद्र था। जीटीबी का संचालन, जो 2001 के स्टॉक घोटाले का मुख्य केंद्र था, आरबीआई के अधिकार क्षेत्र में ही हो रहा था। पारेख समूह की प्रत्येक निवेश कंपनी का जीटीबी में खाता था और उसे निजी बैंक से भरपूर धनराशि मिलती थी। इसके अलावा, बड़े कॉर्पोरेट समूहों की अधिकांश निवेश कंपनियां, जिनके शेयरों में केतन पारेख द्वारा हेरफेर किया गया था (जिन्हें के-10 कंपनियां कहा जाता है), जीटीबी में ही बैंकिंग करती थीं, जिससे केतन पारेख और उसके साथियों से संबंधित कई फर्मों में एक ही दिन में बिना किसी को सौदों की प्रकृति के बारे में जरा भी जानकारी मिले धन का लेन-देन हो जाता था।
2001 और 1992 के घोटाले ने आरबीआई की घोर निगरानी संबंधी लापरवाही को उजागर किया। बैंकों द्वारा ब्रोकरों को वित्तपोषण करने पर प्रतिबंध लगाने और पूंजी बाजार में उनकी पहुंच सीमित

करने के बावजूद, आरबीआई बैंकों की निगरानी करने में विफल रहा। इस बात के भी प्रमाण हैं कि आरबीआई ने जीटीबी प्रबंधन की संदिग्ध चालों को नजरअंदाज किया और जानबूझकर कई चेतावनी संकेतों को अनदेखा किया, जिसके कारण अंततः जीटीबी का पतन हुआ। उदाहरण के लिए, आरबीआई के वरिष्ठ अधिकारियों ने पहले उल्लेखित डीओएस निरीक्षण रिपोर्ट के लहजे को बदलने में मदद करने के लिए 'एवर-ग्रीनिंग' या "एनपीए निवेश" जैसे शब्दों को नरम करने का भरसक प्रयास किया। इस प्रक्रिया में केतन पारेख, फर्स्ट ग्लोबल और हीरा व्यापारियों को दिए गए ऋणों से संबंधित कड़े निर्देशों को मुख्य रिपोर्ट से हटाकर अनुलग्नकों में डाल दिया गया। हालांकि निरीक्षण सितंबर 2000 में पूरा हो गया था, लेकिन रिपोर्ट जनवरी 2001 में ही जारी की गई, क्योंकि हमारे सूत्रों के अनुसार, आरबीआई के अधिकारी जीटीबी को बीमा लाइसेंस दिलाने में मदद करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त, यह शायद ध्यान देने योग्य है कि विदेशी बैंकों द्वारा विकसित एक मॉडल के अनुसार (अध्याय 14 देखें), आरबीआई के कई अधिकारियों के बच्चे जीटीबी में काम करते थे।
डीओएस ने सभी आरोपों को कार्रवाई के लिए केंद्रीय कार्यालय को भेज दिया। केंद्रीय कार्यालय द्वारा कार्रवाई का कोई सबूत नहीं है। केंद्रीय कार्यालय जीटीबी से पूछताछ कर सकता था (जैसा कि 1992 के घोटाले में हुआ था) और बुलबुला फूटने से काफी पहले केतन पारेख के गठजोड़ का पता लगा सकता था। आरबीआई के हैदराबाद कार्यालय ने विभिन्न दलालों को साफ-सुथरे अल्पकालिक ऋणों के एक पैटर्न के माध्यम से प्रमोटर समूह द्वारा बैंक के शेयरों में 'स्वयं के लिए सौदेबाजी' के स्पष्ट सबूत जुटाए थे। इसकी भी कभी जांच नहीं की गई।

आरबीआई ने जिन कई चेतावनी संकेतों को नजरअंदाज करना चुना, उनमें मूल्य में हेरफेर और एक बाजार संचालक द्वारा जीटीबी की इक्विटी के पांच प्रतिशत से अधिक का संचय शामिल था। डीओएस ने जीटीबी के शेयरों में "असामान्य गतिविधि" और इस आरोप के बारे में एसईबीआई को लिखा था कि एक संचालक जीटीबी की इक्विटी के पांच प्रतिशत से अधिक हिस्से पर कब्जा कर रहा है।
2000 के अंत और 2001 के आरंभ में SEBI की बाद की जांच से पता चला कि शेयरों की कीमतों में स्पष्ट हेरफेर हुआ था और यह भी स्पष्ट संकेत मिला कि मिलीभगत से काम करने वाली कंपनियों/ऑपरेटरों के एक समूह के पास पांच प्रतिशत से अधिक इक्विटी थी। इसके बावजूद, DoS द्वारा इन आशंकाओं को उठाए जाने के बाद भी, RBI ने GTB और UTI बैंक के विलय को सैद्धांतिक रूप से मंजूरी दे दी। GTB के शेयरों की हेरफेर की गई कीमत विलय अनुपात तय करने में एक महत्वपूर्ण कारक थी। SEBI ने RBI को पत्र लिखकर अपनी जांच के निष्कर्षों का विवरण दिया, तब तक दोनों बैंकों का विलय चल रहा था।
RBI ने जोर देकर कहा कि "शेयरों की कीमतों में हेरफेर की जांच उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं आती"। GTB का ब्रोकरों के साथ जुड़ाव, जिसने DoS को चिंतित किया था, उसका क्या हुआ? उसका आधिकारिक रुख था, "RBI नियमित रूप से त्रैमासिक ऑडिट के माध्यम से बैंकों के शेयर बाजार में जुड़ाव की निगरानी करता है। जरूरत पड़ने पर हम उचित उपाय करते हैं।" GTB के दिवालिया होने तक, RBI ने क्या कदम उठाए? कोई प्रभावी कदम नहीं। इसी बीच, जीटीबी के चेयरमैन रमेश गेली ने एक टेलीविजन इंटरव्यू में दावा किया कि बैंक का स्टॉकब्रोकरों में निवेश विवेकपूर्ण मानदंडों के

दायरे में था और किसी भी ब्रोकर में निवेश 100 करोड़ रुपये से अधिक नहीं हो सकता था।
फिर भी, जीटीबी के शीर्ष 100 खातों की सूची गेली के दावे का खंडन करती है। विलय की घोषणा के समय, जीटीबी का केतन पारेख से संबंधित केवल दो फर्मों में निवेश 100 करोड़ रुपये से अधिक था और जीटीबी के कम से कम छह अन्य खाते पारेख के भाई या चचेरे भाई द्वारा पारेख के साथ मिलकर संचालित किए जा रहे थे। जीटीबी का कम से कम चार अन्य कंपनियों में भी निवेश था, जो पारेख के प्रभाव क्षेत्र का हिस्सा थीं। हैरानी की बात यह है कि आरबीआई के तिमाही ऑडिट में यह सारा निवेश उजागर नहीं हुआ, जो गेली के अपने बयान के अनुसार, विवेकपूर्ण सीमाओं से बाहर था।
इस दौरान आरबीआई ने तीन निजी बैंकों - आईसीआईसीआई बैंक, सेंटूरियन बैंक और जीटीबी - की ओर से समर्थन, अनुमोदन और आश्वासन पत्र जारी किए। सितंबर 2003 में, आरबीआई ने जीटीबी की बैलेंस शीट में सुधार का स्वागत करते हुए एक प्रेस विज्ञप्ति जारी की। इसमें बैंक द्वारा गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (एनपीए) की वसूली में आरबीआई के दिशानिर्देशों के अनुसार किए गए "विशेष प्रयासों" की सराहना की गई। आरबीआई ने अपने सामान्य संयम से हटकर इस बात पर जोर दिया कि वित्तीय विवरण में कुल घाटा दर्शाने के बावजूद, बैंक ने परिचालन लाभ अर्जित किया था। जीटीबी ने मार्च 2003 के अंत तक 272 करोड़ रुपये का शुद्ध घाटा और 309 करोड़ रुपये का प्रावधान दर्ज किया था।
गंभीर संकट में फंसी जीटीबी के प्रति केंद्रीय बैंक का यह उत्साहपूर्ण और व्यापक समर्थन चौंकाने वाला था। क्या यह प्रबंधन को किसी रणनीतिक निवेशक को लाकर बैंक को संकट से निकालने में सक्षम बनाने के लिए किया गया था? अगला बड़ा खतरा

2003 के अंत में तब सामने आया जब लेखापरीक्षा समिति के अध्यक्ष वेंकप्पा एम. अगाडी सहित बैंक के तीन निदेशकों ने इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा देने वाले अन्य दो निदेशक केनरा बैंक के पूर्व अध्यक्ष जे.वी. शेट्टी और प्राइस वाटरहाउस कूपर्स के पूर्व वरिष्ठ साझेदार एस.बी. घोष थे। इन निदेशकों का प्रबंधन और लेखा परीक्षकों के साथ ऋण हानि प्रावधानों को लेकर गंभीर मतभेद था। उस समय असंतुलित ऋण 350 करोड़ रुपये थे, जिसके लिए 250-300 करोड़ रुपये के नए पूंजी निवेश की आवश्यकता थी। बैंक ने उनके इस्तीफे स्वीकार कर लिए, लेकिन निवेशकों को कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया।
यदि जीटीबी ने अपनी बैलेंस शीट को साफ करने के लिए "विशेष प्रयास" किए थे, जैसा कि आरबीआई दुनिया को बताने के लिए उत्सुक था, तो परिणाम घोषित होने से ठीक पहले उसकी लेखापरीक्षा समिति के तीन निदेशकों ने इस्तीफा क्यों दिया? जीटीबी प्रबंधन ने अपनी लेखापरीक्षा समिति के प्रमुख अगादी के इस्तीफे के लिए उम्र का बहाना बनाया। लेकिन जेवी शेट्टी और एसबी घोष का क्या? क्या आरबीआई द्वारा 'स्वीकृत' प्रावधान विशेषज्ञों को संदिग्ध लगे? आरबीआई ने 'स्वतंत्र' निदेशकों से उनके इस्तीफे के बारे में पूछताछ नहीं की, शायद इसलिए कि यह बैंक के पक्ष में था। यह कॉर्पोरेट गवर्नेंस नियमों और निदेशकों की भूमिका का मजाक उड़ाता है। विडंबना यह है कि एसआर नारायण मूर्ति, जिन्होंने एसईबीआई की दूसरी कॉर्पोरेट गवर्नेंस समिति की अध्यक्षता की थी, आरबीआई के केंद्रीय बोर्ड के निदेशक भी थे। शायद SEBI को अपना कॉर्पोरेट गवर्नेंस कोड रद्द कर देना चाहिए, जो केवल बेहतर ढंग से संचालित कंपनियों को अंतहीन अनुपालन और प्रकटीकरण नियमों का पालन करने के लिए बाध्य करता है।

RBI द्वारा GTB को प्रमाणपत्र जारी करने में व्यस्त होने के बावजूद, संदिग्ध कंपनियों को नए ऋण देने के मामले सामने आए। क्या इस्तीफा देने वाले निदेशक इसी बात से नाराज थे? क्या उन्हें घोषित स्तरों से कहीं अधिक खराब ऋणों का पता चला? जाहिर तौर पर, टेलीविजन नेटवर्क कंपनी और दक्षिण अफ्रीका स्थित एक बड़े समूह को निरंतर समर्थन देने को लेकर GTB प्रबंधन के साथ उनके मतभेद थे, जिनके पास पहले से ही GTB के बही-खातों में बड़ी मात्रा में खराब ऋण थे।
RBI यह भी भूल गया कि वह बैंक का एकमात्र नियामक नहीं है और GTB के जमाकर्ता ही एकमात्र हितधारक नहीं हैं। बैंक स्टॉक एक्सचेंजों पर सूचीबद्ध है और SEBI के नियमों के अधीन है। इसके अलावा, SEBI ने हाल ही में अत्यधिक अस्थिरता को कम करने के लिए GTB को ट्रेड-टू-ट्रेड सेगमेंट में स्थानांतरित किया था। RBI की प्रेस विज्ञप्ति ने भारी नुकसान के बावजूद, GTB के शेयर को जारी होने के दिन 7.8% तक बढ़ा दिया। क्या आरबीआई ने झूठे आधारों पर शेयर की कीमत बढ़ाने में मदद नहीं की थी, जैसा कि बाद में साबित हुआ? और क्या केंद्रीय बैंक, जिसका एक उप-गवर्नर एसईबीआई के बोर्ड में है, ने शेयर जारी करने से पहले एसईबीआई के साथ इस पर चर्चा की थी?
नेदुंगड़ी बैंक मामले में आरबीआई की भूमिका भी उतनी ही चौंकाने वाली थी। यह सर्वविदित था कि दिवंगत हर्षद मेहता के करीबी राजेंद्र बंथिया को बैंक में पूरी छूट प्राप्त थी, लेकिन आरबीआई ने इस बात से अनजान होने का नाटक किया। बंथिया 1998 में बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज के उपाध्यक्ष थे, जब उसने कुख्यात रूप से आधी रात को ट्रेडिंग सिस्टम खोलकर फर्जी लेनदेन किए और बाजार में बड़े पैमाने पर चूक से बचा। वह नेदुंगड़ी बोर्ड में

बीएसई के पूर्व अध्यक्ष और जन प्रतिनिधि को शामिल करने के लिए भी जिम्मेदार थे।
दरअसल, 1992 के घोटाले के बाद से ही उनकी जांच चल रही है। दिसंबर 2000 में बंथिया को आधिकारिक तौर पर नेदुंगडी बोर्ड में शामिल किए जाने के बावजूद, नेदुंगडी बोर्ड में आरबीआई के प्रतिनिधि चैन से सो रहे थे। घोटाला सामने आने के बाद ही आरबीआई की जांच में बंथिया से जुड़ी तीन फर्मों के माध्यम से 1352 करोड़ रुपये के अवैध "आर्बिट्रेज" व्यापार का पता चला, जिससे नेदुंगडी बैंक को 95 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ था। 'आर्बिट्रेज' का मतलब शेयरों में अंधाधुंध हेराफेरी करने की छूट थी, जिसमें कोई भी ओपन पोजीशन नहीं छोड़ी जाती थी, और बैंक बोर्ड को पता था कि इस तरह के व्यापार करने की अनुमति प्राप्त तीनों फर्म बंथिया की थीं। अथक वसूली प्रयासों के बाद बंथिया ने कुछ नुकसान की भरपाई की, लेकिन फिर भी बैंक पर 34 करोड़ रुपये बकाया थे। जेपीसी को बताया गया कि बैंक की 45-50% से अधिक इक्विटी बंथिया के पास थी, जबकि आधिकारिक तौर पर केवल 20% ही उनके पास थी। एक दशक से अधिक समय से बंथिया की पृष्ठभूमि और कुकर्मों का विवरण देने वाली नियमित प्रेस रिपोर्टों के बावजूद आरबीआई ने कुछ नहीं किया। आरबीआई की ढिलाई लंबे समय से चली आ रही है और इसका मुख्य कारण निगरानी के प्रति उसका संकीर्ण दृष्टिकोण है। यह बाजार की जानकारी जुटाने का प्रयास नहीं करता और अक्सर बड़े घोटालों को तब तक नजरअंदाज कर देता है जब तक कि वे नियंत्रण से बाहर न हो जाएं। हालांकि, एसईबीआई के विपरीत, जिसकी अक्सर कड़ी आलोचना होती रही है, आरबीआई को उसकी चुप्पी और बैंकिंग गोपनीयता कानूनों का संरक्षण प्राप्त है। आरबीआई अधिकारी हमेशा जिम्मेदारी से बच निकलते हैं। 1992 में, प्रतिभूति उद्योग के

विभिन्न पहलुओं में कानूनहीनता का खुलासा करने वाले एक ईमानदार अधिकारी ऑगस्टीन कुरियास की मेहनती रिपोर्टों को नजरअंदाज करने के स्पष्ट सबूतों के बावजूद, किसी को भी जिम्मेदार नहीं ठहराया गया।
आरबीई वित्त कंपनियों और सहकारी बैंकिंग क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार की सीमा का आकलन करने में विफल रहा। टाटा और बिड़ला के आवेदनों को खारिज करने के बाद इसने सीआर भंसाली को अस्थायी बैंकिंग लाइसेंस दे दिया। नेदुंगड़ी बैंक मामले में यह पूरे एक दशक तक निर्णायक कार्रवाई करने में विफल रहा और विवाद से बचने के लिए जल्दी से पंजाब नेशनल बैंक के साथ विलय का आदेश दे दिया। यह उन विदेशी निगम निकायों (ओसीबी) को विनियमित करना भूल गया जिन्हें उसने पंजीकृत किया था, अक्सर 10 डॉलर की पूंजी के साथ। और उन्होंने खुशी-खुशी शेयर बाजार में हेरफेर किया, जिससे एक और घोटाला सामने आया। मद्रास उच्च न्यायालय ने (मर्केंटाइल क्रेडिट कॉर्पोरेशन से जुड़े मामले में) आरबीआई को "भोला" बताया और उस पर "जनहित की रक्षा के लिए कानून द्वारा अपेक्षित शक्ति, व्यापकता, गहराई और गति से कार्य करने में विफल रहने" का आरोप लगाया।
फिर भी, भारत के सबसे अपारदर्शी नियामक आरबीआई को कभी जवाबदेह नहीं ठहराया जाता। आरबीआई यह भी सुनिश्चित करता है कि उसकी नियामकीय कमियों की जांच न हो। उदाहरण के लिए, जीटीबी और ओबीसी के विलय योजना में एक प्रतिरक्षा खंड है जो सद्भावना से या योजना के अनुसरण में किए गए किसी भी कार्य के लिए केंद्र, आरबीआई, ओबीसी और जीटीबी के खिलाफ किसी भी मुकदमे या कानूनी कार्यवाही को रोकता है।

जीटीबी कांड ने एसईबीआई की छवि भी खराब कर दी। 2004 के मध्य से बड़े निवेशकों को शेयर बाजारों में ब्लॉक डील में जीटीबी के शेयर बेचते हुए पाया गया,
और यह सिलसिला 24 जुलाई को स्थगन की घोषणा तक जारी रहा। क्या उन्हें निजी इक्विटी निवेशकों को शामिल करके पुनर्गठन प्रयासों की विफलता के बारे में अंदरूनी जानकारी थी? पूंजी बाजार नियामक ने इन बिक्री की कभी जांच नहीं की और न ही कोई कार्रवाई शुरू की। इसके बजाय, जुलाई से, रमेश गेली और उनके समूह पर एसईबीआई द्वारा बाजार में भाग लेने पर लगाया गया प्रतिबंध समाप्त हो गया। तकनीकी रूप से, वे आगे बढ़कर उस टर्नअराउंड फंड की स्थापना करने के लिए स्वतंत्र थे जिसकी घोषणा वे पहले ही कर चुके थे।
कंपनी मामलों का विभाग (डीसीए) कॉरपोरेट गतिविधियों की निगरानी करने वाली एक प्रमुख नियामक एजेंसी मानी जाती है। जब संयुक्त संसदीय समिति (जेपीसी) ने कॉरपोरेट अनियमितताओं के बारे में सवाल उठाए, तो डीसीए ने घोर उदासीनता दिखाई। मौजूदा प्रक्रिया के अनुसार, स्टॉक एक्सचेंजों के गवर्निंग बोर्ड में क्षेत्रीय निदेशकों (आरडी) और कंपनी रजिस्ट्रारों (आरओसी) को एसईबीआई द्वारा मनोनीत किया जाता है। जेपीसी ने पूछा था कि क्या बाजार में अनुचित सट्टेबाजी होने पर आरडी और आरओसी कार्रवाई कर सकते हैं। डीसीए सचिव ने जवाब दिया कि, "शेयर बाजार में हर बार उतार-चढ़ाव होने पर किसी कंपनी में घुसकर उसमें हस्तक्षेप करना सही रवैया नहीं है। यह ठोस जानकारी पर आधारित होना चाहिए।" जेपीसी ने जोर दिया कि जब किसी कंपनी के शेयर की कीमत असामान्य रूप से बढ़ जाती है, तो यह खतरे की घंटी होनी चाहिए कि कुछ गड़बड़ हो रही है और डीसीए को जांच शुरू करनी चाहिए। डीसीए सचिव ने कहा:

“हम आपकी इस टिप्पणी पर विचार कर रहे हैं कि जब हम शेयर बाजार में मौजूद हैं, तो कार्रवाई क्यों नहीं करते। आपकी बात में काफी सच्चाई है। हम इसे ध्यान में रखेंगे।”
डीसीए के अधीन एक गंभीर धोखाधड़ी कार्यालय (एसएफओ) की स्थापना की गई और कुख्यात डीएसक्यू सॉफ्टवेयर मामले की जांच के लिए इसे सौंप दिया गया। लेकिन एसएफओ की स्थापना के बाद से इसका नामोनिशान नहीं है। डीसीए न केवल इरादे की कमी से जूझ रहा है, बल्कि इसमें कर्मचारियों और बुनियादी ढांचे की भी कमी है। खबरों के अनुसार, इसने चार्टर्ड अकाउंटेंटों द्वारा संदिग्ध कदाचार के आठ मामले भारतीय चार्टर्ड अकाउंटेंट्स संस्थान को भेजे हैं। लेकिन कुछ नहीं हुआ। डीसीए ने जेपीसी के समक्ष स्वीकार किया कि हालांकि उनके पास चार्टर्ड अकाउंटेंटों पर मुकदमा चलाने की शक्तियां हैं, लेकिन उन्होंने इनका शायद ही कभी इस्तेमाल किया है।

नया पुराना जेपीसी
यदि विशेषज्ञों और अधिकारियों का रवैया इतना लापरवाही भरा है, तो आप अज्ञानी राजनेताओं से बेहतर प्रदर्शन की उम्मीद नहीं कर सकते।
लेकिन इससे उन्हें गड़बड़ी करने से रोका नहीं जा सकता। 26 अप्रैल 2001 को भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार ने विपक्षी दलों के दबाव में आकर शेयर बाजार में आई गिरावट की जांच के लिए एक और जेपीसी (न्याय समिति) गठित करने पर सहमति जताई। दरअसल, वित्तीय घोटाले की जांच के लिए भारत की दूसरी जेपीसी का गठन राजनीतिक सौदेबाजी का नतीजा था। तेहलका घोटाले ने रक्षा सौदों में रिश्वतखोरी का पर्दाफाश किया था, जिससे सरकार के गिरने का खतरा

मंडरा रहा था और विपक्षी दल सरकार को हड़पने के लिए बेताब थे। एक समझौता करना जरूरी था। इसलिए, सरकार शेयर बाजार में आई गिरावट की जांच के लिए जेपीसी गठित करने पर सहमत हुई और तेहलका घोटाले की जांच के लिए केवल एक जांच आयोग का गठन किया। हालांकि, सरकार ने यह सुनिश्चित किया कि 30 सदस्यीय, बहुदलीय जेपीसी शुरू से ही कमजोर रहे। इसकी अध्यक्षता सेवानिवृत्त लेफ्टिनेंट जनरल प्रकाश मणि त्रिपाठी ने की, जिन्हें शेयर बाजार की पेचीदगियों की ज्यादा जानकारी नहीं थी। इस जेपीसी की एक अनोखी बात यह थी कि इसमें कई ऐसे राजनेता शामिल थे जो घोटाले में जांच के दायरे में आने वाले कई दलालों और कंपनियों के साथ खुलेआम मेलजोल रखते थे! जाहिर है, उन्होंने अपनी सहानुभूति जाहिर करने में जरा भी देर नहीं की। इसके अलावा, वे घोटाले के दो मुख्य स्रोतों - घोटालेबाजों के साथ मिलीभगत करने वाले व्यापारिक घरानों और यूटीआई - को शामिल करने के लिए जांच का दायरा बढ़ाने में अनिच्छुक थे। घोटाले की जांच बेतरतीब ढंग से आगे बढ़ती रही, क्योंकि कथित तौर पर पर्दे के पीछे सौदे और सौदेबाजी होती रही।
हमने सोचा था कि 1992 का घोटाला दुस्साहसी था। 2001 का घोटाला उससे भी कहीं अधिक दुस्साहसी था। हमने सोचा था कि 1992 की जेपीसी निष्क्रिय थी। 2001 की जेपीसी ने अपनी नीरस जांच और घोर निष्क्रियता से इसे पूरी तरह से ध्वस्त कर दिया। इसने तीन बार समय सीमा बढ़ाई और यह सुनिश्चित किया कि प्रमुख घोटालेबाजों को छोड़ दिया जाए। 19 दिसंबर 2002 को अपनी निरर्थक रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पहले, इसने आरबीआई सहित नियामक एजेंसियों से सहकारी बैंकों के संचालन में ढिलाई बरतने पर सवाल उठाए। मीडिया में लीक हुई एक मसौदा रिपोर्ट में ईमानदार यूटीआई बैंक प्रमुख

(पी.जे. नायक) पर जीटीबी के साथ प्रस्तावित विलय से व्यक्तिगत लाभ की योजना बनाने का आरोप लगाया गया था। जब उन्होंने तुरंत इस्तीफा देकर छुट्टी ले ली और उनका नाम अंतिम रिपोर्ट में शामिल नहीं किया गया, तो भारी शर्मिंदगी हुई। रिपोर्ट में SEBI पर सतर्कता की कमी का आरोप लगाया गया था, जिसके कारण रिलायंस समूह ने दो सप्ताह से भी कम समय में बाजार से 1900 करोड़ रुपये निकाल लिए, जिससे शेयर बाजार धराशायी हो गया। जेपीसी ने अनियमितताओं की जानकारी होने के बावजूद कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज (सीएसई) में भुगतान संकट को रोकने में विफल रहने के लिए भी SEBI की आलोचना की। अक्टूबर 2002 में, जेपीसी ने केतन पारेख को शेयर बाजार घोटाले, सीएसई भुगतान संकट और एमएमसीबी की समस्या के पीछे मुख्य दोषी माना। केतन से पूछताछ लगभग सौम्य तरीके से की गई, निस्संदेह जेपीसी के भीतर काम कर रहे विभिन्न हितों से प्रभावित होकर।
दिलचस्प बात यह है कि जेपीसी ने जीटीबी की भूमिका और आरबीआई की इसे पहचानने में विफलता की कभी जांच नहीं की। वास्तव में, जीटीबी के संबंध में पूछे गए कुछ प्रश्न तो सरासर हास्यास्पद थे। उदाहरण के लिए, यह पूछा गया कि क्या जीटीबी ने कोई धनराशि डायवर्ट की थी और यदि हां, तो किसे? चूंकि बैंक शायद ही कभी स्वयं धन का गबन करते हैं, इसलिए इसका सीधा जवाब एक नीरस 'ना' था। यह पूछना तर्कसंगत होता कि क्या आरबीआई के निरीक्षणों में केतन पारेख, फर्स्ट ग्लोबल फाइनेंस, ज़ी, एचएफसीएल और अन्य से जुड़ी अनियमितताएं सामने आईं।
जेपीसी के सदस्यों में से एक, सीपीएम के निलोत्पल बसु ने कम्युनिस्ट पार्टी के मुखपत्र पीपुल्स डेमोक्रेसी में लिखते हुए स्वीकार किया कि जेपीसी दलालों, बैंकरों और सबसे

महत्वपूर्ण रूप से कॉर्पोरेट संस्थाओं के बीच सांठगांठ स्थापित करने में विफल रही। बसु का आरोप है कि जेपीसी नियामक और अन्य निकायों से 'आवश्यक समर्थन' न मिलने के कारण 'बुरी तरह से लाचार' थी। यदि ऐसा था, तो जेपीसी, जिसका नेतृत्व एक ऐसे अध्यक्ष (जिनका जेपीसी से पहले या बाद में किसी भी संदर्भ में कभी जिक्र नहीं हुआ) और स्वार्थी राजनेताओं के एक समूह द्वारा किया जा रहा था, वास्तव में एक नगण्य संस्था थी।
गवाहों को बुलाने के व्यापक अधिकार होने के बावजूद, जेपीसी कोई महत्वपूर्ण बात उजागर करने या महत्वपूर्ण प्रणालीगत परिवर्तनों की सिफारिश करने में असमर्थ रही। यह समिति नियामक संस्थाओं – एसईबीआई, आरबीआई, डीसीए – को भी अधिक केंद्रित जांच करने के लिए बाध्य नहीं कर सकी।
इसका एक उदाहरण जेपीसी की ओसीबी और एफआईआई के उप-खातों की भूमिका पर की गई जांच है। इसमें निष्कर्ष निकाला गया कि ओसीबी पर नजर रखने के लिए कोई नियामक ढांचा मौजूद नहीं था। वे न तो एसईबीआई द्वारा पंजीकृत थे और न ही उसके द्वारा विनियमित। एसईबीआई के पूर्व अध्यक्ष ने स्पष्ट रूप से कहा था कि ओसीबी एसईबीआई की जिम्मेदारी नहीं हैं। आरबीआई ने भी कहा कि ओसीबी उसके विनियमन के अंतर्गत नहीं आते। ओसीबी के लिए कौन सा प्राधिकरण जिम्मेदार है, इस बारे में समिति के लगातार पूछे गए सवालों का कोई जवाब नहीं मिला!
अंत में, जेपीसी ने घोटाले के बारे में हमारी जानकारी में कुछ भी नया नहीं जोड़ा और चुनिंदा पहचान करके कई प्रमुख खिलाड़ियों को बरी कर दिया। इसने केतन पारेख को घोटाले का मुख्य खिलाड़ी बताया, तत्कालीन वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा को क्लीन चिट दे दी, यूटीआई पतन के लिए पूर्व वित्त सचिव अजीत कुमार को झूठा दोषी

ठहराया और एसईबीआई और वित्त मंत्रालय पर सतर्कता न बरतने का आरोप लगाया। इसमें डीएसक्यू सॉफ्टवेयर के दिनेश डालमिया, सीएसई के ब्रोकर-निदेशकों, स्टॉक होल्डिंग कॉर्पोरेशन और यूटीआई के अधिकारियों के बीच सांठगांठ की ओर भी इशारा किया गया। इसने यह सुझाव देकर घोटाले से पल्ला झाड़ लिया कि एसईबीआई या डीसीए को कॉरपोरेट निकायों और ब्रोकरों के बीच सांठगांठ की आगे जांच करनी चाहिए।

डीएसक्यू गाथा
हर शेयर बाजार घोटाले में कुछ शीर्ष बाजार संचालक या ब्रोकर (जैसे केतन पारेख), इसे वित्तपोषित करने के इच्छुक बैंक (जीटीबी, एमएमसीबी) और इन दोनों से घनिष्ठ रूप से जुड़े उद्योगपति शामिल होते हैं। इस अंतिम श्रेणी में कई उद्योगपति रहे हैं, लेकिन डीएसक्यू के दिनेश डालमिया जैसा बेशर्म कोई नहीं।
उसके कारनामे वाकई चौंकाने वाले हैं। उसने मॉरीशस स्थित तीन कंपनियों को 14 मिलियन नए शेयर जारी किए, बिना स्टॉक एक्सचेंजों या शेयरधारकों को पूंजी में 50% की वृद्धि के बारे में सूचित किए। सीएसई संकट के दौरान उसके ब्रोकरों ने इन शेयरों को भुगतान के रूप में वितरित किया। डालमिया के लिए सौभाग्य की बात यह थी कि धोखाधड़ी के इस स्पष्ट मामले को नियामक गंभीरता से नहीं ले रहे थे।
उन्हें लगभग सभी प्रमुख जांच एजेंसियों - प्रवर्तन निदेशालय (ईडी), गंभीर धोखाधड़ी कार्यालय (एसएफओ), सेबी और पुलिस - की जांच का सामना करना पड़ा था। नियामकों और अदालतों को अपनी चालाकी से इस्तेमाल करते हुए वे कानून की पकड़ से बचते रहे। डीसीए ने

उन्हें कई अपराधों में समझौता करने की अनुमति दी, उनके लेखापरीक्षित खातों की गुणवत्ता की जांच करने से इनकार कर दिया और उन्हें प्रबंधन से हटाने का कोई प्रयास नहीं किया, जबकि उनके पास ऐसा करने की शक्तियां थीं।
उन्होंने इससे भी बड़ा घोटाला किया। जब सुचेता लेखों की एक श्रृंखला के माध्यम से उनके कई घोटालों का खुलासा कर रही थीं, उसी समय डालमिया ने डीएसक्यू सॉफ्टवेयर की अमेरिकी और यूरोपीय सहायक कंपनियों को अलग कर दिया, उनका नाम बदलकर टोटल इंफोसिस्टम्स कर दिया और उनके मुख्य व्यावसायिक अनुबंधों को रमेश वंगल द्वारा नियंत्रित स्कैंडेंट नेटवर्क प्राइवेट लिमिटेड को 2002 के मध्य में बेच दिया। डालमिया ने 145 करोड़ रुपये कमा लिए, और एक फर्जी कंपनी को बाजार में सूचीबद्ध और कारोबार करने के लिए छोड़ दिया!
किसी भी नियामक एजेंसी, डीएसक्यू के शेयर रखने वाले म्यूचुअल फंड या कॉर्पोरेट गवर्नेंस के पैरोकारों ने इन संपत्तियों की बिक्री पर सवाल उठाने की जहमत नहीं उठाई। इसके तुरंत बाद, डालमिया ने ऑलसर्व सिस्टम्स नामक एक ऑफशोर कंपनी के माध्यम से टेक्सास स्थित टेली-मार्केटिंग कंपनी एजिस कम्युनिकेशंस इंक पर कब्जा करने का प्रयास किया। यह सब तब हो रहा था जब नियामक सीएसई में शेयर की कीमतों में हेरफेर और तीन विदेशी कॉर्पोरेट निकायों को संदिग्ध तरजीही आवंटन में उनकी संलिप्तता की जांच कर रहे थे।
डालमिया ने डीएसक्यू बायोटेक के मामले में भी डीएसक्यू सॉफ्टवेयर के समान ही घोटाला किया। डीएसक्यू सॉफ्टवेयर में उनके विदेशी मुद्रा उल्लंघनों की जांच के दौरान, ईडी को डीएसक्यू बायोटेक लिमिटेड में भी इसी तरह के और इससे भी बदतर

लेन-देन का पता चला, जिसे पहले स्क्वायर डी बायोटेक के नाम से जाना जाता था और अक्टूबर 2001 में इसका नाम बदलकर ओरिजिन एग्रोस्टार लिमिटेड कर दिया गया था। घाटे में चल रही डीएसक्यू बायोटेक के शेयरों की कीमत जनवरी 2000 में लगभग 50 रुपये से बढ़कर फरवरी 2000 तक 907 रुपये तक पहुंच गई। मार्च 2000 के पहले सप्ताह में, डालमिया ने 220 करोड़ रुपये मूल्य के 80,30,000 शेयरों का तरजीही निर्गम चार ओसीबी (ऑक्यूपेशनल कंट्रोल्ड बैंक) को जारी किया, जिनमें ड्यूश बैंक इंटरनेशनल (22 लाख शेयर), सोसिएटे जेनरल (11 लाख शेयर), एजे फाइनेंस लिमिटेड (30 लाख) और ग्रीनफील्ड इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड (17.3 लाख) शामिल थे। ईडी को तब संदेह हुआ जब उसे पता चला कि शेयर 275 रुपये प्रति शेयर के भाव पर आवंटित किए गए थे, जबकि उस समय शेयर का प्रचलित भाव 800 रुपये से अधिक था।
दिलचस्प बात यह है कि कंपनी को तरजीही आवंटन के बदले में केवल 30% राशि ही "प्राप्त" हुई और उसने इसे वसूलने का कोई प्रयास भी नहीं किया। ईडी ने यह भी पाया कि दो ओसीबी, एजे फाइनेंस और ग्रीनफील्ड इन्वेस्टमेंट्स, स्वयं डालमिया के स्वामित्व में थीं (एजे का नाम उनके रिश्तेदार अजय झुनझुनवाला के नाम पर रखा गया है)। सितंबर 2000 तक, डीएसक्यू बायोटेक के शेयर की कीमत तेजी से गिर रही थी और डालमिया को विभिन्न स्टॉकब्रोकरों को शेयर देने की आवश्यकता थी। उन्होंने नेशनल शेयर डिपॉजिटरी से ग्रीनफील्ड और एजे को आवंटित शेयरों को डिजिटल रूप में पंजीकृत करने का अनुरोध किया। डिजिटल रूप में पंजीकृत होने के सात दिनों के भीतर, शेयर डालमिया की पारिवारिक होल्डिंग कंपनी डीएसक्यू होल्डिंग्स को हस्तांतरित कर दिए गए। लेकिन पांच प्रतिष्ठित ब्रोकरेज फर्मों को भौतिक शेयर प्रमाणपत्र दिए गए,

जिससे डीएसक्यू होल्डिंग्स तक सीधा संबंध स्थापित हुआ और यह पुष्टि हुई कि डालमिया दो ओसीबी को तरजीही आधार पर आवंटित शेयरों का वितरण कर रहे थे।
डीएसक्यू बायोटेक के बहीखातों में तरजीही रूप से आवंटित शेयरों के लिए प्राप्त राशि को दर्शाना आवश्यक था। इसलिए डालमिया ने अपने धन को आसानी से प्रसारित करने के लिए एक बेहद सरल चाल का सहारा लिया। वह कोलकाता गए और 13 नए बैंक खाते खोले। फिर उन्होंने डीएसक्यू बायोटेक के एक ही शाखा में स्थित प्रत्येक खाते से इन कंपनियों में धन स्थानांतरित किया। इसके बाद इन कंपनियों ने अपने लेन-देन को छिपाने के लिए आपस में कई लेन-देन किए और अंत में धन को वापस डीएसक्यू बायोटेक में भेज दिया। सवाल यह उठता है कि अन्य दो ओसीबी, ड्यूश बैंक इंटरनेशनल और सोसिएटे जेनरल के साथ क्या समझौता हुआ था? उनके संरक्षक एजेंट, स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक ने इस समझौते को आगे बढ़ाने का कोई प्रयास नहीं किया है, हालांकि उन्हें न तो उनके शेयर मिले हैं और न ही उनका पूरा भुगतान किया गया है। जिन स्टॉक एक्सचेंजों में डीएसक्यू बायोटेक का शेयर सूचीबद्ध था, उन्हें इस सब की कोई जानकारी नहीं थी। लिस्टिंग नियमों का पालन न करने के कारण एक्सचेंजों ने शेयर के कारोबार को निलंबित कर दिया है। डालमिया को स्पष्ट रूप से लगा कि वह नियमों से परे हैं। अपनी कंपनियों की इक्विटी पूंजी में उनकी आसानी से की गई हेराफेरी नियामकों को मात देने की उनकी अपार आत्मविश्वास को दर्शाती है। दरअसल, डीएसक्यू सॉफ्टवेयर और डीएसक्यू बायोटेक में डालमिया की चालबाज़ियाँ ज़्यादातर संयोग से ही सामने आईं। डीएसक्यू सॉफ्टवेयर में, डालमिया ने सुचेता से झूठ बोलकर यह दावा किया कि उन्होंने सैन जोस स्थित फोर्टुना टेक्नोलॉजीज को खरीदने के

लिए अपनी पूंजी बढ़ाई है, जिससे उनकी फर्जी पूंजी वृद्धि का पर्दाफाश हुआ और यह साबित हुआ कि इसका किसी विदेशी सौदे से कोई संबंध नहीं था। डीएसक्यू बायोटेक में, ईडी को डीएसक्यू सॉफ्टवेयर की जांच के दौरान उनकी करतूतों का पता चला। अंततः, सितंबर 2004 में, सेबी ने डालमिया पर अब तक का सबसे कड़ा प्रहार किया। नियामक ने दिनेश डालमिया और डीएसक्यू सॉफ्टवेयर को 10 वर्षों के लिए 'किसी भी तरह से' पूंजी बाजार में प्रवेश करने से प्रतिबंधित कर दिया और उन्हें द्वितीयक बाजार में बिना सूचीबद्ध हुए 1.3 करोड़ शेयर खरीदने और कंपनी की पूंजी कम करने की अनुमति मिलने तक उन्हें एक अलग डीमैट खाते में रखने को कहा। उन्हें 1.30 करोड़ रुपये के शेयरों का मूल्य, जिसकी गणना 630 करोड़ रुपये (धोखाधड़ी से जारी किए गए शेयरों के निपटान के समय औसत मूल्य पर) की गई है, एक अलग एस्क्रो खाते में जमा करने के लिए कहा गया है, जब तक कि सीबीआई सहित विभिन्न पुलिस और जांच एजेंसियां अपनी जांच पूरी नहीं कर लेतीं।
एसईबीआई ने एक बार फिर पहली बार डीएसक्यू के बोर्ड में शामिल चार प्रतिष्ठित 'स्वतंत्र' निदेशकों को भी दंडित किया है। मोहम्मद गुलाम गौस, बी.के. पाल, के.एम. वेंकटेश्वरन और ब्रिगेडियर (सेवानिवृत्त) वी.एम. सुंदरम को उचित सावधानी बरतने में विफल रहने और इस प्रक्रिया में डालमिया की ‘‘बड़े पैमाने पर धोखाधड़ी वाली गतिविधियों’’ में सहायता करने के लिए पांच साल के लिए पूंजी बाजार से प्रतिबंधित कर दिया गया है। एसईबीआई की कार्रवाई शेयरों के धोखाधड़ीपूर्ण तरजीही आवंटन तक ही सीमित है, जबकि डालमिया द्वारा डीएसक्यू की संपत्तियों की धोखाधड़ीपूर्ण बिक्री, बाजार में हेरफेर, कंपनी कानून का उल्लंघन और विदेशी मुद्रा उल्लंघन के मामलों में कोई कार्रवाई

नहीं की गई है। आज, डालमिया कोलकाता पुलिस द्वारा वांछित है, उसके खिलाफ इंटरपोल ने रेड-कॉर्नर अलर्ट जारी किया है और वह देश से फरार है। यह स्पष्ट नहीं है कि उसे कभी वास्तविक सजा मिलेगी या नहीं।

पैसा कहाँ है?
चार साल बाद, 2001 के घोटाले के बारे में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पैसे की वसूली का कोई दिखावा तक नहीं है। 1992 के घोटाले में, दलालों के बैंक खाते फ्रीज कर दिए गए थे, उनके शेयर और संपत्तियां जब्त कर ली गईं और एक विशेष न्यायालय के माध्यम से नीलाम कर दी गईं। फिर भी, भारत की कानूनी प्रवर्तन और जवाबदेही इतनी दयनीय है कि लगभग किसी को भी सजा नहीं मिली है। यह एक शर्मनाक कहानी है। 1992 के विशेष न्यायालय (प्रतिभूतियों में लेनदेन से संबंधित अपराधों का परीक्षण) अधिनियम के तहत स्थापित संरक्षक को अधिनियम के तहत अधिसूचित सभी व्यक्तियों की संपत्तियों पर पहला अधिकार है। घोटाले के कुछ आरोपियों में से एक, जिनकी देनदारियों पर कोई विवाद नहीं था, टी बी रुइया समूह था। 1995 में दायर एक सहमति डिक्री में, समूह ने भूपेन दलाल समूह से 18 करोड़ रुपये से अधिक प्राप्त करने की बात स्वीकार की और इसे कस्टोडियन को भुगतान करने पर सहमति जताई, लेकिन भुगतान में चूक की। मुंबई स्थित कस्टोडियन कार्यालय ने कहा कि टी.बी. रुइया की स्वीकृत देनदारियां 64 करोड़ रुपये से अधिक थीं, जो ब्याज की गणना के बाद बढ़कर 100 करोड़ रुपये हो गईं। लेकिन इस पर कोई कार्रवाई नहीं हुई।
फिर 2001 में जीटीबी ने मुंबई में किलिक फाइनेंशियल सर्विसेज की 74 करोड़ रुपये की संपत्ति (लगभग 23,000 वर्ग मीटर भूमि) का

अधिग्रहण किया, जो किलिक फाइनेंशियल सर्विसेज द्वारा तीन कंपनियों - फिल्ट्रोना इंडिया, मिलेनियम कैरिबनम और लोडस्टार स्लॉटेड एंगल्स को दी गई गारंटी को लागू करने के लिए किया गया था। इसके अलावा, मूल कंपनी किलिक निक्सन के आईएनजी वैश्य बैंक के साथ इसी तरह के ऋण-संपत्ति अदला-बदली सौदे थे, जिनमें से एक 1999 में हस्ताक्षरित 105 करोड़ रुपये का था। किलिक फाइनेंशियल सर्विसेज और किलिक निक्सन, दोनों टी बी रुइया के स्वामित्व में हैं। ये संपत्तियां कस्टोडियन की पहुंच से बाहर कैसे थीं? क्या यह अजीब नहीं था कि एक अधिसूचित पक्ष, जिस पर कस्टोडियन का बकाया था, उसके पास अभी भी बड़ी मात्रा में असंलग्न संपत्तियां थीं, जिनका उपयोग वह जीटीबी और आईएनजी वैश्य बैंक को अन्य शेयर बाजार लेनदेन के लिए गारंटी देने के लिए करता था? क्या सभी अधिकारी कस्टोडियन और 1992 के अधिनियम के अस्तित्व को भूल गए थे?
लेकिन 1992 में आखिरकार एक आधिकारिक कस्टोडियन नियुक्त किया गया था। 2001 के घोटाले में वसूली के लिए कोई संगठित प्रयास भी नहीं किया गया। इस बार कोई भी खाता फ्रीज नहीं किया गया। इससे भी बुरा यह कि मुख्य आरोपी केतन पारेख ने बैंकों को भुगतान करने की पेशकश करके समय खरीद लिया, जबकि वास्तव में उसने ऐसा करने की जहमत ही नहीं उठाई। उसे एमएमसीबी मामले में सशर्त जमानत इस शर्त पर दी गई थी कि वह बैंक से निकाले गए 882 करोड़ रुपये की किस्तों में वापसी करेगा। उसने वादा की गई एक भी किस्त का भुगतान नहीं किया। बीओआई मामले में उन्होंने शुरुआती तौर पर 9 करोड़ रुपये का भुगतान किया। बाद में बैंक ने किस्तों में भुगतान का समझौता किया, जिसके तहत उन्हें भुगतान शुरू होने से पहले चार साल की मोहलत दी गई। इस बीच, बैंक ने उनके द्वारा बैंक

को देय 130 करोड़ रुपये की पूरी राशि अपने खातों में जमा कर दी है और इस समझौते को कराने वाले चेयरमैन सेवानिवृत्त हो चुके हैं।
इससे भी अधिक पेचीदा मामला मुकेश बाबू का था, जो केतन के लिए एक गुमनाम ब्रोकर थे और उन्हें एमएमसीबी से 225.63 करोड़ रुपये मिले थे। न तो सेबी और न ही आरबीआई ने उनके खिलाफ कोई कार्रवाई शुरू की, हालांकि जेपीसी का कहना है कि उन्होंने सेबी के समक्ष 225.63 करोड़ रुपये की देनदारी स्वीकार की थी। एनएसई ने प्रमाणित किया कि एक्सचेंज के प्रति उनकी कोई देनदारी नहीं है (क्योंकि सेबी ने उन्हें जांच के दायरे में नहीं रखा था!)। यूटीआई और अन्य प्रमुख संस्थानों के साथ सूचीबद्ध मुकेश बाबू ने घोटाले के बाद तीन साल तक बिना किसी दबाव के एमएमसीबी को भुगतान करते हुए निर्बाध रूप से कारोबार जारी रखा।
सुचेता ने यूटीआई के चेयरमैन एम दामोदरन से पूछा कि मुकेश बाबू को यूटीआई से कारोबार कैसे मिलता रहा? उन्होंने कहा कि उनके सतर्कता विभाग को उनके खिलाफ कोई लंबित जांच नहीं मिली है। उन्हें यह भी लगता था कि जेपीसी रिपोर्ट में मुकेश बाबू का नाम नहीं है। इसके अलावा, जेपीसी रिपोर्ट में उनकी भूमिका और उनके संदर्भों को जानबूझकर कमज़ोर करने का प्रयास किया गया प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए, जेपीसी रिपोर्ट के पृष्ठ 27, पैराग्राफ 4.35 में एक तारांकन चिह्न के तहत यह उल्लेख किया गया है कि केतन पारेख पर मुकेश बाबू का 100 करोड़ रुपये बकाया है, लेकिन यह उल्लेख नहीं किया गया है कि मुकेश बाबू पर एमएमसीबी का इतना ही बकाया है। आश्चर्य की बात यह है कि जेपीसी को आरबीआई की रिपोर्ट में मुकेश बाबू के बकाया का अनुमान कम लगाया गया है। जेपीसी और आरबीआई द्वारा मुकेश बाबू के ऋण का अनुमान सेबी के प्रति उनकी

स्वयं स्वीकार की गई देनदारी से इतना कम क्यों है? और घोटाले के काफी समय बाद भी मुकेश बाबू को संस्थागत कारोबार का भरपूर लाभ मिल रहा था, फिर भी इस राशि की वसूली के लिए कोई प्रयास क्यों नहीं किया गया?
दिलचस्प बात यह है कि जब 2003 में कार्रवाई रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत की गई, तब तक मुकेश बाबू के संदर्भ पूरी तरह से हटा दिए गए थे! क्या मुकेश बाबू की 225.63 करोड़ रुपये की भारी देनदारी लापरवाही के कारण गायब हो सकती है? घोटाले के तीन साल बाद भी, उनका कारोबार पहले की तरह चलता रहा और किसी ने भी उन्हें भुगतान के बारे में चिंता नहीं जताई। एक बार फिर, इंडियन एक्सप्रेस में सुचेता के एक लेख के बाद कार्रवाई हुई। आज भी उन्होंने पैसा नहीं चुकाया है, लेकिन कम से कम जांच पूरी होने तक उनके ब्रोकरेज और डिपॉजिटरी कारोबार को निलंबित कर दिया गया है। जबकि कई अन्य लोग अब भी नियामक कार्रवाई से बच निकले हैं, घोटाले के कुछ प्रमुख खिलाड़ियों को तो बरी भी कर दिया गया है। हालांकि, जुलाई-अक्टूबर 2004 के बीच, SEBI ने घोटाले से पहले के दिनों में शेयरों की कीमतों में हेरफेर करने में शामिल कई ब्रोकरों और बड़े खिलाड़ियों को दोषी ठहराते हुए या निलंबित करते हुए कई आदेश जारी किए। ये आदेश सिक्योरिटीज अपीलेट ट्रिब्यूनल (SAT) की जांच में खरे उतरेंगे या नहीं, यह देखना बाकी है।

मीडिया हेरफेर
2001 के घोटाले का एक दिलचस्प पहलू यह था कि घोटालेबाजों का न केवल पत्रकारों बल्कि प्रकाशकों और मीडिया कंपनियों के वरिष्ठ अधिकारियों के साथ भी घनिष्ठ संबंध था। इसका कुछ कारण केतन

पारेख का मीडिया और मनोरंजन क्षेत्र के शेयरों पर ध्यान केंद्रित करना था। मीडिया के कुछ वर्ग पारेख को लुभाने में लगे थे। कई मीडिया चैनलों ने उनके समर्थन में सार्वजनिक मुद्दे उठाए और जब उनकी पोल खुली तो स्वाभाविक रूप से उनके प्रति सकारात्मक रुख अपनाया। इन स्थितियों में, संबंध शीर्ष स्तर तक पहुंच गए। जैसा कि हमने पहले लिखा था, एक संपादक अचानक तेजी और मंदी के विशेषज्ञ बन गए और एक प्रमुख दैनिक अखबार में संपादकीय पृष्ठ प्राप्त कर लिया। उनका मत था: मंदी अर्थव्यवस्था को बर्बाद करती है और तेजी अच्छी होती है। वही संपादक अपनी छोटी सी प्रकाशन कंपनी के लिए निजी निवेश जुटाने की कोशिश कर रहे थे। उनके निवेश सूचना ज्ञापन के कवर पेज पर केतन पारेख समूह की इक्विटी भागीदारी को मुख्य आकर्षण बताया गया था।

एक मीडिया कंपनी, जो एक पॉपुलर टैब्लॉइड पब्लिश करती है, उसका इश्यू पारेख की इन्वेस्टमेंट बैंकिंग कंपनी ने लीड-मैनेज किया था, जब वह इतने पॉपुलर थे। ज़ाहिर है, उसके शेयर बहुत ज़्यादा प्रीमियम पर बिके। बहुत सारे बिज़नेस जर्नलिस्ट बड़े बिज़नेस डेलीज़ में स्कैमस्टर्स की तरफ से रिपोर्ट प्लांट कर रहे थे। उनके एडिटर्स ने अपने स्टाफ़ के खिलाफ़ खास जानकारी को भी नज़रअंदाज़ कर दिया। कई जाने-माने अखबार और तथाकथित फायरब्रांड एडिटर्स स्कैमस्टर-लॉबी की तरफ से किराए के बंदूकधारियों की तरह काम करते थे और जो लोग ऑपरेटर्स को एक्सपोज़ करने की कोशिश करते थे, उनके खिलाफ़ बदनामी के कैंपेन छापने को तैयार रहते थे। सुचेता को ईमेल मिले जिनमें चेतावनी दी गई थी कि अगर उन्होंने लिखना बंद नहीं किया तो उन्हें बदनाम करने के लिए ऐसा ही कैंपेन चलाया जाएगा। धमकियां सच निकलीं।

1992 के स्कैम के बाद, हमें लगा कि हमने कॉर्पोरेट सेक्टर की सबसे बुरी तरह की धमकियां और डर देखा है। लेकिन केतन पारेख, उनके इंडस्ट्रियलिस्ट साथियों और फर्स्ट ग्लोबल के शंकर शर्मा ने हमें दिखाया कि यह और कितना बुरा हो सकता है। अप्रैल 2001 में हमने प्रेस काउंसिल ऑफ़ इंडिया में द एशियन एज के खिलाफ़ हमारे खिलाफ़ एक बदनाम करने वाली रिपोर्ट के लिए शिकायत की। नवंबर 2003 में, प्रेस काउंसिल ने हमारे पक्ष में फैसला सुनाया। अखबार ने प्रेस काउंसिल को लिखा कि उसकी घटिया, जानबूझकर बनाई गई रिपोर्ट का "मकसद हमें बदनाम करना नहीं था", लेकिन उसने ऑर्डर के तहत ज़रूरी प्रेस काउंसिल के फैसले को छापने की ज़हमत नहीं उठाई। बदकिस्मती से, प्रेस काउंसिल खुद बेबस है और इस बारे में कुछ नहीं कर सकती। इस बीच, फर्स्ट ग्लोबल के शंकर शर्मा ने सुचेता और इंडियन एक्सप्रेस के खिलाफ़ सिविल और क्रिमिनल मानहानि का केस किया।
फर्स्ट ग्लोबल के खिलाफ़ SEBI की कार्रवाई और शंकर शर्मा की गिरफ्तारी ने भारत के जाने-माने एडिटर और कॉलमिस्ट समेत कई हमदर्दों को अपनी ओर खींचा, जिन्होंने आँख बंद करके मान लिया कि फर्स्ट ग्लोबल को तहलका को फंड करने के लिए सताया जा रहा है। उनमें से ज़्यादातर बिज़नेस राइटर नहीं थे। इससे भी बुरी बात यह है कि उन्हें न तो फैक्ट्स के बारे में पता था और न ही उनमें कोई दिलचस्पी थी – तहलका होने से पहले फर्स्ट ग्लोबल से जुड़े फैक्ट्स। यह SAT ऑर्डर में दर्ज है। GTB की 1999-00 की RBI की सालाना इंस्पेक्शन रिपोर्ट जैसे फैक्ट्स में फर्स्ट ग्लोबल को बहुत ज़्यादा अनियमित लोन देने का डॉक्यूमेंट था। RBI रिपोर्ट में 46 ऐसे मामले लिस्ट किए गए थे जिनमें बताया गया था कि कैसे कई इन्वेस्टमेंट कंपनियों को मौखिक मंजूरी के आधार पर 354

करोड़ रुपये जारी किए गए, जिनमें पंचाल कंपोनेंट्स एंड अप्लायंसेज, विट्रा ट्रेड एंड एजेंसीज, टॉप गियर लीजिंग एंड फाइनेंस, वृद्धि कॉन्फिनवेस्ट इंडिया, UD&MD एजेंसीज, नौलखा फाइनेंशियल सर्विसेज और मोहन फिस्कल सर्विसेज जैसे नाम शामिल थे। इस पैसे का इस्तेमाल HFCL के शेयर खरीदने के लिए किया गया, जिसके प्रमोटर केतन पारेख के करीबी थे और जिसके स्टॉक पारेख बढ़ा रहे थे।
फर्स्ट ग्लोबल को HFCL इक्विटी खरीदने के लिए GTB से 44.5 करोड़ रुपये का भारी ओवरड्राफ्ट भी मिला। शेयर सीधे विदेशी कंपनियों को देने के बजाय, फर्स्ट ग्लोबल की इन्वेस्टमेंट कंपनियों ने पहले स्टॉक को 1050 रुपये प्रति शेयर पर खरीदा और फिर विदेशी कंपनियों को 10 से 25 रुपये के प्रीमियम पर बेच दिया। तहलका के खुलासे से एक हफ़्ते पहले ED ने फर्स्ट ग्लोबल को इस बारे में एक नोटिस भेजा था, यह एक ऐसी बात है जिसे दिल्ली हाई कोर्ट ने एडिटर्स पर लगे हैरेसमेंट के आरोपों को खारिज करते हुए रेखांकित किया है।
असल में, जब दयालु कॉलमिस्ट इस बात पर दुख जता रहे थे कि फर्स्ट ग्लोबल को सरकारी बदले की कार्रवाई के कारण बंद करना पड़ा, तब यह US और UK में बिज़नेस कर रही थी। 8 सितंबर 2003 को, इसने उसी घोटाले में फंसे HFCL पर एक रिसर्च रिपोर्ट जारी की, जो तब तक 2500 रुपये से गिरकर 8 रुपये पर आ गई थी। इसने स्टॉक को एक मज़बूत खरीद के तौर पर रिकमेंड किया, इसे भारत में सबसे बड़ी टर्नअराउंड स्टोरी कहा और इसकी तुलना डेल कंप्यूटर खरीदने के ऐसे ही मौके से की!
जैसा कि ये सभी उदाहरण दिखाते हैं, इन दोनों घोटालों की कहानी हमेशा याद रहेगी। इसमें हिस्सा लेने वाले मर जाएंगे, पकड़े

जाने तक अपना बिज़नेस चलाते रहेंगे, फिर लाइमलाइट से गायब हो जाएंगे, कुछ हिम्मत करके वापसी करने की कोशिश करेंगे, लेकिन ज़्यादातर चुपके से काम करते रहेंगे, रेगुलेटर्स की नज़र से बचकर। कुछ भी हल नहीं होगा। शायद ही किसी को सज़ा होगी। कोई पैसा नहीं मिलेगा।

मनीलाइफ, सीखने-कमाने-खर्च करने-इन्वेस्टिंग साइकिल के लिए एक ज़रूरी टूल

मनीलाइफ एक दो हफ़्ते में छपने वाली मैगज़ीन है जिसमें खास फ़ीचर और एक मज़बूत पहचान है। यह लोगों को पैसे की दुनिया से पक्के फैक्ट्स, अच्छी राय, बिना किसी भेदभाव के ऑप्शन और काम की टिप्स देकर समझदारी से इन्वेस्ट और खर्च करने में मदद करती है। मनीलाइफ न सिर्फ़ उन लोगों के लिए ज़रूरी है जो कमाई-खर्च-इन्वेस्टिंग साइकिल की शुरुआत में हैं, बल्कि उन लोगों के लिए भी जो अपने इन्वेस्टमेंट की वैल्यू को ऑप्टिमाइज़ करना चाहते हैं और बिना किसी परेशानी के पढ़ाई, शादी और रिटायरमेंट के लिए प्लान बनाना चाहते हैं।

टीम: मनीलाइफ को भारत के कुछ सबसे अच्छे फ़ाइनेंशियल पत्रकारों ने लॉन्च किया है। देबाशीष बसु, जो क्वालिफ़िकेशन से चार्टर्ड अकाउंटेंट हैं और जिन्हें पत्रकार के तौर पर 25 साल का अनुभव है और वे कई बिज़नेस किताबों के लेखक हैं। उन्होंने द टाइम्स ऑफ़

इंडिया, बिज़नेस वर्ल्ड, बिज़नेस इंडिया, बिज़नेस टुडे, फ़ाइनेंशियल एक्सप्रेस के साथ काम किया है और बिज़नेस स्टैंडर्ड और द इकोनॉमिक टाइम्स के लिए कॉलम लिखे हैं। सुचेता दलाल भारत की सबसे जानी-मानी फाइनेंशियल जर्नलिस्ट में से एक हैं
(2006 में पद्म श्री से सम्मानित), कंसल्टिंग एडिटर हैं। मनीलाइफ
में टॉप-नॉच एक्सपर्ट्स को कॉलमिस्ट के तौर पर भी दिखाया गया है।
कंटेंट: मनीलाइफ का फोकस स्टॉक्स, म्यूचुअल फंड्स,

करियर, कंज्यूमर राइट्स प्लस एजुकेशन, स्मार्ट बॉरोइंग और स्पेंडिंग पर है। कंटेंट बिना किसी भेदभाव के और काम का है। ट्रीटमेंट
दिलचस्प और लीन है।

डिफरेंस: मनीलाइफ भरोसेमंद और
यूनिक कंटेंट, शार्प एनालिसिस और एक क्लासी
डिज़ाइन और लेआउट में एक आसान राइटिंग स्टाइल का शानदार मिक्स देता है जो अपने कॉम्पिटिटर्स से कहीं बेहतर है।

कई पहली बार: मनीलाइफ भारत में पहला पब्लिकेशन है जिसने फंड स्क्रीन और स्टॉक स्क्रीन शुरू किए हैं। यह स्टॉक की पहचान एक अच्छी तरह से परखे हुए और ट्रांसपेरेंट तरीके से करता है, न कि अंदाज़े, इंप्रेशन और गट फीलिंग से। मनीलाइफ ने फंड परफॉर्मेंस पर चर्चा करने में एनालिसिस के सबसे ऊंचे स्टैंडर्ड तय किए हैं, जो फंड के हाइप और गिमिक से अलग है। हमारे तीखे एनालिसिस को फंड इंडस्ट्री और रेगुलेटर बहुत गंभीरता से लेते हैं।

नतीजे: हमारे स्टॉक रिकमेंडेशन लगातार फायदेमंद रहे हैं, और सबसे अच्छे म्यूचुअल फंड से कहीं ज़्यादा रिटर्न मिला है। हम अपनी रिकमेंडेशन में खास जवाबदेही लाते हैं, हर साल एक बार पूरी रिव्यू करते हैं। यह भारत में पहली बार है।

पाथब्रेकर्स: आखिर में, हमारे अनोखे लंबे करियर इंटरव्यू ने सबसे बड़े और सबसे अच्छे अचीवर्स की दिलचस्प कहानियों को उनके अपने शब्दों में सामने लाया है। मनीलाइफ एकमात्र ऐसी पत्रिका है जिसमें मुकेश अंबानी, राजीव बजाज, केकी दादीसेठ, केवी कामथ, आरए माशेलकर, आदित्य पुरी, रतन टाटा, अमिताभ बच्चन, लॉर्ड मेघनाद देसाई, हेमेंद्र कोठारी, डॉ रमाकांत पांडा, आरके लक्ष्मण आदि जैसे प्रमुख व्यक्ति शामिल हुए हैं। ये मनोरंजक साक्षात्कार पूरे देश में चर्चा का विषय बन गए हैं और इन्हें “पाथब्रेकर्स” 1 और 2 नामक बेस्टसेलिंग शीर्षकों के रूप में संकलित किया गया है। देबाशीष बसु 1983 में चार्टर्ड अकाउंटेंट बने और उन्होंने 1984-1994 के बीच बिजनेस इंडिया, बिजनेस वर्ल्ड, फाइनेंशियल एक्सप्रेस, द टाइम्स ऑफ इंडिया और बिजनेस टुडे के लिए एक पत्रकार के रूप में काम किया। 1994 से 2000 के

बीच उन्होंने बिजनेस स्टैंडर्ड और द इकोनॉमिक टाइम्स के लिए साप्ताहिक कॉलम लिखे ग्रोथ एल्केमी: छोटी फर्में फाइनेंस क्यों नहीं ढूंढ पातीं और मार्केट-बेस्ड सॉल्यूशन कैसे मदद कर सकते हैं; पाथब्रेकर्स 1&2 और इन्वेस्टमेंट पर प्लेन ट्रुथ सीरीज़। वह छोटी कंपनियों के लिए इंडोनेक्स्ट मार्केट सेगमेंट बनाने पर सिक्योरिटीज एंड एक्सचेंज बोर्ड ऑफ़ इंडिया की टास्क फोर्स के मेंबर भी थे और SEBI की म्यूचुअल फंड एडवाइजरी कमेटी के मेंबर के तौर पर भी काम किया।

सुचेता दलाल ने स्टैटिस्टिक्स में मेजर किया और फिर LLM पूरा किया। हर्षद मेहता स्कैम, CR भंसाली स्कैम, एनरॉन, बैंकों में बैड लोन, कई कॉर्पोरेट गड़बड़ियों और रेगुलेटरी कमियों पर उनकी 25 साल की शानदार इन्वेस्टिगेटिव रिपोर्टिंग बिजनेस स्टैंडर्ड, द इकोनॉमिक टाइम्स और द टाइम्स ऑफ इंडिया में छपी है। उन्हें 1993 में शानदार पत्रकारिता के लिए चमेली देवी अवॉर्ड और फेमिना वुमन ऑफ सब्सटेंस अवॉर्ड मिला। उन्होंने 2003 में कॉर्पोरेट गवर्नेंस पर NR नारायण मूर्ति कमेटी के मेंबर के तौर पर काम किया, SEBI की प्राइमरी मार्केट एडवाइजरी कमेटी की मेंबर थीं और भारत सरकार के इन्वेस्टर एजुकेशन एंड

प्रोटेक्शन फंड की मेंबर थीं। वह अहमदाबाद में मौजूद कंज्यूमर रिसर्च एंड एजुकेशन सेंटर की ट्रस्टी भी हैं। उनकी पिछली किताबें हैं AD श्रॉफ: ए टाइटन ऑफ फाइनेंस और पाथब्रेकर्स.

जैकेट डिज़ाइन: सुरेंद्र चौरसिया
केनसोर्स
रोड
315, तीसरी मंज़िल,
हिंद सर्विस इंडस्ट्रीज़ परिसर,
वीर सावकर मार्ग के पास, शिवाजी पार्क,
दादर (पश्चिम), मुंबई- 400028.
1 BRs उन बैंकों ने जारी किए थे जिन्होंने सिक्योरिटीज़ बेचीं लेकिन उन्हें तुरंत डिलीवर नहीं कर पाए। उन्होंने बताया कि क्या बेचा गया था और खरीदने वाले बैंक से पैसा मिल गया था जबकि सिक्योरिटीज़ बाद में डिलीवर की जानी थीं। डिलीवरी होने के बाद, BR डिस्चार्ज हो गया।
2 रिकंसिलिएशन सिर्फ़ आउटस्टैंडिंग SGLs का स्टेटमेंट लेकर किया जा सकता था, जिसमें वे सिक्योरिटीज़ दिखाई देंगी जो SBI को

1992 के घोटाले के बाद, हमने सोचा था कि हमने कॉरपोरेट जगत द्वारा की जाने वाली धमकियों और डराने-धमकाने की सबसे बुरी स्थिति देख ली है। लेकिन केतन पारेख, उनके उद्योगपति साथियों और फर्स्ट ग्लोबल के शंकर शर्मा ने हमें दिखाया कि हालात कितने बदतर हो सकते हैं। अप्रैल 2001 में हमने 'द एशियन एज' के खिलाफ हमारे बारे में अपमानजनक लेख प्रकाशित करने के लिए भारतीय प्रेस परिषद में शिकायत दर्ज कराई। नवंबर 2003 में प्रेस परिषद ने हमारे पक्ष में फैसला सुनाया। अखबार ने प्रेस परिषद को लिखा कि उसकी दुर्भावनापूर्ण और दुर्भावनापूर्ण रिपोर्ट का उद्देश्य हमें बदनाम करना नहीं था, लेकिन उसने आदेश के अनुसार प्रेस परिषद के फैसले को प्रकाशित करने की जहमत ही नहीं उठाई। दुर्भाग्य से, प्रेस परिषद स्वयं शक्तिहीन है और इस मामले में कुछ नहीं कर सकती। इसी बीच, फर्स्ट ग्लोबल के शंकर शर्मा ने सुचेता और इंडियन एक्सप्रेस के खिलाफ दीवानी और आपराधिक मानहानि का मुकदमा दायर किया।

फर्स्ट ग्लोबल के खिलाफ सेबी की कार्रवाई और शंकर शर्मा की गिरफ्तारी ने कई सहानुभूति रखने वालों को आकर्षित किया, जिनमें भारत के जाने-माने संपादक और स्तंभकार भी शामिल थे, जिन्होंने आँख बंद करके मान लिया कि फर्स्ट ग्लोबल को 'तेहलका' को वित्तपोषित करने के लिए प्रताड़ित किया जा रहा है। उनमें से अधिकांश व्यावसायिक लेखक नहीं थे। इससे भी बुरी बात यह थी कि वे 'तेहलका' की घटना से पहले फर्स्ट ग्लोबल से संबंधित तथ्यों से न तो परिचित थे और न ही उनमें रुचि रखते थे। यह एक एसएटी आदेश में दर्ज है। जीटीबी की 1999-00 की आरबीआई वार्षिक निरीक्षण रिपोर्ट जैसे तथ्यों में फर्स्ट ग्लोबल को दिए गए अनियमित ऋण

का दस्तावेजीकरण किया गया था। आरबीआई की रिपोर्ट में 46 ऐसे मामलों का उल्लेख किया गया था जिनमें पंचाल कंपोनेंट्स एंड अप्लायंसेज, विट्रा ट्रेड एंड एजेंसीज, टॉप गियर लीजिंग एंड फाइनेंस, वृद्धि कॉन्फइन्वेस्ट इंडिया, यूडी एंड एमडी एजेंसीज, नौलखा फाइनेंशियल सर्विसेज और मोहन फिस्कल सर्विसेज जैसी निवेश कंपनियों को मौखिक मंजूरी के आधार पर 354 करोड़ रुपये जारी किए गए थे। इस धन का उपयोग एचएफसीएल के शेयर खरीदने के लिए किया गया था, जिसके प्रमोटर केतन पारेख के करीबी थे और जिसके शेयरों को पारेख बढ़ा रहे थे।

फर्स्ट ग्लोबल ने एचएफसीएल के शेयर खरीदने के लिए जीटीबी से 44.5 करोड़ रुपये का भारी ओवरड्राफ्ट भी लिया था। शेयरों को सीधे विदेशी संस्थानों के पास रखने के बजाय, फर्स्ट ग्लोबल की निवेश संस्थाओं ने पहले शेयर 1050 रुपये प्रति शेयर के भाव से खरीदे और फिर उन्हें विदेशी संस्थानों को 10 से 25 रुपये के प्रीमियम पर बेच दिया। ईडी ने तहलका के खुलासे से एक सप्ताह पहले फर्स्ट ग्लोबल को इस संबंध में नोटिस भेजा था, जिसे दिल्ली उच्च न्यायालय ने संपादकों द्वारा लगाए गए उत्पीड़न के आरोपों को खारिज करते हुए रेखांकित किया है।

दरअसल, जहां एक ओर भावुक स्तंभकार सरकारी प्रतिशोध के कारण फर्स्ट ग्लोबल के बंद होने पर शोक व्यक्त कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर यह अमेरिका और ब्रिटेन में कारोबार कर रहा था। 8 सितंबर 2003 को, इसने उसी घोटाले में फंसी एचएफसीएल पर एक शोध रिपोर्ट जारी की, जिसका शेयर तब तक 2500 रुपये से गिरकर 8 रुपये हो गया था। इसने शेयर को खरीदने की प्रबल सिफारिश की, इसे भारत की सबसे

बड़ी वापसी की कहानी बताया और इसकी तुलना डेल कंप्यूटर खरीदने के समान अवसर से की!

जैसा कि इन सभी उदाहरणों से पता चलता है, दोहरे घोटालों की गाथा हमेशा के लिए बनी रहेगी। इसमें शामिल लोग मर जाएंगे, पकड़े जाने तक अपना कारोबार चलाते रहेंगे, फिर सुर्खियों से गायब हो जाएंगे, कुछ साहसिक वापसी करने की कोशिश करेंगे, लेकिन अधिकांश नियामकों की नज़र से बचते हुए गुप्त रूप से काम करते रहेंगे। कुछ भी हल नहीं होगा। शायद ही किसी को सज़ा मिलेगी। कोई पैसा नहीं मिलेगा।

मनीलाइफ, एक आवश्यक उपकरण सीखने-कमाने-खर्च करने-निवेश करने के चक्र के लिए
मनीलाइफ एक पाक्षिक पत्रिका है जिसमें अनूठी विशेषताएं और मजबूत प्रतिष्ठा है। यह व्यक्ति को निवेश करने और खर्च करने के लिए सशक्त बनाती है

ठोस तथ्य, अंतर्दृष्टिपूर्ण राय, निष्पक्ष विकल्प और पैसे की दुनिया से उपयोगी सुझाव प्रदान करके। मनीलाइफ न केवल उन लोगों के लिए आवश्यक है जो कमाने-खर्च करने-निवेश करने के चक्र की शुरुआत में हैं, बल्कि उन लोगों के लिए भी जो अपने निवेश के मूल्य को अधिकतम करना चाहते हैं और आर्थिक रूप से परेशानी मुक्त शिक्षा, विवाह और सेवानिवृत्ति की योजना बनाना चाहते हैं।

टीम: मनीलाइफ को भारत के कुछ बेहतरीन वित्तीय पत्रकारों द्वारा

लॉन्च किया गया है।
इस टीम में चार्टर्ड अकाउंटेंट देबाशीष बसु शामिल हैं, जिनके पास 25 वर्षों का पत्रकारिता का अनुभव है और वे कई व्यावसायिक पुस्तकों के लेखक हैं।

उन्होंने द टाइम्स ऑफ इंडिया, बिजनेस वर्ल्ड, बिजनेस इंडिया, बिजनेस टुडे, फाइनेंशियल एक्सप्रेस के साथ काम किया है और बिजनेस स्टैंडर्ड और द इकोनॉमिक टाइम्स के लिए कॉलम लिखे हैं। सुचेता दलाल भारत की जानी-मानी वित्तीय पत्रकारों में से एक हैं।

(जिन्हें 2006 में पद्म श्री से सम्मानित किया गया था) वे सलाहकार संपादक हैं। मनीलाइफ
में शीर्ष स्तर के विशेषज्ञ भी स्तंभकार के रूप में शामिल हैं।

विषयवस्तु: मनीलाइफ शेयरों, म्यूचुअल फंडों,

करियर, उपभोक्ता अधिकारों के साथ-साथ शिक्षा, स्मार्ट उधार और खर्च पर केंद्रित है। विषयवस्तु निष्पक्ष और प्रासंगिक है। प्रस्तुति दिलचस्प और संक्षिप्त है।

विशिष्टता: मनीलाइफ विश्वसनीय और अद्वितीय सामग्री, सटीक विश्लेषण और स्पष्ट लेखन शैली का एक उत्कृष्ट मिश्रण प्रस्तुत करता है, जो एक शानदार डिज़ाइन और लेआउट में समाहित है और अपने प्रतिस्पर्धियों से कहीं बेहतर है।

कई उपलब्धियां: मनीलाइफ भारत का पहला प्रकाशन है जिसने फंड स्क्रीन और स्टॉक स्क्रीन की शुरुआत की है। यह शेयरों की पहचान एक सुस्थापित परीक्षित और पारदर्शी पद्धति के माध्यम से करता है, न कि अनुमान, धारणा या अंतर्ज्ञान के आधार पर।

मनीलाइफ ने फंड प्रदर्शन पर चर्चा करते हुए विश्लेषण के उच्चतम मानक स्थापित किए हैं,
फंडों के प्रचार और दिखावे को दरकिनार करते हुए।
हमारे गहन विश्लेषण को फंड उद्योग और नियामक गंभीरता से लेते हैं।

परिणाम: हमारी स्टॉक अनुशंसाएं लगातार लाभदायक रही हैं, जो सर्वश्रेष्ठ म्यूचुअल फंडों से कहीं अधिक रिटर्न देती हैं। हम अपनी अनुशंसाओं के प्रति अद्वितीय जवाबदेही लाते हैं, हर साल एक व्यापक समीक्षा प्रदान करते हैं। यह भारत में पहली बार है।
पथप्रदर्शक: अंततः, हमारे अनूठे और लंबे करियर के साक्षात्कारों ने सबसे बड़े और सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि हासिल करने वालों की दिलचस्प कहानियों को उनके अपने शब्दों में सामने लाया है।

मनीलाइफ एकमात्र ऐसी पत्रिका रही है जिसने मुकेश अंबानी, राजीव बजाज, केकी दादिसेठ, केवी कामथ, आरए माशेलकर, आदित्य पुरी, रतन टाटा, अमिताभ बच्चन,

लॉर्ड मेघनाद देसाई, हेमेंद्र कोठारी, डॉ. रमाकांत पांडा, आरके

लक्ष्मण आदि जैसी हस्तियों को प्रकाशित किया है। ये रोचक साक्षात्कार पूरे देश में चर्चा का विषय बन गए हैं।
और इन्हें बेस्टसेलर पुस्तकों के रूप में संकलित किया गया है,

जिनका नाम है "पथप्रदर्शक" 1 और 2।

देबाशीष बसु 1983 में चार्टर्ड अकाउंटेंट बने और 1984-1994 के बीच बिजनेस इंडिया, बिजनेस वर्ल्ड, फाइनेंशियल एक्सप्रेस, द टाइम्स ऑफ इंडिया और बिजनेस टुडे के लिए पत्रकार के रूप में काम किया। 1994 से 2000 के बीच उन्होंने बिजनेस स्टैंडर्ड और द इकोनॉमिक टाइम्स के लिए साप्ताहिक कॉलम लिखे। वे वर्तमान में केनसोर्स नामक एक शोध एवं प्रकाशन फर्म चलाते हैं और व्यक्तिगत वित्त पत्रिका मनीलाइफ के संपादक एवं प्रकाशक हैं। उनकी पिछली पुस्तकें हैं: फेस वैल्यू: भारत में शेयरधारक मूल्य का सृजन और विनाश; ग्रोथ अल्केमी: छोटी कंपनियाँ वित्त क्यों नहीं पा पातीं और बाजार आधारित समाधान कैसे मदद कर सकते हैं; पाथब्रेकर्स 1 और 2 तथा निवेश पर प्लेन ट्रुथ सीरीज़।

वे भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (एसईबीआई) के लघु कंपनियों के लिए इंडोनेक्स्ट बाजार खंड के निर्माण हेतु गठित कार्य बल के सदस्य भी थे और एसईबीआई की म्यूचुअल फंड सलाहकार समिति के सदस्य के रूप में भी कार्य कर चुके हैं।

सुचेता दलाल ने सांख्यिकी में स्नातक की उपाधि प्राप्त की और फिर एलएलएम की उपाधि प्राप्त की। हर्षद मेहता घोटाला, सीआर भंसाली घोटाला, एनरॉन, बैंकों में खराब ऋण, कई कॉर्पोरेट

गड़बड़ियों और नियामक खामियों से संबंधित उनके 25 वर्षों के उत्कृष्ट खोजी पत्रकारिता के लेख बिजनेस स्टैंडर्ड, द इकोनॉमिक टाइम्स और द टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित हुए हैं। उन्हें 1993 में उत्कृष्ट पत्रकारिता के लिए चमेली देवी पुरस्कार और फेमिना वुमन ऑफ सब्सटेंस पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उन्होंने 2003 में कॉरपोरेट गवर्नेंस पर एन.आर. नारायण मूर्ति समिति की सदस्य के रूप में कार्य किया, एसईबीआई की प्राथमिक बाजार सलाहकार समिति की सदस्य और भारत सरकार के निवेशक शिक्षा एवं संरक्षण कोष की सदस्य भी रहीं। वे अहमदाबाद स्थित उपभोक्ता अनुसंधान एवं शिक्षा केंद्र की न्यासी भी हैं। उनकी पिछली पुस्तकें हैं: ए.डी. श्रॉफ: ए टाइटन ऑफ फाइनेंस और

पाथब्रेकर्स।
कवर डिज़ाइन: सुरेंद्र चौरसिया
केनसोर्स
315, तीसरी मंजिल,
हिंद सर्विस इंडस्ट्रीज परिसर,
वीर सावकर मार्ग के पास, शिवाजी पार्क,
दादर (पश्चिम), मुंबई- 400028।

1 बीआर उन बैंकों द्वारा जारी किए जाते थे जिन्होंने प्रतिभूतियां बेचीं लेकिन उन्हें तुरंत वितरित करने में असमर्थ थे। इनमें यह बताया जाता था कि क्या बेचा गया है और खरीददार बैंक से पैसा प्राप्त हो गया है, जबकि प्रतिभूतियां

बाद में वितरित की जानी थीं। एक बार डिलीवरी हो जाने के बाद,

बीआर (बकाया) की जिम्मेदारी समाप्त हो गई।

2. मिलान केवल बकाया एसजीएल (अंडरस्टैंडिंग सिक्योरिटीज) के विवरण से ही किया जा सकता था, जिससे एसबीआई को मिलने वाली प्रतिभूतियों का पता चलता। जब बैंक सरकारी प्रतिभूति खरीदते और बेचते हैं,

तो वे शायद ही कभी कागजी मुद्रा का आदान-प्रदान करते हैं। वे एसजीएल नोटों का आदान-प्रदान करते हैं, जिन्हें पीडीओ (PDO) के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। विक्रेता बैंक, खरीदार बैंक को एसजीएल नोट जारी करता है, जो फिर उन्हें पीडीओ में जमा करता है।

इसके बाद पीडीओ विक्रेता बैंक के खाते से डेबिट करके खरीदार बैंक के खाते में क्रेडिट करता है। इस प्रणाली के तहत, यदि बैंक X को 11.5% 2010 बॉन्ड बेचना है, तो पीडीओ के बहीखातों के अनुसार उसके खाते में सकारात्मक शेष राशि होनी चाहिए।

यदि ऐसा नहीं है, तो पीडीओ के समक्ष प्रस्तुत करने पर, उसके एसजीएल "बाउंस" हो जाएंगे। यदि उसके पास एसजीएल हैं, जैसा कि खेमानी ने सोचा था कि एसबीआई के पास हैं, तो उसके पीडीओ बैलेंस में यह दिखना चाहिए।
3 जैसा कि पहले बताया गया है, एसजीएल वास्तविक प्रतिभूतियों के विकल्प के रूप में जारी किए गए थे। अक्सर बीआर (रिकॉर्डिंग रिकॉर्ड) एसजीएल का स्थान ले लेते थे। बीआर इस बात की पुष्टि करता था कि विक्रय बैंक ने प्रतिभूतियों को उसमें उल्लिखित दरों पर बेचा है। बीआर का उद्देश्य एसजीएल के बाउंस होने से

बचना था। बीआर के माध्यम से, एक बैंक अपने पीडीओ बैलेंस के सकारात्मक न होने पर भी सौदे कर सकता था। एसजीएल के माध्यम से लेनदेन होने पर यह संभव नहीं था - वे बाउंस हो जाते थे।
4 यूनिट्स से तात्पर्य यूटीआई की यूनिट-64 योजना से है।
5 ये 31 जनवरी को यूनिट्स के लिए 89.05 करोड़ रुपये का सौदा, 14 मार्च को ट्रेजरी बिलों के लिए 44.97 करोड़ रुपये का लेनदेन, 30 मार्च को 17% एनटीपीसी बॉन्ड के लिए 90.45 करोड़ रुपये का लेनदेन और 16 मार्च को यूनिट्स के लिए 37.71 करोड़ रुपये का लेनदेन थे।
6 इनमें ट्रेजरी बिलों के लिए 47.95 करोड़ रुपये का सौदा, 2007 के केंद्रीय ऋण के लिए 151.99 करोड़ रुपये का लेनदेन और 2010 के प्रतिभूतियों के लिए 101.88 करोड़ रुपये का लेनदेन शामिल था। 7 एनएचबी अधिनियम की धारा 6(1) के अनुसार, एक बैंक में आवास, वास्तुकला, इंजीनियरिंग, समाजशास्त्र, वित्त, कानून, प्रबंधन और कॉर्पोरेट योजना आदि क्षेत्रों के तीन विशेषज्ञ होने चाहिए।
तीन व्यक्ति जिन्होंने आवास वित्त संस्थानों में काम किया हो, दो आरबीआई से, तीन केंद्र सरकार के अधिकारी और दो राज्य सरकार से।
8 इसमें शामिल थे: 290 करोड़ रुपये की यूनिट्स, 263 करोड़ रुपये के कैंट्रिपल, 385 करोड़ रुपये के आईआरएफसी बॉन्ड, 2007 के 12.5% केंद्रीय ऋण के 80 करोड़ रुपये, 1994 के 6% केंद्रीय ऋण के 50 करोड़ रुपये, 11% के 20 करोड़ रुपये।
2002 के आईडीबीआई बॉन्ड, रुपये... 2002 के 11% IDBI बॉन्ड में 47 करोड़ रुपये, 2000 के 8.75% IDBI बॉन्ड में 23 करोड़ रुपये,

2011 के 12% ICICI बॉन्ड में 50 करोड़ रुपये और गुम हुए बीआर में 45 करोड़ रुपये। आखिरी मद चौंकाने वाला था।
स्टैनचार्ट ने (नकली) बीआर भी ठीक से नहीं रखे थे।
9 इसके बाद नेदुंगडी का नियंत्रण रत्नाकर के करीबी कुछ दलालों, जैसे बीएसई के पूर्व उपाध्यक्ष राजेंद्र बंथिया, के हाथों में चला गया। बैंक 2001 में विवादों में घिर गया और
बाज़ार में अपनी मौजूदगी और बंथिया की बड़ी हिस्सेदारी के कारण आरबीआई की जांच के दायरे में आ गया।
10 यह फेयरग्रोथ का एक नवाचार था, जो बैंकों द्वारा जारी किए गए बैंकर्स रिसीप्ट के समान था।
11 “सिटीबैंक ने बड़ी संख्या में रेडी फॉरवर्ड लेनदेन किए... जिनमें लेनदेन का दूसरा चरण पूरा नहीं हुआ। उदाहरण के लिए, कैनफिना के साथ किए गए लेनदेन के संबंध में,
विश्वसनीय ग्राहकों की ओर से... कुल 235 करोड़ रुपये के बॉन्ड में, जब लेनदेन का दूसरा चरण जून और अगस्त 1992 के बीच देय हुआ, तो कैनफिना ने उन्हें स्वीकार नहीं किया।”
12 द फाइनेंशियल टाइम्स के स्टीफन वैगस्टाइल ने भारत में कुछ ही महीने बिताए थे कि घोटाले की कहानी सामने आई और उन्हें यहां काम करने वाली विदेशी कंपनियों के बारे में काफी जानकारी थी। फिर भी, उन्होंने
स्वयं पर सराहनीय आत्मविश्वास और भारतीय राय के प्रति चिंताजनक तिरस्कार दिखाया। विदेशी कंपनियों के बारे में यह राय कि वे जंगल में खोई हुई छोटी-छोटी चीजों की तरह हैं और स्थानीय लोगों द्वारा कुचली जा रही हैं,
विदेशी संवाददाताओं के छोटे समुदाय में व्यापक है। हाल ही में हुए एनरॉन घोटाले के दौरान भी यही बात दोहराई गई।

13. □□□□□□ □□□□□□ 2010 □□□ □□□□□ □□ 11.5% □□□□□□ □□□ □□ 550 □□□□□ □□□□□ □□□□□□□ (125 □□□□□ □□□□□), □□□□□□□□□□ (150 □□□□□ □□□□□), □□□□□□ (75 □□□□□ □□□□□), □□□□□ □□□□ (150 □□□□□ □□□□□), □□□□□□□□□□ □□ □□□□ □□□□□ □□ □□ □□□ (□□□□□□□□ 25 □□□□□ □□□□□)□ □□□□□□□ □□ 250 □□□□□ □□□□□ □□ □□□□□□ □□ 300 □□□□□ □□□□□ □□ □□□□□ □□□□□ □□□□□□ □□□□□□ □□□□ □□ □□□ □□ □□□ □□□□□□ □□□□□□ □□□□□□□ □□□□□ □□ □□□□□□□□ □□ □□□□ □□ □□□ □□□□□

14. □□□□□□□□ □□□□ □□□ □□ □□□□□ □□□□□□□□□□□□ □□ □□□□ 40 □□□□□ □□□ □□□□□ □□; □□□□ □□□□ □□□□□□ □□□□ □□ 5000 □□□□□ □□ □□□□□ □□□ □□□

15 □□-10 □□□ □□□□□ □□□□□□□□ □□□: □□□□□□□□□□, □□□□□□ □□□□□□□□□□□□, □□□□□ □□□□□□□□□□, □□□, □□□□□□□□, □□□□□□, □□□□□ □□□□□□□□□□□□, □□□□□□□□ □□□□□□□□□, □□□□□□□□□, □□□□□□□□□□□

16 2000 □□ □□□□□□ □□□ □□□□ □□□□ □□ □□□□□□□ □□□□□ □□ □□□, □□□□□□□ □□ □□□□ □□ □□□□□□□ □□ □□□□□□□ □□□ □□□□□□□□ □□□□□□□□ □□ □□□□ □□□□ □□□□ □□□□□□ □□ □□□ □□□□□ □□□□□□□ □□ □□□ □□□ □□□□□ □□□, □□□□□ □□□□□□□□ □□ □□□□□ □□□□□□ □□ □□□□□□□□□□□□ □□□□□

□□□□□□□□ □□ □□□□ □□□ □□□, □□□□□ 220 □□□□□ □□□□□ □□□ □□ □□□ □□□□□□□□ □□ □□□□□ □□□ □□, □□ □□ □□□□□□□ □□ □□□□ □□□□□□□ □□□□ □□ □□□□□ □□ □□ □□□ □□□ □□□□ □□ □□□ □□□

***** □□□□□□ *****

sjeet